



गुरुमण्डल ग्रन्थमालायाः नवममुप्यम् :-

# स्मृति-सन्दर्भः

श्रीमत्माहर्षिप्रणीत—धर्मशास्त्रसंग्रहः

पराशरादिचतुष्टयस्मृत्यात्मकः

द्वितीयो भागः

“श्रुतिस्तु वेदोविज्ञेयो धर्मशास्त्रेण वै स्मृतिः”

मनसुत्तराय गौर

५, क्लाइव रो,

कलकत्ता ।

संवत् २००९ ]

[ सं. १९१२

मुद्रक —

रुलियाराम गुप्ता

दि वङ्गाल प्रिंटिंग वर्क्स,

१, सीनागाय स्ट्रीट,

कलकत्ता-१ ।

श्रीगणेशाय नमः ।

गुरुमण्डल ग्रन्थमालाया नवमम्पुष्पम्

## स्मृति-सन्दर्भः

श्रीमन्महर्षिप्रणीत—धर्मशास्त्रसंग्रहः

पराशरादिचतुष्टयस्मृत्यात्मकः

द्वितीये भागे

श्रीनाथादिगुरुत्रय<sup>१</sup> गणपति पीठत्रयम्मेखम् ,  
सिद्धौर्ध्वं वदुकत्रयम्पद्युग दूतीत्रयम् मण्डलम् ।  
वीरान्द्वयं चतुष्क पञ्चिनवक वीरावली पञ्चकम् ,  
श्रीमन्मालिनिमन्त्रराजसहितं वन्देगुरोर्मण्डलम् ॥

५, क्वाइव रो,

कलकत्ता ।

वैक्रमचन्द्र

२००६

प्रथम संस्करणम्

५०००

ख्रैस्ताब्द

१९५२



Gurumandal Series No. IX

# THE SMRITI SANDARBHA

*COLLECTION OF THE FOUR  
DHARMASHASTRIC TEXTS  
BY MAHARSHIES.*

Volume II

5, Clive Row,  
CALCUTTA.

*Vikram Era*  
2009.

*First Edition*  
5000.

*Christian Era*  
1952.



॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

## अथ स्मृतिसन्दर्भस्य द्वितीयभागस्थ मुद्रितस्मृतीनां नामनिर्देशः ।

स्मृतिनामानि		पृष्ठाङ्काः
११	पराशरस्मृतिः	... ६२५
१२	बृहत्पराशरस्मृतिः	.... ६८२
१३	लघुहारीतस्मृतिः	.... ६७४
१४	बृद्धहारीतस्मृतिः	.. ६६४

मुद्रा करकाराधातकातरा कापि भारती ।  
करुणाद्रंकरस्पर्शैः सुधियः सान्त्वयन्तु ताम् ॥१॥  
स्मृतिवचनमयेऽस्मिन् संग्रहेचेदशुद्धिः ।  
सदय हृदयमद्भिः शोधनीया महद्भिः ॥  
प्रभवतु परितुष्टिः सर्वथाऽलोकेन ।  
मिलितकरयुगाभ्यां याचये श्रीमहेशः ॥२॥

इतिविदुषामनुचरस्य—

श्रीमहेश्वरमित्रस्य

( मैथिलस्य )

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

## स्मृतिसन्दर्भ द्वितीयभाग की विषय-सूची

### पराशरस्मृति के प्रधान विषय ।

अध्याय	प्रधानविषय	पृष्ठाङ्क
वर्तमान कलियुग में पराशर स्मृति का मुख्य स्थान माना गया है। पराशर संहिता दो उपलब्ध हैं पराशरस्मृति और बृहत्पराशर। पराशर स्मृति में द्वादश अध्याय हैं, बृहत्पराशर में भी उतनी ही। प्रथमाध्याय में दोनों स्मृतियों में एक जैसा वर्णन “कलौपाराशरीस्मृता” दूसरे अध्याय से बृहत्पराशर में कुछ विशेष बातें और विचार वर्णन किया है। पराशरस्मृति किस देश विशेष, सप्तशाय विशेष, जाति विशेष को लेकर धर्माख्या नहीं करती है, अपि तु मनुष्यमात्र का पथ-प्रदर्शित यह स्मृति करती है। हमने प्रारम्भ में ऋषियों ने इस प्रकार प्रश्न किया ।		

## १ धर्मोपदेशं तल्लक्षणवर्णनञ्च—

६२५

“मानुषाणां हितं धर्मं वर्तमाने कलियुगे  
शौचाचारं यथाग्रच्च वद सत्यवतीसुत !”

वर्तमान कलियुग में मनुष्यमात्र का हित जिससे हो वह धर्म कहिए और ठीक ठीक रीति से शौचाचार की रीति भी बतला दीजिये—श्रुपियों के प्रश्न करने पर व्यासजी ने उत्तर दिया कि कलियुग के सार्वभौम धर्म के विकास करने में अपने पिता पराशरजी की प्रतिभा शक्ति की सामर्थ्य कही यत् पराशरजी निरन्तर एकान्त वदरिकाश्रम की तपोभूमि में आसीन हैं। तपोमय भूमि में तपस्यारूपी साधन के बिना कलियुग के धर्म, व्यवहार, मर्यादा पद्धति का पर्यदीकरण अवैध सूचित किया। श्रुपियों ने इस बात पर विचार किया कि कलियुग के मनुष्य किसी धर्म मर्यादा की पर्यद बुलाने की क्षमता नहीं रख सकते हैं यावत् तपोमय जीवन से इन्द्रियों की उपरामता न हो जाय यत् इन्द्रिय भोग विलासिता के जीवनवाले वेद शास्त्रपरंगता प्राप्त करने पर भी धर्म, न्याय विधिको नहीं बना सकते हैं। अतः विधि, नियम रूपी धर्म व्यवहार के लिये

१ तपस्या तथा वनस्थली में राग, द्वेष, मल प्रक्षालनार्थ ६२५ निवास करना परमावश्यक है। पराशरजी के आश्रम पर व्यास प्रमुख सब ऋषि गये पराशरजी ने भानवीय सदाचार द्वारा आश्रम में आये हुये सब का स्वागत किया। व्यासजी ने पितृभक्ति से पराशरजी को प्रणाम कर निवेदन किया :—

“यदि जानासि मे भक्ति स्नेहाद्वा भक्तवत्सल ?  
धर्मं कथय मे तात ! अनुग्राह्योऽहं तव” ॥

( पुत्र पिता से सर्वोच्च वस्तु क्या चाहता है यह समुदा-  
चार इस प्रश्न से सरलता से ज्ञात हो रहा है ) व्यासजी  
कहते हैं कि भगवन् ! यदि मेरी भक्ति को आप जानते  
हैं या मेरे स्नेह को तो मुझे धर्म का उपदेश कीजिये जिससे  
मैं आपका अनुगृहीत होऊंगा। पुत्र पिता से सबसे  
बड़ा धन धर्म मांगता है यह भारत की संस्कृति है  
( एक ओर व्यासजी की पिता की निधि धर्म जिज्ञासा,  
दूसरी ओर संसार में देखो पैतृक धन संपत्ति पर न्याया-  
लयों में पुत्र पिता पर अभियोग चलाते हैं ) इससे  
सांस्कृतिक जीवन, असांस्कृतिक जीवन का सरलता से  
ज्ञान हो जायगा। संस्कृति उसे कहते हैं जिससे धर्म

- १ का ज्ञान माता, पिता, गुरु, धन्धुजनों को पूज्य व्यवहार ६२६  
की मर्यादामय प्रकृति होजाय । व्यासजी ने विनम्र  
जिज्ञासा की—मनु, वसिष्ठ, वश्यप, गर्ग, गौतम, उशना,  
हारीत, याज्ञवल्क्य, कात्यायन, प्रचेता, आपस्तम्ब, शंख,  
लिपित आदि धर्मशास्त्र प्रणेताओं के धर्म निबन्ध  
सुनने पर भी वर्तमान कलियुग की धर्म-मर्यादा  
बनाने में अपने को असमर्थ समझकर आपके पास  
इन ऋषियों के साथ आया हूँ कलियुग में धर्म को  
नष्टप्राय देख रहा हूँ । अतः आपका तपोमय जीवन ही  
इस युग धर्म की व्यवस्था दे सकता है, इसपर व्यासजी  
ने ( १६-२६ ) तक युग चतुष्टय की व्यवस्था धर्म मर्यादा  
का तारतम्य बताया है । ( २६ ) में दान के प्रकरण में  
सेवा दान दान नहीं है वह सेवा का मूल्य है । सत्ययुग में  
अस्थि में प्राण रहते थे, व्रेता में मांस में, द्रापर में रुधिर  
में और कलियुग में अन्न में प्राण रहते हैं ( ३० ) । इस  
कारण दीर्घ समय तक तपस्या की क्षमता कलियुग  
के जीवन में नहीं है और अन्न की सावधानी  
पर ध्यान दिलाया जैसा अन्न खायगा उसी प्रकार  
उसके जीवन की सम्पूर्ण घटना होगी । कलियुग के  
जीवन की प्रवृत्ति बनाकर आचार पर ध्यान दिलाया  
है ( ३१-३७ ) ।

अध्याय

प्रधान विषय

पृष्ठाङ्क

आचार धर्मवर्णनम्—

६२६

१ "आचार भ्रष्टदेहानां भवेद्धर्मः पराङ्मुख" ।

व्यासजी ने अपना सिद्धान्त स्पष्ट किया है कि यदि मनुष्य आचार से च्युत है तो उसे धर्मपराङ्मुख समझना चाहिए । सदाचार विहित धर्म मर्यादा को नहीं जान सकता है ।

"सन्ध्यास्तनं जपो होम स्वाध्यायो देवतार्चनम् ।

वैश्रदेवातिथेयश्च षट्कर्माणि दिने दिने ॥ (३६)

षट्कर्माभिरतो नित्यं देवताऽतिथिपूजकः ।

हुतशेषन्तु भुञ्जानो ब्राह्मणो नावसीदति" ॥ (३८) .

षट् कर्म का निरूपण, गृहस्थी की अतिथि का सत्कार परमावश्यक है वैश्रदेव कर्मादि का निरूपण और अतिथि का लक्षण ( ३८-४८ ) । राजा को प्रजा से सर्वस्वशोषण का निषेध "पुष्पं पुष्पं विचिनुयान्मूलच्छेदं न कारयेत्" मालाकार का उद्गाहरण दिया है ( ४८-समाप्ति तक ) ।

२ गृहस्थाश्रमधर्मवर्णनम् ।

६३१

द्वितीयाध्याय में गृहस्थी के धर्माचार का निर्देश किया है ( १ ) ।

- २ "पट्कर्म निरतो विप्रः कृषिकर्माणि कारयेत्(२)। ६३१  
 हलमष्टगवं धर्म्यं षड्गवं मध्यमं स्मृतम् ॥  
 चतुर्गवं नृशंसानां द्विगवं वृषघातिनाम् (३) ।  
 क्षुधितं तृपितं श्रान्तं वलीवर्दं न योजयेत् ॥  
 हीनाङ्गं व्याधितं वलीवं घृषं विप्रो न बाहयेत् (४) ।  
 स्थिराङ्गं नीरुजं दृप्तं वृषभं पण्डवर्जितम् ॥  
 बाहयेद्विसस्यार्धं पश्चात् स्नानं समाचरेत्" (५) ।

पट्कर्म सम्पन्न विप्र को कृषि कर्म में जुटजाने का आदेश है, किस प्रकार भूमि में हल से जुताई करे, कितने घैलों से हल जोते तथा बैलो को ह्रस्वपुष्ट बनाना उसका धर्मकार्य और कितने समय तक घैलो को खेती पर जोते जाय इसका नियम । कृषि कर्म को पराशर ने सब से प्रथम द्विजाति मात्र अर्थात् मनुष्य मात्र के लिये प्रधान कर्म बताया है और कृषिकार सब पापों से छूट जाते हैं ( १२ ) । चतुर्वर्ण का कृषि कर्म धर्म बतलाया है ( १७ ) ।

- ३ अशौच व्यवस्था वर्णनम् ।

६३३ .

अशौच का प्रकरण—ब्राह्मण मृतसूक्त में ३ दिन में, क्षत्रिय १२ दिन में, वैश्य १५ दिन में और शूद्र १ मास ।

में शुद्ध हो जाता है। तृतीय अध्याय में जन्म और मरण के अशौच का विवरण दिया गया है। किन्तु जातक अशौच में ब्राह्मण १० दिन में शेष पूर्व लिखित है। बालक और संन्यासी के मरने पर तत्काल शुद्धि बतलाई है। १० दिन के बाद मयूर पावे तो ३ दिन का सूतक, और सम्बत्सर के बाद खयर पावे तो स्नान करके शुद्धि हो जाती है ( १-१६ )। गर्भ में मरने की और सद्यः मरने की तत्काल शुद्धि होती है ( २६ )। शिल्प काम करने वाले, राजमजदूर, नाई, वैद्य, नौकर, वेदपाठी और राजा इनको सद्यः शौच बतलाया है ( २७-२८ )। गर्भस्त्राव का सूतक बतलाया है ( ३३ )। विवाहोत्सव में मृतक सूतक हो जाय तो उसमें पूरे दान किया हुआ दे ले सकता है ( ३४-३५ )। संग्राम वाले की मृत्यु का १ दिन का अशौच माना गया है और उसका माहात्म्य बतलाया है ( ३६-४३ )। संग्राम में क्षत्रिय के देहपात का माहात्म्य ( ४४-४७ )। शूद्र के शव ले जाने वाले पर सूतक की अवधि ( समाप्ति )।

४ अनेकविधप्रकरण प्रायश्चित्तम् ।

६३६

जो किसी को फाँसी में लगावे उसका पाप और उसको



चान्द्रायण करना चाहिये ( १-६ ) । जो बिना इच्छा के पतितों से सम्पर्क रखता है उसकी शुद्धि के लिये बतलाया है ( ७-११ ) । जो स्त्री ऋतुकाल में पति के पास न जावे अथवा पति पत्नी के पास न जावे उसका वर्णन ( १२-१६ ) । औरस, क्षेत्रज, दत्तक, कृत्रिम पुत्रों की परिभाषा है ( १७-२८ ) ।

#### ५ प्रायश्चित्त वर्णनम् ।

६४२

इसमें प्रायश्चित्त का वर्णन आया है । कुत्ता, भेड़िया किसी को काटे उसको गायत्री जपादि प्रायश्चित्त बतलाया है ( १-७ ) । चाण्डाल, चमार आदि से जो ब्राह्मण मर जाय उसका प्रायश्चित्त ( ८-१२ ) ।

#### ५ श्रौताग्निहोत्र संस्कार वर्णनम् ।

६४३

आहिताग्नि के शरीर टूटने पर उसके श्रौताग्नि से उसका किस प्रकार संस्कार करना इसका विवरण है ( १३-३६ ) ।

#### ६ प्राणिहत्या प्रायश्चित्त वर्णनम् ।

६४४

प्राणिहत्या का प्रायश्चित्त—हंस, सारस, क्रौंच, दिङ्गी आदि पक्षियों को मारने से जो पाप होता है उसका प्रायश्चित्त और शुद्धि ( १-८ ) । नकुल मार्जार, सर्प आदि को मारने का पाप, उसका प्रायश्चित्त और शुद्धि

(६-१०)। भेडिया, गौदड़ और सूकर मारने का पाप, उसका प्रायश्चित्त और शुद्धि (११)। घोड़े, हाथी मारने का पाप, उसका प्रायश्चित्त और शुद्धि (१२)। मृग, बराह के मारने का पाप, उसका प्रायश्चित्त और शुद्धि (१३-१४)। शिल्पी, कारु और स्त्री आदि के घात का पाप, प्रायश्चित्त एवं शुद्धि (१५-१६)। चाण्डाल से व्यवहार का पाप उसका प्रायश्चित्त एवं शुद्धि (२०-२५)।

#### ६ प्रायश्चित्त वर्णनम् ।

६४७

उपयुक्त के अन्न खाने का प्रायश्चित्त (२६-३०)। अविज्ञात में चाण्डाल आदि के यहाँ ठहर कर जूठे एवं कृमि दूषित अन्न भोजन करने का दोष और उसका प्रायश्चित्त तथा शुद्धि (३१-३८)। घर की शुद्धि जिस घर में चाण्डाल रह गये उस घर की शुद्धि। इन स्थानों पर रस, दूध दही आदि अशुद्ध नहीं होते हैं (३९-४३)।

#### ६ ब्राह्मण महत्त्ववर्णनम् ।

६४८

ब्राह्मण के किसी धन पर कीड़े पड़ जाय तो उसका वर्णन और उसकी शुद्धि यनाई है —

“उपवासो व्रतं चैव स्नानं तीर्थं जपस्तपः ।

विप्रैः सम्पादितं यस्य सम्पन्नं तस्य तद्भवेत्” ॥

ब्राह्मण जो व्यवस्था देते हैं उसके अनुसार चलने का माहात्म्य (४३-५८) । ब्राह्मण के वाक्य तथा उनका माहात्म्य (५९-६१) । अभोज्य अन्न, भोजन करते समय कैसे बैठना चाहिये उसका विधान । कुत्ते का स्पर्श किया हुआ अन्न त्याज्य बताया है और चाण्डाल का देखा हुआ अन्न त्याज्य बताया है (६२-६३) । एक बड़ी संख्या में जो अन्न अशुद्ध हो जाय तो उसे त्याज्य नहीं बतलाया है बल्कि उसे सोने के जल से अथवा अग्नि से शुद्ध किया जा सकता है (६४ समाप्ति) !

### ७ द्रव्यशुद्धि वर्णनम् ।

६५१

लकड़ी के पात्र और यज्ञ पात्र इनकी शुद्धि के सम्बन्ध में बतलाया है (१-३) । स्त्री, नदी, वापी, कूप और तड़ाग की शुद्धि के सम्बन्ध में बताया है (४-५) । रजस्वला होने से पहले कन्या का दान न करने पर माता पिता को पाप (६-६) ।

### ७ स्त्रीशुद्धिवर्णनम् ।

६५३

रजस्वला स्त्री के शुद्धि के सम्बन्ध में बताया है (१०-१७) ।

किसी का मत है कि बीमारी से किसी स्त्री का रज निवृत्तता हो तो उसे अशुद्ध नहीं मानते हैं (१८)। कास्थ, मिट्टी आदि के पात्र एवं बरतों की शुद्धि के सम्बन्ध में बताया है (१९-३५)। सडक में पानी, नाव और पक्के मकान इनको शुद्ध बताया है इनको अशुद्ध नहीं कहते हैं (३६)। युद्ध स्त्री और छोटे बालक ये अशुद्ध नहीं होते हैं। पापियों के साथ घातकीत करने पर दाहिना कान छू देने पर शुद्धि बताई गई है (३७ समाप्ति)।

## ८ धर्माचरणवर्णनम् ।

६५५

प्रथम श्लोक में गाय को बांधने से जो मृत्यु हो जाय उससे प्रायश्चित्त के सम्बन्ध में है।

पाप की व्यवस्था कराने के लिये धर्माधिकारी परिषद् का वर्णन है (२-२१)।

## ८ निन्द्य ब्राह्मणवर्णनम् ।

६५७

जो ब्राह्मण न लिखे पढ़े तो उन्हें पतित और उनका प्रायश्चित्त है (२२-२७)। पथ्य यज्ञ करनेवाले और वेद पढ़े लिखे ब्राह्मण की प्रशंसा (२८-३१)। राजा को बिना विद्वान् ब्राह्मणों के पृथक् स्वयं व्यवस्था नहीं देनी

चाहिये ( ३२-३६ ) । प्रायश्चित्त किन स्थानों पर करना चाहिये ( ३७-३८ ) ।

#### ८ गोमूत्राक्षणहेतोरुपदेशः ।

६५६

गाय किसी स्थान पर कीचड़ में फँस जाय तो उसके रक्षा का पुण्य ( ३९-४३ ) । गो घाती को प्राजापत्य कृच्छ्र के विधान का वर्णन ( ४४-समाप्ति ) ।

#### ९ गोसेवोपदेशवर्णनम् ।

६६०

गो सेवा का उपदेश । गोबध करने में कौन-कौन दण्डनीय होते हैं । गाय को बाँधना, लाठी मारना या काम क्रोध से मारना, पैर वा सींग तोड़ना याने कई तरह गो को मारने का पाप तथा उसका प्रायश्चित्त बताया गया है ।

#### १० गवि विपन्नानां प्रायश्चित्तम् ।

६६३

इसमें गाय के बाँधने का एवं नदी और पर्वत पर गाय के चराने का वर्णन । इसमें गायको विपत्ति हो जाय और गाय को किन रस्तियों से बाँधना चाहिए और किनसे नहीं बाँधना, बिजली गिरने से, अति वृष्टि-से यदि गाय मर जाय, इन सम्बन्धों में और गाय के

सम्बन्ध में कोई बात न बतावे तो इससे पाप आदि का वर्णन आया है। इस अध्याय के अन्त में यह उपदेश दिया है कि स्त्री, बाल, भृत्य, “गो विप्रेक्षति कोपं विवर्जयेत्” इन पर अति कोप नहीं करना (२६ समाप्ति)।

### १० अगम्यागमन प्रायश्चित्तवर्णनम् ।

६६६

दशम अध्याय में अगम्यागम्य प्रायश्चित्त का वर्णन है। चातुर्वर्ण्य को अगम्यागम्य में चान्द्रायण व्रत बतलाया है (१)। चान्द्रायण व्रत की परिभाषा बतलाई है, शुक्लपक्ष में एक-एक मास बढ़ाते और कृष्ण पक्ष में एक एक मास घटावे। मास का प्रमाण कुक्कुट (मुर्गी) के अंड के समान बताया है (२-३)। चाण्डालनी के गमन करने से पाप का प्रायश्चित्त (४-६)। माता, माता की बहिन और लड़की के गमन करने पर चान्द्रायण व्रत बतलाया है (१०-१४)। पिता की बहु स्त्रियाँ और माँ की सम्बन्धी, भ्रातृ भार्या, मामी, सगोत्रा इनके गमन का प्रायश्चित्त बतलाया है। पशु और वेश्या गमन या गो गामी या भैंस के साथ गमन करने का प्रायश्चित्त है (१५-१६)। मनुष्य का कर्तव्य—जीमारी, संग्राम, दुर्भिक्ष, कदखाने में भी औरत की रक्षा करता जाय (१७)। व्यभिचार से दुःप्रिय स्त्री के शुद्धि और शुद्धि के प्रसंग में बताया है

( १८-२६ ) । जो स्त्री शराब पीवे उसका पति पतित हो जाता है ऐसी पतित स्त्री के पुरुष को कोई चान्द्रायण व्रत नहीं है ( २७ ) । जार से जो स्त्री संतान पैदा करे उसे दूसरे देश में त्याग देना चाहिए ( २८-३२ ) । पतित स्त्री का प्रायश्चित्त यदि पति चाहे तो वो भी कर सकता है ( ३३-३४ ) । जो स्त्री जार के घर चली जाय फिर वहाँ से भाग कर यदि पिता के घर आजाय तो वह जार का घर समझा जायगा । काम और मोह से जो स्त्री अपने बर्णों को छोड़ कर जार के घर चली जाय तो उसका परलोक नष्ट हो जाता है ( ३५-४२ ) ।

## ११ अमक्ष्यभक्षणप्रायश्चित्त वर्णनम् ।

६७०

अमक्ष्य भक्षण का प्रायश्चित्त— गोमांस एवं चाण्डाल के अश्रादि भक्षण का प्रायश्चित्त ( १-७ ) । एक पंक्ति पर बैठे हुए में से एक भी भोजन करने वाला उठ जाय तो जो खाता रहे उसको प्रायश्चित्त बतलाया क्योंकि यह अन्न दूषित हो जाता है ( ८-१० ) । पलाण्डु ( प्याज ) वृक्ष का निर्यास, देवता का धन और ऊँट, भेड़ का दूध खानेवाले को प्रायश्चित्त ( ११-१४ ) । अज्ञान से जो किसी के घर सूतक का अन्न खाले उसको प्रायश्चित्त ( १५-२० ) । ब्राह्मण से शूद्र कन्या में उत्पन्न

हुए को दास कहते हैं । जिसके संस्कार हो जाते हैं उसे भी दास कहते हैं और जिसके संस्कार न हो वह नाई होता है ( २१-२४ ) । ब्रह्मकूर्च उपवास की विधि किस तरह की जाय किस मंत्र से—गोमय, दूध, दही लावे इसका वर्णन आया है ( २५-३३ ) ।

## ११ शुद्धि-वर्णनम् ।

६७३

हवन का विधान ( ३४-३५ ) । ब्रह्मकूर्च का माहात्म्य ( ३६ ) ।

“ब्रह्मकूर्चो दहेत्सर्वं यथैवाग्निरिवेन्धनम्” ।

पीसे पीते पानी यदि पात्र में रह जाय तो फिर पीने का दोष एवं उसको चान्द्रायण व्रत बतलाया है ( ३७ ) । सालाव, कूर्च में जहाँ जानवर मर गया हो उस जल के पीने में प्रायश्चित्त से शुद्धि ( ३८-४२ ) । पंच यज्ञ का विधान । समय के ब्राह्मणों की निन्दा न करनी चाहिये ( ४३-५३ ) ।

## १२ शुद्धिवर्णनम् ।

६७५

पुनः संस्कारादि प्रायश्चित्त वर्णनम् ।

खराब स्वप्न देखने से शान करने से शुद्धि ( १ ) । अज्ञान से जो सुरापान करे उसका प्रायश्चित्त ( २-४ ) । तीर्था



यणों का प्रायश्चित्त, स्नान का विधान, अजिन (मृगचर्म),  
 मेखला छोड़ने पर ब्रह्मचारी के पुनः संस्कार (५-८) । आग्नेय  
 स्नान, धारुण्य स्नान, सातपवर्ष (दिव्य) और भस्म स्नानादि  
 का वर्णन आया है (६-१४) । आचमन करने का  
 समय और विधान यत्नलाया है (१५-१८) । दक्षिण  
 कर्ण का स्पर्श (१९) । सूर्य की किरणों से स्नान का  
 माहात्म्य (२०-२२) । रात्रि में चन्द्रग्रहण पर दान करने  
 का माहात्म्य रात्रि में केवल ग्रहण समय का माहात्म्य  
 है (२३) । रात्रि के मध्य के दो प्रहर को महानिशा  
 कहते हैं । रात्रि के उत्तरार्ध के दो प्रहर को प्रदोष कहते  
 हैं । उसमें दिनवत् स्नान करना चाहिये (२४) ।  
 ग्रहण के स्नान का विधान (२५-२८) । जो यज्ञ न  
 कर सकते हो उनके वेदाध्ययन की आवश्यकता है  
 (२९) । शूद्रात्र को भक्षण कर जो प्रायश्चित्त नहीं  
 करते हैं वे जिस जन्म में जाते हैं उन्हें कुत्ते, गीधादि  
 की योनिया प्राप्त होती हैं (३०-३८) । जो अन्याय के  
 धन से जीवन चलाता है उसका प्रायश्चित्त (३९-४२) ।  
 गोचर्म कितनी भूमि की संज्ञा है तथा उस भूमि के दान  
 करने का माहात्म्य (४३) । छोटे-छोटे पाप जैसे—  
 मुह लगाकर जल पीने से पाप (४४-५४) । ऊपर नीचे  
 का उच्छिष्ट जो अन्तरिक्ष में भरता है उसका प्रायश्चित्त

( ५५-५६ ) । जो गृहस्थी व्यर्थ ( ऋतु कालाभिगमन के अतिरिक्त ) धीर्य नष्ट करे उसका प्रायश्चित्त ( ५७ ) ।

१२ प्रायश्चित्त वर्णनम् । -

६८०

छोटे-छोटे प्रायश्चित्त— सेतुबन्ध में जाना, गोकुल में जाकर अपने पापों के वर्णन करने से पाप नष्ट हो जाते हैं । सेतुबंध में स्नान का माहात्म्य तथा उससे पाप नष्ट हो जाने का वर्णन आया है । इसी प्रकार १०० गाय दान करने से ब्रह्महत्या दूर हो जाती है । मद्यपि ब्राह्मण गङ्गाजी में स्नान कर कभी न पीने का सङ्कल्प करे । ऐसी-ऐसी शुद्धियों का वर्णन तथा इनसे पाप दूर करने का विधान आया है ( ५८-७४ ) ।

बृहत् पराशरस्मृति के प्रधान विषय

इसमें १२ अध्याय हैं । प्रथम अध्याय में पराशर संहिता के क्रमानुसार ही विभिन्न अध्यायों में वर्णित आचार प्रायश्चित्त आदि विषयों का वर्णन किया है ।

१ वर्णाश्रमधर्म वर्णनम् ।

६८२

प्रथमाध्याय में पराशरजी के पास वर्णाश्रम धर्म कलियुग में किस प्रकार से होता है, इस प्रश्न को लेकर व्यास

आदि ऋषि पराशरजी के पास गये (१-२०)। पराशरजी ने कहा कि वेद और धर्मशास्त्र इन दोनों का कर्ता कोई नहीं है। ब्रह्माजी को जिस प्रकार वेदों का स्मरण हुआ था उसी प्रकार युग-प्रति-युग में मनुजी को धर्मस्मृतियों का स्मरण हुआ। पराशरजी ने कलियुग की विप्लव दशा में खेद प्रगट किया कि धर्म दम्भ के लिये, तपस्या पाखण्ड के लिये एवं बड़े-बड़े प्रवचन लोगों की प्रवचना (ठगी) के लिये किये जाते हैं। गायों का दूध कम हो जाता है, कृषि में उर्वरा शक्ति कम हो जाती है, स्त्रियों के साथ केवलमात्र रति की कामना से सहवास करते हैं न कि पुत्रोत्पत्ति के लिये। पुरुष स्त्रियों के परीभूत होते हैं। राजाओं को प्रंचक अपने वश में कर लेते हैं। धर्म का स्थान पाप ले लेता है। शूद्र ब्राह्मणों का आचार पालते हैं तथा ब्राह्मण शूद्रवत् आचरण करने लगते हैं। धनी लोग अन्याय मार्ग पर चलते हैं। इस प्रकार कलियुग की विपन्नता पर अत्यन्त खेद प्रगट किया है (२१-३५)।

१ धर्मविषयवर्णनम् ।

७८६

इसमें आचार वर्णन दिखाया और युगों का नाम बताया

ह। सतयुग को साहज्य युग, त्रेता को क्षत्रिय युग, द्वापर को वैश्य युग तथा कलियुग को शूद्र युग बताया है। वर्णाश्रम धर्म की क्षमता उस भूमि में बताई है जिसमें कृष्णसार मृग स्वभावतः स्वतंत्रतापूर्वक विचरण करते हैं। हिमालय और विन्ध्याचल के मध्य देश को पावन देश बताया है और अन्य देश जहाँ से नदियाँ साक्षात् समुद्रगामिनी हैं उन्हें भी तीर्थस्थान बताया है। इसमें पराशरजीने अपने पुत्र व्यास को द्विज कर्म और पदकर्म, वर्णधर्म की प्रशंसा और गो वृषभ का पालन पशुपालन विधि

पदकर्म वर्णधर्माश्च प्रशंसा गोवृषस्य च ।

अदोह्य-बाह्यौ यौ तत्र क्षीरं क्षीरप्रयोक्तिरणा ॥

अमावास्या निषिद्धानि ततश्च पशुपालनम् ॥

विवाह संस्कार, व्रतचर्यादि, पुत्रजन्म, अखिल गृहस्थधर्म का उपदेश, भक्ष्याभक्ष्य की व्यवस्था, द्रव्य शुद्धि, अध्ययनाध्यापन का समय, श्राद्ध कर्म, नारायणवली, सूतक तथा अशौच, प्रायश्चित्त विधान, दानविधि तथा फल, भूमिदान की प्रशंसा, श्राद्धपूर्व कर्म, ग्रहों की शान्ति, वानप्रस्थ धर्म, चारों आश्रम, दो मार्ग, अर्चि तथा धूम मार्ग इन सबका वर्णन यथानुपूर्व बृहत् पराशर के द्वादश अध्याय में बताया है ( ३६-६४ ) ।

## २ आचारधर्मवर्णनम् ।

६८८

चारों वर्णों का धर्मपालन में आचार बतलाया है ।  
ब्राह्मण को यज्ञावशेष वृत्ति की प्रशंसा की है ( १-३ ) ।  
व्यासजी ने पराशरजी से पूछा कि कौन-कौन कर्म हैं जो  
प्रत्येक वर्णों को कलियुग में करने चाहिये तथा उनकी  
विधि क्या होनी चाहिये ( ४ ) ।

२ नित्य षट्कर्म वर्णनम्, संध्याकृत्य वर्णनम्,  
सदाचार कृत्यवर्णनम् ।

६८९

“कर्मषट्कं प्रवक्ष्यामि, यत्कुर्वन्तो द्विजातयः ।  
गृहस्था अपि मुच्यन्ते संसारै बन्धहेतुभिः” ॥

इस प्रकार कहकर संध्या, स्नान, जप, देवताओं का पूजन,  
वैश्वदेव कर्म, आतिथ्य इन षट्कर्मों को नित्यप्रति करने  
का आदेश देकर संध्या वर्णन किया ( ५-८५ ) ।

## २ आचारवर्णनम् ।

६९०

सात प्रकार के स्नान का वर्णन किया गया है—मंत्रस्नान,  
पार्थिव स्नान, वायव्य स्नान, दिव्यस्नान, वारुणस्नान,  
मानसस्नान तथा आग्नेयस्नान ये सात प्रकार के स्नान,  
इनके मन्त्र फल सहित बताकर प्रातःस्नान का सब

से ज्यादा माहात्म्य कहा गया है (८६-६३)। उषाकाल के स्नान की प्रशंसा कर और स्नानकाल में स्नान न कर हजामत या दंतधावन करें उसे रौरव नरक और पितृ श्राप कहा है (६४-६६)। गङ्गा और कुण्ड के स्नान का माहात्म्य तथा स्नान का समय बताया गया है (६७-१०८)। भाद्रपद के महीने में नदी के स्नान का निषेध बताया है क्योंकि नदियाँ रजस्वला रहती हैं किन्तु जो नदियाँ सीधी समुद्र में जाती हैं उनमें स्नान हो सकता है (१०६-११०)। रवि संक्रान्ति में और ग्रहण में अमावास्या में, व्रत के दिन, पक्षी तिथि पर गर्म जल से स्नान नहीं करना चाहिये (१११-११२)।

२ स सदाचार नित्यकर्म वर्णनम् ।

६६६

किस प्रकार स्नान करना अर्थात् स्नान करने की विधि बतलाई है (११३-१२३)। स्नान का मन्त्र, पञ्चगव्य स्नान के मंत्र, मिट्टी लगाने के मंत्र आदि जिन मंत्रों का उच्चारण करना है उनका वर्णन किया गया है (१२४-१४८)। स्नान का फल और स्नान करने का विधान, बिना मंत्रों के स्नान करने से स्नान का कोई फल नहीं होता है यह बताया गया है जैसे जल में मन्त्री पैदा होती है और वही लय हो जाती है (१४६-१५०)।

मन्त्र के उच्चारण का विधान, उदात्त अनुदात्त, स्वरित, प्लुत स्वरों के उच्चारण का क्रम बताया गया है (१५१-१५५) किस अङ्ग में कितनी बार मिट्टी लगानी चाहिये उसका विधान और शरीर पर ॐ का पहाँ कहाँ पर और कितनी बार लिखना इसका विधान, स्नान के समय गायत्री का जप और स्नानान्तर गायत्री के मन्त्र का जप करने का निर्देश किया गया है (१५६-१६८)।

## २ श्राद्धे इति कर्तव्यता, तर्पण वर्णनम् । ७०४

तर्पण की विधि, देवताओं के तर्पण, पितरों के तर्पण, मनुष्यों के तर्पण और अपने वंशजों का तर्पण तथा यक्षों के तर्पण की विधि बताई गई है (१६९-२२०)।

## २ कर्तव्यवर्णनम् । ७०६

मनुष्य के हाथ पर ब्रह्मतीर्थ, पितृतीर्थ, प्राजापत्य तीर्थ, सौमिक तीर्थ तथा दैव्य तीर्थ ये पंचतीर्थ बताये गये हैं। स्नान करके इन पाँच तीर्थों से जल चढ़ाना चाहिये (२२१-२२४)। विना स्नान किये भोजन करता है उसकी निन्दा और स्नान करने से दुस्वप्न का नाश बताया गया है। स्नान करने के यह फल बताये हैं (२२५-२२६) यथा—

चित्तप्रसाद बलरूप तपांसिमेधा,  
 मायुष्यशौच सुभगत्व मरोगितां च ।  
 ओजस्वितां त्विषमदात् पुरुषस्यर्चीर्ण,  
 स्नानं यशो-विभव-सौख्यमलोलुपत्वम् ॥

३ ' ओंकार मन्त्र वर्णनम् ।

७१०

ओंकार मंत्र के जप की विधि बताई गई है । जपने के मन्त्रात्मक सूक्त ये बताये हैं—ब्रह्म सूक्त, शिव सूक्त, वैष्णव सूक्त, सौरि सूक्त, सरस्वती सूक्त, दुर्गा सूक्त, धरुण सूक्त और पुराण शास्त्रों में जो जप आदि लिखे हैं उनका वर्णन है । ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद में जो सूक्त आये हैं उनकी परिगणना । गायत्री मन्त्र का जप और ओंकार का जप, जिस मन्त्र का जप उसका ऋषि देवता जानने से सिद्धि होती है (१-६) ओंकार और गायत्री मन्त्र के जप की महिमा और उसका स्वरूप, उसमें यह दर्शाया गया है कि पहले ओंकार शब्द हुआ और वह अकेला रहा, उसने अपने आभोग प्रभोग के लिये गायत्री को स्मरण कर उसको प्रत्यक्ष किया, तो गायत्री उसकी पत्नी हो गई और प्रणव (ओंकार) उसका पति हुआ । इनके संयोग से तीन वेद, तीन गुण, तीन देवता, तीन मात्रा, तीन ताल



तीन लिङ्ग ये उत्पन्न हुए। वेद शास्त्र में सब जगह ये तीन मात्रा आती हैं। इस ओंकार रूपी अक्षर के धन का माहात्म्य आदि अगले अध्याय में बताया गया है (७-३३)।

## ४ गायत्रीमन्त्र पुरश्चरण वर्णनम्।

७१४

इसमें गायत्री मन्त्र का पुरश्चरण, गायत्री का उच्चारण, गायत्री प्रकृति और ओंकार को पुरुष और इनके संयोग से जगन् की उत्पत्ति बताई गई है। गायत्री के २४ अक्षरों को २४ तत्त्व बताया है (१-१२)। वेदों से गायत्री की उच्चता (१३-१७)। एक एक अक्षर में एक एक देवता बताया है (१८-२५)। एक एक अक्षर किस किस अङ्ग में रखना बताया गया है (२६-३६)। गायत्री जप करने का स्थान और जपने की माला का विशदीकरण किया गया है (३७-५२)। प्राणायाम का माहात्म्य बताया गया है (५३-५५)। उपांशु जप और मानस जप का वर्णन किया गया है (५६-५८)। सब यज्ञों से जप यज्ञ की श्रेष्ठता बताई है (५९-६३)। जप कैसे और किस मुद्रा और किस रीति से करना चाहिये बताया है (६४-७०)।

## १२ गायत्री मन्त्र वर्णनम् ।

७२०

१२ गायत्री मन्त्र के एक एक अक्षर का एक एक देवता और उसके स्वरूप का वर्णन किया गया है (७१-६७) ।

## १४ गायत्री मन्त्र जप वर्णनम्

७२३

न्यास और गायत्री की उपासना और स्थूल, सूक्ष्म और कारण इन तीनों शरीरों को गायत्री से बन्धन करने का विधान है (६८-११०) ।

## ४ देवार्चन विधि वर्णनम् ।

७२४

देवताओं का पूजन और उसके मन्त्र, जैसे विष्णु का गायत्री और ओंकार से पूजन इत्यादि (१११-१२३) । देवता के देह में न्यास जैसे कि मनुष्य अपनी देह में करता है (१२४-१३४) । पुरुष सूक्त के पहले मन्त्र से आवाहन, दूसरे से आसन, तीसरे से पाद्य, चतुर्थ से अर्घ्य इत्यादि का वर्णन आया है (१३५-१४१) । जो मनुष्य इस प्रकार विष्णु की पूजा करता है वह अन्त में विष्णु की देह में ही चला जाता है (१४२) । देवताओं का पूजन और उसकी विधि का वर्णन किया है (१४३-१५४) ।

अध्याय

प्रधानविषय

पृष्ठांक

## ४ वैश्वदेव विधिवर्णनम् ।

७२८

वैश्वदेव विधि का वर्णन करते समय बताया है कि जो दिना अग्नि को चढ़ाये खाता है अथवा दिना बलि वैश्वदेव किये जो अन्न परोसा जाता है यह अभोज्य अन्न है। जिस अग्नि में अन्न पकाये उसी में अन्न का हवन करना चाहिये और हवन करने के मन्त्र तथा विधान लिखा है (१६५-१६३)।

## ४ आतिथ्य विधिवर्णनम् ।

७३२

अतिथि की विधि और अतिथि को भोजन देने का माहात्म्य लिखा है। अतिथि का लक्षण, जैसे जो कि भूखा, व्यासा, माग चलने से थका हुआ प्राणरक्षा मात्र चाहता है यदि ऐसा अतिथि अपने घर आवे तो उसे विष्णु रूप समझना चाहिये। गृहस्थी के लिये अतिथि सत्कार परम धर्म बतलाया है (१६४-२११)।

## ४ वर्णाश्रम धर्म वर्णनम् ।

७३४

वर्णाश्रम धर्म बताये हैं, जैसे यज्ञ करना, कराना, दान देना, लेना, पढ़ना, पढ़ाना ये छः कर्म ब्राह्मण के कहे हैं इसी प्रकार क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र के कर्म का

अध्याय

प्रधान विषय

पृष्ठाङ्क

विधान आया है। अपनी अपनी वृत्ति से सबको जीवन निर्वाह करने का माहात्म्य बताया गया है।

५ गोमहिमा वर्णनम् ।

७३५

पट् कर्म सहित विप्र कृपि वृत्ति का आश्रय करे (१-२)। बैल के पालन करने का माहात्म्य और किस प्रकार के बैल से खेती जोतनी चाहिये उसका वर्णन किया गया है (३-६)। गोमाहात्म्य और गो के पालन करने का माहात्म्य तथा गोमूत्र पान करने का माहात्म्य और दुर्बल, बीमार गाय को दुहने का पाप और गोदान का माहात्म्य, गौ के अङ्ग प्रत्यङ्ग में देवताओं का निवास बताया गया है (७-४३)।

यस्याः शिरसि ब्रह्माऽऽस्ते स्कन्धदेशे शिवः स्थितः ।

पृष्ठे नारायणस्तस्थौ श्रुतयश्चरणेषु च ॥

या अन्या देवताः काश्चित्तस्या लोमसुताःस्थिताः ।

सर्वदेवमया गावस्तुष्येत्तद्भक्तितो हरिः ॥

स्पृष्टाश्च गावः शमयन्ति पापं,

संसेविताश्चोपनयन्ति वित्तम् ।

ता एव दत्तास्त्रिदिवं नयन्ति,

गोभिर्नतुल्यं धनमस्ति किञ्चित् ॥

अध्याय

प्रधानविषयः

: पृष्ठाङ्क

५ समहत्त्ववृषभपूजनवर्णनम् ।

७४०

वैल पालने का माहात्म्य । गाय के पालने से वैल का पालन करने में दस गुणा माहात्म्य अधिक है । वृष का पूजन और वृष को धर्म का अवतार बताया गया है वृष अपने कंधे पर भार ले जाता है, अपने जीवन से दूसरे के जीवन की रक्षा और दूसरे के जीवन को बढ़ाता है । उन गायों की महती बन्दना की गई है जो वृषभ को उत्पन्न करती हैं इत्यादि (४३-५६) ।

५ हल ( वेध ) करण वर्णनम् ।

७४१

हल बनाने का विधान (६०-७६) ।

५ कृष्याद्यनेक सवृषभवर्णनम् ।

७४३

हल लगाने का दिन तथा विधि का वर्णन किया है (७७-१००) । 'वैल का पूजन और वैल की रक्षा पर ध्यान देने का विधान (१०१-१११) । आकाश से जो जल गिरता है उसका माहात्म्य, पृथ्वी माता के जलरूपी 'अमृत पड़ने से अन्न की उत्पत्ति का वर्णन किया गया है (११२-११५) ।

५ कृषि महत्त्व धर्म वर्णनम् ।

७४७

किस प्रकार की भूमि में कृषि करनी चाहिये इसका वर्णन किया गया है (११६-१५५) ।

अध्याय

प्रधानविषय

पृष्ठाङ्क

कृपिकृच्छुद्धिकरण वर्णनम्, ७५०

कृपिकर्मकरण स सीतायज्ञ वर्णनम् । ७५१

कृपि के सम्बन्ध में बहुत सुन्दर वर्णन किया गया है ।

अन्त में यह बताया है—

५ “कृपेरन्यतमोऽधर्मो न लभेत्कृपितोऽन्यतः ।

न सुखं कृपितोऽन्यत्र यदि धर्मेण कर्षति” ॥

अर्थात् कृपि के तुल्य दूसरा कोई धर्म नहीं एवं कृपि के तुल्य और कोई व्यवहार इतना लाभदायक नहीं । कृपि करने में ही बड़ा सुख है यदि धर्मानुकूल कृपि की जाय । ( १५६-१६५ ) ।

६ कन्या विवाह वर्णनम् । ७५५

कन्याओं के आठ प्रकार के विवाह होते हैं । अपनी जाति में वर के लक्षण देखकर वस्त्राभूषण से सुसज्जित कर जो कन्या दी जाती है उसको ब्राह्म विवाह कहते हैं । लड़के का लक्षण देखना परमावश्यक है । जिसके पेशाब में फेन निकले वह पुरुष होता है । ऐसा न होने पर नपुंसक होता है । यज्ञ करते हुए यज्ञ करनेवाले को वस्त्राभूषण से सुसज्जित जो कन्या दी जाती है इसे दैव विवाह कहते हैं । वर कन्या के समान हो और गुण-

दान, विद्वान हो ऐसे पुरुष को दो गाय के साथ जो कन्या दी जाती है वह आर्ष विवाह होता है । कन्या और घर स्नेच्छा से धर्मचारी हो यह कर जो कन्या का दान किया जाय वह मनुष्य विवाह होता है । जिस जगह पर घर से रुपये की संख्या लेकर कन्या दी जाती है उसे दैत्य विवाह कहते हैं । जहाँ घर कन्या दोनों अपनी इच्छा पूर्वक विवाह कर ले उसे गन्धर्व विवाह कहते हैं । जहाँ हरण करके कन्या ले जाई जावे उसे राक्षस विवाह कहते हैं । सोई हुई कन्या को जो मद्य इत्यादि के नशे में जबरदस्ती ले जाया जावे उसे पैशाच विवाह कहते हैं (१-१७) । विवाह के पहले जिन बातों का विचार करना चाहिये उनका निर्देश किया गया है । १ घर, २ कन्या की जाति, ३ वयस, ४ शक्ति, ५ आरोग्यता, ६ वित्त सम्पत्ति, ७ सम्बन्ध बहुपक्षता तथा अर्थित्व (१८) ।

#### ६ विवाहे वरगुण वर्णनम् ।

७५६

घर के लक्षण बताये हैं (१६-२१) । लड़की—जाति, विद्या, धन तथा आचरण की इतनी परवाह नहीं करती है जितनी प्रीति की, अतः लड़का प्रीतिमान होना चाहिये इसलिये सगोत्र की कन्या से विवाह करने पर वह धर्म

के अनुसार स्त्री नहीं कही जा सकती है (२२)। जहाँ कन्या नहीं देनी चाहिये उनको बताया है (२३-२७)। उन लड़कियों के लक्षण लिखे हैं जिनके साथ विवाह नहीं करना है और कन्यादान करने का जिनका अधिकार है उनका वर्णन (२८-३२)। उन कन्याओं का वर्णन है जिनके साथ विवाह हो सकता है (३३-३७) कन्यादान और कन्या के लक्षण जिनको कि दायविभाग मिल सकता है उनका वर्णन (३८-४०)।

#### ६ लक्ष्मीस्वरूपा स्त्री वर्णनम् ।

७५८

गृहस्थी को स्त्रियों की इच्छा का अनुमोदन करना तथा उनको प्रसन्न रखना यह गृहस्थ की सम्पत्ति और धन्य का साधन बताया है (४१-४५)। स्त्रीपुरुष में जहाँ विवाद होता है वहाँ धर्म, अर्थ, काम सभी नष्ट हो जाते हैं (४६-४७)। स्त्रियों को पतिव्रत पर रहना और इसका अनुशासन और पतिव्रता न रहने से नारकीय दारुण दुखों का होना बताया है (४८-५५)।

#### ६ गृहस्थधर्म वर्णनम् ।

स्त्री शक्तिरूपा है एव शक्ति का स्रोत है। सारे संसार की उत्पादिका शक्ति भी स्त्री जाति ही है। उसका संरक्षण कुमार्यावस्था में पिता द्वारा तथा युवावस्था में



पति द्वारा वाञ्छनीय है। वृद्धावस्था में पुत्र का कर्तव्य है कि उनकी शक्ति की देखरेख और सेवा करे। इस प्रकार मातृशक्ति की सदुपयोगिता का ध्यान रखा जाय (५६-६१)। स्त्रियों की स्वाभाविक पवित्रता और स्त्रियों को इन्द्र के वरदान स्त्रियों की शुद्धता के लिये बताया है (६२-६५)। उनके सहवास के नियम बताये गये हैं। यहाँ पर यह दिखाया है कि गृहस्थधर्म का आधार स्त्री ही है और गृह के यज्ञ कर्म स्त्री के ही साथ हो सकते हैं अतः उसी का सत्कार और मान करना चाहिये (६६-७६)। पितृ यज्ञ, अतिथि यज्ञ, स्वाहाकार वषट्कार और हन्तकार प्राणामि होत्र विधि से भोजन करने का आचार बताया गया है (७७-८६)।

६ वेदविद्विप्रस्य कलाज्ञस्य वर्णनम् ।

७६३

प्राणामि यज्ञ की विधि बताई गई है। जिसमें इस बात का विपदीकरण किया गया कि नासिका के पन्द्रह अङ्गुली तक जीवकी कला संचरण करती जाती है इसी को पोहसी कला कहते हैं। इसी को म्रदाविद्या कहते हैं जो इसे जाने उसी को वेद का ज्ञाता कहते हैं। इसी को तुरीय पद और इसी में सारा संसार लीन हो जाता है। इस बात को जानने से और कुछ जानना बाकी नहीं

रह जाता है (८७-९६)। प्राणायाम के विधान, प्राणवायु के चलने के तीन मार्ग बताये हैं— श्वा, पिङ्गला, सुषुम्ना, नासिका के दो पुट होते हैं दाहिने को उत्तर और बाएँ को दक्षिण बीच भाग को विपुवृत्त कहते हैं। जो योगी प्रातः, सायं मध्याह्न और अर्धरात्रि में विपुवृत्त को जानता है उसको नित्यभुक्त कहा है। इस प्रकार प्राणायाम की विधि बताई है। पाँच वायु (प्राण, उदान, व्यान, अपान, समान) का नाम लेकर स्वाहा शब्द लगावे, पाँच आहुति आस रूप में देवे और दाँव नहीं लगावे तो इसे पंचामि होत्र कहते हैं (९७-१०७)। शरीर के जिस प्रदेश में जो अग्नि रहती है उसका वर्णन (१०८-१११)। प्राणाग्नि होम का विधान और मुद्रा का वर्णन (११२-१२१)। प्राणाग्निहोत्र विधि का माहात्म्य (१२२-१२४)। प्राणाग्निहोत्र के बाद जल पीने का नियम (१२५-१२७)। प्राणायाम की विधि जानने का माहात्म्य और पाँच सात मनुष्यों को खिला कर गृहपत्नी के लिये भोजन विधि (१२८-१३८)।

६ स पौडश संस्कार मान्हिक वर्णनम् ।

सायं सन्ध्या विधि और कुछ स्वाध्याय करके

रायन विधि ( १३६-१४० )। स्त्री के साथ सगम, योनि शुद्धि और गर्भाधान विवरण (१४१-१४३)। ब्राह्म मुहूर्त में उठकर सूर्योदय से पूर्व सन्ध्या विधि का वर्णन ( १४४-१४५ )। प्रातःकाल सन्ध्या करने से मद्यपान तथा द्यूत का दोष दूर होता है ( १४६ )। सूर्योदय के पहले सन्ध्या का विधान (१४७)। सीमन्त, अन्नप्रारान, जातकर्म, निष्क्रमण चूडाकर्म आदि सस्कारों का विधान, लडकों का मन्त्र से और लडकियों का बिना मन्त्र से सस्कार करना ( १४८-१५१ )।

#### ६ ब्रह्मचर्य वर्णनम् ।

७६८

उपनयन का समय, विधान और ब्रह्मचारी को भिक्षाधन तथा किससे भिक्षा लेवे उसका स-विस्तार वर्णन एवं पिता को स्वपुत्र के उपनयन का विधान ( १५२-१८३ )।

#### ६ गृहस्थाश्रमे पुत्र वर्णनम्

७७१

पुत्र की परिभाषा, पुत्र पुत्राग्न नरक से पिता को बचाता है अतः वह पुत्र कहा गया है। इसलिये पुत्र का सस्कार करना उसका कर्तव्य माना गया

६ है (१८४)। पुत्र यदि धर्मज्ञ हो तो पिता को स्वर्ग गति होती है अतः पशु-पक्षी भी पुत्र को चाहते हैं (१८५-१८२)। जो पुत्र गया में पिता का श्राद्ध करे (१८३)। पुत्र का कर्तव्य और उसका लक्षण बताया है। यथा—

जीवतो वाक्पकरणात् क्षयाहे भूरि भोजनात् ।

गयायां पिण्डदानाच्च त्रिमिः पुत्रस्य पुत्रता ॥

अर्थात् ये तीन लक्षण जिसमें है उसीमें पुत्रत्व है।

जीते जी पिता की आज्ञा पालन, श्राद्ध के दिन

ब्राह्मण भोजन करानेवाला और गया में पिण्ड

देनेवाला (१८४ १८६)। पिता के लिये दृपो-

त्तर्ग (१८७ १८८)। साध्वी स्त्री का लक्षण

सास श्रमुर की सेवा करे (१८९)। जहाँतक

सन्तानोत्पत्ति का सम्यन्ध है पिता, पुत्र समान

और पुत्री भी वैसी ही (२००)।

६ आचार वर्णनम्—

७७३

४० संस्कार, सदाचार की प्रशंसा साथ ही हीनाचार

की निन्दा बताई है (२०१-२०७)। मनुष्य को विद्या

पढ़ना, शास्त्र पढ़ना, सदाचार पर निर्भर है।

आचारहीन मनुष्य कोई कर्म में सफल नहीं होता

हू (२०८-२११)।

अध्याय

प्रधान विषय

पृष्ठाङ्क

६ शौच वर्णनम् ।

७७४

शौचाचार भावशुद्धि के सम्बन्ध ( २१२-२१६ ) ।

स्त्रियों में रमण करनेवाले वित्तपरायण, मिथ्या-  
वादी, हिंसक की शुद्धि कभी नहीं होती है ( २१७ ) ।

६ प्रतिग्रह ( दान ) वर्णनम् ।

७७५

मूर्ख को दान देने से दान का फल नहीं होता है  
( २१८-२२१ ) । दान लेनेवाला मूर्ख और दाता  
भी नरक में जाता है ( २२२-२२६ ) । दान पात्र  
को देना चाहिये इसपर कहा गया है ( २२७-२२८ )  
हाथी का दान, घोड़े का दान और नवश्राद्ध का  
दान लेनेवाला हजार वर्ष तक नर्क में रहता है  
( २२९-२३१ ) । विष्णु की प्रतिमा, पृथिवी, सूर्य  
की प्रतिमा तथा गाय यह सत्पात्र को देने से  
दाता को तीन लोक का फल होता है ( २३२ ) ।  
भोजन दान के समय पर अच्छे चरित्रवान् ब्राह्मणों  
का सत्कार करना तथा अनाचारी पुरुषों को बिल-  
कुल वर्जित का विधान है ( २३३-२३७ ) । दही, दूध,  
घी, गंध, पुष्पादि जो अपने को देवे ( प्रत्याख्येयं  
न कर्हिचित् ) उसे वापस नहीं करना ( २३८ ) ।

इसका वर्णन (३३२-३४०)। बछड़े के मुँह से जो दूध गिर जाता है उसको शुद्ध बताया है तथा अन्यान्य शुद्धियाँ बताई हैं (३४१-३४४)। जो चीज शुद्ध हैं उनका वर्णन, स्त्री के शुद्ध होने का वर्णन आया है (३४५)।

## ६ अनध्याय वर्णनम् ।

७८८

अनध्याय अर्थात् जिस समय वेद नहीं पढ़ना चाहिये उसे बताया है (३५४-३६६)। जो अनध्याय में वेदाध्ययन करता है वह निष्फल होता है ऐसा बताया है (३६७-३७०)। स्वरहीन वेद पढ़ने का पाप और बखरूप फल बताया है (३७१-३७२)।

“ये स्वाध्यायमधीयीरन्ननध्यायेषु लोभतः ।

वज्र रूपेण ते मन्त्रास्तेषां देहे व्यवस्थिताः” ॥

मनुष्यों को किसके साथ कैसा व्यवहार, किसीको ताड़न नहीं करना, किन्तु पुत्र और शिष्य को छोड़कर यह बताया है (३७३-३७६)।

“न कश्चित्ताडयेद्दीमान् सुतं शिष्यञ्च ताडयेत्” ।

मनुष्यों को आचार का पालन करने से बश और

धन की प्राप्ति है। आयु, प्रजा, लक्ष्मी और संसार में सम्मान का मूल आचार ही है (३७७ से समाप्ति)।

### ७ श्राद्ध वर्णनम् ।

७६१

श्राद्धके समय कौन-कौन है उनका निर्देश (१-४)। श्राद्ध में जिनको निमन्त्रण देना निषिद्ध है उनको निमन्त्रित करने का निषेध (५-१४)। श्राद्ध में जिनको निमन्त्रण देना चाहिये और पूजना चाहिये उनका वर्णन (१५-२६)। श्राद्धमें जो आह्वान भोजन करते हैं उनको किस प्रकार रहना चाहिये और उनके यम नियम बताये गये हैं (२७-३२)। श्राद्ध में पत्रावली (३३-३४)। जो निर्धन पुरुष है जिनके पास श्राद्ध करने की सामग्री नहीं है वे जंगल में जाकर हाथ ऊँचाकर रुदन करे और अपने पितरेश्वरों से कहे कि मेरे पास घरमें स्त्री पुत्रादि के अतिरिक्त धन नहीं है मैं श्राद्ध किस तरह करूँ। इस तरह क्षमा माँग पितृश्रृण से क्षमा याचना कर सकता है (३४-३७)। जो इतना भी न कर सके वह पितृ हत्यारा कहा जाता है (३८-३९)। कौन किसका श्राद्ध कर सकता है इसका निर्णय है, जैसे, अपुत्र की स्त्री भी पति का

- ७ श्राद्ध कर सकती है; इष्ट परिजन अपने मित्रों का भी श्राद्ध कर सकते हैं। लड़की का लड़का अर्थात् दौहित्र भी श्राद्ध कर सकता है और पार्वण श्राद्ध का वर्णन आया है। एकोद्दिष्ट श्राद्ध पुत्र ही अपने पिता और पितामह का कर सकता है (४०-६१)। श्राद्ध में शूद्राण का निषेध और स्त्री को भोजन करना निषेध बताया गया है (६२-८३)। एकोद्दिष्ट श्राद्ध का विधान तथा किस किस काल में श्राद्ध करना चाहिये उन कालों का वर्णन। जैसा कुतुप, ( मध्याह्न ) रोहिणी, संक्रान्ति अमावास्या, व्यतीपात आदि का है (८४-१०१)। मलमास में भी श्राद्ध कर सकते हैं इसका निर्णय किया गया है और नित्य श्राद्ध का भी निर्णय किया है (१०२-१०५)। श्राद्ध की तिथि का निर्णय, सगोत्र ब्राह्मण को श्राद्ध में भोजन कराने का निषेध (१०६-११६)। वृद्धि श्राद्ध ( नान्दीमुख ) शुभ कार्य में जो पितरों का श्राद्ध होता है उनके उपयुक्त जो पात्र है, उनका निर्णय, घट वृक्ष की लकड़ी और विल्वपत्र के पत्ते पर भोजन करने का निषेध बताया है (११७-१२२)। श्राद्ध में पौन पुष्प किसको चढ़ाने चाहिये अथवा नहीं



चढ़ाने चाहिये ऐसा कहा है (१२३-१२७)। गुग्गुलु की धूप को श्राद्ध में निषेध बताया है (१२८-१२९) श्राद्ध में तिलक कैसे लगाना चाहिये उसका वर्णन है (१३०-१३१)। श्राद्ध में कैसा वस्त्र देने का निर्णय है (१३२)। श्राद्ध में देश रीति तथा कुल रीति का पालन करना बताया गया है (१३३-१३४) सपिण्डी श्राद्ध का विवरण और अग्नि में जले हुए, साँप से कटे हुए की छः मास में श्राद्ध किया जाता है (१३५-१४८)। नान्दीमुख श्राद्ध में कौन देवता पूजे जाते हैं और उसमें दीप दानादि कैसे होता है। नान्दीमुख श्राद्ध का विशेष वर्णन किया है (१४९-१७०)।

श्राद्ध के भेद और श्राद्ध की विधियाँ, स्त्री का पति के साथ तथा किस स्त्री का पृथक् श्राद्ध होता है उसका वर्णन किया है। चतुर्दशी में जो एको-द्विष्ट श्राद्ध होता है उसका वर्णन और प्रतिलोम के लड़कों को श्राद्ध का अधिकार नहीं उसका वर्णन तथा नारायणवली, जो अपमृत्यु से मरते हैं जैसे पेड़ से गिरकर; नदी में डूबकर इत्यादि इनकी नारायणवली का विधान कहा है। अपने पति के साथ जो स्त्री मरती है उसके श्राद्ध का

अध्याय

प्रधान विषय

पृष्ठांक

वर्णन, श्राद्ध में जो जो विधान करने हैं उनका पूरा वर्णन, श्राद्ध के सम्बन्ध में जितनी बातों की जानकारी चाहिये उन सबका वर्णन इस अध्याय में सविस्तर दिखाया गया है ( १७३-३६६ ) ।

८ शुद्धि वर्णनम् ।

८२६

सूतक और अशौच का निर्णय किया गया है । सूतक वधे के जन्म होने से जो छूत होती है उसे कहते हैं । अशौच मृत्यु की छूत को कहते हैं ( १-२ ) । किसको कितने दिन का सूतक पातक लगता है उसका विचार किया गया है ( ३-२४ ) । अनाथ मनुष्य की क्रिया करने से अनन्त फल होता है तथा ज्ञान करने पर ही शुद्धि बताई गई है ( २६-२७ ) । गर्भपात का सूतक जितने महीने का गर्भ हो उतने दिन के सूतक का निर्णय, अग्नि, अद्भार, विदेश आदि में जो मर जाते हैं उनका सद्य शौच अर्थात् तत्काल ज्ञान करने से शुद्धि कही गई है । जिन वधों को दांत नहीं निकले हैं उनके मरने पर सद्य शौच और जो जन्मते ही मर गये हैं उनका भी सद्य शौच कहा है । इनका अग्नि संस्कार आदि कुछ नहीं होता । किसी के घर में विवाह उत्सव आदि हो और यदि वहाँ

- ८ अशौच हो जाये तो उसका जो पहले किये हुए दानादि सत्कर्म अशुद्ध नहीं होते हैं ( २८-५० ) । जिन जिन पर सूतक नहीं लगता तथा जिस दशा पर सूतक पातक नहीं लगता उनका वर्णन किया गया है ( ५१-६० ) ।

### ८ प्रायश्चित्त वर्णनम् ।

८३५

पापों को क्षालन करने के लिये प्रायश्चित्तों का माहात्म्य और कर्तव्य बताया है [ ६१-७० ] । प्रायश्चित्त विधान करनेवाली सभा का संगठन [ ७१-७७ ] । महापापी के प्रायश्चित्त का वर्णन [ ७८-१०७ ] । शराब पीने का प्रायश्चित्त [ १०८-११० ] । स्वर्ण की चोरी का प्रायश्चित्त [ १११-११३ ] । मातृगामी का प्रायश्चित्त बताया है [ ११४-११५ ] । जिन पापों में चान्द्रायण व्रत किया जाता है उनका वर्णन आया है तथा महापातकियों का प्रायश्चित्त बताया है [ ११६-१४० ] । गोवध के प्रायश्चित्तों का निर्णय और गो के मरने के अगल-अलग कारणों पर भिन्न भिन्न प्रकार के प्रायश्चित्त बताये गये हैं [ १४१-१७१ ] । हाथी, घोड़ा, बैल, गधा इनकी हत्या पर शुद्धि का वर्णन

८ आया है [ १७२-१७४ ]। हंस, कौआ, गीध, चन्दर आदि के बध का प्रायश्चित्त [ १७५-१७८ ]। तोता, मैना, चिड़ो इनके बध करने का प्रायश्चित्त बताया है [ १७९-१८० ]। बाज, चील के मारने का प्रायश्चित्त [ १८१ ]। मंडूक, गीदड़, शाखा-मृग (बंदर) महिष, ऊँट आदि जंगली जानवरों के मारने का प्रायश्चित्त [ १८२-१८७ ]। अभक्ष्य के खाने का प्रायश्चित्त और रजस्यला स्त्री के छूये हुए खाने का प्रायश्चित्त बताया है [ १८८-१९१ ]। दातों के अन्दर गया हुआ उच्छिष्टावशेष को खाने का तथा अपना ही जूठा जल पीने का प्रायश्चित्त है [ १९२ ]। जिस जल में कपड़े धोये जाते हैं उस पानी के पीने से प्रायश्चित्त बताया है [ १९३-१९४ ]। वेश्या, नद की स्त्री, धोबी की स्त्री आदि के सहवास के पापों का प्रायश्चित्त बताया है [ १९५-२०० ]। कसाई के हाथ का मांस खाने का प्रायश्चित्त [ २०१-२०२ ]। जिनके घर का अन्न नहीं खाना चाहिये जैसे वेश्या आदि के घर खाने का प्रायश्चित्त कहा है [ २०३-२०८ ]। बाएँ हाथ से भोजन करने का दोष बताया है [ २०९-२११ ]। बाएँ हाथ से भोजन करना सुरा तुल्य

८ घटाया है और उसका चान्द्रायण [ २१२-२१३ ]। चान्द्रायण और पादकृच्छ्र व्रत का विधान [ २१४-२१५ ]। वेश्याओं के साथ रहनेवाला; जो अघात कुलशील हो और चाण्डाल नौकर रखनेवाले को पुनः संस्कार का निर्णय दिया है [ २१६-२२१ ]। अभक्ष्य भक्षण, अपेय पान ( जिसका झूठा पानी नहीं पीना उसके पीने ) करने पर प्रायश्चित्त का विधान घटाया गया है [ २२२-२३० ]। रजस्वला के सम्पर्क से शुद्धि का विधान [ २३१-२४२ ]। धोषी के स्पर्श से शुद्धि का विधान [ २४३ ]। वर्णश्रम से ( ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्रादि ) रजस्वला स्त्रियों के गमन करने पर प्रायश्चित्त घटाया है [ २४४-२५३ ]। अन्त्यज स्त्री के गमन से प्रायश्चित्त कहा है [ २५४ ]। गुरुपत्नी आदि के गमन का पाप और उसके प्रायश्चित्त का उल्लेख है [ २५५-२६३ ]। रजस्वला के छुये हुए अन्न खाने का प्रायश्चित्त [ २६४-२६६ ]। उन्हीं पापों के प्रायश्चित्तों का विस्तार पूर्वक वर्णन किया गया है [ २६७-२७५ ]। दुःस्वप्न देखने और हजामत (क्षौर) करने पर स्नान की विधि [ २७६ ]। सूअर, कुत्ता आदि के छूने पर शुद्धि [ २७७-२७९ ]।

८ कन्या कुमारी को कोई कुत्ता यदि चाट ले तो उसकी शुद्धि जिधर सूर्य जा रहा हो उधर देखने से हो जाती है [ २८०-२८१ ]। कोई कुत्ता किसी को काट देवे तो उसकी शुद्धि की विधि बताई है [ २८२-२८४ ]। गुरु को 'तू' बोलना और अपने से बड़ों को 'हूँ हूँ' बोलना इस पाप की शुद्धि बताई है [ २८५ ]। विवाद में स्त्री से जीतकर और स्त्री को मारना उसका प्रायश्चित्त [ २८६-२८७ ]। प्रेत को देखकर ज्ञान से शुद्धि का वर्णन [ २८८-२८९ ]। १०८ बार गायत्री मंत्र जपने से शुद्धि वर्णन [ २९४-२९५ ]। मुँह से गिरे हुए को फिर खा ले तो उसकी शुद्धि बताई है [ २९६-२९८ ]। कहीं जल पर पेशाब आदि के छीटे पड़ जायें तो उसकी शुद्धि [ २९९-३०० ]। नीच पुरुष, पापी पुरुष और पतित के साथ बात करने से जो पाप लगता है तो अपने दाहिने कान को तीन बार छू लेने से शुद्धि [ ३०१-३०४ ]। घर में मक्खियों के आने से, बच्चों, स्त्रियों और वृद्धों के बोलने से यदि धूँक के छीटे पड़ जायें तो कोई दोष नहीं होता है [ ३०५-३१० ]। जो पलास वृक्ष और शीशम के वृक्ष की दन्तधावन करता है और नाई के देखे

- ८ हुए खाने का दोष गाय के दर्शन से मिट जाता है [३११]। जिनके छूने से सिर में जल स्पर्श करने से शुद्धि और जिनके स्पर्श करने से स्नान करना उनका अलग अलग विवरण आया है ( ३१२-३२२ )। जिनका अन्न नहीं खाना चाहिये उनका वर्णन आया है ( ३२३-३२६ )। नाई जो अपने यहाँ नौकर हो उसका अन्न लेने में दोष नहीं और तेल या घृत से बनी हुई चीज घासी होने पर भी दूषित नहीं होती है ( ३२७ )। आपत्तिकाल में छूत का दोष नहीं होता है ( ३२८-३३० )। जो वस्तु म्लेच्छ के वर्तन में रहने पर भी अपवित्र नहीं होती, जैसे घी, तेल, कषा मांस, शहद, फल-फूल इत्यादि उनका वर्णन ( ३३१-३३५ )। किस धातु के वर्तन की किससे शुद्धि होती है उसका वर्णन आया है। आत्मा की शुद्धि सत्य व्यवहार और सत्य भाषण से ही होगी प्रायश्चित्त आदि से नहीं। सड़क का कीचड़, नाव और रास्ते में घास इत्यादि ये वायु और नक्षत्रों से ही शुद्ध हो जाते हैं। यह प्रायश्चित्त की जानने की बात सबको समझनी चाहिये ( ३३६-३४२ )।

## ६ व्रतोपवासविधि वर्णनम् ।

८६२

चान्द्रायण व्रत, जैसे शुक्लपक्ष में एक प्रास की शुद्धि और कृष्णपक्ष में एक एक प्रास का हास इसको ऐन्दव व्रत कहते हैं। इस प्रकार विभिन्न चान्द्रायण व्रत कहे गये हैं। जैसे शिशु चान्द्रायण और यति चान्द्रायण आदि ( १-८ )। कुछ व्रत, तप्त कुछ, सातपन, महासातपन, प्राजापत्यकुच्छ, पशुकुच्छ, पर्णकुच्छ, दिव्य सातपन, पादकुच्छ, अति कुच्छ, कुच्छातिकुच्छ और परातिवृत सौम्य कुच्छ ( ६ २१ )। ब्रह्मकूर्च का विधान, पञ्चगव्य बनाने का मंत्र और उनकी विधि बताई गई है ( २२-३२ )। ब्रह्मकूर्च के माहात्म्य का वर्णन है ( ३३-३५ )। उपवास व्रत से पापों की शुद्धि और जिसने चान्द्रायण व्रत वर्णन किये गये हैं इनको मनुष्य स्वेच्छा से भी करे तो जन्म-जन्मान्तर के पाप दूर होकर आत्मशुद्धि होती है ( ३६ ४३ )।

## १० सर्वदान विधि वर्णनम् ।

८६६

व्यास तथा वशिष्ठजी ने जो दान विधि बताई है उसका फल ( १-२ )। दान का माहात्म्य और



- १० पृथक्-पृथक् दान करने का विवरण जैसे अन्नदान, जलदान, गृहदान, धैलदान, गोदान, तिलधेनु, घृतधेनु, जलधेनु, हेमधेनु, गजदान, अश्वदान, कृष्णाजिन दान, मुरासन ( पालकी ) दान, आदि का विस्तार बताया है [ ३-६ ] । भूमिदान, तुलादान, धातुदान, विद्यादान, प्राणदान, अभयदान और अन्नदान का वर्णन बताया है [ १०-१७ ] । अपूप ( मालपुर ) के दान का उल्लेख है, पृथक्-पृथक् दान के प्रकार और उनकी महिमा [ १८-२४ ] । गोदान का माहात्म्य, गोदान की विधि और धैल के दान की विधि बताई गई है [ २५-४० ] । अभयमुरी ( जो गाय वगैरे को उत्पन्न कर रही है ) उस दशा में गोदान की विधि और उसका माहात्म्य [ ४१-४५ ] । तिलधेनु दानविधि और माहात्म्य तथा विशेष सामग्री का वर्णन बताया है [ ४६-७० ] । घृतधेनु की विधि एवं उसकी सामग्री और उसके फल का वर्णन [ ७१-८६ ] । जलधेनु विधि और उनके फल का वर्णन [ ८७-१०३ ] । हेमधेनु, स्वर्ण की धेनु बनाने का प्रकार पूजाविधि और दानविधि तथा दान के माहात्म्य का उल्लेख है । स्वर्णधेनु की रचना किस प्रकार

१० करनी और क्या-क्या रख उसके किस-किस अंग प्रत्यंग में लगाने चाहिये उसका वर्णन आया है [ १०४-१२१ ]। कृष्णमृगचर्म के दान का विधान वैशाखी पूर्णिमा और कार्तिक की पूर्णिमा को जो दान किया जाय उसका माहात्म्य दर्शाया है [ १२२-१४२ ]। मार्ग दान की विधि [ १४३-१४६ ]।

१० हयगज दानविधि वर्णनम् ८८१

सुखासन दान का माहात्म्य, रथदान का माहात्म्य, हस्तीदान एवं उसका अलंकार और उसकी दान विधि का उल्लेख तथा अश्वदान का माहात्म्य और रथ दान का वर्णन [ १५०-१६६ ]। कन्यादान का माहात्म्य [ १७०-१७१ ]। पुत्र दान का माहात्म्य [ १७२-१७३ ]।

१० भूमिदान वर्णनम् । ८८३

भूमिदान का माहात्म्य, सब दानों से श्रेष्ठ भूमिदान बताया है। भूमिदान करनेवाला सब पापों से मुक्त हो अनन्त काल तक स्वर्ग में रहता है [ १७४-२०० ]। स्वर्ण तुला का दान और चांदी की तुला दान का दिग्दर्शन कराया है। गुड़ की तुला, लवण की तुला दान जो स्त्री करे तो पार्वती के समान सौभाग्यवती रहेगी तथा पुरुष करे तो प्रद्युम्न के समान तेजस्वी होगा।

## १० दान विधि वर्णनम् ।

८८७

ब्राह्मण को वस्त्रामूषण दान का माहात्म्य, बड़े-बड़े रत्नों के दान का माहात्म्य, स्वर्ण तुला दान करने से भगवान विष्णु की पूजन का विधान, चाँदी दान का माहात्म्य, माणिक्य के तुलादान का माहात्म्य, घृत, भोजन की चीज, तेल, पान आदि वस्तुओं का पृथक्-पृथक् दान माहात्म्य। फल, गुड़, अन्न, मकान, पलंग दान आदि का माहात्म्य [ २०१-२३३ ]।

## १० विद्यादान वर्णनम् ।

८८८

विद्यादान का माहात्म्य और विद्यार्थियों को भोजन, वस्त्र देने का माहात्म्य। सब दानों से अधिक विद्यादान बताया है [ २३४-२४१ ]। औषधि दान और अस्पताल (औषधालय) खोलने का माहात्म्य और दया दान [ २४२-२४८ ]।

## १० तिथिदान विधि वर्णनम् ।

८९०

भगवान विष्णु का पूजन पौर्णमासी में करने का माहात्म्य [ २४९-२६० ]। चैत्र शुक्ल द्वादशी को वस्त्रदान का माहात्म्य और छाता, जता दान

करने का माहात्म्य । आपाद मे दीप दान का माहात्म्य; श्रावण मे वस्त्र दान, भाद्रपद में गोदान, आश्विन मे घोड़ा दान, कार्तिक मे वस्त्र दान, मार्गशीर्ष मे लवण दान, पौष मे धान का दान, फाल्गुन मे इत्र दान, मास विशेष मे अलग-अलग दान बताये है [ २६१-२७८ ] ।

### १० दान त्याज्यकाल वर्णनम् ।

८६

अशौच सूतक मे दान देना लेना निषेध, रात्रि मे दान निषेध, और रात्रि मे विद्या दान, अभय दान, अतिथि सत्कार हो सकता है, अभय दान हर समय हो सकता है, दूसरे का दान अशौच सूतक मे लेना निषेध, [ २७८-२८२ ] । दान लेने की और देने की शास्त्रोक्त विधि का वर्णन [ २८३-२८६ ] । सत्यात्र को दान देना चाहिये अन्य को नहीं, परोक्ष दान के महान् पुण्य की विधि [ २६० ३०० ] ।

### १० दानार्थ गौलक्षण वर्णनम् ।

८६

गोदान का वर्णन आया है कैसी गौ दान के लिये होनी चाहिये [ ३०१-३०६ ] । दान मे तौल वर्णन

घताया है और गौ का दान अक्षय फलवाला  
घताया है [ ३०५-३१३ ]। १६ प्रकार के घृया  
दान का वर्णन [ ३१४-३२३ ]।

### १० दानग्राह्य पुरुषलक्षण वर्णनम् ।

८६७

वातव्य वस्तु के दान का माहात्म्य, किसका कैसा  
दान देना घ लेना, उसकी विधि जैसे गौ का पूछ  
पकड़ कर उसके कान में कुछ कह कर दान करे  
इस तरह अन्य दान की विधि, प्रतिग्रह लेने पर  
विशेष विधि, अश्व दान का विशेष विधान, अश्व  
दान लेने की विधि [ ३२४ ३४१ ]।

### १० मास, पक्ष, तिथि विशेषेण दान महत्त्व वर्णनम् ८६८

श्रावण शुक्ल द्वादशी को गोदान का माहात्म्य [ ३४३ ]।  
पौष शुक्ल द्वादशी को घृतघेनु का विधान [ ३४४ ]।  
माघ शुक्ल द्वादशी को तिलघेनु का विधान  
[ ३४५ ]। ज्येष्ठ शुक्ल द्वादशी को जलघेनु का  
विधान [ ३४६ ]। काल, पात्र, देश में दान का  
माहात्म्य [ ३४७-३४९ ]। ग्रहण काल में दिया  
हुआ दान अक्षय होता है [ ३५० ३५२ ]।  
वैशाख, आपाद, कार्तिक, फाल्गुन की पूर्णिमा को

दान का माहात्म्य [ ३५३-३५४ ] । तुला संक्रान्ति, भेष संक्रान्ति में प्रयाग में दान का माहात्म्य [ ३५५ ] । मिथुन, कन्या, धनु, मीन संक्रान्ति में भारकर तीथ में दान का माहात्म्य [ ३५६-३५८ ] । अक्षय दान का माहात्म्य [ ३५९ ] । सूर्य, ब्रह्मा आदि देवों के मन्दिरों का निर्माण तथा जीर्णोद्धार विधि का माहात्म्य [ ३६०-३६८ ] ।

## १० कूप तड़ागादि कीर्ति महस्वर्णनम् ।

६०१

कूप घायडी मालाय आदि बनाने का माहात्म्य [ ३६२-३७४ ] । पीपल, उदुम्बर, बट, आम, जामुन, निम्ब, खजूर, नारियल आदि भिन्न-भिन्न जाति के वृक्ष लगाने का माहात्म्य [ ३७५-३७८ ] ।

यथा—

“अद्वयमेकं पिचुमन्दमेकं न्यग्रोधमेकं दश चिचिणीश्च ।  
पट् चम्पकं तालशतत्रयं च पञ्चाग्रवृक्षै नरकं न पश्येत्” ॥

इतने वृक्षों को लगाने से नरक में नहीं जाते हैं । लगाये हुए वृक्षों के फल पक्षी जितने दिन खाते हैं उतने दिन स्वर्ग में रहते हैं [ ३७९-३८२ ] । जितने फूल के वृक्ष लगाता है उतने दिन तक स्वर्ग

में रहता है [ ३८३ ]। विभिन्न प्रकार के वृक्ष और पुष्पवाटिकायें अपने हाथ से लगाने से स्वर्ग गति का माहात्म्य है [ ३८६ ]।

## ११ विनायकशान्तिविधि वर्णनम् ।

६०३

शान्ति प्रकरण यथा—विनायक शान्ति का प्रकरण है जबतक विनायक शान्ति नहीं होती तबतक ये लिखित दुःस्वप्न दर्शन होते हैं यथा रात्रि में निशाचर, जलायगाहन इत्यादि [ १-८ ]। इसके बाद उसके ज्ञान का वर्णन, सफेद सरसों से स्नान ब्राह्मण की सहायता से करना जो सम संन्या के हो यथा ४ हो या ८ हो। दुर्वा से उपर्युक्त मन्त्रों से अभिषेक करे [ ६-२१ ]। हवन का विधान [ २२-२५ ]। भगवती पार्वती का स्तवन मन्त्र ( २६-३० ) आचार्य दक्षिणा इत्यादि ( ३१-३३ )।

## ११ ग्रहशान्तिविधि वर्णनम् ।

६०६

ग्रहशान्ति—ग्रहमण्डप, ग्रहों के जप मन्त्र, ग्रहों का पूजोपचार, ग्रहदान आदि नवग्रह का पूजन एवं प्रतिवर्ष का माहात्म्य ( ३४-८४ )।

## अद्भुत शान्ति वर्णनम् ।

घर के उपद्रव, एवं खेती में अपाय यथा सरसों के पृक्ष में तिल, एवं जल में अग्नि, इन्धन इत्यादि गाय, धूल के शब्द से बोले, कौंचे गृह में जाने लगे, दिन में तारे दिखना, मकान पर गृद्ध इत्यादि का बैठना, ऐसे ऐसे उपद्रवों की शान्ति एवं उपचार मन्त्रों का वर्णन है (८६-१०६) ।

## ११ रुद्रपूजाविधि वर्णनम् ।

६१४

रुद्र की पूजा का विधान और उसके मंत्र बताये हैं (१०७-१५८) ।

## ११ रुद्रशान्ति वर्णनम् ।

६१६

रुद्र शान्ति का सम्पूर्ण विधान बताया है । रुद्र शान्ति से आयु तथा कीर्ति बढ़ती है उपद्रवों की शान्ति होती है । मृत्युञ्जय का हवन विल्वपत्रों से (१५९-२०२) ।

## ११ तद्गागादि विधि वर्णनम् ।

६२३

तद्गाग, कृप, वापी इनकी प्रतिष्ठा का विधान । उपर्युक्त वापी इत्यादि दूषित होने पर इनकी शुद्धि



का विधान बताया है और इनका माहात्म्य  
बताया है (२०३-२४०)।

११ लक्ष होमविधि वर्णनम् । ६२७

कोटि होमविधि वर्णनम् । ६२६

लक्ष होम, कोटि होम की विधि इन दोनों में  
कितने प्राद्वण और कैसा कुण्ड इनका वर्णन तथा  
लक्ष और कोटि होम का आहवनीयद्रव्य, अभिषेक  
मंत्र, अभिषेक विधान, आचार्य ऋत्विक् इनकी  
दक्षिणा का विधान और इसका माहात्म्य।  
सब प्रकार की आपत्तियों को दूर करनेवाला और  
राष्ट्र के सब उपद्रवों को दूर करनेवाला होता है  
(२४१-२६६)।

११ पुत्रार्थ पुरुषसूक्त विधान वर्णनम् । ६३२

जिस स्त्री के सन्तान न हो अथवा मृतवत्सा हो  
उसको सन्तति के लिये त्रैमासिक यज्ञ जो कि शुक्ल  
पक्ष में अच्छे दिनपर दम्पतिद्वारा उपवास कर पुत्र  
कामना के लिये किया जाता है उसकी विधि एवं  
मंत्र (२६७-३१३)।

## ११ शान्ति विधिवर्णनम्—

६३४

प्रत्येक ग्रह के मंत्र एवं ऋषि पूजन विधान, वैदिक सूक्तों का वर्णन आया है जो कि उपर्युक्त ग्रहों में किया जाता है ( ३१४-३४७ ) ।

## १२ राजधर्म वर्णनम्—

६३८

राजा को देवता के समान धत्ताया गया है ( १५-२३ ) । राजा को प्रजा की रक्षा का विधान तथा राजा को राज्य संचालन के लिये पद्मगुण, सन्धि, विग्रह, यान, आसन, सश्रय, द्वैधीकरण इनके जानकार तथा रहस्यों की रक्षा इनका आचरण करना चाहिये । अपने समीप कैसे पुरुषों को रखना इसका वर्णन आया है ( २४-३६ ) । राजा को जहाँतक हो लड़ाई नहीं करनी चाहिये क्योंकि युद्ध करने से सर्वनाश होता है ( ३७-४३ ) । जब युद्ध से न बचे उस समय व्यूह रचना आदि का वर्णन ( ४४-६६ ) । पुरोय्य और भाग्य इन दोनों को समान दृष्टिकोण रखकर धार्य करना चाहिये ( ६७-७१ ) । सांसारिक ऐश्वर्य को विनाशवान समझकर उसमें आस्था न करें । भाग्य और

पुरुषार्थ के सम्बन्ध में विवेचना की गई है। दुष्टों को दण्ड से दमन करना, राजा को प्रसन्नमूर्ति रहना चाहिये क्योंकि राजा सब देवताओं के अंश से बना हुआ है ( ७२-६५ )।

## १२ वानप्रस्थ भिक्षाधर्मवर्णनम्—

६४७

वानप्रस्थी के नियम तथा उसके कर्तव्यों का वर्णन आया है। वानप्रस्थ को अपने यज्ञ की रक्षा के लिये राजा को कहना चाहिये। वानप्रस्थी को यज्ञ आदि कर्म करने का विधान और उसको भिक्षा लाकर आठ प्रास खाने का नियम बताया है ( ६६-१२० )। वेदान्त शास्त्र को पढ़कर यज्ञविधि को समाप्त कर सन्न्यास में जाने का नियम एवं सन्न्यासी के धर्म, दिनचर्या आदि का वर्णन किया गया है तथा उसको निर्भयता, निर्मोह, निरहंकार, निरीह होकर ब्रह्म में अपनी आत्मा को लीन करना दर्शाया है ( १२१-१४४ )।

## १२ चतुर्णामाश्रमाणां भेदवर्णनम्—

६५१

ब्रह्मचारी, गृहस्थी, वानप्रस्थी और सन्न्यासी के

भेद बताये हैं। ब्रह्मचारी के भेद प्राजापत्य, वैष्टिक इत्यादि गृहस्थ के चार भेद-शालीन याया-वर इत्यादि, धानप्रस्थ के भेद-वैरानस, उदुम्बर इत्यादि संन्यासी के भेद—हंस, परमहंस, दण्डी इत्यादि तथा उनके धर्मों का निर्देश किया है (१४५-१७४)।

## १२ योगवर्णनम्—

६५४

गर्भ में देह-रचना और उससे वैराग्य, यह बताया है कि आत्मा देह से भिन्न है। अनेक प्रकार के कर्मों का वर्णन दिसलाया है कि कर्म के अनुसार देह बनती है। शब्द ब्रह्म का वर्णन और प्राण, योग सिद्धि, दीर्घायु का वर्णन। प्राणायाम का वर्णन पूरक, रेचक, कुम्भक और प्रत्याहार के अभ्यास का वर्णन, अग्नि, वायु, जल के संयोग से शुद्धि (१७५-२४२)।

## १२ प्रणवध्यानवर्णनम्—

६६१

## ध्यानयोगवर्णनम्—

६६४

## योगाभ्यासवर्णनम्—

६७०

ज्ञान योग और परम मुक्ति का वर्णन, भगवान

१२ का ध्यान एवं प्रणव का ध्यान जानना और उसमें भक्ति का वर्णन, ध्यान के प्रकार—किस स्वरूप में तथा किस जन्म में किस देवता का ध्यान करना इत्यादि का वर्णन । मृत्यु के अनन्तर जीव की दो मार्ग की गति का वर्णन, एक धूम-मार्ग दूसरा प्रकाश (अर्चि) मार्ग । एक से ब्रह्म की प्राप्ति और एक से स्वर्ग की प्राप्ति । ब्रह्मयोग की प्राप्ति के साधन का वर्णन किया गया है । ब्रह्म का अभ्यास, ध्यान और प्रत्याहार का वर्णन तथा यह धत्ताया है कि “मृत्युकाले मतिर्यास्यात्तां गतिं याति मानवः” । इसलिये मुमुक्षु को नित्य ऐसा अभ्यास करना चाहिये जिससे अंत समय ब्रह्म ज्ञान का अभ्यास बना रहे । यह पराशरजी से कथित धर्मशास्त्र जो नित्य सुनता है और जो ब्राह्म में ब्राह्मणों को सुनाता है उसके पितरेश्वर एति को प्राप्त होते हैं ( २४३-३७८ ) ।

श्री गृह्यपराशर स्मृतिस्थ विषयानुक्रमणिका समाप्ता ।

## लघुहारीतस्मृति के प्रधान विषय

## १ वर्णाश्रमधर्मवर्णनम्—

६७४

ऋषिगणों का हारीत ऋषि से सम्वाद—ऋषियों ने वर्णाश्रम धर्म तथा योगशास्त्र हारीत से पूछा जिसके जानने से मनुष्य जन्ममरण रूप बन्धन को तोड़कर संसार से मुक्त हो जाय । इस अध्याय के नवम श्लोक से हारीत ने सृष्टि का वर्णन किया, भगवान् शेषशायी समुद्र में शयन कर रहे थे उस समय ब्रह्मा की उत्पत्ति से प्रारम्भ कर जगत की उत्पत्ति तक वर्णन किया । श्लोक तेईस में लिखा है जो धर्मशास्त्र न जाने उसको दान न देना । संक्षेप में ब्राह्मण का धर्म इस अध्याय में कहा गया है ( १-२३ ) ।

## २ चतुर्वर्णानां धर्मवर्णनम्—

६७७

क्षत्रिय तथा वैश्य का धर्म बताया गया है । क्षत्रिय का धर्म प्रजापालन, दान देना, अपनी भार्या में ही रति रखना, नीति शास्त्र में कुशलता और मेल करना तथा लड़ना इसके तत्त्व को

जाने। वैश्य का धर्म बताया है गोरक्षा, कृषि और वाणिज्य। मनुष्य को स्वदार निरत रहना चाहिये (१-१५)।

### ३ ब्रह्मचर्याश्रम धर्मवर्णनम्—

६७६

उपनयन संस्कार के बाद विधिपूर्वक अध्ययन करना और अध्ययन विधि के विरुद्ध करना निष्फल बताया गया है (१-४)। ब्रह्मचारी के नियम एवं नैष्ठिक ब्रह्मचारी को विवाह करना और संन्यास करने का निषेध बताया गया है। इस प्रकार ब्रह्मचारी के धर्म का वर्णन बताया गया है (५-१४)।

### ४ गृहस्थाश्रम धर्मवर्णनम्—

६८१

वेदाध्ययन के अनन्तर ब्राह्मविवाह से विवाह करने की प्रशंसा लिखी है (१-३)। प्रातःकाल उठकर दन्तधावन का विधान और दन्तधावन की लफड़ी तथा मन्त्रों से स्नान, प्रातःकाल जब सूर्य लाल-लाल दिखाई पड़ता है उस समय मन्देह नामक राक्षसों के साथ सूर्य का युद्ध होता है अतः प्रातःकाल गायत्री मंत्र से सूर्य को अर्घ्यदान

- ४ देना लिखा है। मरीचि आदि ऋषि और सनकादि योगियों ने भी प्रातःकाल सूर्यको अर्घ्यदान देना बताया है। जो मनुष्य अर्घ्यदान नहीं करता है वह नरक में जाता है (४-१६)। स्नान करने की विधि और स्नान करने के मन्त्र बताये गये हैं (१७-३३)। तीन पानी की चुल्हू पीना और पानी की अखली सिर पर डालना। कुशा को हाथ में लेकर पूब की ओर मुख करके प्रोक्षण करे (३४-३८)। प्राणायाम और गायत्री के मन्त्र अपने की विधि। जपके मन्त्र का उच्चारण करने का विधान। जप के तीन मुख्यभेद वाचिक, उपांशु और मानस। जप करने से देवता प्रसन्न होते हैं यह बताया गया है। जो नित्य गायत्री का जप करता है वह पापों से छुट जाता है। गायत्री जप करने के बाद सूर्य को पुष्पाञ्जलि दे और सूर्य की प्रदक्षिणा कर नमस्कार करे पश्चात् तीर्थ के जल से तर्पण करे (३९-५०)। ब्रह्मयज्ञ के मंत्रों का वर्णन (५१-५४)। अतिथि पूजन और वषट्क की विधि बताई है (५५-६२)। पहले सुवासिनी स्त्री और कुमारी को भोजन करावे फिर घालक और पृष्टों को भोजन करावे तब



४ गृहस्थी भोजन करे। भोजन से पूर्व वस्त्र को हाथ जोड़े और पूव या उत्तर की ओर मुख करके पहले “प्राणाय स्वाहा” इत्यादि मंत्रों से पाँच आहुति देवे तब आप्मन कर लेवे इसके बाद मौन पूर्वक स्वादिष्ट भोजन करे (६३-६४)। भोजन करने के अनन्तर दिन में कोई इतिहास, पुराण आदि की पुस्तकें पढ़नी चाहिये (६६)। प्रातःकाल एवं सायंकाल केवल दो समय ही गृहस्थी को भोजन करना चाहिये और बीच में कुछ नहीं खाना चाहिये (६७-६८)। अनध्याय काल (वह दिन जिनमें पुस्तकों को नहीं पढ़ना) का वर्णन किया गया है (६९-७३)। गृहस्थी को सुवर्ण गौ एवं पृथिवी का दान करना चाहिये (७४-७७)।

५ वानप्रस्थाश्रम धर्मवर्णनम्—

६८८

वानप्रस्थ आश्रम के नियम बताये हैं जोकि अन्य धर्मशास्त्रों में समान रूप से बताये गये हैं (१-१०)।

६ सन्न्यासाश्रम धर्मवर्णनम्—

६८९

वानप्रस्थ के बाद सन्न्यास में जाना चाहिये और सन्न्यास में जाने के बाद लड़कों के साथ भी

६ स्नेह की बातें न करे (१-५)। संन्यासी को दंड, कौपीन तथा खड़ाऊ आदि धारण करने का नियम बताया है (६-१०)। संन्यासी को भिक्षा के नियम और धातु के पात्र में खाने का दोष बताया है (११-१६)। संन्यासी को सन्न्यास जप का विधान, भगवान का ध्यान जीव मात्र पर समदृष्टि रखने का आदेश दिया है (२०-२३)।

### ७ योगवर्णनम्—

६६२

वर्णाश्रम धर्म कहकर जिससे मोक्ष हो और पाप नाश हो ऐसे योगाभ्यास की क्रिया रोज करनी चाहिये (१-३)। प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा और ध्यान बतला कर सम्पूर्ण प्राणियों के हृदय में जो भगवान हैं उनका ध्यान करना लिखा है। जिस प्रकार बिना घोड़े के रथ नहीं चल सकता उसी प्रकार, बिना तपस्या के केवल विद्या से शान्ति नहीं होती है। तप और विद्या दोनों इस जीव के पृष्ठ भाग हैं जिससे उत्तम गति को पाता है (४-११)। विद्या और तपस्या से योग में तत्पर होकर सूक्ष्म और स्थूल दोनों देह को छोड़कर

- ७ मुक्ति को प्राप्त हो जाता है। हारीत ऋषि कहते हैं कि मैंने संक्षेप से ४ वर्ण एवं ४ आश्रमों के धर्म इस उद्देश्य से बताया है कि मनुष्य अपने वर्ण और आश्रम के धर्म पालन से भगवान् मधुसूदन का पूजन कर वैष्णव पद को पहुँच जाता है (१२-२१)।

### वृद्धहारीतस्मृति के प्रधान विषय

#### १ पञ्चसंस्कार प्रतिपादनवर्णनम्—

६६४

राजा अम्बरीष हारीत ऋषि के आश्रम में गये। वहाँ जाकर हारीत से परम धर्म, वर्णाश्रम धर्म, स्त्रियों का धर्म तथा राजाओं के लिये मोक्ष मार्ग पूछा (१-६)। उपर्युक्त प्रश्न के उत्तर में हारीत ने कहा कि मुझे जो ब्रह्माजी ने बताया है वह मैं आपको कहता हूँ। नारायण वासुदेव विष्णु-भगवान् सृष्टिके विधाता हैं अतः उन भगवान् का दास होना ही सबसे बड़ा धर्म है (७-१६)। मैं विष्णु का दास हूँ यही भावना चित्त में रखना। नारायण के जो दास नहीं होते हैं वे जीते जी चण्डाल हो जाते हैं। इसलिये अपनेको भगवान्

का दास समझकर जप पूजादि करे, नारायण का मनसे ध्यान कर उनका संकीर्तन करे और शंख, चक्र, ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण करे यह दास के चिन्ह हैं। जो वैष्णव शंख, चक्र धारण करता है वही पूज्य है और वही धन्य है यह बताया है ( १७-३६ )।

२	वैष्णवानाम् पुण्ड्र संस्कारवर्णनम्—	६६७
	वैष्णवानाम् नाम संस्कार वर्णनम्—	१००६
	वैष्णवानाम् मंत्र संस्कार वर्णनम्—	१००७
	वैष्णवानाम् पञ्चसंस्कार वर्णनम्—	१०११

पंच संस्कार शंखचक्र चिन्ह धारण ऊर्ध्वपुण्ड्रादि की विधि, वैष्णव सम्प्रदाय की दीक्षा, उसका माहात्म्य, वैष्णव सम्प्रदाय के बालक की पंच संस्कार विधि यहाँ गई है ( १-१५ )।

३	भगवन् मंत्रविधान वर्णनम्—	१०१२
---	---------------------------	------

अम्वरीष राजा ने हारीत ऋषि से वैष्णव मन्त्रों का माहात्म्य तथा विधि पूछी। इसके उत्तर में हारीत ने षड्विंशति के साथ पंचविंशति अक्षर

का मन्त्र, अष्टाक्षर मंत्र, द्वादशाक्षर मंत्र, हयग्रीव मंत्र तथा षोडशाक्षर मंत्र आदि अनेक वैष्णव मंत्रों का उद्धरण, उनके विनियोग, न्यास, ध्यान, जप विधि, शंख, चक्र पूजन और भगवान विष्णु के पूजन आदि का सुन्दर वर्णन किया है (१-३६२)।

#### ४ प्रातःकाल भगवत् समाराधन विधिवर्णनम्— १०५०

प्रातःकाल उठने का विधान, शौच से निवृत्त हो वैष्णव धर्म के अनुसार तुलसी और आंवले की मिट्टी को अपने यदन पर लगाकर मार्जन करने और स्नान करने का विधान तथा मन्त्रों का विधान बताया है (१-४६)। विष्णु का पूजन और विष्णु को कौन-कौन पुष्प चढ़ाने चाहिये एवं यदक्षर मंत्र का विधान (४७-१४०)।

#### ४ प्रातःकाल भगवत्समाराधन विधौ कृपिवर्णनम् १०६५

पुराणों का पाठ, वैष्णव पूजा का विधान बताया है। तामस देवताओं का वर्णन और द्रव्य शुद्धि का वर्णन आया है। खेती करना, पशु का पालन करना सबके लिये समान धर्म बताया

है। चोरी करना, परस्त्री हरण, हिंसा सबके लिये पाप बताया है ( १४१-१७४ )।

### ४ प्रातःकालभगवत्समाराधनविधौ राजधर्मवर्णनम् १०६७

राजधर्म का वर्णन, दण्डनीति विधान—प्रायः वही है जो याज्ञवल्क्य में है। इसमें विशेषता यह है कि धर्मच्युत को सहस्र दण्ड विधान बताया है। स्त्री के साथ व्यभिचार करनेवाले का अंगच्छेदन, सवेस्वहरण और देश निष्कासन बताया है ( १७५-२१३ )। युद्ध का वर्णन और युद्ध में राज्य जीतकर उसे अपने आधीन कर राज्य समर्पित कर देना इसकी बड़ी प्रशंसा की गई है एवं विजय की हुई भूमि सत्पात्र को देनी चाहिये। सत्पात्र के लक्षण—तपस्या और विद्या की सम्पन्नता है ( २१४-२२३ )। राज्यशासन का विधान कर लगाना, याचित, अनादित और ऋणदान देने का विधान, पुत्र को पिता का ऋण देना, स्त्री धन की रक्षा, पतिव्रता स्त्री का पालन, व्यभिचारिणी की पति के धन का भाग न मिलने का वर्णन और चार प्रकार के पुत्रों का वर्णन इस तरह संक्षेप

मे राजधर्म और भागवत धर्म की जिज्ञासा लिखी है ( २२४-२६५ ) ।

#### ५ भगवन्नित्यनैमिचित्तिक समाराधन विधिवर्णनम् १०७५

राजा अम्बरीषने मनु, भृगु, वशिष्ठ, मरीचि, वक्ष, अङ्गिरा, पुल, पुलस्त्य, अत्रि इनको जगत् गुरु कहकर प्रणाम किया और यह परमधर्म पूछा जिससे संसार के बन्धन से छुटकारा हो जाय (१-६) । उत्तर मे परमधर्म इस प्रकार बताया:— भगवान्वासुदेव मे भक्ति और उनके नामका जप, भगवान् को उद्देश्य कर धृतादि, स्वदार मे प्रीति दूसरी स्त्री मे लगन न हो, अहिंसा और भगवान् का दास होकर रहना आदि आदि । मेरा स्वामी भगवान् है और मैं उनका दास हूँ यह धारणा रखें । यही भगवत् प्राप्ति का मार्ग है और इसके अतिरिक्त सब नरक का मार्ग बताया है (१०-१६) । वैष्णव धर्म का माहात्म्य और अपनेको भगवान् का दास समझना ( १७-४० ) । तप्त शंख चक्र का चिन्ह जिनपर लगाया गया उन ब्रह्मचारी, गृहस्थी, वानप्रस्थी और यतियो का नित्य कर्म और वर्णाचार, पूजन, जप, उपासना का विधान

५ विस्तार से बताया गया है ( ४१-२४६ ) । यति एवं वानप्रस्थ का रहनसहन तथा मन से अष्टोत्तर पद मन्त्र का जप, उनका धर्म, सन्ध्या का विधान, वैश्वदेव और भूतबलि का विधान, दिनचर्या संस्कार तथा पुत्रोत्पत्ति का विधान ( २४७-३०२ ) । वैष्णवों को प्रातःकाल में स्नान कर लक्ष्मीनारायण के पूजन की विधि बताई है । भगवान को पायस चढ़ाकर पुष्पाञ्जलि देकर द्वादशाक्षर जप करने का विधान आया है ( ३०३-३१३ ) । मन्दिर में जाकर पूजन और द्वादशाक्षर मन्त्र से पुष्पाञ्जली देना ( ३१४-३२७ ) । वैशाख, श्रावण, कार्तिक, माघ, इन मासों में जिस प्रकार भगवान विष्णु का पूजन तथा विष्णु के उत्सवों का वर्णन आया है और पुराण पाठ आदि भगवान के पूजन कीर्तन के अनेक प्रकार के विधान बताये हैं ( ३२८-५६२ ) ।

६ भगवतः यात्रोत्सववर्णनम्—

११२७

वैष्णवेष्टि क्रियातः श्राद्धपर्यन्त विधिवर्णनम् ११३७

भगवान के महोत्सव की विधियाँ हैं जो कि अपने आचार के अनुसार की जाती हैं जिनसे अनावृष्टि



६ आदि उत्पात तथा महारोग दूर होते हैं। संवत्सर, प्रति संवत्सर या प्रति श्रुत में महोत्सव करने का विधान लिखा है। इन महोत्सवों में मण्डप के सजाने की विधि और नगर कीर्तन यज्ञ आदि की विधि बताई है। किस दशा में किस सूक्त का पाठ करना बताया है। भगवान को नीराजन कर शय्या में सुलाना उसके मंत्र बताये गये हैं और विस्तार से घृहपूजन की विधि बताई है। श्राद्ध का वर्णन और श्राद्ध न करने पर नारायणबलि का विधान बताया है (१-१५५)। सात्विक, राजसिक, तामसिक प्रकृति का वर्णन और पाप के अनुसार नरक की गति और उन नरकों के नाम (१५६-१७१)।

६ महापातकादि प्रायश्चित्त वर्णनम्— ११४३

पापों का वर्णन (१७२)। महापाप जिनका कि अग्नि में जलने के अतिरिक्त और कोई प्रायश्चित्त नहीं उनका वर्णन आया है। सब प्रकार के पाप, प्रकीर्ण पाप और उनका प्रायश्चित्त बताया है। द्वादशाक्षर मंत्र के जप से पापों का नाश और शुद्धि बताई है (१७३-२४५)।

और विशेष प्रकार से कीर्तन, रथयात्रा का वर्णन  
आया है ( १०६-३२६ ) ।

८ विष्णुपूजा विधिवर्णनम्— १२०१

विष्णु की पूजा की विधि वेद के मन्त्रों से बताई  
गई है ( १-६० ) ।

सवृत्यधिकार भाण्डादीनाम् संशुद्धिवर्णनम्— १२०६

सभावदूष्यादि द्रव्यभाण्डादीनाम् संशुद्धिवर्णनम्— १२११

अभक्ष्य मोक्तादीनां संसर्ग निषेधवर्णनम्— १२१३

स वैष्णवलक्षण नवविधेज्याभिधान वर्णनम्— १२१५

स्त्रीधर्माभिधान वर्णनम्— १२१७

स चक्रादि धारण पुण्ड्रक्रियाभिधान वर्णनम्— १२२१

वैष्णव दीक्षा विधि वर्णनम्— १२२३

वैष्णवधर्म निरूपणम्— १२२५

वैष्णव प्रशंसा वर्णनम्— १२२७

स श्राद्ध कथनपत्रक विष्णोस्थानप्राप्ति वर्णनम्— १२२६

त वैष्णव धर्माभिधानैतच्छास्त्रस्यफलश्रुति

वर्णनम्—

१२३३

पौराणिक तथा स्मृति के मन्त्रों से भगवान् विष्णु का पूजन और नवधा भक्ति का वर्णन, ध्यानजप, मन्त्रजप का वर्णन, तप्तचक्रांक धारण का माहात्म्य और वैष्णव धर्मवालों की प्रशस्ति बताई है ।

“दानं दमः तपः शौचं आर्जवं शान्तिरेव च  
आनृशंसं सतां संग पारमेकान्त्य हेतवः ।  
वैष्णवः परमेकान्तो नेतरो वैष्णवः स्मृतः ॥

पूजा का माहात्म्य और भिन्न भिन्न प्रकार से जो भगवान् विष्णु की पूजा उत्सव यज्ञ दान बताये हैं, इन सबका तात्पर्य यह है कि भक्त पर विष्णु भगवान् की कृपा हो जाय । जिसपर वैष्णव संस्कारों से विष्णु भगवान् की कृपा या आशिर्वाद हो जाता है उनका जीवन-चरित्र ऐसा होता है—दान करना, दम इन्द्रियों का दमन, तप उपस्या, शौच पवित्रता, आर्जव सरलता, शान्ति क्षमा, आनृशंसं सत्य वचन, सज्जनों का

संग, परमेकान्त मे रहना ये वैष्णव के चिह्न हैं  
( ६१-३५१ ) ।

बृहत् हारीत स्मृति मे स्मृति-प्रतिपाद्य आचार-  
व्यवहार प्रायश्चित्त के समुचित निर्णय के अति-  
रिक्त वैष्णवाचार, वैष्णवोपासना, विष्णु इष्टी;  
विष्णु पूजन सांग साधरण; वैष्णव पूजा उत्सव;  
स्थयाग्रा; एकादश्यादि व्रतोद्यापन; मण्डप-रचना  
आदि का सुचारु विधान निरूपण किया है ।

स्मृति सन्दर्भ द्वितीय भाग की विषय-सूची समाप्त ।

॥ शुभम् ॥



॥ ॐ तत्सद्ब्रह्मणे नमः ॥

श्रीमन्महर्षि पराशरप्रणीता-

# ॥ पराशरस्मृतिः ॥

—०००—

प्रथमोऽध्यायः ।

—००—

श्रीगणेशायनमः ।

तत्रादौ-धर्मोपदेशतद्गणश्चाह-

अथातो हिमशैलाग्रे देवदारुवनालये ।

व्यासमेकाग्रमासीनमपृच्छन्तृपयः पुरा ॥१॥

मानुषाणां हितं धर्मं वर्तमाने कलौ युगे ।

शौचाचारं यथावच्च वद सत्यवतीमुत ॥२॥

तच्छ्रुत्वा श्रुपित्रास्वन्तु ममिद्वान्यर्कसन्निभः ।

प्रत्युवाच महातेजाः श्रुतिस्मृतिविराट्पदः ॥३॥

नचाहं सर्वतत्त्वज्ञः कथं धर्मं वदाम्यहं ।

अस्मन् पितृव्यं द्रष्टव्यं इति व्यासः मुतोऽब्रवीत् ॥४॥

ततस्ते ऋषयः सर्वे धर्मतत्त्वार्थकाङ्क्षिणः ।  
 ऋषिं व्यासं पुरस्कृत्य गता वदरिकाश्रमे ॥५  
 नानादृक्षसमाकीर्णं फलपुष्पोपशोभितम् ।  
 नदीप्रस्त्रयणाकीर्णं पुण्यतीर्थैरलङ्कृतम् ॥६  
 मृगपक्षिगणाढ्यञ्च देवतायतनावृतम् ।  
 यक्षगन्धर्वसिद्धैश्च नृत्यगीतसमाकुलम् ॥७  
 तस्मिन् नृपिस्तभामण्ये शक्तिपुत्र पराशरम् ।  
 सुरासीनं महात्मानं मुनिमुख्यगणावृतम् ॥८  
 कृताञ्जलिपुटो भूत्वा व्यासस्तु ऋषिभिः सह ।  
 प्रदक्षिणाभिनादैश्च स्तुतिभिः सम्पूजयत् ॥९  
 अथ सन्तुष्टमनसाः पराशरमहामुनिः ।  
 आह सुस्वागतं ब्रूहीत्यासीनो मुनिपुङ्गवः ॥१०  
 व्यासः सुस्वागतं ये च ऋषयश्च समन्ततः ।  
 कुशलं कुशलेत्युक्त्वा व्यासः पृच्छत्यतः परम् ॥११  
 यदि जानासि मे भक्तिं स्नेहाद्वा भक्त्यरस्तल !  
 धर्मं कथय मे तात । अनुमाहो ह्यहं तव ॥१२  
 श्रुता मे मानवा धर्म्मा वाशिष्ठाः काश्यपास्तथा ।  
 गार्गेया गौतमाश्चैव तथा चौशनसाः स्मृताः ॥१३  
 अत्रेर्विष्णोश्च साम्प्रतं दाक्षा आज्ञिरसास्तथा ।  
 शातातपाश्च हारीता याज्ञवल्क्यकृताश्च ये ॥१४  
 कात्यायनकृताश्चैव प्राचेतसकृताश्च ये ।  
 आपस्तम्बकृता धर्म्माः, शङ्खस्य लिखितस्य च ॥१५

श्रुता ह्येते भवत्प्रोक्ताः श्रौतार्थास्तेन विस्मृताः ।  
 अस्मिन्मन्वन्तरे धर्म्माः कृतव्रेतादिके युगे ॥१६  
 सर्वे धर्म्माः कृते जाताः सर्वे नष्टाः कलौ युगे ।  
 चातुर्वर्ण्यसमाचारं किञ्चित् साधारणं वद ॥१७  
 व्यासवाक्यावसाने तु मुनिमुख्यः पराशरः ।  
 धर्मस्य निर्णयं प्राह सूक्ष्मं स्थूलञ्च विस्तरात् ॥१८  
 शृणु पुत्र ! प्रवक्ष्येऽहं शृण्वन्तु ऋषयस्तथा ॥१९  
 कल्पे कल्पे क्षयोत्पत्तौ ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ।  
 श्रुतिः स्मृतिः सदाचारा निर्णेतव्याश्च सर्वदा ॥२०  
 न कश्चिद्वेदकर्त्ता च वेदस्मर्त्ता चतुर्मुखः ।  
 तथैव धर्मं स्मरति मनु कल्पान्तरान्तरे ॥२१  
 अन्ये कृतयुगे धर्म्मास्त्रेताया द्वापरे परे ।  
 अन्ये कलियुगे नृणां युगरूपानुसारतः ॥२२  
 तपः परं कृतयुगे व्रेतायां ज्ञानमुच्यते ।  
 द्वापरे यज्ञमित्यूचुर्दानमेकं कलौ युगे ॥२३  
 कृते तु मानवो धर्मस्त्रेतायां गौतमः स्मृतः ।  
 द्वापरे शाह्वलिखितः कलौ पाराशरः स्मृतः ॥२४  
 त्यजेदेशं कृतयुगे व्रेतायां ग्राममुत्सृजेत् ।  
 द्वापरे कुलमेकन्तु कर्त्तारश्च कलौ युगे ॥२५  
 कृते सम्भाषणात् पापं व्रेतायाञ्चैव दर्शनात् ।  
 द्वापरे-चात्रमादाय कलौ पतति कर्मणा ॥२६

कृते तु तत्क्षणाच्छापस्त्रेतायां दशभिर्दिनैः ।  
 द्वापरे मासमात्रेण कलौ सम्वत्सरेण तु ॥२७  
 अभिगम्य कृते दानं त्रेतास्वाहूय दीयते ।  
 द्वापरे याचमानाय सेवया दीयते कलौ ॥२८  
 अभिगम्योत्तमं दानमाहूतञ्चैव मध्यमम् ।  
 अधमं याच्यमानं स्यात् सेवादानञ्च निष्फलम् ॥२९  
 कृते चास्त्रिगताः प्राणस्त्रेतायां मांससंस्थिताः ।  
 द्वापरे रुधिरं यावत् कलावन्नादिषु स्थिताः ॥३०  
 धर्मो जितो ह्यधर्मेण जितः सत्योऽजृतेन च ।  
 जिता भृत्यैस्तु राजानः स्त्रीभिश्च पुरुषा जिताः ॥३१  
 सीदन्ति चामिहोत्राणि गुरुपूजा प्रणश्यति ।  
 कुमार्यश्च प्रसूयन्ते तस्मिन् कलियुगेऽसदा ॥३२  
 युगे युगे च ये धर्मास्तत्र तत्र च ये द्विजाः ।  
 तेषां निन्दा न कर्तव्या युगरूपादिहोत्रे द्विजाः ॥३३  
 युगे युगे च सामर्थ्य शेषं मुनिविभाषितम् ।  
 पराशरेण चाप्युक्तं प्रायश्चित्तं प्रधीयते ॥३४  
 अहमद्यैव तद्धममनुष्ठित्य प्रवीमि यः ।  
 चातुर्वर्ण्यसमाचारं शृणुष्व मुनिपुङ्गवाः ! ॥३५  
 पाराशरमतं पुण्यं पवित्रं पापनाशनम् ।  
 चिन्तितं ब्राह्मणार्थाय धर्मसंस्थापनाय च ॥३६  
 चतुर्णामपि वर्णानामाचारो धर्मपालकः ।  
 आचारभ्रष्टदेहानां भवेद्धर्मः पराङ्मुखः ॥३७



पट्कर्माभिरतो नित्यं देवतातिथिपूजकः ।  
 हुतरोपन्तु भुञ्जानो ब्राह्मणो नावसीदति ॥३८  
 सन्ध्यास्नानं जपो होम इवाध्यायो देवतार्जनम् ।  
 वैश्वदेवातिथेयञ्च पट्कर्माणि दिने दिने ॥३९  
 प्रियो वा यदि वा द्वेष्यो मूर्ख पण्डित एव वा ।  
 वैश्वदेवे तु संप्राप्तः सोऽतिथिः स्वर्गसंक्रमः ॥४०  
 दूराद्भ्यानं पथि श्रान्तं वैश्वदेवे उपस्थितम् ।  
 अतिथिं तं विजानीयान्नातिथिः पूर्वमागतः ॥४१  
 न पृच्छेद्गोश्रचरणं न स्वाध्यायव्रतानि च ।  
 हृदयं कल्पयेत्तस्मिन् सर्वदेवमयोहि सः ॥४२  
 नैकग्रामीणमतिथिं विप्रं साङ्गमिकं तथा ।  
 अनित्यं ह्यागतो यस्मात्तस्मादतिथिरुच्यते ॥४३  
 अपूर्वः सुप्रती विप्रो ह्यपूर्वो वातिथिस्तथा ।  
 वेदाभ्यासरतो नित्यं त्रयोऽपूर्वा दिने दिने ॥४४  
 वैश्वदेवे तु संप्राप्ते भिक्षुके गृहमागते ।  
 उद्धृत्य वैश्वदेयार्थं भिक्षां दत्वा विसर्जयेत् ॥४५  
 यती च ब्रह्मचारी च पक्वान्नस्यामिनावुभौ ।  
 तयोरन्नमदत्वा च भुक्त्वा चान्द्रायणश्चरेत् ॥४६  
 यतिहस्ते जलं दद्याद्भैक्षं दद्यात् पुनर्जलम् ।  
 तद्भैक्षं मेरुणा तुल्यं तज्जलं सागरोपमम् ॥४७  
 वैश्वदेवकृतान् दोषान् शक्तो भिक्षुर्व्यपोहितुम् ।  
 नहि भिक्षु कृतान् दोषान् वैश्वदेवो व्यपोहति ॥४८

हलमप्रगवं धर्म्यं पङ्गवं मध्यमं स्मृतम् ।  
 चतुर्गवं नृशंसाना द्विग्नं वृषपातिनाम् ॥३  
 क्षुधितं तृपितं श्रान्तं बलीवद् न योजयेत् ।  
 होनाङ्गं व्याधितं छीवं वृषं विप्रो न पाहयेत् ॥४  
 स्थिराङ्गं नीरुजं दम् वृषमं पण्डयर्जितम् ।  
 बाह्येदिवसस्याद्धं पञ्चान् स्नानं समाचरेत् ॥५  
 जपं देवार्चनं होमं स्वाध्यायं साङ्गमभ्यसेत् ।  
 एकद्वित्रिचतुर्विप्रान् भोजयेत् स्नातकान् द्विजः ॥६  
 स्नयंकुटे तथा क्षेत्रे धान्यैश्च स्वयमर्जितैः ।  
 निर्वपेत् पञ्च यज्ञानि क्रतुदीक्षाञ्च कारयेत् ॥७  
 तिशा रसा न विक्रेया विक्रेया धान्यत समा ।  
 विप्रस्यैवंविधा वृत्तिस्तृणकाष्ठादिविक्रय ॥८  
 ब्राह्मणस्तु कृषिं कृ या महादोषं भवाप्नुयात् ।  
 सखत्सरेण यत्पापं मत्स्यपाती समाप्नुयात् ।  
 अयोमुखेन काष्ठेन तदेकाहेन लाङ्गली ॥९  
 पाशाहो मत्स्यपातो च व्याध शाकुनिकस्तथा ।  
 अदाता कर्षकश्चैव पञ्चैते समभागिनः ॥१०  
 कण्डनी पेपणी चुली उदकुम्भोऽथ मार्जनी ।  
 पञ्च शूना गृहस्थस्य अहन्यद्वनि वर्तते ॥११  
 वृक्षान् जित्वा महीं हत्वा हत्वा तु भृमकीटकान् ।  
 कर्षकं खलु यत्रेन सर्वपापात् प्रमुच्यते ॥१२

यो न दद्याद्द्विजातिभ्यो राशिमूलमुपागतः ।  
 स चौरः स च पापिष्ठो ब्रह्मज्जं तं विनिर्दिशेत् ॥१३  
 राज्ञे दत्त्वा तु पद्भागं देवानाञ्चैकविंशकम् ।  
 विप्राणां त्रिंशकं भार्गं कृपिकृत्ता न लिख्यते ॥१४  
 क्षत्रियोऽपि कृपिं कृत्वा द्विजान् देवाश्च पूजयेत् ।  
 वैश्यः शूद्र सदा कुर्यात् कृपिवाणिज्यशिल्पकान् ॥१५  
 विकर्म कुर्वते शूद्रा द्विजसेवाविवर्जिताः ।  
 भवन्त्यल्पायुपस्ते वै पतन्ति नरकेषु च ॥१६  
 चतुर्णामपि वर्णानामेव धर्मं सनातनः ॥१७  
 इति पाराशरे धर्मशास्त्रे द्वितीयोऽध्यायः ॥

॥ तृतीयोऽध्यायः ॥

अशीचव्यवस्थावर्णनम् ।

अतः शुद्धिं प्रवक्ष्यामि जनने मरणे तथा ।  
 दिनत्रयेण शुद्ध्यन्ति ब्राह्मणाः प्रेतसूतके ॥१॥  
 क्षत्रियो द्वादशाहेन वैश्यः पञ्चदशाहकै ।  
 शूद्रः शुद्ध्यति मासेन पराशरवचो यथा ॥२॥  
 उपासने तु विप्राणामग्नशुद्धिस्तु जायते ।  
 ब्राह्मणानां प्रसूतो तु देहस्पर्शो विधीयते ॥३॥  
 जाते विप्रो दशाहेन द्वादशाहेन भूमिप ।  
 वैश्यः पञ्चदशाहेन शूद्रो मासेन शुद्ध्यति ॥४॥

एकाहाच्छुद्धयते विप्रो योऽग्निदेसमन्वितः ।  
 ज्यहात् केवलदेस्तु द्विहीनो दशभिर्दिनैः ॥५  
 जन्मकर्मपरिश्रष्टः सन्ध्योपासनवर्जितः ।  
 नामवारकविप्रस्य दशाहं सूतकं भवेत् ॥६  
 एरुपिण्डास्तु दायाशः पृथग्दारनिकेतनाः ।  
 जन्मन्यपि विपत्तौ च भवेत्तेषां च सूतकम् ॥७  
 उभयत्र दशाहानि कुश्यान्नं न भुञ्जते ।  
 दानं प्रतिग्रहो होम स्नाध्यायश्च निवर्त्तते ॥८  
 प्राप्नोति सूतकं गोत्रे चतुर्थपुरुषेण तु ।  
 दायाद्विच्छेदमाप्नोति पञ्चमो वास्मर्षराजः ॥९  
 चतुर्थे दशरात्रं स्यात् पवित्रशा पुंसि पञ्चमे ।  
 षष्ठे चतुरहाष्टद्वि सममे तु दिनत्रयम् ॥१०  
 पञ्चभिः पुरुषैरुक्ता अश्राद्धेया सगोत्रिणः ।  
 ततः पद्पुरुषायश्च श्राद्धे भोज्या सगोत्रिणः ॥११  
 भृग्वनिमरणे चैव देशान्तरमृते तथा ।  
 बाले प्रेते च सन्ध्यासे सद्यः शौचं विधीयते ॥१२  
 दशरात्रेऽप्यतीनेषु त्रिरात्राच्छुद्धिरिष्यते ।  
 ततः सप्तत्सरादूर्ध्वं सचैलं स्नानमाचरेत् ॥१३  
 देशान्तरमृतः कश्चिन् सगोत्रः श्रूयते यदि ।  
 न त्रिरात्रमहोरात्रं सद्यः खात्वा विशुद्ध्यति ॥१४  
 आत्रिपक्षात्रिरात्रं स्यादापण्मासाश्च पक्षिणी ।  
 अहः सप्तत्सराश्चाहं सद्यः शौचं विधीयते ॥१५

अजातदन्ता ये घाला ये च गर्भाद्विनि स्मृताः ।  
 न तेषामग्निसंस्कारो नाशौचं नोदकक्रिया ॥१६  
 यदि गर्भोविपद्येत म्रियते वापि योपिताम् ।  
 यावन्मासं स्थितोगर्भो दिनं तावत् स सूतकः ॥१७  
 आ चतुर्थांशवेत् स्नायः पातः पञ्चमपष्ठयोः ।  
 अत ऊर्ध्वं प्रसूतिः स्याद्दशार्हं सूतकं भवेत् ॥१८  
 प्रसूतिकाले संप्राप्तं प्रसवे यदि योपिताम् ।  
 जीवापत्ये तु गोत्रस्य मृते मातुश्च सूतकम् ॥१९  
 रात्रायै मनुत्पन्ने मृते रजसि सूतके ।  
 पूर्वमेव दिनं प्राह्यं यावन्नोदयते रविः ॥२०  
 दन्तजातेऽनुजाते च कृत्तचूडे च संस्थिते ।  
 अग्निसंस्करणं तेषां त्रिरात्रं सूतकं भवेत् ॥२१  
 आ दन्तजननात् सद्य आचूडाग्नैशिकी स्मृता ।  
 त्रिरात्रमथ तप्तो दशरात्रमतः परम् ॥२२  
 गर्भे यदि विपत्तिः स्याद्दशार्हं सूतकं भवेत् ।  
 जीयन् जातो यदि प्रेत सद्य एव विशुद्ध्यति ॥२३  
 स्त्रीणां चूडाग्न आदानात् संक्रमात्तदधःक्रमात् ।  
 सद्यः शौचमर्धैकाहं त्रिरहः पितृवन्धुषु ॥२४  
 प्रदाचारी गृहे येषां हूयते च हुताशने ।  
 सम्पर्कं न च कुर्वन्ति न तेषां सूतकं भवेत् ॥२५  
 सम्पर्काद्दिदुष्यते विप्रो नान्यो दोषोऽस्ति ब्राह्मणे ।  
 सम्पर्केषु निवृत्तस्य न प्रेतं नैव सूतकम् ॥२६

शिल्विनः फारुका वैरा दाम्नीदामाश्च नापिताः ।  
 श्रोत्रियाश्चैव राजानः मगः शौचाः प्रकीर्त्तिताः ॥२७  
 सप्तमी मन्त्रपूज्य आहिताग्निश्च यो द्विजः ।  
 राज्ञश्च मूतकं नास्ति यम्य चेच्छति पार्ययः ॥२८  
 उग्रतो निवने दाने आत्तां विप्रो निमन्त्रितः ।  
 तदेव ऋषिमिर्दष्टं यथाकालेन शुद्ध्यति ॥२९  
 पूसरे गृहमेधो तु न कुर्व्यात् मङ्करं यदि ।  
 दशाह्वाङ्गुद्वयने माता अयगास्य पिता शुचिः ॥३०  
 सर्वेषां भ्रात्रमागौचं मातापिशोर्दशाहिकं ।  
 सूतकं मातुरेव स्यादुपसृष्ट्य पिता शुचिः ॥३१  
 यदि परन्या पसूताया मम्पर्कं कुस्ते द्विजः ।  
 सूतकन्तु भवेत्तस्य यदि विप्रः पङ्कजित् ॥३२  
 सम्पर्काज्जायते दोषो नान्यो दोषोऽस्ति ब्राह्मणे ।  
 तस्मात् सर्वपयत्नेन सम्पर्कं धर्जयेद्द्विजः ॥३३  
 विवाहोत्सवयत्नेषु त्वन्तरा मृतसूतके ।  
 पूयं सङ्कल्पितं द्रव्यं दीयमानं न दूष्यति ॥३४  
 अन्तरा तु दशाहस्य पुनर्मरणजन्मनी ।  
 तावत् स्यादशुचिर्निषोयावत् स्यादनिर्दशम् ॥३५  
 ब्राह्मणार्थे विपन्नाना वन्दिगोप्रहणे तथा ।  
 आह्वेषु विपन्नानामेकशत्रन्तु सूतकम् ॥३६  
 द्वात्रिंशो पुण्यो लोके सूर्यमण्डलभेदको ।  
 परित्राड्योगयुक्तश्च रणे चाभिमुखे हतः ॥३७

यत्र यत्र हतः शूरः शत्रुभिः परिवेष्टितः ।  
 अक्षयाद्भते लोकान् यदि ह्रीं न भाषते ॥३८  
 जितेन लभते लक्ष्मीं मृतेनापि सुराङ्गनाः ।  
 क्षणविध्वंसिकेऽमुस्मिन् का चिन्ता मरणे रणे ॥३९  
 यस्तु भग्नेषु सैन्येषु विद्रवस्तु समन्ततः ।  
 परित्राता यदा गच्छेत् स च क्रतुफलं लभेत् ॥४०  
 यस्य ऋद्धेदक्षतं गात्रं शरशतयष्टिमुद्गरैः ।  
 देवकन्यास्तु तं वीरं गायन्ति रमयन्ति च ॥४१  
 वराङ्गनासहस्राणि शूरमायोधने हतं ।  
 नागकन्याश्च धावन्ति मम भर्ता भवेदिति ॥४२  
 ललाटदेशाद्गुधिरं हि यस्य  
 तप्तस्य जन्तोः प्रविशेद्य यस्त्रे ।  
 तत् सोमयानेन हि तस्य तुल्यं  
 संप्रामयज्ञे विधिवच्च दृष्टम् ॥४३  
 यं यज्ञसंघैस्तपसा च विद्यया  
 स्वर्गोपिणो धात्र यथैव विप्राः ।  
 तथैव थान्त्येवहि तत्र वीराः  
 प्राणान् सुयुद्धेन परित्यजन्तः ॥४४  
 अनार्यं ब्राह्मणं प्रेतं ये वहन्ति द्विजातयः ।  
 पदे पदे यज्ञफलमानुपूर्वाह्नमन्ति ते ॥४५  
 असगोत्रमब्रन्धुश्च प्रेतीभूतश्च ब्राह्मणं ।  
 नीत्वा च दाहयित्वा च प्राणायामेन शुद्ध्यति ॥४६

न तेषामशुभ किञ्चिद्द्विजानां शुभकर्मणि ।  
 जलाघगाहनात्तेषां शुद्धि स्मृतिभिरीरिता ॥४७  
 अनुगम्येच्छया प्रेत द्वाविमज्ञातिमेव वा ।  
 स्नात्वा चैव तु स्पृष्ट्वाग्नि घृत प्राश्य विशुद्ध्यति ॥४८  
 क्षत्रिय मृतमज्ञानाद्ब्राह्मणो योऽनुगच्छति ।  
 एकाहमशुचिर्भूत्वा पञ्चगव्येन शुद्ध्यति ॥४९  
 शयश्च वैश्यमज्ञानाद्ब्राह्मणो योऽनुगच्छति ।  
 कृत्वा शौच द्विरात्रश्च प्राणायामान् पडाचरेत् ॥५०  
 प्रेतीभूतन्तु य शूद्र ब्राह्मणो ज्ञानदुर्बल ।  
 नयन्तमनुगच्छेत त्रिरात्रमशुचिर्भवेत् ॥५१  
 त्रिरात्रे तु तत पूर्णे नदीं गत्वा समुद्रगाम् ।  
 प्राणायामशत कृत्वा घृत प्राश्य विशुद्ध्यति ॥५२  
 विनिर्धृत्य यदा शूद्रा उदकान्त मुपस्थिता ।  
 द्विजैस्तदनुगन्तव्या इति धर्मविदोविधि ॥५३  
 तस्माद्द्विजो मृत शूद्र न स्पृशेन्न च दाहयेत् ।  
 दृष्टे सूर्यायलोकेन शुद्धिरेषा पुरातनी ॥५४

इति पराशरे धर्मशास्त्रे तृतीयोऽध्याय ॥





॥ चतुर्थोऽध्यायः ॥

अनेकविधप्रकरणप्रायश्चित्तम् ।

अतिमानादतिक्रोधात् स्नेहाद्धां यदिवा भयात् ।  
 उद्व्यधनीयात् स्त्री पुमान् वा गतिरेषा विधीयते ॥१  
 पूयशोणितसंपूर्णे अन्धे तमसि मज्जति ।  
 पष्टिं वर्षसहस्राणि नरकं प्रतिपद्यते ।  
 नाशौचं नोदकं नाग्निं नाश्रुपातश्च कारयेत् ॥२  
 घोढारोऽग्निप्रदातार पाशच्छेदकरास्तथा ।  
 तप्तकृच्छ्रेण शुद्ध्यन्त्येत्येवमाह प्रजापति ॥३  
 गोभिर्हतं तथोदघट्टं ब्राह्मणेन तु घातितम् ।  
 संस्पृशन्ति तु ये विप्रा वोढारश्चाग्निदाश्च ये ॥४  
 अन्येऽपि धानुगन्तारः पाशच्छेदकराश्च ये ।  
 तप्तकृच्छ्रेण शुद्ध्यन्ति कुर्युर्ब्राह्मणभोजनम् ॥५  
 अनडुत्सहिता गाश्च दद्युर्विप्राय दक्षिणाम् ।  
 त्र्यहमुष्णं पिवेदापस्त्र्यहमुष्णं पयः पिवेत् ।  
 त्र्यहमुष्णं घृतं पीत्वा वायुमक्षो दिनत्रयम् ॥६  
 यो वै समाचरेद्विप्रः पतितादिष्वकामतः ।  
 पश्चाद् वा दशाहं वा द्वादशाहमथापि वा ॥७  
 मासाहं मासमेकं वा मासद्वयमथापि वा ।  
 अब्दाहं भन्दमेकं वा तद्दूदृष्वं चैव तत्समः ॥८

दाराग्निहोत्रसंयोगं यः कुर्यादप्रजे सति ।  
 परिवेत्ता स विज्ञेयः परिवित्तिस्तु पूर्वजः ॥२०  
 द्वौ कृच्छ्रौ परिवित्तिस्तु कन्यायाः कृच्छ्र एव च ।  
 कृच्छ्रातिकृच्छ्रौ दातुश्च होता चान्द्रायणश्चरेत् ॥२१  
 कुञ्जयामनपण्डेषु गद्गदेषु जङ्घेषु च ।  
 जात्यन्धे बधिरं मूके न दोषः परिवेदने ॥२२  
 पितृव्यपुत्रः सापत्न्यः परनारीसुतस्तथा ।  
 दाराग्निहोत्रसंयोगे न दोषः परिवेदने ॥२३  
 ज्येष्ठो भ्राता यदा तिष्ठेदाधानं नैव चिन्तयेत् ।  
 अनुज्ञातस्तु कुर्वीत शङ्खस्य वचनं यथा ॥२४  
 नष्टे मृते प्रव्रजिते स्त्रीवे च पतिते पतौ ।  
 पञ्चत्वापत्सु नारीणां पतिरन्यो न विद्यते ॥२५  
 मृते भर्तारि वा नारी ब्रह्मचर्ये व्यवस्थिता ।  
 सा मृता लभते स्वर्गं यथा सद् ब्रह्मचारिणः ॥२६  
 तिस्रः कोट्यर्द्धकोटी च यानि रोमाणि मानुषे ।  
 तावत् कालं वसेत् स्वर्गे भर्तारं यानुगच्छति ॥२७  
 व्यालप्राही यथा व्यालं विलादुद्धरते वलात् ।  
 एवमुद्धृत्य भर्तारं तेनैव सह मोदते ॥२८

इति पाराशरे धर्मशास्त्रे चतुर्थोऽध्यायः ॥



॥ अथ पञ्चमोऽध्यायः ॥

प्रायश्चित्तवर्णनम् ।

श्वरुकाभ्यां शृगालाद्यैर्दि दृष्टन्तु प्राद्वणः ।  
 स्नात्वा जपेत् गायत्रीं पवित्रा पंडमातरम् ॥१  
 गया शृङ्गोदके स्नातो महानद्यास्तु मग्नमे ।  
 समुद्रदर्शनाद्वापि शुना दष्टः शुचिर्ममेत् ॥२  
 वेदविद्याप्रतस्नात् शुना दृष्टन्तु प्राद्वणः ।  
 स हिरण्योदके स्नात्वा घृतं प्राश्य विशुध्यति ॥३  
 सनतस्तु शुना दृष्टन्निरात्रं समुपोषितः ।  
 घृतं कुशोदकं पीत्वा अक्षरोपं ममापयेत् ॥४  
 अयतः सगतो वापि शुना दृष्टो भवेद्भिजः ।  
 भणिपत्यं भवेत् पूतो निर्भ्रानुनिरीक्षितः ॥५  
 शुना प्राप्तावलीढस्य नरैर्विलिखितस्य च ।  
 अद्भिः प्रक्षालनाच्छुद्धिरग्निना चोपचूलनम् ॥६  
 शुना च प्राद्वणी दष्टा जम्बुकेन वृकेण वा ।  
 उदितं सोमनक्षत्रं दृष्ट्वा सद्यः शुचिर्ममेत् ॥७  
 कृष्णपक्षे यदा सोमो न दृश्येत कदाचन ।  
 यां दिशं वृजते सोमस्तां दिशश्चावलोकयेत् ॥८  
 असद्प्राद्वणके ग्रामे शुना दष्टस्तु प्राद्वणः ।  
 वृषं प्रदक्षिणीकृत्य सद्यः स्नानाद्विशुध्यति ॥९  
 चाण्डालेन श्वपावेन गोभिर्विप्रैर्दतो यदि ।

आहिताग्निमृतो विप्रो विपेणात्महतो यदि ।  
 दहेत्तं ब्राह्मणं विप्रो लोकान्मो मन्त्रवर्जितम् ॥१०  
 स्मृष्टा चोद्य च दग्धा च सपिण्डेषु च सर्वथा ।  
 प्राजापत्यं चरेत् पश्चाद्विप्राणामनुशासनात् ॥११  
 दग्धास्थीनि पुनर्गृह्य क्षीरैः प्रक्षालयेद्द्विजः ।  
 पुनर्दहेत् स्वकामौ तन्मन्त्रेण च पृथक् पृथक् ॥१२  
 आहिताग्निद्विजः कश्चित् प्रवसन् कालचोदितः ।  
 देहनाशमनुप्राहस्तस्याग्निवर्त्तते गृहे ॥१३  
 श्रौताग्निहोत्रसंस्कारः श्रूयतामृपिसत्तमाः । ॥  
 कृष्णाजिनं समास्तीर्य कुशैश्च पुरुषाकृतिम् ॥१४  
 पट् शतानि शतञ्चैव पलाशानाथ वृन्तकम् ।  
 चत्वारिंशच्छिरे दद्यात् पटिं कण्ठे विनिर्दिशेत् ॥१५  
 बाहुभ्याश्च शतं दद्यादङ्गुलीषु दशैव तु ।  
 शतञ्चोरसि संदद्यात् त्रिशङ्खैवोदरे न्यसेत् ॥१६  
 अष्टौ घृणयोर्दद्यात् पञ्च मेढ्रे च विन्यसेत् ।  
 एकविंशतिमूर्ध्व्या जानुजङ्घे च विंशतिम् ॥१७  
 पादाङ्गुल्योऽशतार्द्धश्च पात्राणि च तथा न्यसेत् ।  
 शम्भ्यां शिश्ने विनिक्षिप्य अरणीं घृण्णे तथा ॥१८  
 जुहं दक्षिणहस्तेन वामहस्ते तथोपसत् ।  
 कर्णेचोर्लूतलं दद्यात् पृष्ठे च मुपलं ततः ॥१९  
 निक्षिप्योरसि दृशदं तण्डुलाज्यतिलान्मुग्धे ।  
 श्रोत्रे च श्रोक्षणीं दद्यादाज्यम्यालीञ्च चक्षुषोः ॥२०

कर्णे नेत्रे मुखे घ्राणे हिरण्यशकलं क्षिपेत् ।  
 अग्निहोत्रोपकरण गात्रे शेषं प्रविन्यसेत् ॥२१  
 असौ स्वर्गाय लोकाय स्वाहेति च धृताहुतीः ।  
 दद्यात् पुत्रोऽथवा भ्राता ह्यन्ये वापि स्वधर्मिणः ॥२२  
 यथा दहनसंस्कारस्तथा काव्यं विचक्षणैः ।  
 ईदृशान्तु विधिं कुर्व्याद्भग्नलोके गतिर्ध्रुवम् ॥२३  
 ये दहन्ति द्विजास्तन्तु ते यान्ति परमां गतिम् ।  
 अन्यथा कुर्वते किञ्चिदात्मबुद्धिप्रबोधिनाः ॥२४  
 भवन्त्यल्पायुपते ये पनन्ति नरके ध्रुवम् ॥२५  
 इति पराशरे धर्मशास्त्रे पञ्चमोऽध्यायः ।

॥ अथ पञ्चोऽध्यायः ॥

प्राणिहत्याप्रायश्चित्तवर्णनम् ।

अतः परं प्रवक्ष्यामि प्राणिहत्यासु निष्कृतिम् ।  
 पराशरेण पूर्योक्तां मन्वर्थेऽपि च विस्मृताम् ॥१  
 हंससारसक्रौञ्चाश्च श्वकृवाकं सवुष्कुदम् ।  
 जालपादाश्च शरभमहोरात्रेण शुध्यति ॥२  
 गलाकाटिद्विभानाञ्च शुकपारावतादिनाम् ।  
 आदिनाञ्च बकानाञ्च शुद्ध्यते नक्तमोजनात् ॥३

भासकाफकपोतानां मारीतितिरिपातकः ।  
 अन्तर्जले उभे मन्थे प्रागायामेन शुष्यति ॥४  
 गृध्रश्येनरिरिषादचासोत्पनिपातने ।  
 अपवाशी दिनं तिष्ठेत्त्रिपालं मास्ताशनः ॥५  
 घल्गुणीचटफानाञ्च कोष्ठिलाग्रशरीटकान् ।  
 लायकारणपादाश्च शुद्धयन्ते नक्तभोजनात् ॥६  
 फारण्टघचकौराणां पिप्पलानुररस्य च ।  
 भारद्वाजनिहता च शुद्धयते शिष्यपूजनात् ॥७  
 भेरुण्डश्येनभासञ्च पारावतकृष्णजलान् ।  
 पक्षिणामेव सर्वेषामहोरात्रेण शुष्यति ॥८  
 हत्या नकुञ्जमार्जारसपाञ्जगरकुण्डुमान् ।  
 कृत्तारं भोजयेद्विप्रान् लोहदण्डञ्च दक्षिणाम् ॥९  
 शङ्खकीशशक्रागोधामतयकूर्माभिपातने ।  
 घृन्ताफलभोक्ता च ह्यहोरात्रेण शुष्यति ॥१०  
 घृकजम्बूकमृश्राणां तरक्षूणाञ्च घातने ।  
 तिलप्रस्थं द्विजे दद्याद्वायुभक्षो दिनत्रयम् ॥११  
 गजगवयनुरङ्गानां महिषोष्ट्रनिपातने ।  
 शुद्धयते सप्तरात्रेण विप्राणां तर्पणेन च ॥१२  
 मृगं कुरुं वराहञ्च अज्ञानाद्यस्तु घातयेन् ।  
 अकालकृष्टमशनीयादहोरात्रेण शुष्यति ॥१३  
 एषं चतुष्पदानाञ्च सर्वेषां वनचारिणाम् ।  
 अहोरात्रोपिततिष्ठेज्जपन् वै जातवेदसम् ॥१४

शिल्पिनं कारुकं शूद्रं स्त्रियं वा यातु घातयेत् ।  
 प्राजापत्यद्वयं कुर्व्याद्द्वयैकादशदक्षिणा ॥१५  
 वैश्यं वा क्षत्रियं वापि निर्दोषमभिघातयेत् ।  
 सोऽतिकृद्द्वयं कुर्व्याद्दोविंशं दक्षिणा ददेत् ॥१६  
 वैश्यं शूद्रं क्रियासक्तं विरुर्मस्थं द्विजोत्तमम् ।  
 हत्वा चान्द्रायणं कुर्व्याद्दद्याद्दोत्रिशदक्षिणाम् ॥१७  
 क्षत्रियेणापि वैश्येन शूद्रणैवेतरेण वा ।  
 चाण्डालबधसंप्राप्तः कृच्छ्राद्धेन दिशुष्यति ॥१८  
 सौराः श्वपाकचाण्डाला विप्रेणापि हता यदि ।  
 अहोरात्रोपवासेन प्राणायामेन शुष्यति ॥१९  
 श्वपार्कं वापि चाण्डालं विप्रः सम्भाषते यदि ।  
 द्विजसम्भाषणं कुर्व्याद्वायत्रीं वा सकृज्जरेत् ॥२०  
 चाण्डालैः सह सुमन्तु त्रिरात्रमुपवासयेत् ।  
 चाण्डालैर्बध्नत्वा गायत्रीस्मरणाच्छुचिः ॥२१  
 चाण्डालदर्शनेनैव आदित्यमवलोकयेत् ।  
 चाण्डालस्पर्शने चैव सचैलं स्नानमाचरेत् ॥२२  
 चाण्डालग्रातवापीषु पीत्वा सलिलमग्रजः ।  
 अद्धानाश्चैव नक्तेन त्वहोरात्रेण शुद्ध्यति ॥२३  
 चाण्डालभाण्डसंस्पर्शं पीत्वा कृष्णं जलम् ।  
 गोमूत्रयावकाहारस्त्रिरात्राच्छुद्धिमानुयात् ॥२४  
 चाण्डालोदकभाण्डे तु अज्ञानात् पिबते जलम् ।  
 सत्क्षणात् क्षिपते यस्तु प्राजापत्यं समाचरेत् ॥२५

यदि न क्षिपते तोयं शरीरे यस्य जीर्ण्यति ।  
 प्राजापत्यं न दातव्यं कृच्छ्रं सान्तपनञ्चरेत् ॥२६  
 चरेत् सान्तपनं विप्र प्राजापत्यन्तु क्षत्रियः ।  
 तदद्धन्तु चरेद्वैश्य पादं शूद्रस्य दापयेत् ॥२७  
 भाण्डस्थमन्यजानान्तु जलं दधि पयः पिवेत् ।  
 ब्राह्मण क्षत्रियो वैश्य शूद्रश्चैव प्रमादतः ॥२८  
 मल्लकूर्गोपवासेन द्विजातीनान्तु निष्कृतिः ।  
 शूद्रस्य चोपवासेन तथा दानेन शक्तित् ॥२९  
 ब्राह्मणो ह्यनतो भुङ्क्ते चाण्डालाञ्च कदाचन ।  
 गोमूत्रवावकाहारादसाराणेण कुंभ्यति ॥३०  
 एकैकं मासमश्नीयाद्गोमूत्रवावकस्य च ।  
 दशाह्नियमस्थस्य घ्नन् तत्र त्रिनिर्दिशेत् ॥३१  
 अविज्ञातश्च चाण्डालः सन्तिष्ठतस्य वेश्मनि ।  
 विज्ञाते तूपसन्त्यस्य द्विजाः पुवन्त्यनुग्रह्य ॥३२  
 ऋषियक्ताः कृच्छ्रता धर्मास्त्रायन्ते वैशपाचना ।  
 पतन्तगुह्येयुस्ते धर्मज्ञाः पापसङ्कटात् ॥३३  
 दध्ना च सर्पिषा चैव क्षीरगोमूत्रवावकम् ।  
 भुञ्जीत सह सर्वैश्च त्रिसन्ध्यमनगाहनम् ॥३४  
 त्र्यहं भुञ्जीत दध्ना च त्र्यहं भुञ्जीत सर्पिषा ।  
 त्र्यहं क्षीरेण भुञ्जीत एकैवेन दिनत्रयम् ॥३५  
 भावदुष्टं न भुञ्जीयाज्जोच्छिष्टं कृमिदूषितम् ।  
 त्रिपलं दधिदुग्धस्य पलमेकन्तु सर्पिषः ॥३६



भस्मना तु भवेच्छुद्धिर्भयोस्ताम्रकास्ययोः ।  
 जलशौचेन यस्त्राणा परित्यागेन मृण्मयम् ॥३७  
 कुसुम्भगुडकार्पासलवण सैरसर्पिणी ।  
 द्वारे कृत्वा तु धान्यानि गृहे दद्याद्दुताशनम् ॥३८  
 एवं शुद्धस्ततः पश्चात् कुर्याद्ब्रह्मह्मणभोजनम् ।  
 त्रिशतं गा मृपञ्चैकं दद्याद्विप्रेषु दक्षिणाम् ॥३९  
 पुनर्लेपनया तेन होमजप्येन शुभ्यति ।  
 आधारेण च विप्राणा भूमिदोषो न विद्यते ॥४०  
 रजकी चर्मकारी च लुब्धकस्य च पुङ्गवी ।  
 चातुर्यर्ण्यगृहे यस्य क्षान्तानादधितिष्ठति ॥४१  
 ज्ञात्वा तु निष्कृतिं कुर्यात् पूर्वोक्तस्यार्द्धमेव च ।  
 गृहदाहं न कुर्यात्ताप्यन्यत् सर्वञ्च कारयेत् ॥४२  
 गृहस्याभ्यन्तरे गन्धेषाण्डालो यस्य कस्यचित् ।  
 तस्माद्गृहाद्विनिस्तूय गृहभाण्डानि वर्जयेत् ॥४३  
 रसपूर्णं तु यद्भाण्डं न त्यजेच्च कदाचन ।  
 गोरस्मेन तु संमिश्रैर्जलैः प्रोक्षेत् समन्ततः ॥४४  
 ब्राह्मणस्य घणद्वारे पूयशोणितसम्भवे ।  
 कृमिरत्पद्यते यस्य प्रायश्चित्तं कथं भवेत् ॥४५  
 गवां मूत्रपुरीषेण दध्ना क्षीरेण सर्पिषा ।  
 ज्यहं स्नात्वा च पीत्वा कृमिदुष्टं शुचिर्मयेत् ॥४६  
 क्षत्रियोऽपि मुवर्णस्य पञ्च मासान् प्रदापयेत् ।  
 गोदक्षिणान्तु वैश्यस्याप्युपवासं विनिर्दिशेत् ॥४७

शूद्राणां नोपवासः स्याच्छूद्रो दानेन शुध्यति ।  
 ब्राह्मणास्तु नमस्कृत्य पञ्चगव्येन शुध्यति ॥४८  
 अच्छिद्रमिति यद्वाक्यं वदन्ति श्रितिदेवताः ।  
 प्रणम्य शिरसा धार्यं मन्त्रिप्रोमफलं हि तत् ॥४९  
 व्याधिर्व्यसनिनि श्रान्ते दुर्मिक्षे डामरे तथा ।  
 उपवासो वतो होमो द्विजसम्पादितानि वा ॥५०  
 अथवा ब्राह्मणास्तुष्टाः स्वयं कुर्वन्त्यनुग्रहम् ।  
 सर्वधर्ममवाप्नोति द्विजः सप्तर्द्धिवाशिषा ॥५१  
 दुर्ध्वलेऽनुग्रहः कार्यस्तथा वै बालशृङ्गयोः ।  
 अतोऽन्यथा भवेद्दोषस्तस्मान्नानुग्रहः स्मृतः ॥५२  
 स्नेहाद्वा यदि वा लोभाद्भयादज्ञानतोऽपि वा ।  
 कुर्वन्त्यनुग्रहं ये वै तत्पारं तेषु गच्छति ॥५३  
 शरीरस्यात्यये प्राप्ते वदन्ति नियमन्तु ये ।  
 महत्काय्योपरोधेन न स्वस्थस्य कदाचन ॥५४  
 स्वस्थस्य मूढाः कुर्वन्ति नियमन्तु वदन्ति ये ।  
 ते तस्य विघ्नकर्तारः पतन्ति नरकेऽशुचौ ॥५५  
 स एव नियमस्याज्यो ब्राह्मणं योऽवमन्यते ।  
 पृथा तस्योपवासः स्यान्न स पुण्येन युज्यते ॥५६  
 स एव नियमो ब्राह्मो यं यं कोऽपि वदेद्द्विजः ।  
 कुर्व्याद्वाक्यं द्विजानाञ्च अकुर्वन् ब्रह्माहा भवेत् ॥५७  
 उपवासो व्रतञ्चैव ह्यनं तीर्थं जपस्तपः ।  
 विप्रैः सम्पादितं यस्य सम्पन्नं तस्य तद्भवेत् ॥५८

वृत्च्छिद्रं तपश्छिद्रं यच्छिद्रं यज्ञकर्मणि ।  
 सर्वं भवति निच्छिद्रं ब्राह्मणैरुपपादितम् ॥६६  
 ब्राह्मणा जज्ञमं तीर्थं निर्जलं सर्वकामदम् ।  
 तेषां घाफ्योदयेनव शुद्धयन्ति मलिना जनाः ॥६७  
 ब्राह्मणा यानि भापन्ते भापन्ते तानि देवताः ।  
 सर्ववेदमया विप्रा न सद्रचनमन्यथा ॥६८  
 अन्नाद्ये बीटसंपुक्ते मक्षिकाबीटदृषिते ।  
 अन्तरा संसृगेषापस्तदन्नं भस्मना सृशेत् ॥६९  
 भुञ्जानो हि यदा विप्रः पादं हस्तेन संपृरेत् ।  
 उच्छिष्टं हि स वै भुङ्क्ते यो भुङ्क्ते भुक्तभाजने ॥७०  
 पादुकास्थो न भञ्जीत पर्यङ्के संस्थितोऽपि वा ।  
 शुना चाण्डालदृष्टो वा भोजनं परिवर्जयेत् ॥७१  
 पक्वान्नञ्च निषिद्धं यदन्नशुद्धितयैर च ।  
 यथा पराशरेणोक्तं तथैवाहं वदामि यः ॥७२  
 मितं द्रोणाढकस्यान्नं काकश्चानोपघातितम् ।  
 केनैतच्छुद्धयते चान्नं ब्राह्मणेभ्यो निवेदयेत् ॥७३  
 काकश्चानावलीढन्तु द्रोणान्नं न परित्यजेत् ।  
 वेदवेदाङ्गनिष्ठिप्रैर्धर्मशास्त्रानुपालकैः ॥७४  
 प्रस्था द्वात्रिंशतिद्रोणः स्मृतो द्विप्रस्थ आढकः ।  
 ततो द्रोणाढकस्यान्नं श्रुतिस्मृतिविदो विदुः ॥७५  
 काकश्चानावलीढं तु गवाघातं ररेण वा ।  
 : स्वल्पमन्नं त्यजेद्विप्रः शुद्धिर्द्रोणाढके भवेत् ॥७६

अन्यस्योद्धृत्य तन्मात्रं यद्य नोपहतं भवेत् ।  
 सुवर्णोदम्भस्य हुताशनेनैव तापयेत् ॥७०  
 हुताशनेन संस्पृष्टं सुवर्णसलिलेन च ।  
 विप्राणां म्रग्नपोषेण भोज्यं भवति तत्क्षणात् ॥७१

इति पाराशरे धर्मशास्त्रे षष्ठोऽध्यायः ॥



॥ अथ सप्तमोऽध्यायः ॥

द्रव्यशुद्धिवर्णनम् ।

अधातो द्रव्यसंशुद्धिं पराशरवचोयथा ।  
 दारवाणान्तु पात्राणां तक्षणाच्छुद्धिरिष्यते ॥१  
 माज्जनाद्यक्षपात्राणां पाणिना यज्ञवर्मणि ।  
 चमसाना महाणाञ्च शुद्धिं प्रक्षालनेन तु ॥२  
 चरुणा श्रुक्स्रवाणाञ्च शुद्धिर्ह्यग्नेन धारिणा ।  
 भस्मना शुद्धयते काश्यं ताम्रमग्नेन शुभ्रति ॥३  
 रजसा शुद्धयते नारी विक्लं या न गच्छति ।  
 नदी वेगेन शुद्धयेत लेपो यदि न दृश्यते ॥४  
 वापीकूपतडागेषु दूषितेषु कथञ्चन ।  
 उद्धृत्य वै घटशतं पञ्चगव्येन शुभ्रति ॥५  
 अष्टवर्षा भेद्वीरी नयवर्षा तु रोहिणी ।  
 दशवर्षा भवेत् कन्या अत उद्धृत्य रजस्वला ॥६

प्राप्ते तु द्वादशे वर्षे यः कन्या न प्रयच्छति ।  
 मासि मासि रजस्तस्याः पिवन्ति पितरः स्वयम् ७  
 माता चैव पिता चैव ज्येष्ठो भ्राता तथैव च ।  
 त्रयस्ते नरकं यान्ति स्मृत्वा कन्या रजस्वलाम् ॥८  
 यस्ता समुद्धेत् कन्या ब्राह्मणोऽज्ञानमोहितः ।  
 असम्भाष्यो ह्यपाङ्क्त्येव स विप्रो वृषलीपतिः ॥९  
 यः करोत्येकगत्रेण वृषलीसेवनं द्विजः ।  
 स भैक्षभुजपन्नित्थं त्रिभिर्वपैर्विशुच्यति ॥१०  
 अस्तं गते यदा सूर्यो चाण्डालं पतितं स्त्रियम् ।  
 सूतिकास्पृशतश्चैव कथं शुद्धिर्विधीयते ॥११  
 जातवेदं सुवर्णञ्च सोममार्गं विलोक्य च ।  
 ब्राह्मणानुगतश्चैव स्नानं कृत्वा विशुध्यति ॥१२  
 स्पृष्ट्वा रजस्वलान्योन्यं ब्राह्मणी ब्राह्मणी तथा ।  
 तावत्तिष्ठेन्निराहारा त्रिरात्रेणैव शुध्यति ॥१३  
 स्पृष्ट्वा रजस्वलान्योन्यं ब्राह्मणी क्षत्रिया तथा ।  
 अर्द्धकृच्छ्रं चरेत् पूर्वा पादमेकमतन्तरा ॥१४  
 स्पृष्ट्वा रजस्वलान्योन्यं ब्राह्मणी वैश्यजा तथा ।  
 पादोनं चैव पूर्व्यायाः परायाः कृच्छ्रपादकम् ॥१५  
 स्पृष्ट्वा रजस्वलान्योन्यं ब्राह्मणी शूद्रजा तथा ।  
 कृच्छ्रेण शुद्ध्यते पूर्वा शूद्रा दानेन शुध्यति ॥१६  
 स्नाता रजस्वला या तु चतुर्थेऽहनि शुध्यति ।  
 शुर्व्याद्वज्रोनिवृत्तौ तु दैवपित्र्यादिकर्म च ॥१७

रोगेण यद्रजः स्त्रीणामन्यहन्तु प्रवर्तते ।  
 नाशुचिः सा ततस्तेन तत् स्याद्वैकालिकं मतम् ॥१८  
 प्रथमेऽहनि चाण्डाली द्वितीये ब्रह्मपातिनी ।  
 तृतीये रजक्री प्रोक्ता चतुर्थेऽहनि शुष्यति ॥१९  
 आतुरे स्नानमुत्पन्ने दशकृत्वो ह्यनातुरः ।  
 स्नात्वा स्नात्वा स्पृशेदेनं ततः शुद्ध्यत् स आतुरः ॥२०  
 उच्छिष्टोच्छिष्टसंस्पृष्टः शुना शूद्रेण वा द्विजः ।  
 उपोष्य रजनीमेकां पञ्चगव्येन शुष्यति ॥२१  
 अनुच्छिष्टेन शूद्रेण स्नानं स्पर्शं विधीयते ।  
 उच्छिष्टेन च संस्पृष्टः प्राजापत्यं समाचरेत् ॥२२  
 भस्मना शुद्ध्यते कास्यं सुरया यन्न लिप्यते ।  
 सुरामात्रेण संस्पृष्ट शुद्ध्यतेऽन्युपलेपनैः ॥२३  
 गवाघ्रातानि कास्यानि श्वकाकोपहतानि च ।  
 शुद्ध्यन्ति दशभिः क्षारेः शूद्रेच्छिष्टानि यानि च ॥२४  
 गण्डूपं पादशौचञ्च कृत्वा वै कास्यभाजने ।  
 पण्मासाद् भुवि निक्षिप्य उद्धृत्य पुनराहरेत् ॥२५  
 आयसेष्वपसारेण सीसस्याग्नौ विशोधनम् ।  
 दन्तमस्थि तथा शृङ्गं रौप्यं सौवर्णभाजनम् ॥२६  
 मणिपाषाणशङ्खाश्च एतान् प्रक्षालयेज्जलैः ।  
 पाषाणे तु पुनर्घृष्टिरेया शुद्धिरुदाहता ॥२७  
 मृद्भाण्डदहनाच्छुद्धिर्धान्यानां मार्जनादपि ।  
 अग्निस्तु प्रोक्षणं शौचं गहूनां धान्यवाससाम् ॥२८

प्रक्षालनेन त्वल्पानामद्भिः शौचं विधीयते ।  
 वेणुचल्लक्ष्मचोराणां क्षौमरापांसवाससाम् ॥२६  
 और्णानां नेत्रपट्टानां जलाच्छौचं विधीयते ।  
 तूलिकाद्युपधानानि पीतरक्ताम्बराणि च ॥२७  
 शोषयित्वा र्कतापेन प्रोक्षयित्वा शुचिर्भवेत् ।  
 मुञ्जोपस्करसूर्पाणां शाणस्य कलचर्मणम् ॥२८  
 घृणकाष्ठादिरञ्जुनां मुदकप्रोक्षणं मतम् ।  
 मार्जारमक्षिकाकीटपतङ्गरुमिददुःराः ॥२९  
 मेध्यः सोमं शृणान्त्येयं नोच्छिद्रात् मनुरग्रवीत् ।  
 भूमिं शृणु गतं तोयं यश्चाप्यन्योन्यविप्रुषः ॥३०  
 मुक्तोच्छिद्रं तथास्नेहं नोच्छिद्रं मनुरग्रवीत् ।  
 ताम्बूलैश्चुकले चैव भुक्तस्नेहानुलेपने ॥३१  
 मधुपर्के च सोमे च नोच्छिद्रं मनुरग्रवीत् ।  
 रथ्याकर्मतोयानि नावः पन्थास्तृणानि च ॥३२  
 मन्तार्केण शुद्ध्यन्ति पश्वेष्टकचित्तानि च ।  
 अदुष्टा सन्तता धारा वातोद्भूताश्च रेणवः ॥३३  
 स्त्रियो घृद्धाश्च घालाश्च न दुष्यन्ति कदाचन ।  
 क्षुते निष्ठेवने चैव दन्तोच्छिद्रे तथानृते ॥३४  
 पतितानाश्च सम्भापे दक्षिणं श्रवणं शृशेत् ।  
 अग्निरापश्च वेदाश्च सोमसूत्र्यां निलास्तथा ॥३५  
 ग्ने सर्वेऽपि विप्राणां श्रोत्रे तिष्ठन्ति दक्षिणे ।  
 प्रभास्तादीनि तीर्थानि गङ्गाद्याः सरितस्तथा ॥३६

विप्रस्य दक्षिणे कर्णे सान्निध्यं ममुरज्जवीत् ।  
 देशभङ्गे प्रवासे वा व्याधिषु व्यसनेष्वपि ॥४०  
 रक्षेदेव स्वदेहादि पश्चाद्धर्मं समाचरेत् ।  
 येन । केन च धर्मेण मृदुना दारुणेन च ॥४१  
 हृद्रेहो न मात्मानं समर्थो धर्ममाचरेत् ।  
 आपत्काले तु सम्प्राप्ते शौचाचारं न चिन्तयेत् ।  
 स्वयं समुद्धरेत् पश्चात् स्वस्थो धर्मं समाचरेत् ॥४२  
 इति पाराशरे धर्मशास्त्रे सप्तमोऽध्यायः ।

॥ अष्टमोऽध्यायः ॥

धर्माचरणवर्णनम् ।

गवां घन्धनयोस्त्रेतु भवेन्मृत्युरकामतः ।  
 अकामात् कृतपापस्य प्रायश्चित्तं कथं भवेत् ॥१  
 वेदवेदाङ्गविदुषा धर्मशास्त्रं विजानताम् ।  
 स्वकर्मरतविप्राणां स्वकं पापं निवेदयेत् ॥२  
 अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि उपस्थानस्य लक्षणम् ।  
 उपस्थितो हि न्यायेन द्रुत देशनमर्हति ॥३  
 सन्नोनि शंसये पापे न भुञ्जीतानुपस्थितः ।  
 भुञ्जानो वर्द्धयेत् पापं पर्श्वेन न विशते ॥४  
 शंसये तु न भोक्तव्यं यावत् कार्यविनिश्चयः ।  
 प्रमादश्च न कर्त्तव्यो यथैवाशंसयस्तथा ॥५ ;



कृत्वा पापं न गृहेत गुह्यमानं विवर्द्धते ।  
 स्वल्पं वाथ प्रभूतं वा धर्मविद्धथो निवेदयेत् ॥६॥  
 ते हि पापे कृते वेद्या हन्तारथैव पाप्मनाम् ।  
 व्याधितस्य यथा वेद्या बुद्धिमन्तो रुजापहाः ॥७॥  
 प्रायश्चित्ते समुत्पन्ने ह्येमान् सत्यपरायणः ।  
 मुदुरार्जवसम्पन्न शुद्धिं गच्छन्त मानवः ॥८॥  
 मन्त्रैलं वाग्यतः स्नात्वा ह्यिन्नवासाः समाहितः ।  
 भक्तियो वाथ वैश्यो वा ततः पर्पद् मामजेत् ॥९॥  
 उपस्थाय तत शीघ्रमार्त्तिमान् धरणीं व्रजेत् ।  
 गात्रैश्च शिरसा चैव न च किञ्चिदुदाहरेत् ॥१०॥  
 माविश्याश्चापि गायत्र्याः सन्ध्योपास्त्यग्निकार्ययोः ।  
 अहानात् कृपिपत्तारो ब्राह्मणा नामधारकाः ॥११॥  
 अव्रतानाममन्त्राणां जातिनाथोपजीविनाम् ।  
 सहस्रशः समेतानां परिपत्त्वं न विद्यते ॥१२॥  
 यद्वदन्ति तमोमूढा मूर्खा धर्ममतद्विदः ।  
 तत्पापं शतधा भूत्वा तद्वत्तुरधि गच्छति ॥१३॥  
 अहात्वा धर्मशास्त्राणि प्रायश्चित्तं ददाति यः ।  
 प्रायश्चित्तोभवेत् पूत किल्बिषं परिपद् व्रजेत् ॥१४॥  
 चत्वारो वा त्रयो वापि यं ब्रूयुर्वेदपारगाः ।  
 स धर्म इति विज्ञेयो नेतरैस्तु सहस्रशः ॥१५॥  
 प्रमाणमार्गं मार्गन्तो ये धर्मं प्रवदन्ति वै ।  
 तेषां बुद्धिजते पापं सम्भूतगुणवादिनाम् ॥१६॥

यथाश्मनि स्थितं तोयं मारुताक्रेण शुद्ध्यति ।  
 एवं परिपदादेशाभ्याशयेदेव दुष्कृतम् ॥१७  
 नैव गच्छति कर्त्तारं नैव गच्छति पर्षदम् ।  
 मारुताकादिसंयोगात् पापं नश्यति तोयवत् ॥१८  
 अनाहितागतयो येऽन्ये वेदवेदाङ्गपारगाः ।  
 पञ्च त्रयो वा धर्मज्ञाः परिपत् सा प्रकीर्त्तिता ॥१९  
 मुनीनामात्मविद्यानां द्विजानां यज्ञयाजिनाम् ।  
 वेदग्रन्थेषु स्नातानामेकोऽपि परिपद्भवेत् ॥२०  
 पञ्च पूर्वं मया प्रोक्तस्तेषाञ्चैव त्वसम्भवे ।  
 स्ववृत्तिपरितुष्टा ये परिपत् सा प्रकीर्त्तिता ॥२१  
 अत ऊर्ध्वन्तु ये विप्राः केवलं नामधारकाः ।  
 परिपत्त्वं न तेषां वै सहस्रगुणितेऽपि ॥२२  
 यथा फाष्टमयो हस्ती यथा चर्ममयो मृगः ।  
 ब्राह्मणास्त्यनधीयानास्त्रयस्ते नामधारकाः ॥२३  
 ग्रामस्थानं यथा शून्यं यथा कूपस्तु निर्जलः ।  
 यथा हृतमनसो च अमन्त्रो ब्राह्मणस्तथा ॥२४  
 यथा पण्डोऽफलः स्त्रीषु यथा गौरूपराफला ।  
 यथा चाक्षोऽफलं दानं यथा विप्रोऽनृचोऽफलः ॥२५  
 चित्रं कर्म यथानेकैरङ्गैरुन्मील्यते शनैः ।  
 ब्राह्मण्यमपि तद्वत् स्यात् संस्कारैर्विधिपूर्वकः ॥२६  
 प्रायश्चित्तं प्रयच्छन्ति ये द्विजा नामधारकाः ।  
 ते द्विजा पापकर्माणः समेता नरकं ययुः ॥२७

ये पठन्ति द्विजा वेदं पञ्चयज्ञरताश्च ये ।  
 त्रैलोक्यं धारयन्त्येते पञ्चेन्द्रियरताश्रयाः ॥२८  
 सम्प्रणीतः श्मशानेषु दीप्तोऽग्निः सर्वभक्षकः ।  
 तथैव ज्ञानवान् विप्रः सर्वभक्षश्च दैवतम् ॥२९  
 अमेध्यानि च सर्वाणि प्रक्षिपन्त्युदके यथा ।  
 तथैव किल्बिषं सर्वं प्रक्षेप्तव्यं द्विजेऽमले ॥३०  
 गायत्रीरहितो विप्रः शूद्रादप्यशुचिर्भवेत् ।  
 गायत्रीब्रह्मतत्त्वज्ञाः संपूज्यन्ते द्वितोत्तमाः ॥३१  
 दुःशीलोऽपि द्विजः पूज्यो न शूद्रो विजितेन्द्रियः ।  
 कः परीत्यज्य दुष्टाङ्गां दुहेच्छ्रीलवतीं खरीम् ॥३२  
 धर्मशास्त्रधारुढा वेदरङ्गधरा द्विजाः ।  
 श्रीङ्गार्धमपि यद्वनूयुः स धर्मः परमः स्मृतः ॥३३  
 चातुर्वेधो विपल्पी च अङ्गविद्वर्मपालकः ।  
 प्रपञ्चाश्रमिणो मुख्याः परिपत् स्युर्दशावराः ॥३४  
 राज्ञाञ्चानुमते चैव प्रायश्चित्तं द्विजो घदेत् ।  
 स्वयमेव न वक्तव्या प्रायश्चित्तस्य निष्कृतिः ॥३५  
 ब्राह्मणाश्च व्यतिक्रम्य राजा यत् कर्तुमिच्छति ।  
 तत्पापं शतधा भूत्वा राजानमुपगच्छति ॥३६  
 प्रायश्चित्तं सदा दद्यादेवेतायतनाग्रतः ।  
 आत्मानं पावयेन् पञ्चाजपन् घै वेदमातरम् ॥३७  
 सशिरं वपनं कृत्वा त्रिसन्ध्यमवगाहनम् ।  
 शेषां गोष्ठे वसेद्रात्रौ दिवा ताः समनुव्रजेन् ॥३८

उष्णे वर्षति शीते वा मारुते वाति वा भृशम् ।  
 न कुर्वीतात्मनस्त्राण गोरकृत्वा तु शक्तित् ॥३६  
 आत्मनो यदि वान्येषां गृहे क्षेत्रेऽप्यत्र सटे ।  
 भक्षयन्ती न कथयेत् पिवन्तञ्चैव वत्सकम् ॥३७  
 पिवन्तीषु पिबन्तीषु सम्यशन्तीषु संविशेत् ।  
 पतितां पङ्कमग्नां वा सर्वप्राणैः समुद्धरेत् ॥३८  
 ब्राह्मणार्थं गवार्थं वा यस्तु प्राणान् परित्यजेत् ।  
 मुच्यते त्रयहृत्यार्थगोत्रा गोत्राह्वणस्य च ॥३९  
 गोत्रधस्यानुरूपेण प्राजापत्यं त्रिनिर्दिशेत् ।  
 प्राजापत्यं तु यत्कृच्छ्रं विभजत्तदुत्तुर्निधम् ॥४०  
 ण्काहमेकभक्ताशी ण्काहं नक्तभोजन ।  
 अयाचिताश्वेषमदरेकाहं मारुताशनः ॥४१  
 दिनद्वयं चैकभक्तोद्विदिनं नक्तभोजन ।  
 दिनद्वयमयाची स्याद्विदिनं मारुताशनः ॥४२  
 त्रिदिनञ्चैकभक्ताशी त्रिदिनं नक्तभोजन ।  
 दिनत्रयमयाची स्यात्त्रिदिनं मारुताशनः ॥४३  
 चतुराहन्त्येकभक्ताशी चतुरहं नक्तभोजन ।  
 चतुर्दिनमयाची स्याच्चतुरहं मारुताशनः ॥४४  
 प्रायश्चित्ते ततश्चीर्णे कुर्याद्ब्राह्मणभोजनम् ।  
 विप्राय दक्षिणां दद्यात् पवित्राणि उपेद्विज ॥४५  
 ब्राह्मणान् भोजयित्वा तु गोत्रं शुद्धो न शंसयः ॥४६  
 इति पागशारे धर्मशास्त्रेऽष्टमोऽध्यायः ।

॥ नवमोऽध्यायः ॥

गोसेवोपदेशवर्णनम् ।

गवा संरक्षणार्थाय न दुप्येद्रोधबन्धयोः ।  
 तद्वधन्तु न तं विद्यात् कामात् कामकृतन्तथा ॥१  
 अङ्गुष्ठमात्रः स्थूलो वा बाहुमात्रः प्रमाणतः ।  
 आर्द्रस्तु सपलाराश्च दण्ड इत्यभिधीयते ॥२  
 दण्डाद्दूढं यदन्येन प्रहरेद्वा निपातयेत् ।  
 प्रायश्चित्तं चरेत् प्रोक्तं द्विगुणं गोव्रतश्चरेत् ॥३  
 रोधबन्धनयोक्त्राणि घातनञ्च चतुर्विधम् ।  
 एकपादश्चरेद्रोधे द्विपादं बन्धने चरेत् ॥४  
 योक्त्रेषु पादहीनं स्याच्चरेत् सर्वं निपातने ।  
 गोचारे च गृहे वापि दुर्गेष्वपि समेष्वपि ॥५  
 नदीष्वपि समुद्रेषु खातेऽप्यथ दरीमुखे ।  
 दग्धदेशे स्थिताः गावः स्तम्भनाद्रोध उच्यते ॥६  
 योक्त्रदामकडोरैश्च घण्टाभरणभूषणैः ।  
 गृहे वापि घने वापि बद्धा स्याद्गौर्मृता यदि ॥७  
 शदेव बन्धनं विद्यात् कामाकामकृतञ्च यत् ।  
 मृल्लेखे शकटे पंक्तौ भारे वा पीडितो नरैः ॥८  
 गोपतिर्मृत्युमाप्नोति योक्त्रो भवति तद्वधः ।  
 भक्तः प्रभक्त उन्मत्तश्चेतनो वाप्यचेतनः ॥९  
 कामाकामकृतक्रोधोदण्डैर्हन्यदथोपलैः ।  
 प्रहता वा मृता वापि तद्धि हेतुर्निपातने ॥१०

यद्यसम्पूर्णसर्वाङ्गो हीनदेहो भवेत्तदा ।  
 गोघातस्य तस्याद्धं प्रायश्चित्तं विनिर्दिशेत् ॥२२  
 काष्ठलोष्ट्रकपापानैः शस्त्रेणैवोद्धतो बलात् ।  
 व्यापादयति यो गान्तु तस्य शुद्धिं विनिर्दिशेत् ॥२३  
 चरेत् सान्तपनं काष्ठे प्राजापत्यं तु लोष्ट्रके ।  
 तप्तकृच्छ्रे तु पापाने शस्त्रे चैवातिशुच्छकम् ॥२४  
 पथ्य सान्तपने गायः प्राजापत्ये तथा त्रयः ।  
 तप्तकृच्छ्रे भवेन्त्यष्टावतिशुच्छे त्रयोदश ॥२५  
 प्रमाणे प्राणभृता दद्यात्तत्प्रतिरूपम् ।  
 तस्यानुरूपं मूल्यं वा दद्यादित्यवधीन्मनुः ॥२६  
 अन्यत्राङ्गनलक्ष्मभ्यां घातने मोहने तथा ।  
 सायं संयमनार्थं तु न दुष्येद्रोधवन्धयोः ॥२७  
 अतिदाहेऽतिपाहे च नासिकाभेदने तथा ।  
 नदीपर्वतसञ्चारे प्रायश्चित्तं विनिर्दिशेत् ॥२८  
 अतिदाहे चरेत्पादं द्वौ पादौ वाहने चरेत् ।  
 नासिके पादहीनं तु चरेत्सर्वं निपातने ॥२९  
 दहनाश्च विपद्येत अचक्षुः वापि यन्त्रितः ।  
 उक्तं पाराशरेणैव लोकपादं यथाविधि ॥३०  
 रोधवन्धनयोक्त्रश्च भारः ग्रहरणन्तथा ।  
 दुर्गप्रेरणयोक्त्रश्च निमित्तानि घघस्य पट् ॥३१  
 वन्धप्राशमुगुप्ताङ्गो म्रियते यदि गोपशुः ।  
 भयने तस्य नाशस्य पापं कृच्छ्राद्धं महति ॥३२

न नारिकेलैर्न च शाणवालै-

र्न चापि मौञ्जेन च बन्धशृङ्खलैः ।

एतैस्तु गावो न निबन्धनीया-

बद्धास्तु तिष्ठेत् परशुं गृहीत्वा ॥३३

कुशैः काशैश्च यध्नीयाद्गोपशुं दक्षिणामुखम् ।

पाशलग्नादिदग्धेषु प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥३४

यदि तत्र भवेन् काण्डं प्रायश्चित्तं कथं भवेत् ।

जपित्वा पावनीं देवीं मुच्यते तत्र किल्विपात् ॥३५

प्रेरयन् कृपवापीषु वृक्षच्छेदेषु पातयन् ।

गवाशनेषु विक्रीणस्ततः प्राप्नोति गोवधम् ॥३६

आराधितस्तु यः कश्चिद्भिन्नरुक्षो यदा भवेत् ।

श्रयणं हृदयं भिन्नं मग्नौ वा कूटसङ्कटे ॥३७

कूपादुत्क्रमणे चैव भग्नौ वा प्रीयपादयोः ।

स एव म्रियते तत्र ग्रीव पादास्तु समाचरेत् ॥३८

कूपखाते तटीबन्धे नदीबन्धे प्रपातु च ।

पानीयेषु विपन्नानां प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥३९

कूपखाते तटीपाते दीर्घखाते तथैव च ।

अन्येषु धर्मपातेषु प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥४०

वेश्मद्वारे निवासेषु यो नरः स्नातमिच्छति ।

स्वकार्यगृहखातेषु प्रायश्चित्तं विनिर्दिशेत् ॥४१

निशि बन्धनिरुद्धेषु सर्पव्याघ्रहतेषु च ।

अग्निविद्युद्विपन्नानां प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥४२

यद्यसम्पूर्णसर्वाङ्गो हीनदेहो भवेत्तदा ।  
 गोघातस्य तस्याद्धं प्रायश्चित्तं विनिर्दिशेत् ॥२०  
 काष्ठलोष्टरूपापाणैः शस्त्रेणैवोद्धतो बलात् ।  
 व्यापादयति यो गान्तु तस्य शुद्धिं विनिर्दिशेत् ॥२३  
 चरेत् सान्तपनं काष्ठे प्राजापत्येन लोष्ट्रके ।  
 तप्तकृच्छन्तु पापाणे शस्त्रे चैवातिवृच्छ्यम् ॥२४  
 पथ्य सान्तपने गायः प्राजापत्ये तथा त्रयः ।  
 तप्तकृच्छ्रे भवेत्स्यष्टावतिकृच्छ्रे त्रयोदश ॥२५  
 प्रसापणे प्राणभृता दद्यात्तत्प्रतिहृष्यम् ।  
 तस्यानुरूपं मूल्यं वा दद्यादित्यब्रवीन्मनुः ॥२६  
 अन्यत्राङ्गनलक्ष्मभ्यां वाहने मोहने तथा ।  
 मायं संयमनार्थं तु न हुप्येद्रोधवन्धयोः ॥२७  
 अतिदाहेऽतिपादे च नासिकाभेदने तथा ।  
 नदीपर्वतसञ्चारे प्रायश्चित्तं विनिर्दिशेत् ॥२८  
 अतिदाहे चरेत्पादं द्वौ पादौ वाहने चरेत् ।  
 नासिके पादहीनं तु चरेत्सर्वं निपातने ॥२९  
 दहनाश्च विषयेत अघद्वौ वापि यन्त्रितः ।  
 उक्तं पाराशरेणैव होमपादं यथाविधि ॥३०  
 रीधवन्धनयोक्त्रश्च भारः प्रहरणन्तथा ।  
 दुर्गप्रेरणयोक्त्रश्च निमित्तानि घघस्य षट् ॥३१  
 घन्धप्राशमुगुमाङ्गो म्रियते यदि गोपशुः ।  
 भयने तस्य नाशस्य पापं वृच्छ्रार्द्धमर्हति ॥३२



न नारिकेलैर्न च शाण्णवालै-

र्न चापि मौञ्जेन च बन्धशृङ्खलैः ।

एतैस्तु गावो न निबन्धनीया-

बद्धास्तु तिष्ठेत् परशुं गृहीत्वा ॥३३

कुशैः काशैश्च यन्नीयाद्गोपशुं दक्षिणामुलम् ।

पाशलग्नादिदग्धेषु प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥३४

यदि तत्र भवेन् काण्डं प्रायश्चित्तं कथं भवेत् ।

जपित्वा पावनीं देवीं मुच्यते तत्र किल्बिषात् ॥३५

प्रेरयन् कूपवापीषु वृक्षच्छेदेषु पातयन् ।

गवाशनेषु विक्रीणस्ततः प्राप्नोति गोवधम् ॥३६

आराधितस्तु यः कश्चिद्विघ्नकृत् यदा भजेत् ।

श्रवणं हृदयं भिक्षं मग्नौ वा कूटसङ्कटे ॥३७

कूपादुत्क्रमणे चैव भग्नौ वा प्रीतिपादयोः ।

स एव त्रियते तत्र श्रीन पादास्तु समाचरेत् ॥३८

कूपरसाते तटीबन्धे नदीबन्धे प्रपासु च ।

पानीयेषु विपन्नानां प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥३९

कूपरसाते तटीरसाते दीर्घरसाते तथैव च ।

अन्येषु धर्मपातेषु प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥४०

वेश्मद्वारे निवासेषु यो नरः स्यात्तमिच्छति ।

स्वकार्यगृहस्थातेषु प्रायश्चित्तं विनिर्दिशेत् ॥४१

निशि बन्धनिग्देषु सर्पव्याघ्रहतेषु च ।

अग्निविशुद्धिपन्नानां प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥४२

ग्रामघाते शरौघेण वेश्मबन्धनिपातने ।  
 अतिवृष्टिहतानाञ्च प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥४३  
 संप्रामे प्रहतानाञ्च ये दग्धा वेश्मकेषु च ।  
 दावारिन् ग्रामघाते वा प्रायश्चित्तं च विद्यते ॥४४  
 यन्त्रिता गौश्चिकित्सार्थं मूढगर्भविमोचने ।  
 यत्ने कृते विपद्येत प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥४५  
 व्यापन्नानां घृणाञ्च बन्धने रोधनेऽपि वा ।  
 भिषग्भिध्याप्रचारे च प्रायश्चित्तं विनिर्दिशेत् ॥४६  
 गोवृषाणां विपत्तौ च यावन्तः प्रेक्षका जनाः ।  
 न धारयन्ति तां तेषां सर्वेषां पातकं भवेत् ॥४७  
 एको हत्तोर्यैर्यहुभिः समेतै-

नञ्जायते यस्य हतोऽभिधानात् ।

दिव्येन तेषामुपलब्धं हन्ता

नियर्त्तनीयो नृपसन्निभुक्तैः ॥४८

का चेद्बहुभिः कापि दैवाद्ब्रथापादिता भवेत् ।

तद् पादञ्च हत्यायाश्चरेयुस्ते पृथक् पृथक् ॥४९

तेषु रुधिरं दृश्यं व्याधिप्रस्तः कुशो भवेत् ।

ताना भवति दृष्टेषु एवमन्वेपणं भवेत् ॥५०

मनुना चैवमेकेन सर्वशास्त्राणि जानता ।

प्रायश्चित्तन्तु तेनोक्तं गोषु चान्द्रायणं चरेत् ॥५१

केशानां रक्षणार्थाय द्विगुणं गोव्रतं चरेत् ।

द्विगुणे घृत आदिष्टे दक्षिणा द्विगुणा भवेत् ॥५२

## ॥ दशमोऽध्यायः ॥

अगम्यागमनप्रायश्चित्तवर्णनम् ।

चातुर्वर्ण्यस्य सर्वत्र हीयं प्रोक्ता तु निष्कृतिः ।  
 अगम्यागमने चैव शुद्धौ चान्द्रायणश्चरत् ॥१  
 एकैकं ह्वासयेत् पिण्डं कृष्णे शुक्ले च चर्द्धयेत् ।  
 अमावास्यां न भुञ्जीत एष चान्द्रायणो विधिः ॥२  
 कुक्कुटाण्डप्रमाणन्तु ग्रासश्च परिकल्पयेत् ।  
 अन्यथा भावदुष्टस्य न धर्मो नैव शुद्धयति ॥३  
 प्रायश्चित्ते तत्तद्धोर्णे कुर्याद्ब्राह्मणभोजनम् ।  
 गोद्वयं वस्त्रयुग्मश्च दद्याद्विप्रेषु दक्षिणाम् ॥४  
 चाण्डालीश्च श्वपाकीश्च ह्यभिगच्छति यो द्विजः ।  
 त्रिरात्रमुपवासी स्याद्विप्राणामनुशासनात् ॥५  
 सशितं वपनं कुर्यात् प्राजापत्यत्रयश्चरेत् ।  
 ब्रह्मकृण्णं ततः कृत्वा कुर्याद्ब्राह्मणतर्पणम् ॥६  
 गायत्रीश्च जपेन्नित्यं दद्याद्गोमिथुनद्वयम् ।  
 विप्राय दक्षिणां दद्याच्छुद्धिमाप्नोत्यसंशयम् ॥७  
 क्षत्रियश्चापि वैश्यो वा चाण्डाली गच्छतो यदि ।  
 प्राजापत्यद्वयं कुर्याद्दद्याद्गोमिथुनन्तथा ॥८  
 श्वपाकीमथ चाण्डालीं शूद्रो वे यदि गच्छति ।  
 प्राजापत्यं चरेत्कृच्छ्रं दद्याद्गोमिथुनन्तथा ॥९

मातरं यदि गच्छेत् भगिनीं पुत्रिकान्तथा ।  
 एतास्तु मोहितो गत्वा त्रीन् कृच्छ्रास्तु समाचरेत् ॥१०  
 चान्द्रायणत्रयं कुर्याच्चिश्नञ्जदेन शुद्ध्यति ।  
 मातृश्वस्तुगमे चैव आत्मभेदनिदर्शनम् ॥११  
 अक्षानात्तान्तु यो गच्छेत् कुर्याच्चान्द्रायणद्वयम् ।  
 दशगोमिथुनस्त्रिंशच्चिद्भिः पाराशरोऽब्रवीत् ॥१२  
 पितृदारान् समारह्य मातुराप्ताश्च भ्रातृजाम् ।  
 गुरुपत्नीं स्तुपाञ्चैन भ्रातृभाष्यां तथैव च ॥१३  
 मातुलानीं सगोत्राश्च प्राजापत्यत्रयश्चरेत् ।  
 गोद्वयं दक्षिणां दत्त्वा शुद्ध्यते तत्र संशयः ॥१४  
 पशुवेक्ष्यादिगमने महिष्युग्रीकपीस्तथा ।  
 खरीश्च शूकरीं गत्वा प्राजापत्यं समाचरेत् ॥१५  
 गोगामी च त्रिरात्रेण गामेकं ब्राह्मणे ददत् ।  
 महिष्युग्रीखरीगामी त्वदोरात्रेण शुद्ध्यति ॥१६  
 हामरे समरे वापि दुर्भिक्षे वा जनक्षये ।  
 यन्दिप्राहे भयार्ते वा सदा ह्यस्त्रीं निरीक्षयेत् ॥१७  
 चाण्डालैः सह सम्पर्कं या नारी कुरते ततः ।  
 विप्रान् दश वरान् गत्वा स्वकं दोषं प्रहारायेत् ॥१८  
 आकण्ठसन्मिते फूपे गोमयोदकवर्दमे ।  
 तत्र स्थित्वा निराहारा त्रेकरात्रेण निष्क्रमेत् ॥१९  
 सरिसं धपनं कृत्वा भुञ्जीयाद्यावकौदनम् ।  
 त्रिरात्रमुपवासित्वा होवरात्रं जलं वसेत् ॥२०

शङ्खपुष्पीलतामूलं पत्रञ्च कुमुमं फलम् ।  
 सुवर्णं पञ्चगव्यञ्च काययित्वा पिवेज्जलम् ॥२१  
 एकभक्तं चरेत् पश्चादावत् पुष्पवती भवेत् ।  
 व्रतं चरति सद्यावत्तावत् संवसते वहिः ॥२२  
 प्रायश्चित्ते सतश्चीर्णे पुण्याद्ब्राह्मणभोजनम् ।  
 गोद्वयं दक्षिणा दद्याच्छुद्धिं पाराशतोऽब्रवीत् ॥२३  
 चातुर्वर्ष्यस्य नारीणां कृच्छ्रचान्द्रायण व्रतम् ।  
 यथा भूमिस्तथा नारी तस्मात्तां न तु दूषयेत् ॥२४  
 पत्तिप्राप्तेन या मुक्ता इत्या वद्वा बलाद्भयात् ।  
 धृष्ट्या सान्तपनं कृच्छ्रं शुद्धेत् पाराशतोऽब्रवीत् ॥२५  
 सकृदमुक्ता तु या नारी नेष्टुन्तो पापकर्मभिः ।  
 प्राजापत्येन शुद्धयेत् ऋतुप्रस्रवणेन तु ॥२६  
 पतत्यर्द्धशरीरस्य यस्य भाष्यां सुरां पिबेत् ।  
 पतितार्द्धशरीरस्य निष्कृन्तिनं विधीयते ॥२७  
 गायत्री जपमानस्तु कृच्छ्रं सान्तपनं चरेत् ॥२८  
 गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधि सर्पिः कुशोदकम् ।  
 एकराशुपवासाश्च कृच्छ्रं सान्तपनं स्मृतम् ॥२९  
 जारेण जनयेद्भ्रमं गते त्यक्ते मृते पतौ ।  
 तां त्यजेदपरे राष्ट्रे पतितां पापकारिणीम् ॥३०  
 प्राज्ञाणी तु यदा गच्छेत् परपुसा समन्विता ।  
 सा तु नष्टा विनिर्दिष्टा न तस्यां गमनं पुनः ॥३१

कामान्मोहाद्यदा गच्छेत्त्यक्त्वा बन्धून् सुतान् पतिम् ।  
 सा तु नष्टा परे लोके मानुषेषु विशेषतः ॥३२  
 दशमे तु दिने प्राप्ते प्रायश्चित्तं न विद्यते ।  
 दशाहं न त्यजेन्नारी त्यजेन्नष्टश्रुता तथा ॥३३  
 भर्ता चैव चरेत् कृच्छ्रं कृच्छ्राद्धं चैव दान्धवाः ।  
 तेषां भुक्त्वा च पीत्वा च अहोरात्रेण शुद्ध्यति ॥३४  
 ब्राह्मणी तु यदा गच्छेत् परपुंसां विवर्जिता ।  
 गत्वा पुंसां शतं याति त्यजेयुस्तान्तु गोत्रिणः ॥३५  
 पुंसो यदि गृहं गच्छेत्तद्गृहं गृहं भवेत् ।  
 पितृमातृगृहं यच्च जारस्यैव तु तद्गृहम् ॥३६  
 उल्लिख्य तद्गृहं पश्चात् पञ्चगव्येन शुद्ध्यति ।  
 त्यजेन्मृण्मयपात्राणि वस्त्रं काष्ठञ्च शोधयेत् ॥३७  
 सन्भारान् शोधयेत् सर्वान् गोकेरौश्च फलोद्भवान् ।  
 ताम्राणि पञ्चगव्येन कात्यानि दश भस्मभिः ॥३८  
 प्रायश्चित्तं चरेद्विप्रो ब्राह्मणैरुपपादितम् ।  
 गोद्वयं दक्षिणा दद्यात् प्राजापत्यं समाचरेत् ॥३९  
 इतरेषां महोरात्रं पञ्चगव्येन शोधनम् ।  
 सपुत्रः सद्यः भृत्यश्च कुर्याद् ब्राह्मणभोजनम् ॥४०  
 आकाशं वायुरग्निश्च मेघ्यं भूमिगतं जलम् ।  
 न दुष्यन्तीह दर्भाश्च यज्ञेषु च समास्तया ॥४१  
 उपवासैर्ऋतैः पुण्यैः स्नानसन्ध्यार्चनादिभिः ।  
 जपैर्होमैस्तथा दानैः शुद्ध्यन्ते ब्राह्मणा सदा ॥४२

इति पाराशरे धर्मशास्त्रे दशमोऽध्यायः ।

## ॥ एकादशोऽध्यायः ॥

अभक्ष्यभक्षणप्रायश्चित्तवर्णनम् ।

अमेध्यरेतोगोमासं चाण्डालाभ्रमथापि वा ।  
 यदि भुक्तन्तु विप्रेण कृच्छ्रं चान्द्रायणश्चरेत् ॥१  
 तथैव क्षत्रियो वैश्य स्तद्धन्तु समाचरेत् ।  
 शूद्रोऽप्येवं यदा मुहूर्ते प्राजापत्यं समाचरेत् ॥२  
 पञ्चगव्यं पिवेच्छूद्रो ब्रह्मकृषं पिवेद्द्विजः ।  
 एकद्वित्रिचतुर्गांश्च दद्याद्विप्रादनुकृमात् ॥३  
 शूद्राभ्रं सूतस्त्वाम्नं सभोज्यस्याभ्रमेव च ।  
 शक्लितं प्रतिपिद्वाभ्रं पूरोच्छिष्टं तथैव च ॥४  
 यदि भुक्तन्तु विप्रेण अज्ञानादापदापि वा ।  
 क्षात्वा समाचरेत् कृच्छ्रं ब्रह्मकृषन्तु पावनम् ॥५  
 व्यालैर्नैकुलमाजारे रश्मिमुच्छिष्टितं यदा ।  
 तिलदभोदकं प्रोक्ष्य शुद्ध्यते नात्र संशयः ॥६  
 शूद्रोऽप्यभोज्य भुक्त्वाभ्रं पञ्चगव्येन शुद्ध्यति ।  
 श्रत्रियो यापि वैश्यश्च प्राजापत्येन शुद्ध्यति ॥७  
 एकपञ्चयुपविष्टानां विप्राणां सहभोजने ।  
 ययोकोऽपि त्यजेत् पात्रं शेषमभ्रं न भोजयेत् ॥८  
 मोहाद्वा लोभतस्तत्र पञ्चाधुच्छिष्टभोजने ।  
 प्रायश्चित्तं धरेद्विप्रः कृच्छ्रं सान्तपनन्तथा ॥९  
 पीयूषस्वेतलमुनश्नुत्ताकफलमृज्जनम् ॥१०

पलाण्डं वृक्षनिर्व्यासं देवस्वं कवकानि च ।  
 उग्रीक्षीर मविक्षीर मज्जानाद्भुञ्जति द्विजः ॥११  
 त्रिरात्रमुपवासी स्यात् पञ्चगव्येन शुद्ध्यति ।  
 मण्डूकं भक्षयित्वा च मूपिकामासमेव च ॥१२  
 क्षारया विप्रस्त्रहोरात्रं यावकालेन शुद्ध्यति ।  
 क्षत्रियोवापि वैश्योवा क्रियावन्तौ शुचित्रतौ ।  
 तद्गृहेषु द्विजैर्भोज्यं हव्यकव्येषु नित्यशः ॥१३  
 घृतं तैलं तथा क्षीरं गुडं तैलेन पाचितम् ।  
 गन्धा नदीतटे विप्रो भुञ्जीवाञ्छूद्रभोजनम् ॥१४  
 अज्ञानाद्भुञ्जते विप्राः सूतके मृतकेऽपि वा ।  
 प्रायश्चित्तं कथं तेषां घर्णे घर्णे विनिर्दिशेत् ॥१५  
 गायत्र्यष्टसहस्रेण शुद्धः स्यात्तूद्रमूतके ।  
 वैश्ये पञ्चसहस्रेण त्रिसहस्रेण क्षत्रिय ॥१६  
 ब्राह्मणस्य यदा भुङ्क्ते प्राणायामेन शुद्ध्यति ।  
 अथवा घामदेव्येन सास्त्रा चैकेन शुद्ध्यति ॥१७  
 शुक्लाश्वं गोरसं स्नेहं शूद्रभक्ष्येन आगतम् ।  
 पक्वं विप्रगृहे पूतं भोज्यं तन्मनुरनृणीत् ॥१८  
 आपत्काले तु विप्रेण मुक्तं शूद्रगृहे यदि ।  
 मनस्तापेन शुद्ध्येत दुपदा वा शतं जपेत् ॥१९  
 दासनापितगोपालकुञ्जमित्रार्द्धसोरिणः ।  
 एते शूद्रेषु भोज्यान्ना यन्मात्मानं निन्दयेत् ॥२०



शूद्रकन्यासमुत्पन्नो ब्राह्मणेन तु संस्कृतः ।  
 संस्कृतस्तु भवेदास्यो ह्यसंस्कारैस्तु नापितः ॥२१  
 क्षत्रियाच्छूद्रकन्यायां समुत्पन्नस्तु यः सुतः ।  
 स गोपाल इतिज्ञेयो भोज्यो विप्रैर्न संशयः ॥२२  
 वैश्यकन्यासमुत्पन्नो ब्राह्मणेन तु संस्कृतः ।  
 आर्द्धिरुश्च स तु ज्ञेयो भोज्यो विप्रैर्न संशयः ॥२३  
 भाण्डस्थित मभोज्येषु जलं दधि घृतं पयः ।  
 अकामतस्तु यो मुहूर्त्ते प्रायश्चित्तं कर्तुं वेत् ॥२४  
 ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रो वाप्युपसर्पति ।  
 ब्रह्मकूर्चोपयासेन यथावर्णस्य निष्कृतिः ॥२५  
 शूद्राणां नोपयासः स्याच्छूद्रो दानेन शुद्ध्यति ।  
 ब्रह्मकूर्चमहोरात्रं श्रपाकमपि शोधयेत् ॥२६  
 गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधि सर्पिः कुशोदकम् ।  
 निर्दिष्टं पञ्चगव्यन्तु पवित्रं पापनाशनम् ॥२७  
 गोमूत्रं कृष्णवर्णायाः श्वेताया गोमयं हरेत् ।  
 पयश्च तान्नवर्णाया रक्ताया दधि चोच्यते ॥२८  
 कपिलाया घृतं ब्राह्मं सर्वं कापिलमेव वा ।  
 गोमूत्रस्य फलं दद्याद्भनस्त्रिपलमुच्यते ॥२९  
 आज्यस्यैकपलं दद्याद्ब्रह्मार्द्धन्तु गोमयम् ।  
 क्षीरं सप्तदलं दद्यात् पलमेकं कुशोदकम् ॥३०  
 गायत्र्यागृह्य गोमूत्रं गन्धद्वारेति गोमयम् ।  
 आप्यायस्वेति च क्षीरं दधिक्रान्तेति वै दधि ॥३१

तेजोऽसि शुक्रमित्याज्यं देवस्य त्वा कुशोदकम् ।  
 पञ्चगव्यमृचा पूतं स्थापयेदग्निसन्निधौ ॥३२  
 आपोहिष्ठेति चालोड्य मानस्तोकेति मन्त्रयेत् ।  
 समाधरास्तु ये दर्भा अञ्जिन्नाप्राः शुकत्विपः ॥३३  
 एभिरुद्धृत्य होतव्यं पञ्चगव्यं यथाविधि ।  
 इरावती इदं विष्णुमानस्तोके च शंवती ॥३४  
 एनैरुद्धृत्य होतव्यं हुतरोपं स्वयं पिवेत् ।  
 आलोड्य प्रणवेनैव निर्म्मथ्य प्रणवेन तु ।  
 उद्धृत्य प्रणवेनैव पिवेत् प्रणवेन तु ॥३५  
 यत्पयगस्थितं पापं देहे तिष्ठति देहिनाम् ।  
 प्रक्षाल्यो ददेत् सवै यथैवाग्निरिवेन्धनम् ॥३६  
 पितृतः पतितं तोयं भाजने मुग्रनि स्मृतम् ।  
 अपेयं तद्विजानीयाद्मुक्ता चान्द्रायणं चरेत् ॥३७  
 कूपे च पतितं दद्याद्दृष्ट्वा गालौ च मर्कटम् ।  
 अस्थि चर्मादि पतितं पीत्वा मेध्या अपो द्विजः ॥३८  
 नारस्तु कूपे फाकश्च विद्राहसरोष्ठरम् ।  
 गाययं मीप्रतीकश्च मायूरं ग्राह्यकं तथा ॥३९  
 यैवाग्रमात्रं संहं वा गुणपं यदि मज्जति ।  
 तद्वागम्याद्य दुष्टस्य पीतं स्यादुदकं यदि ॥४०  
 प्रायश्चित्तं भवेत् पुंसः क्रमेणैतेन सर्वशः ।  
 विप्रः शुद्धेष्वतिरात्रेण क्षत्रियस्तु दिनद्वयात् ॥४१  
 एरादेन तु वैश्यस्तु शूद्रो नग्नेन शुद्धयति ॥४२

परपाकनिवृत्तस्य परपाकरतस्य च ।

अपचस्य च भुङ्क्ष्व द्विजश्चान्द्रायणचरेत् ॥४३

अपचस्य च यदने दातुं चास्य कुतः फलम् ।

दाता प्रतिप्रदीता च द्वौ तौ निरयगामिनौ ॥४४

गृहीत्वान्नि समारोप्य पञ्च यज्ञान्न वर्तयेत् ।

परपाकनिवृत्तोऽसौ मुनिभिः परिकीर्तितः ॥४५

पञ्चयज्ञं स्वयं कृत्वा पराग्नेनोपजीवति ।

सततं प्रातरुधाय परपाकरतो हि स ॥४६

गृहस्थधर्मो यो विप्रो ददाति परिवर्जितः ।

श्रुतिभिर्धर्मतत्त्वज्ञैरपचः परिकीर्तितः ॥४७

युगे युगे च ये धर्मास्तेषु धर्मेषु ये द्विजाः ।

तेषां भिन्दा न कर्तव्या युगत्वा हि ब्राह्मणाः ॥४८

हुङ्कारं ब्राह्मणस्योक्तं त्वङ्कारश्च गरीयसः ।

स्नात्वा तिष्ठन्नहं शैवमभिवाद्य प्रसादयेत् ॥४९

साडयित्वा तृणेनापि कण्ठे वा बध्नासना ।

विद्यादेनापि निर्जित्य प्रणिपत्य प्रसादयेत् ॥५०

अगमूर्त्य त्वहोरात्रं त्रिघात्रं क्षितिपातने ।

अतिकृच्छ्रश्च रुधिरं कृच्छ्रमन्नरशोणिते ॥५१

नराहमतिकृच्छ्रं स्यात् पाणिपूजाभोजनम् ।

त्रिरात्रमुपवास स्यादतिकृच्छ्रं स उच्यते ॥५२

सवसमेव पापानां सङ्करे समुपस्थिते ।

शतसाहस्रमभ्यस्ता गायत्री शौरनं परम् ॥५३

इति पराशरे धर्मशास्त्रे एकादशोऽध्यायः ।

॥ द्वादशोऽध्यायः ॥

तत्रादौ-पुनः संस्कारादिप्रायश्चित्तदर्शनम् ।

दुःश्रप्णं यदि पश्येत् वान्ते वा क्षुरकर्मणि ।  
 मैथुने प्रेतधूमे च स्नानमेव विधीयते ॥१  
 अज्ञानात् प्राप्य विष्णून् सुरां वा पिवते यदि ।  
 पुनः संस्कारमर्हन्ति त्रयो वर्णा द्विजातयः ॥२  
 अजिनं मेषला दण्डो भैक्षचर्या घृतानि च ।  
 निवर्तन्ते द्विजातीनां पुनः संस्कारकर्मणि ॥३  
 ग्रीशूद्रस्य तु शुद्धयर्थं प्राजापत्यं विधीयते ।  
 पञ्चगव्यं तत्र कृत्वा क्वात्वा पीत्वा विशुध्यति ॥४  
 जलाग्निपत्तने चैव प्रज्यानाशकेषु च ।  
 प्रत्यवसितमेतेषां कथं शुद्धिर्विधीयते ॥५  
 प्राजापत्यद्वयेनापि तीर्थाभिगमनेन च ।  
 घृत्रैकादशदानेन वर्णाः शुद्धयन्ति ते श्रयः ॥६  
 ब्राह्मणस्य प्रवक्ष्यामि वनं गत्वा चतुष्पथम् ।  
 सशिरं वपनं कृत्वा प्राजापत्यत्रयश्चरेत् ॥७  
 गोद्वयं दक्षिणा दद्याच्छुद्धिः स्वावम्भुवोऽब्रवीत् ।  
 मुच्यते तेन पानेन ब्राह्मणत्वञ्च गच्छति ॥८  
 स्नानानि पञ्च पुण्यानि कीर्त्तितानि मनीषिभिः ।  
 आग्नेयं चारुणं ब्राह्मं वायव्यं दिव्यमेव च ॥९  
 आग्नेयं भस्मना स्नानमवगाह्य तु चारुणम् ।  
 आपोहिष्ठेति च ब्राह्मं वायव्यं रजसा स्मृतम् ॥१०

यत्तु सातपवर्षेण स्नानं तद्विध्यमुच्यते ।  
 तत्र स्नाने तु गङ्गायां स्नातो भवति मानवः ॥११  
 स्नानार्थं विप्रमायान्तं देवाः पितृगणे सह ।  
 वायुमूता हि गच्छन्ति तृपात्ताः सलिलार्थिनः ॥१२  
 निराशास्ते निवर्तन्ते वस्त्रनिष्पीडने कृते ।  
 तस्मान्न पीडयेद्वस्त्रमकृत्वा पितृवर्णनम् ॥१३  
 विधुनोति हि यः केशान् स्नातः प्रस्नःस्तोद्विजः ।  
 आचामेद्वा जलस्योऽपि न बाह्यं पितृदेवतैः ॥१४  
 शिरः प्रावृत्य फणद्वन्वा मुक्तरुच्छशिरसोऽपि वा ।  
 विना यद्वोपवीतेन आचान्तोऽप्यशुचिर्भवेत् ॥१५  
 जले स्थलस्यो नाचामेज्जलस्यश्च यद्दि स्थले ।  
 उभे स्पृष्ट्वा समाचान्त उभयत्र शुचिर्भवेत् ॥१६  
 स्नात्वा पीत्वा क्षुते सुप्ते भुक्ते रय्योपसर्पणे ।  
 आचान्त पुनराचामेद्वासोत्रिपरिधाय च ॥१७  
 क्षुते निष्ठीविते चैव दन्तोच्छिष्टे तथानृते ।  
 पतितानाञ्च सन्भाप दक्षिण श्रवणं स्पृशेत् ॥१८  
 ऋद्धा विष्णुश्च रुद्रश्च सोमः सूर्योऽर्जुनस्तथा ।  
 ते सर्वे ह्यपि तिष्ठन्ति कर्णे विप्रस्य दक्षिणे ॥१९  
 दिवाकरकरैः पूतं दिवास्नानं प्रशस्यते ।  
 अमशस्तं निशि स्नानं राहोरन्यत्र दर्शनात् ॥२०  
 मरुतो वसवो रुद्रा आदित्याश्चादिदेवताः ।  
 सर्वे सोमे विलीयन्ते तस्मात् स्नानन्तु तद्ग्रहे ॥२१

सलयज्ञे विवाहे च संक्रान्तौ ग्रहणेषु च ।  
 सर्वार्थां दानमतेषु नान्यत्रेति विनिश्चयः ॥२२॥  
 पुत्रजन्मनि यज्ञे च तथा चात्ययकर्मणि ।  
 राहोश्च दर्शने दानं प्रशस्तं नान्यदा निशि ॥२३॥  
 महानिशा तु विज्ञेया मध्यस्थग्रहद्वयम् ।  
 प्रदोषपश्चिमौ यामौ दिनवत् स्नानमाचरेत् ॥२४॥  
 चैत्यवृक्षश्रितस्थश्च चण्डालः सोमविक्रयी ।  
 एतास्तु ब्राह्मणः स्मृष्टा सवासा जलमाविशेत् ॥२५॥  
 अस्थितश्चयनात् पूर्वं रुदित्वा स्नानमाचरेत् ।  
 अन्तर्दशाहे विप्रस्य पर्वमाचमनं भवेत् ॥२६॥  
 सर्वं गङ्गासमं तोयं राहुप्रस्ते दिवाकरे ।  
 सोमग्रहे तयैवोक्तं स्नानदानादिकर्मसु ॥२७॥  
 कुशपूतन्तु यस्तनानं कुशेनोपस्पृशेद्द्विजः ।  
 कुशेनोद्धृततोयं यत् सोमपानसमं स्मृतम् ॥२८॥  
 अग्निरार्यात् परिभ्रष्टाः सन्धोपासनवर्जिताः ।  
 वेदञ्चैवानधीयानाः सर्वे ते घृणलाः स्मृताः ॥२९॥  
 सप्ताद्वृणभोतेन ब्राह्मणेन विशेषतः ।  
 अप्येतव्योऽप्येकदेशो यदि सर्वं न शक्यते ॥३०॥  
 शूद्रान्नरसपुष्टस्याप्यधीयानस्य नित्यशः ।  
 जपतो जुङ्गतो वापि गतिरुक्ता न विद्यते ॥३१॥  
 शूद्रान्नं शूद्रसम्पर्कः शूद्रेण तु सहासनम् ।  
 शूद्राज्ज्ञानागमश्चापि ज्वलन्तमपि पातयेत् ॥३२॥

ब्रह्महत्यादिभिर्मर्त्यो मनोवाकायकर्मजैः । -  
 एतद्गोचर्मदानेन मुच्यते सर्वकिल्बिषैः ॥४४  
 कुटुम्बिने दरिद्राय श्रोत्रियाय विशेषतः ।  
 यद्दानं दायते तस्मै तदायुर्द्विकारकम् ॥४५  
 आपोऽंशदिनादर्वाक् स्नानमेव रजस्तला । -  
 अत ऊर्ध्वं त्रिरात्रं स्यादुशना मुनिरश्ववीत् ॥४६  
 युगं शुगढ्यब्धैश्च त्रियुगं चतुर्युगम् ।  
 चाण्डालसूतिरुदक्यापतितानामधः क्रमात् ॥४७  
 ततः सन्निधिमाश्रेण सचैलं स्नानमाचरेत् ।  
 स्नात्वावलोकयेत् सूर्यमज्ञानात् स्पर्शते यदि ॥४८  
 पापीकूपतडागेषु प्राक्ष्यगो ज्ञानदुर्बलः ।  
 तोयं पिबति वक्त्रेण श्वयोनौ जायते ध्रुवम् ॥४९  
 यस्तु बृद्ध पुमान् भार्यां प्रतिज्ञायत्यगम्यताम् ।  
 पुनरिच्छति ताङ्गन्तुं विप्रमध्ये तु श्रावयेत् ॥५०  
 भ्रान्तः कृद्धस्तमोभ्रान्त्या क्षुत्पिपासाभयार्दितः ।  
 दानं पुण्यमकृपा च प्रायश्चित्तं दिनत्रयम् ॥५१  
 उपस्पृशेत्त्रिपर्यं महानशुपसङ्गमे ।  
 चीर्णान्ते चैव गां दद्याद्ग्राहणान् भोजयेदश ॥५२  
 दुराचारस्य विप्रस्य निषिद्धाचरणस्य च ।  
 अन्नं भुक्त्वा द्विजः कुर्याद्दिनमेकमभोजनम् ॥५३  
 सदाचारस्य विप्रस्य तथा वेदान्तवादिनः । -  
 भुक्त्वाशं मुच्यते पापादहोरात्रन्तु वै नरः ॥५४

ऊर्द्धोच्छिष्टमघोच्छिष्टमन्तरीक्षमृतौ तथा ।  
 कृच्छ्रत्रयं प्रकुर्वीत आशौचमरणे तथा ॥५५  
 कृच्छ्रदेव्ययुतञ्चैव प्राणायामशतत्रयम् ।  
 पुण्यतीर्थे नार्द्रशिरः स्नानं द्वादशसंख्यया ।  
 द्वियोजनं तीर्थयात्रा कृच्छ्रमेवं प्रकल्पितम् ॥५६  
 गृहस्थः कामतः कुर्व्याद्रत्नसः सेचनं भुवि ।  
 सहस्रन्तु जपेद्देव्याः प्राणायामैस्त्रिभिः सह ॥५७  
 चातुर्वर्गोपपन्नस्तु विधिषट्ब्रह्मघातके ।  
 समुद्रसेतुगमनप्रायश्चित्तं विनिर्दिशेत् ॥५८  
 सेतुबन्धपथे भिक्षा चातुर्वर्ण्यात् समाचरेत् ।  
 वजेयित्वा विकर्मस्थाब्धत्रोपानद्विवर्जितः ॥५९  
 अर्हं दुष्कृतकर्मा वै महापातककारकः ।  
 गृहद्वारेषु तिष्ठामि भिक्षार्थी ब्रह्मघातरुः ॥६०  
 गोकुलेषु वसेद्देवैः प्रायेण नगरेषु च ।  
 तथा वनेषु तीर्थेषु नदीप्रस्रवणेषु च ॥६१  
 एतेषु ख्यापयन्नेनः पुण्यं गत्वा तु सागरम् ।  
 दशयोजनविस्तीर्णं शतयोजनमायतम् ॥६२  
 रामचन्द्रसमादिष्टं नलसन्ध्यसञ्चितम् ।  
 सेतुं दृष्ट्वा समुद्रस्य ब्रह्महत्यां व्यपोहति ॥६३  
 यजेत वाग्धमेवेन राजा तु पृथिवीपतिः ॥६४  
 पुनः प्रत्यागतो वेश्म वासार्थं मुपसर्पति ।  
 सपुनः सह शृत्यैश्च दुर्य्याद्ब्राह्मणभोजनम् ॥६५



गार्श्वैकशतं दद्यात्तुर्वेद्येषु दक्षिणाम् ।  
 ब्राह्मणानां प्रसादेन ब्रह्महा तु विमुच्यते ॥६६  
 सवनस्थां स्त्रियं हत्वा ब्रह्महत्याव्रतं चरेत् ।  
 मद्यपश्च द्विजः कुर्यान्नदीं गत्वा समुद्रगाम् ॥६७  
 चान्द्रायणे सतश्चीर्णे कुर्याद्ब्राह्मणभोजनम् ।  
 अनङ्गुत्सहिता गाञ्च दद्याद्विप्रेषु दक्षिणाम् ॥६८  
 अपहृत्य सुवर्णन्तु ब्राह्मणस्य ततः स्वयम् ।  
 गच्छेन्मुपलभादाय राजाभ्यासं धधाय तु ॥६९  
 ततः शुद्धिमवाप्नोति राज्ञासौ मुक्त एव च ।  
 फामकारकृतं यत् स्यान्नान्यथा यधमर्हति ॥७०  
 आसनाच्छयनाधानात् सम्भाषात् सदभोजनात् ।  
 संक्रामति हि पापानि तैलविन्दुरियाम्भसि ॥७१  
 चान्द्रायणं यावकञ्च तुलापुरुष एव च ।  
 गवाञ्चैवानुगमनं सर्वपापप्रणाशनम् ॥७२  
 एतत् पराशरं शास्त्रं श्लोकानां शतपञ्चकम् ।  
 द्विनवत्यां समायुक्तं धर्मशास्त्रस्य संग्रहः ॥७३  
 यथाध्ययनकर्माणि धर्मशास्त्रमिदं तथा ।  
 अध्येतव्यं प्रयत्नेन नियतं स्वर्गगामिना ॥७४  
 इति पाराशरे धर्मशास्त्रे द्वादशोऽध्यायः ॥

समाप्ता चेवं पाराशरसंहिता ॥

ॐ तत्सन् ।

॥ अथ ॥

( मुनितमुनिप्रोक्ता )

# \* बृहत्पराशरस्मृतिः \*

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

—:०००:—

॥ प्रथमोऽध्यायः ॥

—००—

तत्रादौ-वर्णाश्रमप्रश्नम् ।

व्यक्ताव्यक्ताय देवाय वेधसेऽनन्ततेजसे ।

नमस्कृत्य प्रवक्ष्यामि धर्मान् पाराशरोदितान् ॥१

अथातो हिमतीलाग्रे देवदारुवनाश्रमे ।

वशासमेकाग्रमासीन मूरयः प्रष्टुमागताः ॥२

मनुष्याणां हितं धर्मं वर्तमाने कलौ युगे ।

वर्णानामाश्रमाणाञ्च किञ्चित्साधारणं वद ॥३

युगे युगेषु ये प्रोक्ता धर्मा मन्वादिभिर्मुने ।

वाक्यं तेनेह ते कर्तुं वर्णैराश्रमवासिभिः ॥४

स षष्ठो मुनिभिर्व्यासो मुनिभिः परिवेष्टितः ।

प्रष्टुं जगाम पितरं धर्मान् पराशरं ततः ॥५

सर्वेषामाश्रमाणाञ्च वरे यदरिकाश्रमे ।

स विवेशाश्रमे तस्मिन् तनुं योगीव वेधसः ॥६

नानापुष्पलताकीर्णं फलपुष्पैरलङ्कृते ।  
 नदी प्रस्रवणानेकैः पुण्यतीर्थोपशोभिते ॥७  
 मृगपक्षिभिराकीर्णं देवतायननाम्नते ।  
 यक्ष गन्धर्व सिद्धैश्च नृत्यगीतसमाकुले ॥८  
 तस्मिन्पितृभामध्ये शक्तिपुत्रः शराशरः ।  
 सुखासीनो महातेजा मुनिमुप्यगगावृतः ॥९  
 कृताञ्जलिपुटो भूया व्यासस्तु मुनिभिः सह ।  
 प्रदक्षिणाभिरादैश्च मुनिभिः प्रतिपूजितः ॥१०  
 ततः सन्तुष्टमनसा पाराशरमहामुनि ।  
 व्यासस्य स्वागतं ब्रूयाद् आसीनो मुनिपुङ्गवः ॥११  
 वशस्य स्वागतं तेऽस्तु महर्षीणां समन्ततः ।  
 कुशलं कुशलेयुक्ता व्यासो पृच्छदतः परम् ॥१२  
 यदि जानासि मा भक्तं स्नेहोरा यदि वत्सल ।  
 धर्मं कथय मे तातः अनुग्रहोऽस्म्यहं यदि ॥१३  
 श्रुतास्तु मानवा धर्मा गागोया गौतमास्तथा ।  
 वासिष्ठाः काश्यपाश्चैव तथा गोपालकस्य च ॥१४  
 आत्रेया विष्णु सन्धर्ता दाक्षाश्चाङ्गिरसास्तथा ।  
 शातातपाश्च हारीता याज्ञवल्क्यकृतास्तथा ॥१५  
 आपस्तम्बकृता धर्माः सराह्वलिलितास्तथा ।  
 कात्यायनकृताश्चैव प्रचेतसकृतास्तथा ॥१६  
 मुतिरात्मोद्भवा तात ! श्रुत्यर्था मानवाः स्मृताः ।  
 मन्यर्थः सर्वधर्माणां कृतादि त्रियुगेषु च ॥१७

धर्मं तु त्रियुगाचारं स शक्यं हि कलौ युगे ।  
 वर्णानामाश्रमाणाञ्च किञ्चित्साधारणं वद ॥१८  
 व्यासवाक्यावसाने तु मुनिमुख्यः पराशरः ।  
 सुखासीनो महातेजा इदं वचनमब्रवीत् ॥१९  
 क्रियन्ते नैव वेदाश्च नैवाति प्रभवन्ति ते ।  
 न कश्चिद्वेदकर्ताऽस्ति वेदस्मर्ता चतुर्मुखः ॥२०  
 तथा स धर्मं स्मरति मनुः कल्पान्त्वान्तरे ।  
 अन्ये कृतयुगे धर्मास्त्रेतायां द्वापरे परे ॥२१  
 अन्ये कलियुगे नृणां युगहासानुरूपतः ।  
 तपः परं कृतयुगे त्रेतायां ज्ञानमुच्यते ॥२२  
 द्वापरे यज्ञमेवाहुर्दानमेकं कलौ युगे ।  
 कृते तु मानवा धर्मास्त्रेताया गौतमस्य च ॥२३  
 द्वापरे शास्त्र-लिखिताः कलौ पाराशराः स्मृताः ।  
 त्यजेद्देशं कृतयुगे त्रेतायां माममुत्सृजेत् ॥२४  
 द्वापरे कुलमेकं तु कर्त्तारश्च कलौ युगे ।  
 कृते सम्भाष्य पतति त्रेतायां स्पर्शनेन च ॥२५  
 द्वापरे भक्षणेऽन्नस्य कलौ पतति कर्मणा ।  
 अभिगम्य कृते दानं त्रेतामाहूय दीयते ॥२६  
 द्वापरे याप्यमानन्तु सेवया दीयते कलौ ।  
 अभिगम्योत्तमं दानमाहूतञ्चैव मध्यमम् ॥२७  
 अधमं याप्यमानं स्यात् सेवादानञ्च निष्फलम् ।  
 कृते त्वस्त्रिगताः प्राणास्त्रेताया मांसमेव च ॥२८

द्वापरे रुधिरं यावत्कलौत्वन्नाद्यमेव च ।  
 कृते तात्क्षणिकः शापस्त्रेतायां दशभिर्दिनैः ॥२६  
 मासेन द्वापरे ज्ञेयः कलौ सम्बत्सरेण तु ।  
 युगे युगेषु ये धर्मास्तेषु धर्मेषु ये द्विजाः ॥२७  
 ते द्विजा नाद्यमन्तव्या युगरूपा द्विजोत्तमाः ।  
 धर्मश्च सत्यमायुश्च तुर्य्यांशेन कलौ युगे ॥२८  
 अदनात्तदनाद्यस्य तुच्छमायुरकार्ष्यतः ।  
 धर्मश्च लोकदम्भार्थं पापण्ड्यार्थं तपस्विनः ॥२९  
 विविधा बाग्वध्वनार्थं कलौ सत्यानुसारिणी ।  
 अल्पक्षीर-घृता गायो ह्यल्पसस्या च मेदिनी ॥३०  
 स्त्रीजनन्यः स्त्रियः सर्वा रत्यर्थं कृतमैथुनाः ।  
 पुरुषाश्च जिताः स्त्रीभी राजानो दस्युभिर्जिताः ॥३१  
 जितो धर्मश्च पापेन अनृतेन तथा ऋतम् ।  
 शूद्राश्च ब्राह्मणाचाराः शूद्राचारास्तथा द्विजाः ॥३२  
 अन्त्यानुयायिनश्चाद्व्या वर्णास्तदुपजीविनः ।  
 कृतन्तु ब्राह्मणयुगं श्रेता तु क्षत्रियं युगम् ॥३३  
 वैश्यं तु द्वापरयुगं कलिः शूद्रयुगं स्मृतम् ।  
 चातुर्वर्णिकनारीणां तथा तुरीयजन्मनी ॥३४  
 यति(पति)द्विजा(त्युपास्त्यापि)भ्युपास्त्यादि धर्मर्द्धिर्मद्वितीकलौ ।  
 शतेन या कृते दत्ते फलाप्तिः पुरुषस्य सा ॥३५  
 दत्तेषु दशभिर्नृणां फलाप्तिः स्यात् कलौ युगे ।  
 कृते यन् कोटिदस्य स्यात् श्रेतायां लक्षदस्य तत् ॥३६

द्वापरेऽयुतदस्य स्यान् शतदस्य कलौ फलम् ।  
 युगत्वह्वरमाख्यातमन्यं निगदतः शृणु ॥४०  
 वर्णानामाग्रमाणाश्च सर्वेषां धर्मसाधनम् ।  
 मृगः कृष्णश्चरेत्तत्र स्वभावेन महीतले ॥४१  
 यसेत्तत्र द्विजातिस्तु शूद्रो यत्र तु तत्र तु ।  
 हिमपर्वतविन्ध्याद्रथो विनशन-प्रयागयोः ॥४२  
 मध्ये तु पावनो देशो म्लेच्छदेशस्ततः परम् ।  
 देशेभ्यन्येषु या नगो धन्याः सागराः शुभाः ॥४३  
 तीर्थानि यानि पुण्यानि मुनिभिः सेवितानि च ।  
 यसेत्तुस्तदुपात्तेऽपि शमिच्छत्तो द्विजातयः ॥४४  
 मुनिभिः सेवितत्त्राच पुण्यदेशः प्रकीर्तितः ।  
 यत्र पानमपेयस्य देशेऽभक्ष्यस्य भक्षणम् ॥४५  
 अग्न्यागामिता यत्र तं देशं परिवर्जयेत् ।  
 एवं देशः समाख्यातो यक्षिपातु द्विजन्मनाम् ॥४६  
 एषमेवानुवर्त्तेरन्देशं धर्मानुकाङ्क्षिणः ।  
 यस्तन् या यत्र तत्रापि स्नाचारं न विवर्जयेत् ॥४७  
 पट्फर्माणि च कुर्वीरन्निति धर्मस्य निश्चयः ।  
 पराशरः स्वयम्प्राह शास्त्रं युवस्य वत्सलः ॥४८  
 अथान्तः सम्प्रवक्ष्यामि द्विजकर्मादिकं द्विजाः ।  
 पट्कर्म-वर्णधर्माश्च प्रसंसा गोवृषस्य च ॥४९  
 अदोष्ट-वाक्षौ यौ तत्र क्षीरं क्षीरप्रयोत्तिष्ठा ।  
 अमावास्यानिषिद्धानि सतश्च पशुपालनम् ॥५०

नियुक्तः सुव्रतः शेषं विप्राणां ख्यापनाय च ॥६२

पराशरो व्यास वचो निशम्य

यदाह शास्त्रं चतुराश्रमाश्रमम् ।

युगानुरूपञ्च समस्तवर्ण-

हिताय वक्ष्यत्यथ सुव्रतस्तान् ॥६३

शक्तिस्तूनोरनुज्ञातः सुतपाः सुव्रतस्त्विदम् ।

चतुर्वर्णाश्रमाणाञ्च हितं शास्त्रमथाब्रवीत् ॥६४

इति श्रीवृहत्पराशरीये धर्मशास्त्रे व्यासप्रश्ने सुव्रतप्रोक्तायां  
शास्त्रसंप्रदोद्देशकथनं नाम प्रथमोऽध्यायः ।

॥ द्वितीयोऽध्यायः ॥

आचारधर्मवर्णनम् ।

पराशरमते पुण्यं पवित्रं पापनाशनम् ।

चिन्तितं ब्राह्मणार्थाय धर्मसंस्थापनाय च ॥१

चतुर्णामपि वर्णानामाचारो धर्मपालनम् ।

आचारभ्रष्टदेहानां भवेद्धर्मः पराद्भुजः ॥२

पट्कर्माभिरतो नित्यं देवताऽतिथिपूजकः ।

हुतशेषन्तु भुञ्जानो ब्राह्मणो नावमीदति ॥३

( व्यासउवाच )

कर्माणि कानीद् कथञ्च तानि  
कार्याणि वर्णेश्च क्रिमाद्यकानि ।  
तेषामनेहाकरणे विधिश्च  
सर्वं प्रसादात् प्रतनुष्व मह्यम् ॥४

( पराशर उवाच )

कर्मपट्कं प्रवक्ष्यामि यत् कुर्वन्तो द्विजातयः ।  
गृहस्था अपि मुच्यन्ते संसारैर्वन्धहेतुभिः ॥५  
अथोद्देशकमं शास्त्रं यच्छ्रुत्वं श्रुतिदृष्टिकृत् ।  
तदुक्तं कर्म यत् पुंसां शृगुष्वं पापनाशनम् ॥६  
सन्ध्या स्नानं जपश्चैव देवतानाञ्च पूजनम् ।  
वैश्वदेवं तथाऽऽतिथ्यं पट्कर्माणि दिने दिने ॥७  
प्रियो वा यदि वा द्वेप्यो मूर्खः पण्डित एव वा ।  
वैश्वदेवे तु सम्प्राप्तः सोऽतिथि स्वर्गसङ्क्रमः ॥८  
सन्ध्यामथ प्रवक्ष्यामि देवता-काल-नामभिः ।  
वर्णर्षि-चन्द्रसा युक्ता यद्विधानं यथार्चनम् ॥९  
यावन्मन्त्रा यथोपास्तिहपस्पर्शनमेव च ।  
आवाहनं विसर्गञ्च यावन्मानं (मन्त्र)क्रमेण तु ॥१०  
दिवसस्य च रात्रेश्च सन्धिः सन्ध्येति कीर्तिता ॥११  
सोपास्था सद्द्विजैर्यत्रात् स्यात्तैर्विश्वमुपासितम् ।  
मध्याह्नेऽपि च सन्धिः स्यात् पूर्वस्थाहुः परस्य च ॥१२



पूर्वाह्णे ह्यपराहस्तु क्षपा चेति श्रुतिक्रमः ।  
 पूर्वा सन्ध्या तु गायत्री ब्रह्माणी हंसवाहना ॥१३  
 रक्तपद्मारणा देवी रक्तपद्मामनस्थिता ।  
 रक्ताभरणभासाङ्गा रक्तमाल्याम्बरा तथा ॥१४  
 अक्षमाला ह्यङ्गरा च वरदस्ताम्बरार्चिता ।  
 प्रागादित्योदयाद्विद्वान् मुर्ते वैधसे सति ॥१५  
 "प्रातः सन्ध्यां सनक्षत्रामुपासीत यथाविधि ।  
 सादित्या पश्चिमां सन्ध्यामर्धोत्तमितभाकराम् ॥"  
 उधायोपासयेत्सन्ध्यां यावत् स्यादर्कदर्शितम् ।  
 विश्वमात । सुराभ्यर्च्ये । पुण्ये । गायत्रि । वैधसि । ॥१६  
 आवाहयाम्युपास्यथं एहो नो धि पुनीहि माम् ।  
 सन्ध्या माभ्यादिकी श्वेता सावित्री रुद्रदेवता ॥१  
 वृषेन्द्रवाहना देवी जलत्रिशिखवारिणी ।  
 श्वेताम्बरधरा श्वेता नानाभरणभूषिता ॥१८  
 श्वेतस्रगक्षमाला च कृतानुरक्तिशङ्करा ।  
 जलाधारा धरा धात्री धरेन्द्राङ्गमया तथा ॥१९  
 स्वभाविभातभूराद्या सुरोपनुतपाद्ब्रह्मा ।  
 मातर्भगानि । विश्वेशि । विश्वे विश्वजनार्चिते । ॥२०  
 शुभे । वरे । वरेण्यैहि आहूतासि पुनीहि माम् ॥२१  
 सन्ध्या सायन्तनी कृष्णा विष्णुदेवी-सरस्वती ।  
 श्यामा कृष्णवस्त्रा तु राक्षसप्रदाधरा ॥२२

कृष्णमभूषणैर्युक्ता सर्वज्ञानमया धरा ।  
 सर्वरागदेवता सर्वा भद्रादिवचसि स्थिता ॥२३॥  
 योणाऽश्रमालिना चापहस्ता मितवरानना ।  
 चतुर्दशजनाभ्यर्च्य कट्याणी शुभवासप्रदा ॥२४॥  
 मातरां देवि । परदे । वरेण्ये ! वचनप्रदे ! ।  
 मयमरुद्रणस्तुत्ये । आहूतेहि । पुनीदि माम् ॥२५॥  
 प्रप्रेषार्क हरीणां तु सद्गमोऽस्तूमयोर्भवेत् ।  
 माध्याद्रिकायां मन्ध्यायां सर्वदेवसमागमः ॥२६॥  
 पूजाभिकाङ्क्षिणो ये च ये च किञ्चिज्जलार्थिनः ।  
 श्राद्धान्नभागधेया ये ये चाग्निहुतभागिनः ॥२७॥  
 अन्यान्युपाययानीह स्थावराणि चराणि च ।  
 माध्याह्निकीमपेक्षन्ते तेषामाप्याधिका हि मा ॥२८॥  
 यातस्यां नार्चयेद्देवास्तर्पयेन्न पितॄन्तथा ।  
 भूतान्युपाययानीह सोऽनृतामित्रमृद्भति ॥२९॥  
 ईशान्याभिमुखो भूत्वा द्विज पूर्वमुखोऽपि वा ।  
 सन्ध्यामुपासयेद्यत्तथायत्तन्निबोधत ॥३०॥  
 आ मणैर्वन्धनाद्धरतौ पादौ चाऽऽजानुतः शुचिः ।  
 प्रक्षऽऽल्याचमेद्विद्वानन्तर्जानुक्रो द्विज ॥३१॥  
 निर्मलात् फेनपूताभि र्मनोऽङ्गाभिः प्रयत्नवान् ।  
 आचामेद्ब्रह्मतीर्थेन पुनराचमनाच्छुचिः ॥ ३२॥  
 यत्तन्निर्माज्जनं कृत्वा द्विस्तेनैवाधरान्यथा ।  
 अद्विश्च संस्पृशेत् खानि सर्वाण्यपि विशुद्धये ॥३३॥

अङ्गुष्ठेन प्रदेशिन्या सन्ध्यपाणिस्थवारिणा ।  
 घ्राणं संस्पृश्य नेत्रे च तेनानामिकया श्रुतीः ॥३४  
 नाभिश्च तत्कनिष्ठाभ्यां वक्षः करतलेन च ।  
 शिरः सर्वाभिरंसौ च ह्यङ्गुल्यग्रैश्च संस्पृशेत् ॥३५  
 आचम्य प्राणसंरोधं कृत्वा चोपस्पृशेत्पुनः ।  
 अत्रोपस्पर्शने मन्त्रं प्रातः केचित्पठन्ति हि ॥३६  
 सूर्यश्चमेति मन्त्रेण प्रातराचमनं स्मृतम् ।  
 'आपः पुनन्तु' मन्याह्ने सायमग्निश्चमेति च ।  
 मन्त्राभिमन्त्रितं कृत्वा कुशपूतश्च तज्जलम् ॥३७  
 आचम्य विधिवद् धीमान् सन्ध्योपासनमाचरेत् ॥३८  
 सौहृद्वारा चैव गायत्री जप्त्वा व्याहृतिपूर्वकम् ।  
 आपोहिष्ठादि जल्पन्ति छन्दो-देवर्षिपूर्वकम् ॥३९  
 छन्दोभिर्विनियोगैश्च मन्त्र-ब्राह्मणसंयुतम् ।  
 एतद्धीने न कुर्वीत कुर्व्यात् ह्येतत्तदासुरम् ॥४०  
 मृच्युभीतैः पुरा देवैरात्मनश्छादनाय च ।  
 छन्दोसि संस्मृतानीह ऋज्ज्वादितास्तैरतोऽमरा ॥४१  
 छादनाऽऽनन्द उद्दिष्टं वाससी कृतिरेव वा ।  
 छन्दोभिः पठितं सर्वं विद्या सर्वत्र नान्यतः ॥४२  
 यस्मिन्मन्त्रे तु ये देवा स्तेन मन्त्रेण चिह्नितम् ।  
 मन्त्रं तदेवं विद्यात् सैवैतम्य तु देयता ॥४३  
 येन यदपिणा दृष्टं सिद्धिः प्राप्ता तु येन वै ।  
 मन्त्रेण तस्य स प्रोक्तो मुनेर्भावस्तदात्मक ॥४४

यत्र कर्मणि धारव्ये जपहोमार्चनादिके ।  
 क्रियते येन मन्त्रेण विनियोगस्तु स स्मृतः ॥४५  
 अस्य मन्त्रस्य चाऽर्थोऽयमयं मन्त्रोऽत्र वर्तते ।  
 तत्तस्य ग्राहणं ह्येवं मन्त्रस्येति श्रुतिक्रमः ॥४६  
 एतद्वि पञ्चकं ज्ञात्वा क्रियते कर्मयद्विजैः ।  
 तदनन्तफलं तेषां भवेद्वेदनिदर्शनात् ॥४७  
 अकामेनापि यन्न्यूनं कुर्यात् कर्म द्विजोऽपि यः ।  
 तेनासौ हन्यते कर्ताऽमृतो गन्तायमृच्छति ॥४८  
 कुर्वन्नज्ञा द्विजः कर्म जपहोमादि कञ्चन ।  
 नासौ तस्य फलं विन्देत् कर्म(क्लेश)मात्रं हि तस्य तत् ॥४९  
 आपद्यते स्थाणु गतं स्वयं वापि प्रलीयते ।  
 यातयामानि च्छन्दांसि भयन्त्यफलदान्यपि ॥५०  
 सिन्धुद्वीप ऋषिश्चन्द्रो गायत्री ऋक्षु विसृषु ।  
 आपो हि दैवतं प्राहुरापोहिष्ठादिषु द्विजाः ॥५१  
 गोमिलो (गाधिजो) राजपुत्रस्तु द्रुपदायामृषिर्भवेत् ।  
 आनुष्टुभं भवेच्छन्द आपश्चैव तु दैवतम् ॥५२  
 सौत्रामण्यावभृतके विनियोगोऽस्य कल्पितः ।  
 उदुत्यमृषिः प्रस्कण्यो गायत्रं सूर्यदेवता ॥५३  
 चित्रमित्यत्र कुत्सस्तु शकरी सूर्यदेवता ।  
 प्रणयो मूर्धुवः स्वश्च गायत्र्यापो ऋचां त्रयम् ॥५४  
 अघमर्पणसूक्तस्य ऋषिरेवाघमर्पणः ।  
 छन्दोऽस्यानुष्टुभं प्राहुरापश्चैव तु दैवतम् ॥५५

द्रुपदाघमर्पणं सूक्तं मार्जने व्याहरेदिति ।  
 स्मृतिभिः परिशिष्टैश्च विगेषस्तोयसेचने ॥५६  
 उक्तोऽधोर्ध्वं विभागेन कर्तव्यः सोऽपि सद्द्विजैः ।  
 आपोहिष्टेति च ऋचामष्टाक्षरपदेन च ॥५७  
 पादान्ते प्रक्षिपेद्वापि पादमध्ये न च क्षिपेत् ।  
 भूमौ मूर्ध्नि तथाऽकारो मूढ्याकाशे पुनर्भुवि ॥५८  
 एवं धारि द्विजः सिन्धुन् तर्पयेत् सर्वदेवताः ।  
 ऋगन्ते मार्जनं कुर्यान् पादान्ते वा समाहितः ॥५९  
 ऋगर्थं वा प्रकुर्वीत शिष्टान्ता मत्तमोदशम् ।  
 बहुत्यं चित्रं देवानामुपस्थाने नियोजयेत् ॥६०  
 हंसं शुचिः पदित्यादि केचिदिच्छन्ति सूरयः ।  
 अद्याकृतमिदं ह्यासीत् सदेवासुर-मानुषम् ॥६१  
 सङ्क्षोभायास्तृजद्वं ब्रह्मा, सत्तेमा व्याह्रती, पुरा ।  
 भूर्भुवः स्वर्गहर्जनस्तपः सत्यं तथैव च ॥६२  
 आद्यास्तिम्रो महाप्रोक्ताः सर्वत्रैव नियोजनात् ।  
 अग्निर्नायुस्तथा सूर्यो वृहस्पत्याप एव च ॥६३  
 इन्द्रश्च विश्वेदेवाश्च देवताः समुदाहृताः ।  
 गायत्र्युष्णिगनुष्टुप् च वृहती षड्क्तिरेव च ॥६४  
 त्रिष्टुप् च जगती चैव ऋग्वेदास्येतान्यनुकसान् ।  
 भरद्वाजः कश्यपश्च गौतमोऽत्रिस्तथैव च ॥६५  
 विश्रामिप्रो जमदग्निर्वशिष्ठश्चर्षयः ध्रुमात् ।  
 एताभिः सकलं व्याप्तमेताभ्यो नास्ति चापरम् ॥६६

सप्तैते स्वर्गलोका वै सत्याद्भू न विद्यते ।  
 तस्माद्दोहात्परा मुक्तिरव्याचीनादयेक्षया ॥६७  
 प्राणसंयमोपेता अभ्यस्या पूरकादिभिः ।  
 ओमापोज्योतिरित्येतच्चिरः पश्चात्प्रयुज्यते ॥६८  
 प्रत्योद्धारसमायुक्तो मन्त्रोऽयं सैत्तिरीयके ।  
 अत्रोद्धारवदार्पादि विदुर्ब्रह्मविदो जनाः ॥६९  
 प्रणवाद्यन्त गायत्रोप्राणायामेन्द्रयं विधिः ।  
 गायत्र्यादिरुचिग्रान्तैर्मन्त्रैश्च प्रागुद्दीरितः ॥७०  
 उपासीरन्निद्रास्तावगायत्रोदेति भास्करः ।  
 गयः षात्पवित्रेण यस्तु सन्ध्यामुपसते ॥७१  
 सर्वतीर्थाभिप्रेकं तु लभते नात्र संशयः ।  
 गोवालं दर्भसारथ्यं पद्मं कनकमेव च ॥७२  
 दर्भ-ताम्र-तिलैर्वापि एतैस्तर्पणकृद्-द्विजाः ।  
 स सन्तर्प्य पितृन्देवानात्मानं त्रिदिश नयेत् ॥७३  
 त्रिंशत्कोट्यस्तु विरयाता मन्देहा नाम राक्षसाः ।  
 उद्यन्तं ते निवस्वन्तं बलाविच्छ्रान्तिं साक्षितुम् ॥७४  
 दिने दिने सहस्राशु रक्ष्यस्तैरभिद्रुत ।  
 भानुर्दीनः कृतस्तूर्गं तद्वश्यत्वमिवागत ॥७५  
 अतस्तस्य च तेषां तु ह्यभूत्तदं सुदारुणम् ।  
 किं भविष्यति युद्धेऽस्मिन् नित्यमूत्सुरविस्मय ॥७६  
 अरुणस्य च ये घाणा ज्वलन्तो ये च भास्वत ।  
 विलक्ष्यास्ते निवर्तन्ते मन्देहानामदर्शनात् ॥७७

खेरप्यंशवो ह्यस्मात् यातायाता ह्यशक्तिः ।  
 अप्राप्त्या च शरीराणां स्वामिनैव लयं गताः ॥७८  
 हेपाशब्दमकुर्वाणाः शफस्फुरणवर्जिताः ।  
 स्तब्धगङ्गा निर्जयाज्जाताः सूर्यस्यन्दनवाजिनः ॥७९  
 ततो देवगणाः सर्वे ऋरयश्च तपोयनाः ।  
 यत्सन्ध्याते उपासीत प्रक्षिपन्ति जलं महत् ॥८०  
 ॐकारवृद्धसंयुक्तं गायत्र्या चाभिमन्त्रितम् ।  
 दधेरन् तेन ते दैत्या यस्मीभूतेन वारिणा ॥८१  
 सदस्त्राशुरथे तिष्ठन् योऽधीयानश्चतुः श्रुतीः ।  
 याहवल्क्यः समाप्त्यैतन्निशानुक्तवास्तथा ॥ ८२  
 सत्ते त्वनुदिवाहित्ये सन्धोपास्तिकरो भवेत् ।  
 उदिते सति या सन्ध्या वालक्रीडोपमा च सा ॥८३  
 सन्ध्या येन न विहाता स्नात्वा नैव ह्युपासिता ।  
 स जीयन्नेव शूद्रश्च ह्यशु गच्छति सान्ध्यायः ॥८४  
 मात्रं पार्थिवमाग्नेयं चायत्र्यं दिव्यमेव च ।  
 वारुणं मानसञ्चेति सप्त स्नानान्यनुक्रमान् ॥८५  
 शं न आपस्तु वै मात्रं शुद्धालम्भं तु पार्थिवम् ।  
 भस्मना स्नानमाग्नेयं गोरेणूनाऽऽनिलं स्मृतम् ॥८६  
 आसने सति या वृष्टिं दिव्यस्नानं तदुच्यते ।  
 बर्हिर्नद्यादिके स्नानं चारुणं प्रोच्यते बुधैः ॥८७  
 यद्वयानं मनसा विष्णोर्मानसं सत्यकीर्तितम् ।  
 असामर्थ्येन फायस्य कालशक्त्याद्यपेक्षया ॥८८

तुल्यफलाणि सर्वाणि स्युरित्याह पराशरः ।  
 स्नानानां मानसं स्नानं मन्त्राणैः परमं स्मृतम् ॥८६  
 कृतेन येन मुच्यन्ते गृहस्था अपि तु द्विजाः ।  
 दिव्यादीनां त्रयाणां तु स्नानानामोपसं परम् ॥८७  
 सद्यः पापहरं प्राहुः प्राजापत्यवृत्ताधिकम् ।  
 उपस्युपसि यत्स्नानं क्रियतेऽनुदितेऽरयो ॥८८  
 प्राजापत्येन तत्तुल्यं महापातकनाशनम् ।  
 प्रातस्तथाय यो विप्रः प्रातःस्नायी सदा भवेत् ॥८९  
 सर्वपापयिनिर्मुक्तः परं ब्रह्माधिगच्छति ।  
 अस्नातो नाचरेत्कर्म जपहोमादि किञ्चन ॥९०  
 विद्यन्ते (द्विद्यन्ते) च सुरप्रानि (मुगुप्रानि) इन्द्रियाणि क्षरन्ति च ।  
 अङ्गानि समतां यान्ति उत्तमान्यधमैः सह ॥९१  
 अत्यन्तमलिनः कायो नवच्छिद्रसमन्वितः ।  
 स्रवत्येष दिवारात्रौ प्रातः स्नानेन शुभ्यति ॥९२  
 वयःस्नानं प्रशंसन्ति सर्वे च पितरोऽमराः ।  
 दृष्टादृष्टकरं पुण्यं शंसन्ति पितरो (भृगवो)ऽपि हि ॥९३  
 प्रातः स्नायी हि यो विप्रः सौर्द्धः स्यात्सर्वकर्मसु ।  
 तत्कृतं कर्म यत्किञ्चित्सर्वं स्याद्यथार्थवत् ॥ ९४  
 अविद्वान् स्नानकाले तु यः कुर्यादन्तधावनम् ।  
 पापीयान् रौरवं याति पितृशापहतो भ्रुवम् ॥ ९५  
 यच्च शमश्रुषु केशेषु यज्जलं देहलोमसु ।  
 हस्ताभ्यां न तु वस्त्रेण जलं विद्वान् हि मार्जयेत् ॥९६



मार्जिते पितरः सर्वे सर्वा अपि च देवताः ।  
 तथा सर्वे मनुष्याश्च त्यजेरन् नियतं द्विजम् ॥१००  
 स्नातृसञ्चिन्तितं सर्वं तीर्थं पितृदिवौकसः ।  
 ततो नञ्चायसौ गच्छन्निराशास्ते शपन्ति हि ॥१०१  
 ये तु स्नानार्थिनस्तीर्थं सञ्चिन्तन्ति जलाश्रयान् ।  
 तदेहमुपतिष्ठन्ति, कृष्यै पितृदिवौकसः ॥१०२  
 अतो न चिन्तयेत्तीर्थं ब्रजेदेव रश्चिन्तितम् ।  
 देवत्वात्तनदीम्नोतःसरस्तु स्नानमाचरेत् ॥१०३  
 स्नानं नद्यादिवन्धेषु सद्भिः कार्यं सदम्बुषु ।  
 कृत्रिमं तोयकूपमथ तोयं सत्र त्वकृत्रिमम् ॥१०४  
 न तीर्थं स्न्याकुले स्नायान्नासज्जनसमावृते ।  
 दर्भहीनोऽन्यचित्तस्तु न नम्रो न शिरोविना ॥१०५  
 कदाचिद्विदुषा मिथ्या न स्नातव्यं पराम्भसा ।  
 अम्भ कृद्दुष्टदुष्टाशेन स्नानकतांपि लिप्यते ॥१०६  
 पथ्य वा सप्त वा पिण्डान् स्नायादुद्धृत्य तत्र तु ।  
 वृथास्नानादिकानोह विशंपेण विवर्जयेत् ॥१०७  
 वृथा षोडशोदकम्नानं वृथा जायमवैदिकम् ।  
 वृथा चात्रोत्रिये दानं वृथा भुक्तमसाक्षिकम् ॥१०८  
 मास्ते नममि न स्नायात्कदाचिन्निम्नगासु च ।  
 रजस्वला भयन्त्येता वर्जयित्वा समुद्रगाः ॥१०९  
 नापो मूत्रपुटीपाभ्यां नाग्निर्दहति कर्मणा ।  
 न स्त्री दुष्यति 'जारेण न विप्रो वेदकर्मणा ॥११०

न स्नायात् क्षोभितावप्सु स्नयं न क्षोभयेच्च ताः ।

निनर्गतासु तीर्याञ्च पतन्तीष्वहतासु च ॥१११

रविसंक्रान्तिवारेषु ग्रहणेषु शशिक्षये ।

घ्रतेषु चैव पष्ठीषु न स्नायादुष्णवारिणा ॥११२

न स्नायाच्छूद्रहस्तेन नैरुहस्तेन वा तथा ।

उद्धृताभिरपि स्नायादादृताभिर्द्विजातिभिः ॥११३

स्वभावाभिरनुष्णाभिः सहसाभितथा द्विजः ।

नवाभिनिर्दशाह्याभिरसंस्पृष्टाभिरन्त्यजैः ॥११४

यः स्नानमाचरेन्नित्यं तं प्रशंसन्ति देवताः ।

तस्माद्बहुगुणं स्नानं सदा कार्यं द्विजातिभिः ॥११५

उत्साहाध्यायनंस्नानप्रशान्ति-शक्ति-वृद्धिदम् ।

कीर्ति-कान्ति-वपुः पुष्टि-सौभाग्या-ऽऽयुःप्रयर्धनम् ॥११६

स्वर्ग्यञ्च दशभिर्युक्तं गुणैः स्नानं प्रशस्यते ।

सूर्यादिदिनवारोक्तं तैलान्यञ्चनपूर्वकम् ॥११७

हृत्ताप-कीर्तिमरण-मुक्त(लक्ष्मी)स्थानापत्ति मृत्तयः ।

आयुश्चाकांदिवारेषु तैलाभ्यङ्गे फलं क्रमाम् ॥११८

जलावगाहनं नित्यं स्नानं सर्वेषु वर्णिषु ।

शक्तैरहरहः कार्यं तस्याथ विधिरुच्यते ॥११९

गोशकृन्मृत्पुशान्धैव पुष्पाणि पत्रिकां तथा ।

स्नानार्थी प्रयतो नित्यं स्नानकाले समादरेत् ॥१२०

स्वमनोऽभिमतं तीर्थं गत्वा प्रक्षाल्य पादयोः ।

हस्तौ चाचम्य विधिवच्चिखां बध्वैरुच्येतसा ॥१२१

मृदन्नुभिः स्वगात्राणि क्रमात्प्रक्षालयेद्यथा ।  
 पादौ जह्वे कटिञ्चैव क्रमाद्ग्राणं जलैस्त्रिभिः ॥१२२  
 प्रक्षाल्य हस्तावाचम्य नमस्कृत्य च तज्जलम् ।  
 गृह्योपगृह्यमित्येतद्यजुषा प्रयताञ्जलिः ॥१२३  
 ऊरु ७ हीति च मन्त्रेण कुर्यादापोऽभिमन्त्रिताः ।  
 विधिह्ना कत्रयः केचिन्मन्त्रतत्परार्थवेदिनः ॥१२४  
 यत्र स्थाने तु यत्तीर्थं नदी पुण्यसरा तथा ।  
 तां ध्यायेन्मनसा नित्यमन्यतीर्थं न चिन्तयेत् ॥१२५  
 गङ्गादिपुण्यतीर्थानि कृत्रिमादिषु संस्मरेत् ।  
 तां ध्यायेन्मनसा वापि अन्यतीर्थं न चिन्तयेत् ॥१२६  
 महाब्धाद्वृत्तिभिः पश्चादाचामेत्प्रयतोऽपि सन् ।  
 उदुत्तममिति ह्यप्सु मन्त्रेण प्रादुमुखो विशेत् ॥१२७  
 येऽभयो दिशि चेयेत्कुर्यादालम्भनं ततः ।  
 सूर्ये पश्यं जलं मुक्त्वा समुत्तीर्य ततः स्पृश्य ॥१२८  
 आचम्याथ हरेन्मृत्प्लां तथा कायं समालभेत् ।  
 अश्वक्रान्ते रथक्रान्ते त्रिणुक्रान्ते वसुन्धरे ॥१२९  
 मृत्तिके हर मे पापं यन्मया पूर्वसञ्चितम् ।  
 भुजिकाहरणे मन्त्रमिति वासिष्ठजोऽब्रवीत् ।  
 सभालभेत्त्रिभिर्मन्त्रैरिदं विष्णादिभिर्द्विजः ॥१३०  
 शिरश्चासावुरध्वोरु पादौ जह्वे क्रमेण तु ।  
 भास्कराभिमुखो मज्जेदापो ह्यहमानिति त्रिभिः ॥१३१

उन्मृश्य सर्वगात्राणि निमज्जेच्च पुनः पुनः ।  
 उत्तीर्थाऽऽचम्य गात्राणि गोमयेनाथ लेपयेत् ॥१३२  
 मानस्तोरु इति ह्युक्त्वा प्राग्वदङ्गक्रमेण तु ।  
 इमं मे वरुण, त्वजः, सत्यं नय, उदुत्तमम् ॥१३३  
 मुग्ध त्वयभृषेत्येतैरात्मानमभिषेचयेत् ।  
 निमज्ज्याऽऽचम्य चाऽऽत्मानं दुर्भेर्मन्त्रैश्च पावयेत् ॥१३४  
 सर्वपापापनोदार्थं प्राग्वदङ्गक्रमेण तु ।  
 आपोहिष्ठादिकैर्मन्त्रैस्त्रिभिः स्यैश्च पावयेत् ॥१३५  
 हृदिष्मातीरिमा आप इदमापस्तथैव च ।  
 देवीराप इति द्वाभ्यामापो देवीरिति तृचा ॥१३६  
 संस्पृश्य द्रुपदो देवीं शन्नो देवीरपां रसम् ।  
 प्रत्यङ्गं मन्त्रनयकमापोदेवी पुनन्तु माम् ॥१३७  
 चित्पतिं मां पुनात्वेतन्मन्त्रेणापि च पावयेत् ।  
 हिरण्यवर्णा इति च पावमान्यस्तथापरम् ॥१३८  
 तत्तत्समन्दीघाव्रति पवित्र्याण्यपि शक्तिनः ।  
 स्नानकर्मात्मकैर्मन्त्रैरन्यैरप्यम्बुदैवतैः ॥१३९  
 प्राच्यात्मानं निमज्ज्याथ आचान्तस्त्वन्यदाचरेत् ।  
 काल-काय-प्रदेशानां तथा चैवोदकरय च ॥१४०  
 प्राकृत्ये सति चैवायं विधिरन्थो विपर्यये ।  
 सौंकारां चैव गायत्रीं महाव्याहृतिभिः सह ॥१४१  
 त्रिषण्वैकधाऽऽवर्त्य स्नायाद्विद्वानपि द्विजः ।  
 छन्दो-मुन्यमरैर्युक्तं स्वशास्त्रास्वरसंयुतम् ॥१४२

आयुष्यं प्रणवं स्नायाञ्जतमर्घशतं दश ।  
 चिद्रूपं परमं ज्योतिर्निरालम्बमनामयम् ॥१४३  
 अव्यक्तमव्ययं शान्तं स्नायाद्वापि हरिं स्मरन् ।  
 गायत्रीवारिसंस्नातः प्रणवैर्निर्मलोद्धृत ॥१४४  
 विष्णुस्मरणसंगुहो योग्यः सर्वेषु कर्मसु ।  
 योऽधीतोद्देवेदार्थं स स्नातः सर्ववारिषु ॥१४५  
 शुद्धेयदशुचिनः स्वान्तस्तच्छुद्ध्यस्तु शुचिर्यतः ।  
 मन्त्रैश्च मनसा स्नानं न गोमय-मृदम्बुभिः ॥१४६  
 तैश्चेत्त्रो-स्वर-मत्स्याश्च स्नानस्य फलमाप्नुयुः ।  
 भावपूतं पत्रिन्न स्यान्मन्त्रपूतस्तथा नरः ॥१४७  
 उभयेन पत्रिन्नस्तु नित्यस्नायी शुचिर्नरः ।  
 विधिद्वयं तु यत् कर्म करोत्यविधिना तु य ॥१४८  
 न किञ्चित् फलमाप्नोति प्लेशमात्रं हि तस्य तत् ।  
 उत्पद्यन्ते जले मत्स्या विपद्यन्ते तु तत्र च ॥१४९  
 तिष्ठन्तोऽपि च ते स्नानफलं नैवाप्नुयुर्यतः ।  
 विविहीनं भायदुष्टं कृमिश्रद्धवापि च ॥१५०  
 तद्वरन्त्यसुरास्तस्य मूढत्वादकृतात्मनः ।  
 श्रद्धा-विधिसमायुक्तं यत् कर्म क्रियते नृभिः ।  
 शुचिभीरेकचित्तैश्च तदानन्त्याय कल्पते ॥१५१  
 उदात्तमनुदात्तं च हरितं प्लुतमेव च ।  
 द्रुतं च स्वरितोदात्तं स्वरं विद्यात्तथा प्लुतम् ॥१५२

स्वरान्तं व्यञ्जनान्तं च विसर्गान्तं तथैवं च ।  
 सानुस्वारं पृथक्त्वं च ज्ञातव्यमपरं च यत् ॥१५३  
 पृञ् शतक्रतुर्हन्ति घघ्नेण शतपर्वणा ।  
 यथा तथा प्रयत्नारं मन्त्रो हीनः स्वरदिभिः ॥१५४  
 स्वरतो वर्णतः सम्यक् सन्ध्या-ध्यान-जपादिषु ।  
 सर्वे मन्त्राः प्रयोक्तव्या हीनाः द्युरफला नृणाम् ॥१५५  
 नाभेरधस्तादङ्गानि क्षालयित्वा मृदम्भसा ।  
 उपरिष्ठात् सितवस्त्रो मन्त्रो मोक्ष्य शुचिर्मरेत् ॥१५६  
 चतुरध्वतुरस्त्यङ्ग-धोर्द्धौ च जह्नयोत्तया ।  
 द्वौ द्वौ च जानुनोर्ध्वस्य ऊर्वो पञ्च च पञ्च च ॥१५७  
 द्वायत्येवं तथा गुघ्रे दशदशोदर-ध्वजसोः ।  
 द्वौ द्वौ गले च घातोक्ष द्वौ द्वावंस मुखेषु च ॥१५८  
 द्वौ द्वौ च चक्षुषोः धृत्योः सप्तोक्काराश्च मूर्धनि ।  
 न्यस्तप्रणवसर्वाङ्गः स्नातः स्यात् सर्ववारिषु ॥१५९  
 अकारं मूर्ध्नि विन्यस्य उकारं नेत्रमध्यतः ।  
 मकारं कण्ठदेशे तु मङ्गीभवति वै द्विजः ॥१६०  
 अव्यङ्गाङ्गिष्ठौते तु विद्वाञ्छुले च वाससी ।  
 परिधाय मृदङ्गुभ्यां करो पादौ च मार्जयेत् ॥१६१  
 तद्वाससोरसम्पत्तौ शाण-क्षौमा-ऽऽविकानि च ।  
 कुतपं योगपट्टं वा द्विवासास्तु यथा भवेत् ॥१६२  
 न जीर्णं-नील-कापाय-माञ्जिष्ठेन तु वाससा ।  
 मूत्राद्युपगतेनैव शुचिः स्यान्नैकवाससा ॥१६३

एकं वासो यथाप्राप्तं परिधाय मनश्चुचिः ।  
 अन्यत् कृत्वोत्तरासङ्गमाचम्य ग्राह्मुखः स्थितः ॥१६४  
 प्रत्योद्धारसमायुक्ताः प्रणवाद्यन्तकास्तथा ।  
 महाव्याहृतयः सप्त देवतार्पादिसंयुताः ॥१६५  
 प्रणयान्ता च गायत्री शिरस्तस्यास्तथैव च ।  
 त्रिरावर्तनमेतस्याः प्राणायामो विधीयते ॥१६६  
 शक्त्याऽपुसंयमं कृत्वा तथाचम्य विधानतः ।  
 उपास्य विधिबत् सन्ध्यामुपस्थाय च भास्करम् ॥१६७  
 गायत्रीं शक्तितो जप्त्वा तर्पयेद्देवताः पितॄन् ।  
 अन्वारब्धेन सव्येन पाणिना दक्षिणेन तु ॥१६८  
 हृष्यतामिति सेतुष्यं नाम्ना तु प्रणवादिना ।  
 ब्रह्मेश-केशवान् पूर्वं प्रजापतिमथो श्रुती ॥१६९  
 छन्दो यज्ञानृषीन् सिद्धानाचार्यास्तनयानपि ।  
 गन्धर्व-वत्सरतूँश्च मासान् दिन-निशास्तथा १७०  
 देवान् देवानुगाँश्चैव नागान्नागकुलानि च ।  
 सरितः सागरांस्तीर्थान् पर्वतान् कुलपर्वतान् ॥१७१  
 किन्नरान् खेचरान् यक्षान् मनुष्यान् च तर्पयेत् ।  
 सनकश्च सनन्दश्च तृतीयश्च सनातनः ॥१७२  
 आसुरिः कपिलश्चैव बौद्धः पञ्चशिखस्तथा ।  
 मानुषान् यातुवानाँश्च तेषां चैव कुलान्यपि ॥१७३  
 सुपर्णाश्च पिशाचाश्च भूतान्यथ पशूस्तथा ।  
 वनस्पतीनोपधीश्च भूतधामं चतुर्विधम् ॥१७४

ब्रह्मादयो मयाहूता आगच्छन्त्वाददन्त्वपः ।  
 अनृणं मां प्रकुर्वन्तु प्रसीदन्तु ममोपरि ॥१७५  
 ततः पूर्वाघर्मेणु सामेषु सकुरोषु च ।  
 प्रादेशिकेषु शुद्धेषु ब्रह्मादिभ्योज्ज्वु सेचयेत् ॥१७६  
 अन्वारच्यापसव्येन पाणिना दक्षिणे न तु ।  
 भूस्यदक्षिणभ्रातुः सन् देवेभ्यः सेचयेज्जलम् ॥१७७  
 देवेभ्यश्च नमः स्वाहा पितृभ्यश्च नमः स्वधा ।  
 मन्यन्ते कवयः केचिदित्ययं तर्पणक्रमः ॥१७८  
 तर्प्यमाणेषु कर्मत्वं गिजन्तं च क्रियापदम् ।  
 तर्पयामि पितृन् देवानित्याहुरपरे पुनः ॥१७९  
 सिध्यमानेन तोयेन मन्यन्ते मुनयो परे ।  
 देवास्तृप्यन्तु पितरस्तृप्यन्तिऽति निदर्शनम् ॥१८०  
 उदीरतामाह्निरस आयन्तु नोर्जमित्यपि ।  
 पितृभ्यश्च स्वपायिभ्यो ये चेद् पितरस्तथा ॥१८१  
 अग्निज्यात्तोपद्रुसाश्च तथा धर्हिपदोऽपि च ।  
 पेन पूर्वे च सितरः सोमपानामुदीरयेत् ॥१-२  
 आयाह्य च पितृनेतेरपसव्योपयीतिना ।  
 दक्षिणाभिमुखो द्वाभ्यां कराम्यामन्बु सेचयेत् १८३  
 भूलप्रसव्यजानुश्च दक्षिणामकुरोषु च ।  
 रुक्म-रोप्य-तिलैस्ताम्र-दर्भ-मन्त्रैः क्षिपेत् पयः ॥१८४  
 विना रौप्य-मुषणांभ्यां विना-ताम्र-तिलैरपि ।  
 विना दर्भश्च मन्त्रैश्च पितृणां नोपविष्टति ॥१८५  
 ४५



दध्नेलोहितधर्मेऽथ काश-वीरण-वत्त्वजैः । ॥ १८३ ॥  
 शूरधान्य वृणोर्नापि दध्नेकार्य-श्रयेद् द्विजः ॥ १८४ ॥  
 न तर्पयेत् पतन्तीभिर्विद्वानद्भिः कथंचन । ॥ १८५ ॥  
 प्राग्रस्थाभिः सदर्भाभिः सतिलाभिश्च तर्पयेत् ॥ १८६ ॥  
 वसून् रुद्रास्त्रिधाऽऽदिशान्नमस्कारसमन्वितान् । ॥ १८७ ॥  
 एते च दिव्याः पितर एतदायत्तमानुषाः ॥ १८८ ॥  
 ध्रुवो धरश्च सोमश्च आपश्चैवानलोऽनिलः । ॥ १८९ ॥  
 प्रत्यूषश्च प्रभासश्च वसन्तोऽष्टौ प्रकीर्तिताः ॥ १९० ॥  
 अजैकपादहिंन्त्यो विरूपाक्षोऽथ रैवता । ॥ १९१ ॥  
 हरश्च बहुरूपश्च श्यम्यक्श्च सुरेश्वरः ॥ १९२ ॥  
 सावित्रश्च जयन्तश्च पिनाकी चापराजितः । ॥ १९३ ॥  
 एते ह्यष्टौ समाख्याता एकादश सुरोत्तमाः ॥ १९४ ॥  
 इन्द्रो धाता भगः पूग मित्रोऽथ वरुणोऽर्यमा । ॥ १९५ ॥  
 अंशुर्विवस्वास्त्वष्टा च सविता विष्णुरेव च ॥ १९६ ॥  
 एते वै द्वादशारित्या देवानां परमाः ददृशुः । ॥ १९७ ॥  
 एवं हि दिव्याः पितर पूज्याः सर्वे प्रयत्नतः ॥ १९८ ॥  
 कथ्यवाहो नलः सोमो यमश्चैव तथार्यमा । ॥ १९९ ॥  
 अग्निव्याता सोमनाश्च तप्ता वदित्वेदोऽपि च ॥ २०० ॥  
 एते चान्ये च पितर पूज्याः सर्वे प्रयत्नतः । ॥ २०१ ॥  
 एतैस्तु तपितैः सर्वैरुपपास्तपिता नृभिः ॥ २०२ ॥  
 यमश्च धर्मराजश्च मृत्युश्चैव तथान्तकः । ॥ २०३ ॥  
 वैवस्वतश्च कालश्च सर्वभूतक्षयस्तथा ॥ २०४ ॥

औदुम्बरश्च नीलश्च वृध्नश्च परमेष्ठयेऽपि ।  
 चित्रश्च चित्रगुमश्च वृकोदरस्तथार्यमाः ॥१६७॥  
 एतैस्तु तर्पितैः सद्भिर्विश्वं स्यात्तर्पितं सुभिः ।  
 तस्मात् श्राव्यैर्यत्वेतान् पित्रादीन् तर्पयेत्ततः ॥१६८॥  
 मातामहान् मातुलाश्च सखि-सम्बन्धि-ग्राम्यवान् ।  
 राजानान् क्षातिवृगीयानुपाध्यायान् गुरुनपि ॥१६९॥  
 मित्रान् भृत्यान्पत्याश्च ये भवन्ति तदाभिताः ।  
 तान् सर्वास्तर्पयेद्विद्वानीहन्ते ते यतोऽलम् ॥१७०॥  
 जलस्यश्च जले सिञ्चेत् स्थलस्यश्च तथा स्थले ।  
 पादौ स्थाव्योऽभयोश्चैव प्रभ्रात्योमयंत शुचिं ॥१७१॥  
 यज्जले शुष्कयस्त्रेण स्थले चैवार्द्रवाससौ ।  
 कुर्याद्दोमं जपं दानं तत्सर्वं निष्कलं भवेत् ॥१७२॥  
 नार्द्रवासां स्थलस्थस्तु धुवंस्तर्पणमाचरेत् ।  
 जानुदभनजलस्थो वा विगलत्क्षानवस्त्रकं ॥१७३॥  
 गोशृङ्गमात्रमुद्रत्य करौ विप्रौ जले स्थितौ ।  
 अम्वरे तु क्षिपेद्वारि-पितृणां वृत्तिमावहन् ॥१७४॥  
 उभाभ्यां सेचयेद्वारि आकाशे दक्षिणोमुखः ।  
 पितृणां स्नानमाकाशं दक्षिणा दिक् तथैव च ॥१७५॥  
 स्थलगो नार्द्रवासास्तु कुर्याद्वै तर्पणार्थिम् ।  
 प्रेतादृते नार्द्रवासा नैकवासा सर्वाचरेत् ॥१७६॥  
 एवं हि तर्पणं कृत्वा सर्वेषां विधिर्वेद्विज्ञाः ।  
 निष्पीडयेन् स्नानवस्त्रं येन स्नातो भवेद्द्विजः ॥१७७॥

निष्पीडयति यः पूर्वं स्नानवस्त्रमबुद्धिमान् ।  
 निराशाः पितरस्तस्य यांति वेषाः सहर्षिभिः ॥२०८  
 निष्पीडयेत् स्नानवस्त्रं तिल-दर्भसमन्वितम् ।  
 न पूर्वं सर्पणाद्वस्त्रं नैवाग्निसि न पादयोः ॥२०९  
 एषु चेत् पीडयेद्वस्त्रं राश्रसं तदतिक्रमात् ।  
 वस्त्रनिष्पीडने विप्र इमं श्लोकमुदाहरेत् ॥२१०  
 ये मे कुले लुप्तपिण्डा पुत्र-दार-विवर्जिताः ।  
 तेषां प्रदत्तमक्षय्यमिदमस्तु तिलोदकम् ॥ २११  
 पितृवंशे मृता ये च मातृवंशे कुमृत्युना ।  
 तेषां कृत्तिर्भवत्त्वेषा तिलमिभ्रेण धारिणा ॥२१२  
 जलमध्ये च यः कश्चिद्ब्राह्मणो ज्ञानदुर्बलः ।  
 निष्पीडयति चेद् वस्त्रं स्नानं तस्य बुधा भयेत् ॥२१३  
 यदप्यु मूलनिक्षेपः शौच-स्नानादिकुर्वताम् ।  
 तत्पापस्य न्यपोद्धार्यमिमं मन्त्रमुदीरयेत् ॥२१४  
 यन्मया दूषितं तोयं मलैः शारीरसम्भवैः ।  
 तस्य पापस्य निष्कृत्यै यक्ष्मणस्तत्र सर्पणम् ॥२१५  
 अम्बुपेभ्यो ऽथ यक्ष्मभ्यो ददामोदं जलाञ्जलिम् ।  
 अन्यथा ध्नन्ति ते सर्वं सुकृत्तं पूर्वसञ्चितम् ॥२१६  
 अपुत्रा ये मृताः केचित् पुमांसो योषितो ऽपि वा ।  
 अस्मदंशेऽपि तेभ्यो वै दत्तं वस्त्रजलं मया ॥२१७  
 नास्तिभयेनापि यो विप्रस्तर्पयेत् पितृ-देवताः ।  
 स तत्कृत्तिकृतो धर्मान् प्राप्नुयात् परमां गतिम् ॥२१८

नास्तिव्यावस्थितो यस्तु तर्पयेन्न पितृन् द्विजः ।  
 पियन्ति देहनिस्त्राणं पितरस्तज्जलार्थिनः ॥२१६  
 पितृणां पितृतीर्थेन देवानां दैविकेन तु ।  
 इति मत्वा प्रकुर्वाणा मुच्यते गृहमेधिनः ॥२२०  
 पञ्च तीर्थानि विप्रस्य करे तिष्ठन्ति दक्षिणे ।  
 ब्राह्मं दैवं तथा पित्र्यं प्राजापत्यं तु सौमिकम् ॥२२१  
 ब्राह्मं पश्चिमलेखायां दैवं ह्यङ्गुलिमूर्धनि ।  
 प्राजापत्यं कनिष्ठादौ मध्ये सौम्यं विजानतः ॥२२२  
 अङ्गुष्ठस्य प्रदेशिन्या मध्ये पित्र्यं प्रतिष्ठितम् ।  
 कुर्याद्यो ऽहरहरचैवं सम्यग्ज्ञात्वा विधानतः ॥२२३  
 स प्राप्नुयाद्गृहस्योऽपि ब्रह्मणः पदमन्ययम् ।  
 स्नात्वा जप्त्वा च हुत्वा च दत्त्वा चैव तु योऽश्नुते ॥२२४  
 सो ऽमृतं नित्यमश्नाति तस्य स्थानमनामयम् ।  
 अस्नात्वाऽन्नं मलं भुङ्क्ते अजप्त्वा पूय-शोणितम् ।  
 अजुह्वंश्च कृमीन् कीटानददंश्च शङ्कतथा ॥२२५  
 आह्लादकारणं स्नानं दुःख-शोकापहं तथा ।  
 दुःखप्ननाशनं चैव कार्यं स्नानमतः सदा ॥२२६  
 चित्तप्रसाद-येल-रूप-तर्पासि-मेघा-  
 मायुष्य-शौच-सुभगत्वमरोगितां च ।  
 ओजस्वितां त्विषमदात् पुरुषस्य धीर्णं  
 स्नानं यशो-विभव-सौख्यमलोलुपत्यम् ॥२२७

गीर्वाणद्विजसत्तमस्तुतः ॥ २२८ ॥

प्राप्तो मया यस्तु वसिष्ठपौत्रतः ।

पापमृणाशं वितनोति यः श्रुतः ।

प्रोदीरितः स्नानविधिः स लेख्यतः ॥ २२८ ॥

इदं त्वो मया प्रोक्तं स्नानस्य परमो विधिः ।

द्विजन्मनो हिताय तु जपस्यातः परो विधिः ॥ २२९ ॥

इति श्रीबृहत्पराशरीये धर्मशास्त्रे सुव्रतप्रोक्तायां स्मृतायां

स्नानविधिनोम द्वितीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

॥ तृतीयोऽध्यायः ॥

उच्चारमन्त्रवर्णनम् ।

जपस्याथ भवन्द्यामि विधिं पराशरोदितम् ।

यात्र द्विधो जपो यस्तु यथा कार्यो द्विजातिभिः ॥ १ ॥

जप्यानि ब्रह्मसूक्तानि शिवसूक्तानि चैव हि ।

वैष्णवानि च । सूक्तानि त्रिंशत् सौरभ्यनेकधा ॥ २ ॥

सारस्यतानि त्रिंशत् शिवायानि चैव ।

पौराणिकानि चान्यतानि तथा सिद्धान्तिकानि च ॥ ३ ॥

सर्वेषां जप्यसूक्तानामृचां च यजुषां तथा ।  
 साम्नां चैकाक्षरादीनां गायत्री परमो जपः ॥४  
 तस्याश्चैव तु ॐकारो मोक्षणा यमुपासते ।  
 आभ्या तु परमं जप्यं श्रेष्ठोप्येऽपि न विद्यते ॥५  
 तपोस्तु देवतार्पादि समासेनाभिधीयते ।  
 येन विज्ञातेमात्रेण द्विजो ब्रह्मत्वमाप्नुयात् ॥६  
 आसीन्नैव यदा किञ्चित् सवेवाऽसुर-मानुषम् ।  
 तवैकाक्षर एवसीदात्मविन्ध्यस्तन्निश्चक ॥७  
 गतभीरद्वितीयोऽपि पक्षाधी-स न मोदते ।  
 चिन्तयामास गायत्रीं प्रलक्ष्णां साऽभवत्तदा ॥८  
 गायत्री साऽभेदवत् पद्मी प्रणवोऽभूत् पतिस्तदा ॥९  
 पुनरन्यौ च दम्पत्याविति ताभ्यामभूजगत ॥१०  
 प्रणवौ हि परं तत्त्वं त्रिवेदं त्रिगुणात्मनम् ।  
 त्रिदैवतं त्रिधामं च त्रिप्रपञ्चं त्रिरवस्थितम् ॥११  
 त्रिमोक्षाय त्रिकालं च त्रिलिङ्गं कवयो विदुः ।  
 सर्वमेतद्विरूपेण व्यक्तं तु प्रणवेन हि ॥१२  
 ऋयजुः-सामवेदाश्च त्रिवेद इति कीर्तितः ।  
 सत्त्वं रजस्तमश्चैव त्रिगुणस्तेन धोच्यते ॥१३  
 प्रह्लादिरिष्णुस्तैश्वरानेस्त्रिदैवत इतोऽप्यते ।  
 अग्निः सोमश्च सूर्यश्च त्रिधामेति प्रकीर्तितः ॥१४  
 अन्तः प्रज्ञां बहिः प्रज्ञां घनप्रहमुदाहृतम् ।  
 हृत्कण्ठ-तालुर्ध्वं चैति त्रिस्थान इति कीर्त्यते ॥१५

अकारोकारौ मन्वेति त्रिमात्रः प्रोच्यते ध्रुवैः ।  
 भूतं भव्यं भविष्यं च त्रिकाल इति स स्मृतः ॥१५  
 स्त्री-पुंनपुंसकं चेति त्रिलिङ्ग इति कीर्तितः ।  
 त्रिस्त्रिभावा, स्थितो देवो मन्त्रत्रयो ब्रह्मयादिभिः ॥१६  
 पर्यवस्यति यज्ञैतद्विश्वमुत्पद्यते यतः ।  
 त्रिमात्रकः समात्रोऽपि सादिरेव निरादिकः ॥१७  
 स जप्यः सर्वदा सद्भिर्ग्यातव्यश्च विधानतः ।  
 वेदेषु चैव शास्त्रेषु बहुधा स व्यवस्थितः ॥१८  
 तथा सत्यपि चैकोऽयं घटाकाश इव स्थितः ।  
 कर्मारम्भेषु सर्वेषु त्रिमात्र सम्प्रकीर्तितः ॥१९  
 स्थितो यत्र यथोक्तश्च स्मर्तव्यः स त्रयैव हि ।  
 ऋग्वेदे हरिदोदात्त उदात्तस्तु यजु भृतौ ॥२०  
 सामवेदे स विश्वेयो दीर्घ स प्लुत एव च ।  
 सनत्कुमारसिद्धान्ते प्रणवो त्रिण्णुरुच्यते ॥२१  
 यस्मिंस्तस्य च विभ्रान्तिस्तन् परं ब्रह्मसंज्ञितम् ।  
 उच्चारितस्य तस्याथ विभ्रान्तौ च यदक्षरम् ॥२२  
 तदक्षरं सदा ध्यायेद्यस्तत्रैव प्रलीयते ।  
 षण्ढास्पनितवत्तस्य विभ्रान्तिः शब्दवेधसः ॥२३  
 कुर्वीत ब्रह्मविदिप्रो यदीच्छेद्योगमात्मनः ।  
 सर्वस्यापि च शब्दस्य ह्यन्त उच्चारितस्य यत् ॥२४  
 तद्व्यायेद्यस्तु स ज्ञानी शब्दब्रह्मविदुच्यते ।  
 आहारत्वेनो मुनीनां प्राग्वक्ष्यीजनस्य च ॥२५

वासिष्ठोऽपि तं ब्रूयात् स्वभावं शब्दवेधसः ।  
 तैलधारामिवान्छिन्नं दीर्घं घण्टानिनादयत् ॥२६॥  
 अवागजं प्रणवस्यायं यस्तं वेद स वेदवित् ।  
 स्थिरता सर्वेषु शब्देषु सर्वं व्याप्तमनेन हि ।  
 न तेन हि बिना किञ्चिद्वक्तुं याति गिरा यतः ॥२७॥  
 उद्गीथमक्षरं ह्येतदुद्गीथं च उपासते ।  
 उपास्यो मध्यस्तत्रेव नार्दं विश्रामयेद्बुद्धिः ॥२८॥  
 प्रणवाद्याः स्मृता वेदाः प्रणवे पर्यवस्थिताः ।  
 बाह्म्यं प्रणवे सर्वं तस्मात् प्रणवमभ्यसेत् ॥२९॥  
 मन्त्राय तत्र विज्ञेयमग्निश्च देवतं महत् ।  
 आद्यं छन्दः स्मरेत्तत्र नियोगो ह्यादिकर्मणि ॥३०॥  
 उत्पन्नमेतत्तु यतः समस्तं व्याप्यं तिष्ठेत् प्रलयेऽपि यत्र ।  
 एकाक्षरेणापि जर्गन्ति येन व्याप्तानि कोऽन्यः परमोऽस्ति तस्मात् ॥  
 ध्येयं न जप्यं न च पूजनीयं तस्मान्न देवाद्वरणीयमन्यम् ।  
 दुस्तारसंसारपयोधिमग्नताराय विष्णुः प्रणवः स पूज्यः ॥३१॥  
 उत्तमुदेशतो ह्येतद् रूपमेकाक्षरस्य च ।  
 जप्या च सततं देवी गायत्री साऽधुनोच्यते ॥३२॥

इति श्रीबृहत्पराशरीये धर्मशास्त्रे मुन्यतप्रोक्तायां स्मृत्यां  
 पदकर्मनिरूपणे प्रणवस्वरूपवर्णनं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥



॥ चतुर्थोऽध्याय ॥

गायत्रीमन्त्रपुरश्चरणवर्णनम् ।

गायत्र्या संप्रवक्ष्यामि देवर्ष्यादि क्रमेण तु ।  
 अक्षराणां च विन्यासं तेषां चैव तु देवता ॥१  
 जप्ये यथाविधा कार्या यथारूपा च साऽर्चने ।  
 होमे यथा च कर्तव्या यथा वा चाऽऽभिचारिके ॥२  
 यत् फलं जपहोमादौ यदर्थं जप्यते तु सा । -  
 ध्यातव्या च यथा देवी यथावत्तन्निरोधतः ॥३  
 गायत्री तु परं तत्त्वं गायत्री परमा गति ।  
 सर्वाऽस्मरिष्यं ध्याता सर्वं व्याप्तं, तथा जगत् ॥४  
 उत्पद्यते त्रिपादाया, पुनस्तस्या विशेदिदम् ।  
 -गायत्री प्रकृतिर्होत्रा ॐकार पुरुष स्मृत ॥५,  
 एतयोरेव सयोगाज्जगत् सर्वं प्रवर्तते ।

। पादाद्यद्वयो वेदास्तेषु तत्त्वाक्षराणि च ॥६

चतुर्विंशतिरेवास्यां तर्हि व्याप्तमिदं जगत् ।

आद्यं चैकं प्रथमं तु पादमृग्यो द्वितीयं तु तथा यजुर्मयं ।  
 सामस्तृतीयं तु ततोऽभवत् सा सावित्रीदेवी स्वयमेव सर्गो ॥७  
 देवत्यमरेणां संविना सुतर्ष्यश्चक्षुदोऽपि गायत्रमभूज तस्या ।  
 विश्वस्य मित्रो द्विजरोऽपुन्यो मुनिर्नियोगस्तु जपदिक्षेषु ॥८  
 अस्यां तु तत्त्वाक्षरविंशतिस्तु चत्वारि पादत्रियतं तु देव्याम् ।  
 भूरादिभिस्तिसृभिः संप्रयुक्तं सोद्धारमेतद्वदनं च तस्या ॥९

केचिदुपुताशं वदनं वदन्ति-सावित्रिदेव्यो. श्रुतित्वविज्ञाः ।  
 इदं च यक्त्रं, सकलामराणामित्येतया व्याप्तमशेषमेतत् ॥१०  
 भूरादिकेन त्रितयेन पादं पादं च-वेदत्रितयेन-चार्याः, ।  
 प्राणादिकेन त्रितयेन पादं पादैस्त्रिभिर्व्याप्तमशेषमस्याः ॥११  
 यस्तुर्यमस्या द्विज वेत्ति पादं स वेत्ति विद्वन्-परमं प्रदं तु ।  
 व्याप्ति पराऽस्याः सकलापि चैषा यो वेत्ति चैना स तु वित्तमः स्यात् ॥

गायत्री यो न जानाति ज्ञात्वा नैव उपासयेत् ।  
 तामधारवमात्रोऽसौ न विप्रो बृषलो हि सः ॥१३  
 किं वेदै- पठितै, सर्वै. सेविहास-पुराणकैः ।  
 साङ्गैः सावित्रिहीनेन न विप्रत्वमवायते ॥१४  
 गायत्रीमेतन् यो ज्ञात्वा सम्यगभ्यसते पुनः ।  
 इहामुत्र च, पूज्योऽसौ ब्रह्मलोकमवाप्नुयात् ॥१५  
 गायत्री च, यथो-वेदा-ब्रह्मणा तुलिताः पुरा ।  
 वेदेभ्योऽपि बह्वेभ्यो गायत्र्यतिगरीयसी ॥१६  
 यवक्षरेषु दैवत्यं तत्तुर्विशतिपूज्यते ।  
 संन्यासं यद्विप्रोऽग्रेण धुर्वन् ब्रह्मत्वमाप्नुयात् ॥१७  
 जानीयाद्भक्षरं देव्याः, प्रथमं त्वाष्ट्रशुक्षणम् ।  
 प्रामञ्जनं द्वितीयं-तु तृतीयं, रुशिदेवतम् ॥१८  
 विद्युतश्च तुरीयं तु, पञ्चमं तु जलस्य च ।  
 षष्ठं तु शरणं तत्त्वं-सप्तमं तु, शृङ्गापते ॥१९  
 पार्जन्यमष्टमं, चतुर्दशमं चेन्द्रदीवतम् ।  
 गान्धर्वां द्वादशमं त्रितीयांश्चाष्टमेकादशं, तथा ॥२०-॥

मैत्रावरुणमन्यद्दे तथा पूष्णस्त्रयोदशम् ।  
 चतुर्दशं सुरेशस्य प्रागिदं ब्रह्मणः स्मृतम् ॥२१  
 मरुदेवतकं क्षैर्यं पञ्चदशं यदक्षरम् ।  
 सौम्यं च योद्धशं तत्त्वं तथा चाङ्गिरसं परम् ॥२२  
 विश्वेषां चैव देवानांमष्टादशमथाक्षरम् ।  
 अश्विनोऽश्विनविंशं तु विंशं प्रजापतेर्बिदुः ॥२३  
 एकविंशं कुबेरस्य द्वाविंशं शंकरस्य च ।  
 प्रयोविंशं तथा ब्राह्मं चातुर्विंशं तु वैष्णवम् ॥२४  
 इति ज्ञात्वा द्विजः सम्यग्सर्वाश्चाक्षरदेवताः ।  
 कुर्वन् जपादिकं विप्रः परं श्रेयोऽधिगच्छति ॥२५  
 पादाङ्गुष्ठादिमूर्द्धान्तमात्मनो वपुषि न्यसेत् ।  
 अक्षराणि च सर्वाणि वाङ्मन्त्रे ब्रह्मत्येमात्मनः ॥२६  
 पादाङ्गुष्ठयुगे त्वेकमेकैकं गुल्फयोर्द्वयोः ।  
 जानुनोश्च द्वयोरैकमेकमूरुकयोर्द्वयोः ॥२७  
 गुह्ये फट्पां तथैकैकमेकैकं जंठोरसोः ।  
 स्तनद्वये तथैकं तु न्यसेदेकं गले तथा ॥२८  
 वक्षत्रे तालुनि हृक्-श्रुत्योश्चतुर्वैकैकमेव च ।  
 भ्रुधोर्मध्ये तथैकं तु ललाटे चैकमेव हि ॥२९  
 याम्य-पश्चिम-सौम्येषु एकैकमेकमूर्धनि ।  
 गायत्रीर्न्यस्तसर्वाङ्गो गायत्रो विप्र उच्यते ॥३०  
 लिप्यते न क्ष पापेन पद्मोपत्रमिवाम्भसौ ।  
 प्रोक्तः प्रणवविन्यासो व्याहृतीनामयोच्यते ॥३१

सप्तापि न्याहृतीत्यस्याः सवदेहे जपादिषु ।  
 भूर्लोकं पादयोर्न्यस्य भुवर्लोकं तु जानुनोः ॥३२  
 स्वर्लोकं कटिदेशे तु नाभिदेशे महस्तथा ।  
 जनलोकं तु हृदये कण्ठदेशे तपस्तथा ॥३३  
 भ्रुवोर्ललाटसन्ध्योस्तु सत्यलोकः प्रतिष्ठितः ।  
 हिरण्यये परे कोशे विरजं ब्रह्म निष्कलम् ॥३४  
 तच्छुद्धं ज्योतिषां ज्योतिस्तद्यदात्मविदो विदुः ।  
 देवस्य सवितुर्भगो वरेण्यं चैव धीमहि ॥३५  
 तदस्माकं धियो यस्तु ब्रह्मते च प्रचोदयात् ।  
 षड्भन्दोदैवतमार्षं च विनियोगं च ब्राह्मणम् ॥३६  
 मन्त्रं पञ्चविधं ज्ञात्वा द्विजः कर्म समाचरेत् ।  
 स्वरतो वर्णतश्चैव परिपूर्णं भवेद्यथा ॥३७  
 हीनं न विनियुञ्जीत मन्त्रं तु मात्रयापि च ।  
 देवतायतने पुराञ्जपं नद्यादिशेषु च ॥३८  
 आश्रमेषु यतीनां वा गोष्ठे वा स्वगृहेऽपि वा ।  
 चतुर्व्यन्तिमपूर्वेषु ह्युत्तमादिक्रमेण तु ॥३९  
 दशगुणं सहस्रं तथात् फलं विष्णावनन्तकम् ।  
 अप्समीपे जपं कुर्यात् सप्तहस्यं तद्भवेद्यथा ॥४०  
 असङ्ख्यमामुरं यस्मात्तस्मात्तद्गणयेद्ब्रह्मणम् ।  
 स्फाटिकेन्द्राक्ष-रुद्राक्षैः पुरजीवसमुद्भवैः ॥४१  
 अक्षमाला प्रकर्तव्या प्रस्ता चोत्तरोत्तरा ।  
 अमात्रे त्वक्षमालाया कुराप्रन्ध्याऽथ पाणिना ॥४२

यथा कथंचिद्गणयेत् ससङ्ख्यं तद्वेद्यया ।  
 प्रणवो भूम्भुव इत्यथ पुनः प्रणवसंयुतेन ॥४३  
 अन्त्योऽङ्कारसमायुक्ता मन्यन्ते मुनयोऽपरे ।  
 प्रणवोऽस्ते तथा चादावाहुरन्ये जपे क्रमम् ॥४४  
 आदायेन तु चोङ्कार आनुत्तावादिकोऽन्ततु ।  
 तदाद्य च तदन्तं च कुर्यात् प्रणवसम्पुटम् ॥४५  
 आद्यन्तरक्षिता कुर्यादिति पाराशरोऽब्रवीत् ।  
 यो न याच्यते सन्तान मोक्षमिच्छति केवलम् ॥४६  
 प्रत्योङ्कारमसौ बुर्बन्धश्चरं मोक्षमाप्नुयात् ।  
 अक्षरप्रातिलोभ्येन सोङ्कारेण क्रमेण तु ॥४७  
 फट्कारान्ता च कुर्वीत त्रैलोक्यप्रियधातुषु ।  
 होमे चापि पठन् कुर्यात् प्रणवायर्तने द्विजः ।  
 अभिप्रेतार्थहोमादौ स्याद्दान्ता तामुरीरयेत् ॥४८  
 सकोर्णवा यदा पश्येद्रोगाद्वा द्विपसोऽपि वा ।  
 सदा जपेच्च गान्त्र्यो सर्षदोपापनुत्तये ॥४९  
 रुद्रजाप्यानि कार्याणि सूक्तं च पुरुरस्य च ।  
 शिवसंरूपजाप्यं च सर्वं कुर्याद्विधानतः ॥५०  
 जप्यानि घ्नन्ति पापानि श्रेयो दद्युस्तदर्थिनाम् ।  
 अतो जपं सदा कुर्याद्यदोच्छेच्छुभमात्मनः ॥५१  
 द्युपदो वा जपेद्देवीमजपां जम्बुकां तथा ।  
 प्रणवं च सदाभ्यस्येद्यदि ब्रह्मत्वमिच्छति ॥५२

प्राणानामयुताभ्यां च तथा षोडशभि शतै ।  
 पुंसो गच्छन्त्यदोरात्रं तत्क्षय्यामजपां विदुः ॥५३  
 रश्मिणलमध्यस्थे पुरुषे लोकसाक्षिणि ।  
 समर्पितं मया चेदं सूर्याख्ये ब्रह्मण पदे ॥५४  
 न जप्यं प्रसभं कुर्यान् प्रसभं घ्नन्ति राक्षसा ।  
 ब्राह्मणा भागधेयास्तु तेषां देवो विधिधर्मः ॥५५  
 उपांशु तु जपं कुर्यात् ब्रह्मणो वाधं मानसम् ।  
 निवृत्तीदृशुपांशु स्यादचलोष्ठं तु मानसम् ॥५६  
 द्विविधस्तु जपः प्रोक्त उपांशुर्मानसस्तथा ।  
 उपांशु स्याच्छ्रुतगुण साहस्रो मानसः स्मृतः ॥५७  
 उपांशुजपयुक्तस्तु मानसे च रतस्तथा ।  
 इदं याति धैर्यस्त्वमिति पारारारोऽब्रवीत् ॥५८  
 विधियज्ञा पाकयज्ञा ये धान्ये बहवो मखाः ।  
 सर्वे ते जपयज्ञाय कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥५९  
 जप्येनैकेन सिद्धेन किं न सिद्धं भवेद्विद ।  
 कुर्यादन्यत्र वा कुर्यान्मैत्रो ब्राह्मण उच्यते ॥६०  
 शतेन जन्मजनितं सहस्रेण पुराकृतम् ।  
 अयुतेन त्रिजन्मोत्थं गायत्री हन्ति पातकम् ॥६१  
 दशाभिर्जन्मजनितं शतेन तु पुराकृतम् ।  
 सहस्रेण त्रिजन्मोत्थं गायत्री हन्ति पातकम् ॥६२  
 अस्मिन् कलौ च विदुषा विधिवत् कर्म यत् कृतम् ।  
 भवेद्दशगुणं तद्धि कृतादेर्युगतो ध्रुवम् ॥६३

न च सञ्चक्षते कर्तुं मन्त्रान्मायेऽस्य दूषणात् ।  
 अयथार्थकृतात् पाठात् मन्त्रसिद्धिगरीयसी ॥६४  
 न च प्रमथ्न च हसन्न पार्श्वमवलोकयन् ।  
 नान्यसक्तो न जल्पञ्च न चैवोर्ध्वशिरास्तथा ॥६५  
 नादधिष्ठा पीडयेत् पादं न चैव हि तथा करम् ।  
 नैवविधं जपं कुर्यान्न च संचालयेत् करम् ॥६६  
 प्रञ्जम्रानि च दानानि ज्ञानं च निरहंकृतम् ।  
 जप्यानि च सुगुमानि तेषां फलमनन्तकम् ॥६७  
 य एवमुभ्यसेन्नित्यं ब्राह्मणः संयतेन्द्रियः ।  
 स ब्रह्मलोकमाप्नोति तथा ध्यानार्चनादपि ॥६८  
 अथान्यत् सम्प्रवक्ष्यामि यथा तान् पितामहः ।  
 लब्धवाष् वेधसः पृष्ठाहायत्रोऽध्यानमुत्तमम् ॥६९  
 यदक्षरेषु यद्वर्णं यत्र यत्र च यः स्मरेत् ।  
 यत्फलं लभते कृत्वा यथा तस्याः समर्चनम् ॥७०  
 तत् प्रकृतिः स त्वातं विकारो बुद्धिरेव च ।  
 तुरित्येतदहंकारं वशब्दं विद्धि पापहम् ॥७१  
 रे स्पर्शो तु णि रूपं च यं रसं गन्धमत्र भम् ।  
 गो श्रोत्रं दे त्वचं वा घ चक्षु स्य रसना तथा ॥७२  
 धी नासा च म वाचा च हि हस्तौ धि च पादद्वयम् ।  
 यो उपस्थं मुखं योऽन्यो नः खं प्रकारमारुतम् ॥७३

चो तेजो दृ जलं यात् क्ष्मा गायत्र्यास्तरचितनम् ।

चतुर्विंशतितत्त्वानि प्रत्येकमक्षरेषु यः ॥७४

गायत्र्याः संस्मरेद्योगी स याति ब्रह्मणः पदम् ।

तुर्कारं पादयोर्न्यस्य ब्रह्म-विष्णु-शिवाकृतिम् ॥७५

शान्तं पद्मासनाखण्डं ध्यानादहति किल्बिषम् ।

सुकारं गुल्फयोर्न्यस्येदत्तसीपुष्पसन्निभम् ॥७६

पद्ममध्यस्थितं सौम्यं दहते चोपपातकम् ।

त्रिकारं जङ्घयोर्दीनं ध्यायेदेतद्विचक्षणः ॥७७

महाहत्याकृतं पापं हन्यात्तद्धि स्मृतं क्षणात् ।

तुर्कारं जानुदेशे तु इन्द्रनीलसमप्रभम् ॥७८

निर्दहेत् सर्वपापानि महारोगमुपद्रवम् ।

ऊयोर्वं विमलं ध्यायेच्छुद्धस्फटिकविद्युतिम् ॥७९

विज्ञातं हन्ति तत्पापमगम्यागमनात् कृणुम् ।

रेकारं घृषणे प्रोक्तं विद्युत्स्फुरिततेजसम् ॥८०

मित्रद्रोहकृतं पापं स्मरणादेव नाशयेत् ।

णि गुह्यं श्वेतवर्णं तु जातिमुष्णममृतिम् ।

गुरुश्लोकृतं पापं शोधयेद्धानचिन्तनात् ॥८१

यं कट्यां तारकावर्णं चन्द्रवद्विण्ण्यभूषितम् ।

योगिनीं वरदं प्राहुर्ब्रह्महत्याविशोधनम् ॥८२

भं (भकारं चालि) नभोवलिवर्णं भं मेवोन्नतिसममृतिम् ।

ध्यात्वा कमलमध्यस्थं महद् दहति पानकम् ॥८३



- १ जठरे रक्तवर्णं तु मात्राद्वयविभूषितम् ।  
 गोहत्यादिकृतं पापं गौकारस्तु विशोधयेत् ॥८४  
 श्यामरक्तं च देकारं ध्यानं तद्देशयेद्द्वि ।  
 हिम् कुन्देन्दुवर्णाभि वकारममृतं स्रवत् ॥८५  
 पितृ मातृ-वधोद्भूतं मित्रावरुणदैवतम् ।  
 शुम्भत्याकृतं पापं यकारेण प्रणश्यति ॥८६  
 स्यकारं विन्यसेत् कण्ठे त्वाष्ट्रं स्फटिकसन्निभम् ।  
 मनसोपार्जितं पापं स्यकारेण प्रणश्यति ॥८७  
 धीकारं वसुदैवत्यं वदन्ति रर्णसन्निभम् ।  
 प्रतिमहृत्तं पापं तत्क्षणादेव नश्यति ॥८८  
 मकारं पद्मरागामं शिरस्थं दीप्ततेजसम् ।  
 पूर्वजन्मकृतं पापं मकारेण प्रणश्यति ॥८९  
 हिकारं नासिकाग्रे तु पूर्णचन्द्रसमप्रभम् ।  
 पूर्वात्पूर्वतरं पापं स्मरणादेव नश्यति ॥९०  
 धिकारं शान्तमद्गोक्ष पीतवर्णं सुधोशुक्लम् ।  
 मनो-वातायजं पापं चिन्तनादेव नश्यति ॥९१  
 योगारो ह्यौ धूम्र-नीलो भू लज्जाटे च संस्थितौ ।  
 व्यायमित्यं द्विजो नूनं सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥९२  
 नकारं तु मुग्धे पूर्वं द्वादशादित्यसन्निभम् ।  
 सप्तदश्याया द्विजश्रेष्ठ प्राप्नोति ब्रह्मणः पदम् ॥९३  
 प्रकारं दक्षिणे ध्वजे कालामि-रुद्रमन्निभम् ।  
 सप्तदश्याया द्विजश्रेष्ठ षेड्यरं पदमाप्नुयात् ॥९४

चोकारं पश्चिमे वपत्रे विद्युद्दीप्तिसमप्रभम् ।

एकारं द्विजो ध्यात्वा वैष्णवं पद्माप्नुयात् ॥६५

दकारमुत्तरे वस्त्रे शुक्लवर्णसमद्युतिम् ।

सहस्रध्यानान् द्विजश्रेष्ठ प्राप्नुयात् पदमश्रयम् ॥६६

याकारस्तु शिरः प्रोक्तं चतुर्वदनसंयुतम् ।

स एष त्रिगुणः प्रोक्तश्चतुर्विंशतिमः स्मृतः ॥६७

यं यं पश्यति चक्षुर्भ्यां यं यं स्मृशति पाणिना ।

यं यं च भाषते किञ्चित्तत्सर्वं पूतमेव च ॥६८

जाप्ये तु त्रिपदा ह्येया पूजने तु चतुष्पदा ।

न्यासे जप्ये तथा ध्याने अग्निकार्ये तथार्चने ॥६९

सर्वत्र त्रिपदा ह्येया ब्राह्मणैस्तस्मिन्निस्तकैः ।

जम्बुका नाम सा देवी यजुर्वेदे प्रतिष्ठिता ॥१००

सा देवी द्रुपदा नाम मन्त्रे वाजसनेयके ।

अन्तर्गले त्रिरावर्त्य मुच्यते ब्रह्महत्या ॥१०१

सोऽपनीय समस्तानि भर्हनासि द्विजोत्तमः ।

प्रक्षणः पद्माप्नोति यद्गत्वा न निवर्तते ॥१०२

विना श्रद्धां प्रमादाद्वा जपं कुर्वन्त्यवेद्यदि ।

स्मरणादेव तद्विष्णोः सम्पूर्णं स्यादिति स्मृति ॥१०३

तद्विष्णोरिति मन्त्रोयं स्मर्तव्यः सर्वकर्मसु ।

आवर्त्य प्रणवो वापि सर्वस्यादिर्यतो हि सः ॥१०४

अभ्यसेन् प्रणवं नित्यमेकचित्तः समाहितः ।

गायत्री च तथा देवीमभ्यस्यन् मुक्तिमाप्नुयात् ॥१०५

वैदिकं तु जपं कुर्यात् पौराणां पार्श्वरात्रिकम् ।

यो वेदस्तानि चैतानि यान्येतानि च सा श्रुतिः ॥१०६

जपेन येनेह कृतेन पुंसो ददाति मार्गं सवितापि कर्तुः ।

अयं हि सर्वेष्टिकृतां वरिष्ठो विधेः पदं यास्यति निर्विकल्पम् ॥१०७

यदुक्तं सर्वशास्त्रेषु तथा सर्वश्रुतिष्वपि ।

उपनिषन्मतं तद्धो विप्रा ह्येतन् प्रकीर्तितम् ॥१०८

न्यासं तनुत्रं न वयन्ध देहे जग्राह नोङ्कारमसि च तीक्ष्णम् ।

विप्रो वशे यस्त्रिपदां न चक्रे लोके स रुष्टः किमु कस्य कुर्यात् ॥१०९

उद्देशेन मया प्रोक्तो विधिर्जघ्यस्य पावनः ।

देवार्चनविधानं तु सम्प्रवक्ष्याम्यतः परम् ॥११०

इति श्रीबृहत्पराशरीये धर्मशास्त्रे जपनिर्णयः ।

अथ देवार्चनविधिवर्णनम् ।

देवार्चनं प्रवक्ष्यामि यदुक्तमृषिभिः पुरा ।

वैदिकैरेव तन्मन्त्रैर्यस्य ये तस्य सैरिति ॥१११

अर्चयन् वैदिकैर्मन्त्रैर्नानुमहमपेक्षते ।

वैदिकोऽनुमहस्तस्य वेदस्वीकरणेन तु ॥११२

प्रज्ञाणो वैधसैर्मन्त्रैर्विष्णुं स्वैः शंकरं स्वकैः । -

अन्यानपि तथा देवानार्चयेत् स्वीयमन्त्रकैः ११३

मन्त्रन्यासं पुरा कृत्वा म्यदेहे देवतासु च ।

गायत्र्योङ्कारन्यस्ताङ्गः पूजयेद्विष्णुमव्ययम् ॥११४

न्यस्तया तु व्याहृतीः सर्वाः प्रोक्तस्थानक्रमेण तु ।

प्रहमूतः शुचिः शान्तो देवयागमुपक्रमेत् ॥११५

विष्णुरादिरयं देवः सर्वाभरणार्चितः ।

नामग्रहणमात्रेण पापपारां क्षिनोति यः ॥११६

तदर्चनं प्रवक्ष्यामि विष्णोरमिततेजसः ।

यन् कृत्वा मुनयः सर्वे परं सायुज्यमाप्नुयुः ॥११७

पद्मस्तेषु हरेः सम्यगर्चनं मुनिभिः स्मृतम् ।

अप्स्रमौ हृदये सूर्यं स्थण्डिले प्रतिमासु च ॥११८

अमौ क्रियायतां देवो दिवि देवो मनोपिणाम् ।

प्रतिमास्वलपवुद्धीनां योगिनां हृदये हरिः ॥११९

आपो ह्यायतनं तस्य तस्मत्तप्तु सदा हरिः ।

सर्वगत्वेन विष्णोस्तु स्थण्डिले भावितात्मनाम् ॥१२०

दद्यात् पुष्पसूक्तेन आपः पुष्पाणि चैव हि ।

अर्चितं स्यादिदं तेन नित्यं भुवनसप्तकम् १२१

आनुष्टुभस्य सूक्तस्य त्रैष्टुभस्य च दैवतम् ।

पुष्पो यो जगद्बीजमृपिर्नारायणः स्मृतः ॥१२२

तस्य सूक्तस्य सर्वस्य श्रुचां न्यासं यथाक्रमम् ।

देवे चैवात्मनि तथा सम्प्रवक्ष्याम्यतः परम् ॥१२३

हस्तन्यासं पुरा कृत्वा स्मृत्वा विष्णुं तथाऽन्ययम् ।

शिखायन्त्रं च दिग्गन्धं सन्धित्य विष्णुमात्मनि ॥१२४

प्रथमां विन्यसेद्वामे द्वितीयां दक्षिणे करे ।

तृतीयां वामपादे तु चतुर्थीं दक्षिणे न्यसेत् ॥१२५

पञ्चमीं वामजानौ तु षष्ठीं च दक्षिणे न्यसेत् ।

सप्तमीं वामकट्या च दक्षिणायां तथाष्टमीम् ॥१२६

नवमी नाभिमध्ये तु दशमीं हृदि विन्यसेत् । १

एकादशीं वामपादे द्वादशीं दक्षिणे न्यसेत् ॥१२७

कण्ठे त्रयोदशी न्यस्य तथा वक्त्रे चतुर्दशीम् ।

१ अक्षणेः पञ्चदशीं न्यस्य षोडशीं मूर्ध्नि विन्यसेत् ॥१२८

एवं न्यासविधिं कृत्वा पञ्चाङ्गागं समाचरेत् । २

आसनं चिन्तयेन्मेरुमष्टपत्रं सकर्णिकम् ॥१२९

व्याहृतीनामथ न्यासं कुर्याच्च विधिवद् द्विजः ।

भ्रूलोकं पादयोर्न्यस्य भ्रूलोकं तु जानुनोः ॥१३०

स्वर्लोकं कटिदेशे तु नाभिदेशे महस्तथा ।

१ जनोलोकं तु हृदये षष्ठदेशे तपस्तथा ॥१३१

भ्रुवोर्ललाटमन्थोस्तु सत्यलोकः प्रतिष्ठितः ।

हिरण्ये परे कोशे विरजं ब्रह्म निष्कलम् ॥१३२

तच्छुद्धं ज्योतिर्ना ज्योतिस्तद्यदात्मविदो विदुः ।

आयाहनमथ ब्राह्मिणो रमिततेजसः ॥१३३

यथार्था क्रियते तस्य एतदेहे चिन्तयेत्तथा ।

आचम्याऽऽवाहयेद्देवमृचा तु पुरुषोत्तमम् ॥१३४

१ यथा देवे तथा देहे न्यासं कुर्याद्विवानत ।

द्वितीययाऽऽसनं दद्यात् पार्श्वं चैव तृतीयया ॥१३५

चतुर्थार्घ्यः प्रदातव्यः पञ्चम्याऽऽचमनं तथा ।

षष्ठया स्नानं प्रकुर्वीत सप्तम्या वसनं तथा ॥१३६

यज्ञोपवीतं चाष्टम्या नवम्या गन्धमेव च ।

पुष्पं देयं दशम्या ॥ एकादश्या च धूपकम् ॥१३७

द्वादश्या दीपकं दद्यात्तयोदश्या नैवेद्यकम् ।  
 त्र्युर्दश्याञ्जलिं कुर्यात् पञ्चदश्या प्रदक्षिणम् ॥१३८  
 षोडशोद्वासनं कुर्याच्छेषकर्मणि पूर्ववत् ।  
 स्नाने वस्त्रे च नैवेद्ये दद्यादाचमनं हरेः ।  
 पश्चात्तात सिद्धिमाप्नोति एवमेव हि योऽर्चयेत् ॥१३९  
 :आदित्यमण्डले देवं ध्यात्वा विष्णुं मनोमयम् ।  
 स याति ब्रह्मगः स्थानं नात्र कार्या विचारणा ॥१४०

ध्येयो दिनेशपरिमण्डलमध्यवर्ती  
 नारायण. सरसिजासनसन्निविष्टः ।  
 'केयूरवान् मकरकुण्डलवान् किरीटी  
 हारी हिरण्यवपुर्गुतराह-चक्र ॥१४१  
 सूक्तेन विष्णुविधिना समुदीरितेन  
 योजनेन नित्यमजमादिमनन्तमूर्तिम् ।  
 भक्त्याऽर्चयेत् पठति यश्च स विष्णुदेहं  
 विप्रो विशेषरिचरेण कृतार्थदेहः ॥१४२

पञ्चरात्रविधानेन स्थण्डिले वापि पूजयेत् ।  
 जलमग्नौ वापि पूजयेज्जलमग्नौ ॥१४३  
 द्वादशारं नमस्कृतं पञ्चरात्रकमेण तु ।  
 अभागे धौतवस्त्रस्य पत्रिकायास्तथा द्विजः ॥१४४  
 जलेऽपि हि जलेनैव मन्त्रैरेवार्चयेद्भस्मि ।  
 विष्णुर्विष्णुरित्यजस्रं चिन्तयेद्भस्मिमेव ॥१४५

तिष्ठन् ब्रजंस्तथाऽऽसीनः शयानोऽपि हरिं सदा ।

संस्मरन्नाऽऽशुभं पर्येदिहाऽऽमुत्र च वै द्विजः ॥१४६

रुद्रं रुद्रविधानेन ब्रह्मार्ण च विधानतः ।

सूर्यं संहितमन्त्रैश्च तदीरितविधानतः ॥१४७

दुर्गां कात्यायनीं चैव तथा वाग्देवतामपि ।

स्कन्दं विनायकं चैव योगिनीं क्षेत्रपालकान् ॥१४८

विधियदर्चयेत् सर्वान्यो विप्रो भक्तितत्परः ।

विष्णुना सुप्रसन्नेन विष्णुलोकमवाप्नुयात् ॥१४९

ब्रह्माश्च पूजयेद्विद्वान् ब्राह्मणः शान्तितत्परः ।

आरोग्य-पुष्टिसंगुक्तो दीर्घमायुरवाप्नुयात् ॥१५०

गृहा गावो नृपा विप्राः सद्भिः पूज्याः सदा नरैः ।

पूजिताः पूजयन्त्येते निर्दहन्त्यपमानिताः ॥१५१

यो हितः सर्वसत्त्वंपु नृप-गो ब्राह्मणेषु च ।

इहाऽऽमुत्र च पूज्योऽसौ विष्णुलोकमवाप्नुयात् ॥१५२

उक्तो गृहस्थस्य सुरार्चनस्य धन्यो विविर्विष्णुपदोपलब्धयै ।

कार्यो द्विजातेः प्रतिवासरं यो वेदोक्तमन्त्रैः स मया हिताय ॥१५३

देवपूजाविधिः प्रोक्त एव उद्देशतो यथा ।

वैश्वदेवस्य यक्तव्यो विधिर्विप्रा मयाधुना ॥१५४

इति देवपूजाविधिः ।

अथ वैश्वदेवविधिवर्णनम् ।

वैश्वदेवं प्रवक्ष्यामि यथाकार्यं द्विजातिभिः ।

स्वगृहोक्तविधानेन जुहुयाद्वैश्वदेविकम् ॥१५५

हविष्यस्य द्विजोऽभावे यथालाभं शृतं हविः ।  
 जुहुयाद्विधिवद्भक्ष्या यथा स्याच्चित्तनिर्वृतिः ॥१५६  
 यद्वा तद्वापि होतव्यमग्नौ किञ्चिद् द्विजातिभिः ।  
 फलं वा यदि वा मूलं घासं वा यदि वा पयः ॥१५७  
 अहुत्या च द्विजोऽग्नीयाद्यर्तिकृत्स्वयमश्नुते ।  
 अग्नीयाद्येदुत्वापि नरकं स समाविशेत् ॥१५८  
 जुहुयाद्वयञ्जन-क्षारवर्ज्यमन्नं हुताशने ।  
 अनुज्ञातो द्विजैस्तेऽनु त्रिःकृत्वा पुरुषर्षभः ॥१५९  
 यत्त्वमौ हूयते नैव यस्य चाग्रं न दीयते ।  
 अभोज्यं तद् द्विजातीनां भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत् ॥१६०  
 लौकिके वैदिके चैव वैश्वदेवो हि नित्यशः ।  
 लौकिके प.पनाशाय वैदिके स्वर्गमाप्नुयात् ॥१६१  
 अभावाद्मिहोत्रस्य आवसथ्यस्य वा तथा ।  
 यस्मिन्नग्नौ पचेदन्नं तत्र होमो विधीयते ॥१६२  
 अग्निं सोमस्समस्तौ तौ विश्वेदेवास्तथैव च ।  
 धन्वन्तरिः कुरूस्तदनुमतिः प्रजापतिः ॥१६३  
 द्यावाभूभ्योः स्विष्टकृते हृत्वेतेभ्यः पुनस्ततः ।  
 कुशाद्वलिहति पश्चात् सर्वदिक्षु प्रदक्षिणम् ॥१६४  
 सुराम्ये तस्य पुंभ्यश्च यमाय च सहानुगैः ।  
 वरुणाय सदैतैश्च सोमाय च सहानुगैः ॥१६५  
 मरुद्भिश्च क्षिपेद्गारि अश्विभ्यां च तथा हरेत् ।  
 वनस्पतिभ्यः सर्वेभ्यो मुसलोलुखले हरेत् ॥१६६



ध्रियै च मद्रकाल्यै च उच्छीर्षे पादयोः मन्त्रान् ।  
 मन्त्रमे सानुगायेति मन्त्रे चैव बलिं हरेत् ॥११७  
 वास्तवे सानुगायेति वास्तुमन्त्रे बलिं हरेत् ।  
 विश्वेभ्यश्चैव देवेभ्यो बलिमाकाश उद्विषेत् ॥११८  
 द्युवरेभ्यश्च भूतेभ्यो नक्तंचारिभ्य एव च ।  
 वास्तोः पृष्ठे च कुर्यात् बलिं सर्वानुत्पत्तये ॥११९  
 पितृभ्यो बलितोषं तु सर्वं दक्षिणतो हरेत् ।  
 पतितेभ्यः श्वपाकेभ्यः पापानां पापरोणिणाम् ॥१२०  
 कृमिः कीट-पतङ्गानां सर्वेभ्योऽपि बलिं हरेत् ।  
 एवं सर्वाणि भूतानि यो विप्रो नित्यमर्चयेत् ॥१२१  
 तत् स्थानं परमाप्नोति यज्ज्योतिः परवेधतः ।  
 गृहे ऽप्रौ वैश्वदेवं तु प्रोक्तेतन्मनीषिभिः ॥१२२  
 अनभिः कुरु कुर्यात् वैश्वदेवं कथं त्विति ? ।  
 मद्वाग्यहतिभिस्तिष्ठः समस्ताभिस्तथाऽपरा ॥१२३  
 इत्याहुतीश्चतस्रस्तथा देवकृते ऽपि च ।  
 प्रियम्भकं यजामह इत्यादि चाहुतिद्वयम् १२४  
 वैश्वदेवेन जुहुयाद्विशोपोऽन्यत्र वै पुनः  
 अपमृत्पुनिर्गृह्यमायुः पुष्टिविद्वद्ये ॥१२५  
 जुहुयान् अम्भकं देवं विलम्पजैवितलैस्तथा ।  
 विनायकाय होतव्या पृतस्याहुतयस्तथा ॥१२६  
 सर्वविघ्नोपशान्त्यर्थं पूजयेन्नतस्तु तम् ।  
 गणानां त्वेति मन्त्रेण स्वाहाकारान्तमाहुतः ॥१२७

चतस्रो जुहुयात्तस्मै गणेशाय तथाऽऽहुतीः ।  
 तद्विष्णोरिति जुहुयाद्विविक्तमूर्णताकृते ॥१७८  
 प्रणवेन च गायत्र्या केचिज्जुहति तद् द्विजाः ।  
 एतौ चै सर्वदैवतयो एत परं न किंचन ॥१७९  
 एताभ्यां तु हुतेनैव सर्वेभ्योऽपि हुतं भवेत् ।  
 जुहुयान् सर्पिषाऽभ्यक्तं गज्येन पयसाऽथ वा ॥१८०  
 क्रीतेन गोविकारेण तिलतैलेन वा पुनः ।  
 सम्प्रोक्ष्य पाथसा वाऽन्नं नाभ्यक्तं चाशनुयादपि ॥१८१  
 अस्नेहा यव-गोधूमाः शालयो हवनीयकाः ।  
 हविस्तु हविःभ्यक्तमहविस्तु हविर्यतः ॥१८२  
 अभ्यक्तमेव होतव्यमतो रुक्षं विवर्जयेत् ।  
 दारिद्र्यं श्वित्रितामेके रुक्षान्नहवने विदुः ॥१८३  
 जठराग्ने. क्षयं चेके रुक्षमन्नं न हूयते ।  
 आंकारपूर्विका सर्वाः स्वाहाकारान्तिकास्तथा ॥१८४  
 जुहुयादमिको विप्रो गृहमेधी हि नित्यशः ।  
 बलिं चोपान्तभूतेभ्यः सर्वेभ्योऽयविशेषतः ॥१८५  
 हुताऽथ कृष्णवर्मानं कृत्वाञ्जलिं प्रसादयेत् ।  
 त्वमग्ने सुभिरेतेन मन्त्रेण भक्तिमान् द्विजः ॥१८६  
 आग्रक्षन्निति मन्त्रं तु जपेद्वै सार्यकामिरुम् ।  
 आहान्यन्न इति ह्येनं मन्त्रं च प्रयतो जपेत् ॥१८७  
 अन्यं होतृशानं मन्त्रं जपित्वाथ क्षमापयेत् ।  
 अन्यानि चैव सूक्तानि पवित्राणि ततो जपेत् ।  
 सर्वशान्तिकवृत्त्यर्थं तथामिर्देवतेति च ॥१८८

हानं धनमरोगित्वं भतिमिच्छंति वा द्विजः । ।

शम्भुमग्निं रविं विष्णुमर्चयेद्भक्तिः क्रमात् ॥१८६

अजानन् यो द्विजो नित्यमहुस्वाऽस्ति शृतं हविः ।

पितृ-देव-भनुज्याणामृगयुक्तः स यात्यधः ॥१८७

शक्रं वाऽपि तृण वापि हुत्वा प्राचक्षुते द्विजः ।

सर्वकामसमायुक्तः सोऽगौव सुरमश्नुजे ॥१८८

सरेण घर्णेन च यद्विहीनं तथैव हीनं क्रिययापि यथा ।

तथातिरिक्तं मम तन् क्षमस्य तदस्नु चान्ते परिपूर्णमेतन् ॥१८९

सर्वपापापनोदाय सर्वकामाय वै द्विजाः ।

द्विजन्मना हितार्थाय वैश्यदेव उदाहृतः ॥१९०

इति वैश्यदेवविधिः ।

अथातिथ्यविधिवर्णनम् ।

आतिथ्यं सम्प्रवक्ष्यामि चातुर्वर्ण्यफलप्रदम् ।

चातुर्वर्ण्योऽतिथिः प्रोक्तः काले प्राप्तोऽध्वगोऽश्रुतः १९४

अष्टष्टऽष्टगोत्रादिरज्ञाताचार-विद्यकः ।

सन्त्यामात्रहृताचारस्तज्ज्ञैः सोऽतिथिरुच्यते ॥१९५

क्षुनृष्णा-ऽध्वश्रमश्रुतः प्राणत्राणान्नयाचकः ।

गृहीतपात्रमात्र. सन् गृहद्वारमुपागतः ॥१९६

विष्णुरूपोऽतिथिः सोयमुत्तरार्थमुपागतः ।

इति भर्त्रा महाभक्त्या वृणुयाद्भोजनाय तम् ॥१९७

एष स्वर्ग्य. समायातः सर्वदेवमयोऽतिथिः ।

निर्दह सर्वपापानि ममायं सम्प्रयास्यति ॥१९८

ब्राह्मणैः सह भोक्तव्यो भक्त्या प्रक्षाल्य पादद्वयम् ।

आसनाध्यादिकं दत्त्वा कृत्वा सक्-चन्दनादिवम् ॥१६६

योगिनो विविधै रूपैर्भ्रमन्ति धरणीतले ।

नराणामुपकाराय ते चाह्वातस्वरूपिणः ॥२००

तस्मादभ्यर्चयेत् प्राप्तं श्राद्धकालेऽतिथिं द्विजः ।

श्राद्धक्रियाफलं हन्ति तत्रैवापूजितोऽतिथिः ॥२०१

तस्मादपूर्वमेवाग्र पूजयेदागताऽतिथिम् ।

कदाचित् कश्चिदगच्छेत्तारयेद्यस्तु पूर्वजान् ॥२०२

यतिर्नैवमिहोत्री च तथा च मत्सरद्व द्विजः ।

सदैतेऽतिथयः प्रोक्ता अपूर्वाश्च दिने दिने ॥२०३

अतिथेऽमरदेहस्त्वं मत्तारार्थमिहागत ।

संसारपङ्कजम् मामुद्धरश्चाऽघनारान् ॥२०४

नैकाश्रमे धसन् विप्रो मुनीन्द्रैश्च्यतेऽतिथिः ।

अन्धश्च दृष्टपूर्वो यो नासावतिथिरुच्यते ॥२०२०६

क्षत्रियो यदि वा गच्छेदतिथित्त्वेन वेशमनि ।

भुक्तेषु सत्सु विप्रेषु कामतस्तु तमाशयेत् ॥२०६

वैश्यो वा यदि वा शूद्रो विप्रगेहं समाग्रेत् ॥

सौ भृत्यैः सह भोक्तव्यावितिपाराशरोऽभवीत् ॥२०७

क्षीयो वा यदि वा काणः कुप्यी वा व्याधितो ऽपि वा ।

आगतो वैश्वेवान्ते द्रष्टव्यः सर्वदेववत् ॥२०८

क्षत्रियेणापि वैश्येन तथैव शृपलेन च ।

आतिथ्यं सर्ववर्णानां वर्तयं स्यात्संशयम् ॥२०९

योऽतिथिं पूजयेद्भक्त्या अन्याभ्यागतमेव च ।

यात् बृद्धादिकं चैत्र तस्य विष्णुः प्रसीदति ॥२१०॥  
देवा मनुष्याः पितरश्च सर्वे स्युर्येन तृप्तेन च भूरि दिष्टम् ।

तस्मान्न दातुं त्वमराङ्गनाभिस्तत्प्रातिथेः केन समत्वमस्ति ॥२११॥

इति आतिथ्यविधिः ।

अथ यणाश्रमधर्मवर्णनम् ।

वर्णधर्मान् प्रवक्ष्यामि यत् कुर्यं ब्राह्मणादिभिः ।

निषोध्यं द्विजास्तद्वै संक्षेपेण पृथक् पृथक् ॥२१२॥

यजनं याजनं विप्रे तथा दान-प्रतिग्रहौ ।

अध्यापनमध्ययनं धर्माप्येतानि षट् तथा ॥२१३॥

प्रजानां रक्षणे दानमरीणां निग्रहस्तथा ।

यजनाऽध्ययने राशि निषयासच्छिवर्जनम् ॥२१४॥

यजनाऽध्ययने दानं पशुशाल्यं तथा विरि ।

पाणिज्यं च कुक्षीदं च कर्मषट्कं प्रकीर्तितम् ॥२१५॥

शुभ्र्या ब्राह्मणादीनां तदाज्ञापालनं तथा ।

एष धर्मः स्मृतः शूद्रे पाणिज्येन च जीवनम् ॥२१६॥

सर्वेषां जीवनं प्रोक्तं धर्मेणैव च धर्पणम् ।

भिक्षावृत्तिर्यथा न स्यान् वृथादिप्रस्तथा च तन् ॥२१७॥

तुल्यन्तानि धर्माणि वृथा वा क्षत्रियस्य च ।

वृत्त्यभावे द्विजो जीवेद्विभ्रष्टं चिवर्जयेत् ॥२१८॥

प्रजानां शालनं दानं शस्त्रभृत्तं प्रवण्टता ।

निर्भयः परमैश्वर्यानामेव धर्मः स्मृतो नृपे ॥२१९॥

पुत्रं पुत्रं विचिनुयान् मूलच्छेदं न कारयेत् ।  
 मालाकार इवाऽऽरामे प्रजासु स्यात्तथा नृपः ॥२२०  
 लोहवर्मरथानां च गवां च प्रतिपालनम् ।  
 गोरभा वृश्चिवाणिज्यं वैश्यवृत्तिरुदाहृता ॥२२१  
 शूद्रस्य द्विजशूद्रपा परो धर्मः प्रकीर्तितः ।  
 अन्यथा कुरुते यत्तु तद्वेत्तस्य निष्फलम् ॥२२२  
 लवणं मधु तैलं च दधि तक्रं घृतं पयः ।  
 न दुप्येच्छद्द्रजातीनां कुर्यात् सर्वस्य विक्रयम् ॥२२३  
 निष्क्रयं मद्य मोसानामभक्ष्यस्य च भक्षणम् ।  
 अगम्यागामिता चौर्यं शूद्रे स्युः पातहेतवः ॥२२४  
 फलिताक्षीरपानेन ब्राह्मणीगमनेन च ।  
 वेदाक्षरविचारेण शूद्रस्य नरको ध्रुवम् २२५

इति श्रीबृहत्पराशरीये धर्मशास्त्रं सुव्रतप्रोक्तार्या संहितायां

चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥

॥ पञ्चमोऽध्यायः ॥

अथ गोमहिमावर्णनम् ।

अत परं गृहस्थस्य कर्माचारं कलौ युगे ।  
 वर्णमाधारण साक्षाच्चातुर्दण्डक्रमेण ॥११  
 शुष्मायं सम्प्रवक्ष्यामि पराशरवचोदितम् ।  
 पदार्थमसीदिते निष्प्रः वृष्टिर्दृष्टिः समाश्रेयम् ॥१२

हीनाङ्गं व्याधिसंयुक्तं प्राणहीनं च दुर्बलम् ।  
 क्षुद्युक्तं रुपितं श्रान्तमनद्वाहं न वाहयेत् ॥३  
 स्थिराङ्गं नीरुजं हृत् साण्डं पण्डविवर्जितम् ।  
 अधृष्टं सचलप्राणमनद्वाहं तु वाहयेत् ॥४  
 वाहयेद् दिवसस्याध ततः ज्ञानं समाचरेत् ।  
 कुशधैर्न कृषिं कुर्यात् सर्वथा धेनुसंग्रहम् ॥५  
 यन्धनं पालनं रक्षां द्विजः कुर्याद्गृही गवाम् ।  
 यत्साश्च यन्नतो रदया वर्धन्ते ते यथा क्रमात् ॥६  
 न दूरे तास्तु नेतव्याश्चारणाय कदाचन ।  
 दूरे गावश्चरन्त्यो हि न भवन्ति शुभावहाः ॥७  
 प्रातरैव हि दोग्धव्या दुष्टात् सार्यं न ता गृही ।  
 दोग्धुर्द्विः पयसो नैव वर्धन्ते ताः कदाचन ॥८  
 अनादेयदणान्यत्वा स्तवन्त्यनुदिनं पयः ।  
 तुष्टिदा देवतादीनां पूज्या गावः कथं न ताः ॥९  
 स्पृष्टाश्च गावः शमयन्ति पापं  
 संसेविताश्चोपनयन्ति वित्तम् ।  
 ता एव वत्तास्त्रिदिग्बं नयन्ति  
 गोभिर्न तुल्यं धनमस्ति किञ्चित् ॥१०  
 यस्याः शिरसि ब्रह्माऽऽस्ते हरिश्चदेशे शिव स्थितः ।  
 पृष्ठे नारायणस्तस्यो श्रुतयश्चरणेषु च ॥११  
 या अन्या देवताः काश्चित्तस्या लोमसु ताः स्थिताः ।  
 सर्वदेवमया गावस्तुष्टेस्तद्भक्तितो हरिः ॥१२

हरन्ति स्पर्शनात् पापं पयसा पोषयन्ति याः ।  
 प्रापयन्ति दिवं दत्ताः पूज्या गावः कथं न ताः ॥१३  
 यत्पुराहतभूमेर्ये उत्पद्यन्ते रजः कणाः ।  
 प्रलीनं पातकं तैस्तु पूज्या गावः कथं न ताः ॥१४  
 शकृन्मूत्रं हि यस्यास्तु पीतं दहति पातकम् ।  
 किमपूज्यं हि तस्या गोरिति पाराशरोऽब्रवीत् ॥१५  
 गौरयत्सा न दोग्धव्या न चैवं गर्भसन्धिनी ।  
 प्रसूता च दशाहावाद्दोग्धि चेत्ररकं ग्रजेत् ॥१६  
 दुग्धेला ऋगधिसंयुक्ता पुष्पिता या द्विवत्सका ।  
 साधुभिर्न च दोग्धव्या धार्मिकैश्चनमीप्सुभिः ॥१७  
 कुलान्ते पुष्पिता गावः कुलान्ते बह्वत्सिकाः ।  
 कुलान्ते चलचित्ता स्त्री कुलान्ते बन्धुप्रियहः ॥१८  
 एकत्र पृथिवी सर्वा सरील-वन-कानना ।  
 तस्या गौर्ज्यायमी साक्षादेकत्रोभयतोमुखी ॥१९  
 यथोक्तविधिना चैता वर्णं पाल्याः सुरूजिताः ।  
 पालयन् पूजयन्नेताः स प्रेत्येह च मोदते ॥२०  
 दक्षिणाभिमुत्ता गाव उत्तराभिमुत्ता अपि ।  
 बन्धनीयास्तप्रेताः स्युर्न शार्क-पश्चिमतोमुत्ता ॥२१  
 वाजि-गो-वृषशालायां मुतीक्ष्णं लोहदात्रकम् ।  
 'भ्याप्यं तु सर्वदा तत् स्यादवलु-विमोक्षकम् ॥२२  
 गावो देवाः सदा रक्ष्याः पाल्याः पोष्याश्च सर्वदा ।  
 ताडयन्ति च ये पापा ये चाक्रोशन्ति ता नराः ॥२३



नरकाग्नौ प्रपच्यन्ते गोनिःश्वासप्रपीडिताः ।  
 सपलाशेन शुष्केण वा दण्डेन निर्वतयेत् ॥२४  
 गच्छ गच्छेति तां ब्रूयान् मा मा भैरिति वारयेत् ।  
 संस्पृशान् गां नमस्कृत्य कुर्यात्तां च प्रदक्षिणम् ॥२५  
 प्रदक्षिणीकृता तेन सप्तद्वीपा यमुन्यरा ।  
 तृणोदकादिसंयुक्तं यः प्रदद्याद्रथाद्विक्रम् ॥२६  
 सोऽश्वमेधसमं पुण्यं लभते नान्न संशयः ।  
 गवां कण्डूयनं स्नानं गवां दानसमं भवेत् ॥२७  
 तुल्यं गोशतदानस्य भयतो गां प्रपाति यः ।  
 पृथिव्यां यानि तीर्थानि आसमुद्रं सरासि च ॥२८  
 गवां शृङ्गोदकस्नानकलां नार्हन्ति षोडशीम् ।  
 पातकानि कुतस्तेषां येषां गृहमलंकृतम् ॥२९  
 सततं बालवत्सामिर्गोभिः श्रीभिरिव स्वयम् ।  
 ब्राह्मणाश्चैव गावश्च कुलमेकं द्विधा कृतम् ॥३०  
 तिष्ठन्त्येकत्र मन्त्रास्तु ह्यिरेकत्र तिष्ठति ।  
 गोभिर्यज्ञाः प्रवर्तन्ते गोभिर्देवाः प्रतिष्ठिताः ॥३१  
 गोभिर्वेदाः समुद्रीर्णाः षडङ्गाः सपद-कणाः ।  
 सौरभेयास्तु यस्यामे पृथुतो यम्य ताः स्थिताः ॥३२  
 वसन्ति ब्रह्मे नित्यं तासां मध्ये वसन्ति ये ।  
 ते पुण्यपुण्याः क्षोण्यां नाकेऽपि दुर्लभाश्च ते ॥३३  
 ये गोभक्तिकरा नित्यं भवन्ते ये च गोप्रदाः ।  
 शृङ्गमूले स्थितौ ब्रह्मा शृङ्गमध्ये तु केशवः ।  
 शृङ्गाग्रे शंकरं विद्यात्रयो देवाः प्रतिष्ठिताः ॥३४

गृह्णाग्रे सर्वतीर्थानि स्थायराणि चराणि च ।  
 सर्वे देवाःस्थिता देहे सर्वदेवमयी हि गौः ॥३५  
 ललाटाग्रे स्थिता देवी नासामध्ये तु पण्मुखा ।  
 कम्बलाऽश्वतरौ नागौ तत्कर्णाभ्यां व्यवस्थितौ ॥३६  
 स्थितौ तस्याश्च सौरभ्याश्चक्षुषोः शशिभास्करौ ।  
 दन्तेषु वसवश्चाष्टौ जिह्वाया वरुणः स्थितः ॥३७  
 सरस्वती च हुंकारे यम-यक्षौ च गण्डयोः ।  
 ऋषयो रोमकूपेषु प्रस्रावे जाह्नवीजलम् ॥३८  
 कालिन्दी गोमये तस्या अपरा देवतास्तथा ।  
 अष्टाविंशतिदेवानां कोट्यो लोमसु ताः स्थिताः ॥३९  
 उदरे गार्हपत्योऽग्निर्हृदये दक्षिणस्तथा ।  
 मुखे चाहवनीयस्तु सभ्याऽऽवसथ्यौ च कुक्षिषु ॥४०  
 एवं यौ यर्तते गोषु सादनक्रोधवर्जितः ।  
 महतीं श्रियमाप्नोति स्वर्गलोके महीयते ॥४१  
 कुलं तस्या न शङ्केत पूतिगन्धं न वर्जयेत् ।  
 यावत् पिबति तद्दुग्धं तावत् पुण्यं प्रवर्धते ॥४२  
 यो गां पयस्विनीं दद्यात्तरुणां यत्ससंग्रुताम् ।  
 शिवस्यायतने दत्त्वा दत्तं तेन तु विश्वकम् ॥४३

इति गौमहिमावर्णनम् ।

अथ समहत्ववृषभपूजनवर्णनम् ।

लक्षाणो वेधसा सृष्टाः सस्यस्योत्पादनाय च ।

तैरुत्पादितसस्येन सर्वमेतद्विधार्यते ॥४४

यथैतान् पालयेद्यन्त्राद्वर्धयेच्चैव यन्नतः ।

जगन्ति तेन सर्वाणि साक्षान् श्युः पालितानि च ॥४५

याषट्पोपालने पुण्यमुक्तं पूर्वमनीषिभिः ।

लक्ष्णोऽपि पालेन तेषां फलं दशगुणं भवेत् ॥४६

जगदेतद्घृतं सर्वमनहुद्भिश्चराचरम् ॥४७

वृष एव ततो रक्ष्यः पालनीयश्च सर्वदा ।

धर्मोऽयं भूतले साक्षाद् ब्रह्मणा ह्यवतारितः ॥४८

त्रैलोक्यधारणायालमन्नानां च प्रसूतये ।

अनादैयानि घासानि विषसन्ति स्वकामतः ॥४९

धर्मित्वा भूतलं दूरमुक्षाण को न पूजयेत् ।

उत्पादयन्ति सस्यानि मर्दयन्ति वहन्ति च ।

आनयन्ति दवीयस्तदुक्षतः कोऽधिको भुवि ॥५०

स्कन्धेन दूराच्च वहन्ति भारमाख्याति पत्युर्न च भारयुक्ताः ।

स्त्रीयेन देहेन परस्य जीवान्पुष्यन्ति रक्षन्ति च वर्धयन्ति ॥५१

पुण्यास्तु गावो वसुधातरे या विभ्रत्यमुं गोवृषगर्भभारम् ।

भारःपृथिव्या दशताडिताया एवस्थ चोक्ष्णो ह्यपि साधुवाचः ॥५२

एकेन दत्तेन धृयेण येन भवन्ति दत्ता दश सौरभेभ्यः ।

माहेय्यपीयं धरणीसमाना तस्माद्वृषात् पूज्यतमोऽस्ति नान्यः ॥५३

उत्पाद्य सस्यानि तृणं चरन्ति तदेव भूयः सततं वहन्ति ।

न भारविन्नाः प्रवदन्ति किञ्चिदहो वृषैर्जीवति जीवलोक ॥५४

तृतीयेऽन्दे चतुर्थे वा यदा वत्सो दृढो भवेत् ।

तदा नासाऽस्य भेत्तव्या नैव प्राग्, दुर्बलस्य च ॥५५

नासावेधनकीलं तु खादिरं वाथ शैशवम् ।

द्वादशाङ्गुलकं कार्यं तज्जैस्तैश्च समं च वा ॥५६

शालां द्विजेन्द्रा वृष गो-हयानां

तां याम्यदिन्द्रारवतीं त्रिदध्यान् ।

सौम्याकुरुच्छारवतीं मुशोभां

तेषां शमिन्तुन् ध्रुवमात्मनश्च ॥५७

गाधो वृषा वा हय-हस्तिनो वा

अन्येऽपि सर्वे पशवो द्विजेन्द्रा ।

याम्यामुखा घोत्तरदिङ्मुखा वा

नान्याशकास्ते खलु बन्धनीया ॥५८

शालाप्रवेशे वृष-गो-पशूनां

राजाऽपि यत्राद्वयं कुञ्चराणाम् ।

होमं च समार्चिपि शास्त्रयुक्तं

पुण्याद्विधिज्ञो द्विजपूजनं च ॥५९

इति समहृत्यवृषभपूजनवर्णनम् ।

अथ हल ( वेध ) करण वर्णनम् ।

लाङ्गलं सम्प्रवक्ष्यामि यत्काष्ठं यत्प्रमाणत ।

हलेपायास्तथोन्मानं प्रतोदस्य युगस्य च ॥६०

चत्वारिंशत्तथा चाष्टावहुलानि कुथ स्मृत ।  
 अर्धार्धमहुलैर्भाज्यो हलेपावयत्तश्च य ॥६१  
 षोडशैव तु तस्याध पङ्क्तिशति तथोपरि ।  
 वेधस्तस्याश्च कर्तव्य प्रमाणेन पटहुल ॥६२  
 अहुलैश्चाष्टभिस्तस्माद्वेध स्यात् प्रातिहारिक ।  
 तस्याधस्ताच्च चत्वारि यथश्च चतुरहु ॥६३  
 अपाहुलमुस्तस्य बंधादूर्ध्वं प्रकल्पयेत् ।  
 मीया दशाहुला ब्योर्ध्वं हस्तमाहो तत् स्मृता ॥६४  
 साऽपि तज्जहो शुभा काया तद्वधस्यहुलो भवत् ।  
 पञ्च हु ७ पुरस्तस्य शिरसोऽपि विभाजनम् ॥६५  
 पृथुस्त्व शिरसो धार्यं हस्ततलप्रमाणकम् ।  
 अहुलानि तथा चाष्टौ उरस पृथुता भवेत् ॥६६  
 यथाद्वहिं प्रतीकारो पङ्क्तिशरहुला भवत् ।  
 मुलीक्षणलोहफलका मृत्काष्ठादिविदारणम् ॥६७  
 न सीर क्षीरघृक्षस्य न बिल्व पिचुमन्दयो ।  
 इत्यादीना हि कुर्वाणो न नन्दति चिर गृही ॥६८  
 प्रक्षाल्योर्न तन् कुर्यात् कीर्तिष्णौ तौ प्रकीर्तितौ ।  
 तयो काष्ठस्य तम् कुर्वन्ससस्यो नश्यति ध्रुवम् ॥६९  
 प्राञ्जला सप्तदस्ता च चतुरस्ताऽप्रवर्तुला ।  
 सालादिशुभनाष्ठानां हलीषा विदुषा मता ॥७०  
 अस्या वेध सकर्णाया कार्या न नवितस्तिभि ।  
 नीचोद्यदृपमानेन तज्जहा एव नदन्ति हि ॥७१

चतुर्हस्तं युगं कार्यं स्कन्धस्थानेऽर्द्धचन्द्रवत् ।  
 मेघभृङ्गयाः कदम्बस्य सालाद्यन्यतमस्य वा ॥७२॥  
 शम्या वैधाद्बहिः कार्या दशाङ्गुलप्रमाणिका ।  
 तन्मानेन प्रणाली च तदन्तरदशाङ्गुलम् ॥७३॥  
 प्रतोदश्च समग्रन्थिवर्णवश्च चतुष्करः ।  
 तदग्रे चापि कर्तव्यो यथाकारस्तु लोहजः ॥७४॥  
 हीनातिरिक्तं कर्तव्यं नैव किञ्चित् प्रमाणतः ।  
 कुर्यादनङ्गुहोऽन्यादैन्यास्तु नरकं व्रजेत् ॥७५॥  
 यथा दृढं यथाशोभं बाहकस्य प्रमाणतः ।  
 भूमेश्च कर्पणायालं तज्ज्ञाः सीरं वदन्ति हि ॥७६॥  
 योजनं तु हलस्याथ प्रवक्ष्यामि यथा तथा ।  
 उपेष्टानक्षत्रसंयुक्ते पुण्येऽन्धि तद्विधीयते ॥७७॥  
 अन्यत्र वा शुभे मे च तत्र कार्यं विपश्चिता ।  
 यत्तु कृत्यं दितं वापि पुण्यं वा मनसि स्फुरेत् ॥७८॥  
 मातृश्राद्धं द्विजः कुर्याद्यथोक्तविधिना गृही ।  
 द्रव्य-कालानुसारेण कुर्याणो धर्मतः कृपिम् ॥७९॥  
 प्रोल्लिख्य मण्डलं पुष्प-धूप-दीपैः समर्च्य तत् ।  
 इन्द्राय च तथाऽग्निभ्यां मरुद्भ्यश्च तथा द्विजः ॥८०॥  
 कुर्याद्वलिहतिं विद्वान् उदग्रैः कश्यपाय च ।  
 तथा कुमार्यै सीतायै अनुमत्यै तथा वलिः ॥८१॥  
 नम स्वाहेति मन्त्रेण स चेच्छस्त्रात्मनो हितम् ।  
 दधि-गन्धा-ऽक्षतैः पुष्पैः शमीपत्रैस्त्रिलैस्तथा ॥८२॥

दशाद्वर्गं वृषाणां च मध्याज्यप्राशनं तथा ।  
 सङ्घृष्ट्य सीरफालाग्रं हेन्ना व रजतेन वा ॥८३  
 प्रलिप्य मधु-सर्पिभ्यां कुर्याच्च तत्प्रदक्षिणम् ।  
 अग्न्युक्ष्णोर्मण्डलं कृत्वा कुर्यात्सीरप्रवाहणम् ॥८४  
 पुण्यं लाङ्गलं कल्याणं कल्याणाय नमोऽस्तिवति ।  
 सीतायाः स्थापनं कृत्वा पराशरमृषिं स्मरन् ॥८५  
 सीरा युञ्जन्ति इत्याद्यैर्मन्त्रैः सीरं प्रवाहयेत् ।  
 दधि-दूर्धा-ऽश्वत्थैः पुष्पैः शमीपत्रैश्च पुण्यदैः ॥८६  
 सीतां पूज्य वृषौ भक्त्या रक्तवस्त्रविपाणकौ ।  
 सप्तधान्यानि चादाय प्रोक्ष्य पूर्वामुखो हली ।  
 तानि कृत्योक्ष्णोः क्षेत्रे च किरन् भूमिं कुपेद्विजः ॥८७  
 न तिलैर्न यवैर्हीनं द्विजः कुर्यात् कर्षणम् ।  
 तद्विहीनं तु कुर्वाणं न प्रशसन्ति देवताः ॥८८  
 तिलपात्रव्युत्तं तोयं दक्षिणस्यां पतेद्दिशि ।  
 तेन नृप्यन्ति पितरो यावन्न तिलविक्रयः ॥८९  
 यिक्त्रीणीते तिलान्यस्तु मुक्त्वाऽन्यद्धान्यसामकान् ।  
 विमुच्य पितरन्तं तु प्रयान्ति हि तिलैः सह ॥९०  
 तुपाजलं यवस्थं च पात्रेभ्यो भूतले पतत् ।  
 पयो-दधि-घृतादीस्तु तर्पयेत्सर्वदेवताः ॥९१  
 दैव-पर्जन्य-भू-सीरयोगात् कृषिः प्रजायते ।  
 व्यापारान् पुरुषस्यापि तस्मात्तत्रोद्यतो भवेत् ॥९२

शालीक्षु शण कार्पास वातांकप्रभृतीनि च ।

वापयेत् सस्यनीजानि सर्वं वापि न सीदति ॥६३

चन्द्रक्षये ऽमतिर्विप्रो यो युनक्ति वृष क्वचित् ।

त पञ्चदशवर्षाणि त्यजन्ति पितरो हितम् ॥६४

चन्द्रक्षये तु योऽविद्वान् द्विजो भुङ्क्ते पराशनम् ।

भोक्तुर्मासार्जित पुण्य भवेद्दशनदस्य वै ॥६५

चन्द्रार्कयोस्तु सयोगे कृत्याद्य स्त्रीनिपेवणम् ।

स्यूरेतोभोजनास्तस्य तन्मास पितरो हता ॥६६

चन्द्रक्षये तु य कुर्यात्तरस्तम्भनिकृन्तनम् ।

तत्पर्णसरन्यया तस्य भवन्ति भ्रूणहत्यका ॥६७

वनस्पतिगते सोमे योऽघ्नान् तु व्रजेद्द्विज ।

प्रभ्रष्टद्विजकर्माण त त्यनन्त्यमरादय ॥६८

घासासीन्दुप्रणाश यो रजकस्याग्रत श्लिपेत् ।

पिषति पितरस्तस्य मास वस्त्रमलाम्बु तन् ॥६९

सोमभ्रये द्विजो याति त्यक्त्या यस्तु हुताशनम् ।

स देव पिशुशापाम्निग्धो नरकमाविशान् ॥१००

अष्टमी कामभोगेन पष्ठी तैलोपभोगत ।

बुद्धश्च दन्तकाष्ठेन हिनस्यासप्रम कुम्भ ॥१०१

चन्द्राप्रतीतो पुण्यस्तु देवादद्यादमत्या यन्नि दन्तकाष्ठम् ।

ताराधिरान स्वदितस्तु तेन घात कृत स्यात्पितृ देवतानाम् ॥१०२

तत्राभ्यज्य त्रिपाणानि गावश्चैव तथा वृषा ।

धरणाय विसृज्यन्ते आगतान् निशि मोचयेन् ॥१०३



य उत्पाद्येह सस्यानि सर्वाणि कृण्वारिणः ।  
 जगत् सर्वं घृतं यैस्तु पूज्यन्ते किं न ते वृषा ॥१०४  
 चरणाय विसृष्टं तु यस्य गोदशकं भवेत् ।  
 यद्रूपेण स्थितो धर्मं पूज्यन्ते किं न ते वृषा ॥१०५  
 श्यु पात्वा यन्ननस्ते वै वाहनीया यथाविधि ।  
 स याति नरकं घोरं यो वाहयत्यपालयन् ॥१०६  
 नाऽधिकाङ्गो न हीनाङ्ग पुष्पिताङ्गो न दूषित ।  
 वाहनीयो हि शूद्रेण वाहयन्क्षयमश्नुते ॥१०७  
 धर्जयेद्द्रष्टृदोषाश्च वाहने दोहने नर ।  
 पालया ये यन्नतः सर्वे पालयन्च्छुभमाप्नुयात् ॥१०८  
 अभ्यर्थमेतानुक्षाण ससर्ज परमेश्वर ।  
 अन्नेनाप्यायते सर्वं लौलोक्यं सचराचरम् ॥१०९  
 अप्रिज्वलति चान्नाथं वाति चान्नाय मामृत ।  
 गृह्णाति चाम्भसा सूर्यो रसानन्नाय रश्मिभि ॥११०  
 अन्नं प्राणो बलं चान्नमन्नाज्जीवितमुच्यते ।  
 अन्नं च जगदाधारं सर्वमन्ने प्रतिष्ठितम् ॥१११  
 सर्वेषां देवतादीनामन्नं जीव प्रकीर्तित ।  
 तस्मादन्नात्परं तत्त्वं न भूतं न भविष्यति ॥११२  
 सौ पुमान्धरणी नारी अम्भो धीजं दिवश्च्युतम् ।  
 य-धात्री-तोयसंयोगादन्नादीनां हि सम्भवः ॥११३  
 आपो मूलं हि सर्वस्य सर्वमप्सु प्रतिष्ठितम् ।  
 आपोऽमृतवरसो ह्याप आपः शुक्रं बलं मह ॥११४

सर्वस्य धीज्ञमाप्रो हि सर्वमहि समाधृतम् ।  
 सद्य आप्यायना ह्याप आपो ज्येष्ठवरा ह्यतः ॥११५  
 किञ्चित्कालं विनाऽप्राप्यैर्जीवन्ति मनुजादयः ।  
 न जीवन्ति विना सामिस्तस्मादापोऽमृतं स्मृताः ॥११६  
 दत्ताभिरङ्गिरेतस्यां किं न दत्तं कलौ युगे ।  
 यथाग्नेन प्रदत्तेन सर्वं दत्तं भवेदिह ॥११७  
 अतोऽयन्नार्थमावेन कर्तव्यं कर्पणं द्विजैः ।  
 यथोक्तेन पिपादेन लाङ्गलादि प्रयोजनम् ॥११८  
 सीते सौम्ये कुमारि त्वं देवि देवार्पिते श्रिये ।  
 शक्तिमूनोर्पथा सिद्धा तथा मे सिद्धिदा भव ॥११९  
 शक्तिमूनोर्विना नाम्ना सीताया स्थापनं विना ।  
 विनाऽयुक्षगराश्रायं सर्वं हरति राक्षस ॥१२०  
 वापने लवने क्षेत्रे खले गन्त्रीप्रवाहणे ।  
 एष एव विविक्ष्यो धान्यानां च प्रवेशने ॥१२१  
 देवतायतनोद्यान-निपातस्थान-गोत्रजान् ।  
 सीमा-श्मशान-भूमिं च वृक्षगुल्मायां क्षितिं तथा ॥१२२  
 भूमिं निपातं यूषाश्च अयनस्थानमेव च ।  
 अन्यामपि हि चाऽवाह्या न कृतेत्कृषिकृद्गराम् ॥१२३  
 नोपरा वाहयेद्भूमी न चाऽम-शर्करावृताम् ।  
 न गोचरा न प्रदत्ता न नदीपुलिना तथा ॥१२४  
 यथसौ वाहयेलोमाद्वेषाद्वापि हि मानवः ।  
 क्षीयतेऽसौ चिरात्पापात् सपुत्र पशु-धान्यवः ॥१२५

नरकं घोस्तामिधं पापीयान् याति निश्चितम् ।  
 योऽपहृत्य परकीयां कृषिकृद्वाहयेद्धराम् ॥१२६  
 स भूमिस्तेयपापेन मुचिरं नरके वसेत् ।  
 परुसइत्यमपि स्वर्णं भूमिमङ्गुलमात्रिकाम् ॥१२७  
 तथैकामपि गां हत्वा सृष्टयन्तं नरकं वसेत् ।  
 न दूरे वाहयेन् क्षेत्रं न चैवात्यन्तिके तथा ॥१२८  
 वाहयेन्न पथि क्षेत्रं वाहयन्दुःसभागभयेन् ।  
 क्षेत्रेष्वेवं धृतिं कुर्याद्यामुष्ट्रो नावलोकयेत् ॥१२९  
 न लङ्घयेत्पशुनां हवो न भिन्द्याद्यां च शूकरः ।  
 धन्याश्च यन्नतः कार्या भृगादित्रासनाय च ॥१३०  
 अग्राप्युपद्रवं राज्ञा तत्करादिसमुद्रवम् ।  
 संरक्षेत्सर्वतो यन्नाद्यस्मात् गृह्णात्यसौ करान् ॥१३१  
 कृषिकृन्मानवस्तेवं मत्वा धर्मं कृपेद्धराम् ।  
 अनवद्यां शुभां क्षिप्यां जलवगाहनक्षमाम् ॥१३२  
 निम्नां हि वाहयेद्भूमिं यत्र विश्रमते जलम् ।  
 वाहयेत्तु जलाभ्यर्णमष्टौ सेकसम्भवः ॥१३३  
 शारद्यमुच्यतेभूमौ कङ्क्वाद्यं वापयेद्धली ।  
 अधिरयकामु कार्पासं वदन्त्यन्यत्र दैमकम् ॥१३४  
 वासन्तं प्रीष्मकालीयं वाप्यं क्षिणेषु तद्विदा ।  
 केदारेषु तथा शालीञ्जलोपान्तेषु चैश्वर्यः ॥१३५  
 घृन्ताक-शाकमूलानि कन्दानि च जलान्तिके ।  
 घृष्टिबिभ्रान्तपानीयक्षेत्रेषु च यवादिकान् ॥१३६

गोधूमाश्च मसूराश्च खल्याः खलकुशास्तथा ।  
 समस्त्रिग्वेषु वाप्याश्च भूमिजीवान्विजानता ॥१३७  
 निला बहुविधाश्चोप्या अतसी-शणमेव च ।  
 समस्त्रिग्वेषु वाप्यानि धान्यान्वन्यानि योगतः ॥१३८  
 कुलत्था मुद्रमाषाश्च राजभाषादिकास्तथा ।  
 वाप्या भूमिजिरोपे तु भूमिजीवं विजानता ॥१३९  
 मृदन्त्युद्योगजं सर्वं वापयेत्कृषिकृन्नरः ।  
 सम्पश्येच्चरतः सर्वान् गोतृपादीन् स्वयं गृही ॥१४०  
 चिन्तयेत्सर्वमात्मीयं स्वयमेव कृषिं धजेत् ।  
 प्रथमं कृषिवाणिज्यं द्वितीयं पशुपोषणम् ॥१४१  
 तृतीयं क्रीतविक्रीतं चतुर्थं राजसेवनम् ।  
 नखैर्विलिखने यस्यः पापमाहुर्मनीषिणः ॥१४२  
 तस्याः सीरविदारेण किं न पापं क्षितेर्भजेत् ।  
 तृणैकच्छन्दमात्रेण प्रोच्यते क्षय आयुषः ॥१४३  
 असह्यकन्दनिर्नाशादसह्य्यातं भवेदधम् ।  
 यद्वर्षे मत्स्यवन्द्यानां तथा सङ्गरिणामपि ॥१४४  
 अंहः कुक्कुटिकानां च तद्दिने कृषिकारिणाम् ।  
 वधकानां च यत् पापं यत् पापं मृगयोरपि ।  
 कदर्याणां च यत् पापं तद्दिने कृषिकारिणाम् ॥१४५  
 वर्णानां च गृहस्थानां कृषिवृत्त्युपजीविनाम् ।  
 तदेनसो विशुद्ध्यर्थं प्राह सत्यवतीपतिः ॥१४६

द्वादशो नवमो वापि सप्तमः पञ्चमोऽपि वा ।  
 धान्यभागः प्रदातव्यो सीरिणा खडके घृवम् ॥१४७  
 अश्मर्यव्यूढभूमौ च विंशांशी क्षेत्रभुग्मवेत् ।  
 एकैकांशाय कर्पः स्याद्यावद्दशम-सप्तमौ ॥१४८  
 ग्रामेशस्य नृपस्यापि वर्णिभिः कृपिजीविभिः ॥१४९  
 सत्यभागः प्रदातव्यो यत्तस्तौ कृपिभागिनौ ।  
 ब्राह्मणस्तु कृपि कुर्वन्वाहयेदिच्छया धराम् ॥१५०  
 न किञ्चित् कस्यचिद्दद्यात्स सर्वस्य प्रभुर्यतः ।  
 ब्रह्मा वै ब्राह्मणे चास्यात्प्रभुस्त्वसृजदादितः ॥१५१  
 तद्रक्षणाय घाहुभ्यामसृजत् क्षत्रियानपि ।  
 पशुपाल्याशनोत्पत्तौ ऊरुभ्यां च तथा विशः ॥१५२  
 द्विजदास्याय पण्याय पद्मथा शूद्रमकल्पयत् ।  
 यकिञ्चिज्जगतीदात्र भू-गेहाश्च गजादिकम् ॥१५३  
 स्वभावेन हि विप्राणा ब्रह्मा स्वयमरूपयत् ।  
 ब्राह्मणश्चैव राजा च द्वावप्येतौ धृतव्रतौ ॥१५४  
 न तयोरन्तरं किञ्चित् प्रजाधर्माभिरक्षणे ।  
 तस्मान्न ब्राह्मणो दद्यात् कुर्वाणो धर्मतः कृपिम् ॥१५५  
 ग्रामेशस्य नृपस्यापि कियन्तमप्यसौ वलिम् ।  
 अथान्यन् सम्प्रवक्ष्यामि कृपिकृच्छ्रद्विकारणम् ॥१५६  
 संशुद्धः कर्पको येन स्वर्गलोऽस्मिन्नाप्नुयात् ।  
 सर्वसत्योप्रकाराय सर्वयज्ञोपसिद्धये ॥१५७

नृपस्य कोशवृद्धयर्थं जायते कृषिकृन्नर ।  
 कुर्यात्कृषिं प्रयत्नेन सर्वसत्त्वोपजीविनीम् ॥१५८  
 पितृ-देव-मनुष्याणां पुष्टये स्यात् कृषीवलः ।  
 वयांसि चान्यसत्त्वानि भुत्तव्यापीडिता प्रजा ॥१५९  
 उपयुञ्जन्ति सस्यानि क्षेत्रजातानि नित्यशः ।  
 पुष्ट्यर्थं मुष्टिमेकां वा ददत्पार्पं व्यपोहति ॥१६०  
 यस्य क्षेत्रस्य यावन्ति सस्यान्यदन्ति प्राणिनः ।  
 तावन्तोऽपि विमुच्यन्ते पातकात् कृषिकारका ॥१६१  
 कृतान्निकार्यदेहोऽपि ब्राह्मणोऽन्यतमोऽपि वा ।  
 आददानं परक्षेत्रात् पथि गच्छन्न लिखते ॥१६२  
 क्षेत्री विमुच्यते दोषात् नियतं कृषिसम्भवात् ।  
 गृहीत क्षेत्रिणो धान्यं निवेदयति वाण्यपि ॥१६३  
 अनिवेदिते तदर्थं स्यात् पातकं कर्पुकस्य च ।  
 भायशुद्धावतो धर्मो ह्यनेन तद्विशोधयेत् ॥१६४  
 मुष्टिं तु कल्पयन्धान्यं सर्वपार्पं व्यपोहति ।  
 यदिकश्चिदर्थिने दद्याद्विश्रामात्रं च भिक्षवे ॥१६५  
 अन्नं सुसंस्कृतं वापि तेन सीरी विशुद्ध्यति ।  
 सीतायई च यः कुर्यात् सिद्धसस्ये खलागते ॥१६६  
 अनन्तरुतपापोऽपि मुक्तो भवति कर्पुकः ।  
 खल्वयई प्रवक्ष्यामि तत्तुवांणां द्विजातयः ॥१६७  
 विमुक्ताः सर्वपापेभ्यः स्वर्गोक्तस्त्यमवानुयुः ।  
 चतुर्विंश शले कुर्यात्प्राच्यमतिथिनावृत्तिम् ॥१६८

सेकद्वारं पिधानं च विदध्याश्चैव सर्वतः ।  
 एतरोद्गाजोरणास्तत्र विशतस्तु निवारयेत् ॥१६६  
 श्व-शूकर-शृगालादिकाकोलूक-कपोतकान् ।  
 त्रिसंध्यं प्रोक्षणं कुर्यादानीताभ्युक्षणाभ्युभिः ॥१७०  
 रक्षा च भस्मना कुर्याज्जलधाराभिर्गुण्णम् ।  
 त्रिसंध्यमर्चयेत्सीता पाराशरमृषिं स्मरन् ॥१७१  
 प्रेत-भूतादिनामानि न वदेच्च तदप्रस ।  
 सूतिकागृहवत्तत्र वर्तयं परिरक्षणम् ॥१७२  
 हरन्त्यरक्षितं यस्माद्रक्षासि सर्वमेव हि ।  
 प्रशस्तदिनपूर्णाहे नाऽपराहे न सन्ध्ययोः ॥१७३  
 धान्योन्मानं सदा कुर्यात् सीतापूजनपूर्वकम् ।  
 यजेत् खलमिक्षाभिः काले रोहिण एव हि ॥१७४  
 भक्षया सर्वं प्रदत्तं हि तत्समस्तमिहाक्षयम् ।  
 खलयश्चे दक्षिणैषा ब्रह्मणा निर्मिता पुरा ॥१७५  
 भागवेयमयीं कृत्वा तां गृहन्वीह मामिकाम् ।  
 शतप्ररत्नादयो देवा पितरः सोमपादयः ॥१७६  
 सनकादिमनुष्याश्च ये चान्ये दक्षिणाशनाः ।  
 एतानुदित्य विप्रेभ्यो प्रदद्यात् प्रथमं हली ॥१७७  
 विवाहे खलयश्चे च सङ्क्रान्तौ महर्षेभ्यश्च ।  
 पुत्रो जाते व्यतीपाते दत्तं भवति चाक्षयम् ॥१७८  
 अन्येषामर्थिना पश्चात्कारुणाणां ततः परम् ।  
 दीनानामप्यनाथानां कुष्ठिनां कुशरीरिणाम् ॥१७९

कृषीवा-ज्ज्व-बधिरादीनां सर्वेषामपि दीयते ।  
 वर्णानां पतितानां च ददद्भुक्तानि सर्पयेत् ॥१८०  
 चाण्डालाश्च श्वपाकाश्च प्रीणात्युच्चावचास्तथा ।  
 ये केचिदागतास्तत्र पूज्यास्तेऽतिथिवद्द्विजाः ॥१८१  
 स्तोरुश सीरिभि सर्वैर्वर्णिभिर्गृहमेधिभिः ।  
 दत्त्वा सूनृतया घाचा क्रमेणाथ विसर्जयेत् ॥१८२  
 तत्कृत्वा स्वगृहं गत्वा श्राद्धमाभ्युदयं चरेत् ।  
 शरद्रेमन्त-वासन्त-नवान्नैः श्राद्धमाचरेत् ॥१८३  
 नो ऽदत्त्वास्तददर्शनीयादर्शश्चेदघमश्नुते ।  
 कृपावृत्पाद्य धान्यानि खल्वज्ञ समाप्य च ॥१८४  
 सर्वसत्त्वहिते युक्त इहामुत्र सुग्री भवेत् ।  
 कृपेरन्यत्र नो धर्मो न लाभः कृपितोऽन्यतः ॥१८५  
 सुखं न कृपितोऽन्यत्र यदि धर्मेण वर्तते ।  
 अथस्तत्वं निरग्नत्वं कृपितो नैव जायते ॥१८६  
 अनातिथ्यं च दुःखित्वं गोमतो न कदाचन ।  
 निर्धनत्वमसत्त्वत्वं विद्यायुक्तस्य कर्हिचित् ॥१८७  
 अस्मानित्वमभ्यत्यं न सुशीलस्य कर्हिचित् ।  
 वदन्ति मुनयः केचित् कृष्यादीनां विशुद्धये ॥१८८  
 लाभस्यांशप्रदानं च सर्वपा शुद्धिरुद्धवेत् ।  
 प्रतिग्रहात् चतुर्थांशं वणिग् लाभात् तृतीयकम् ॥१८९  
 कृपितो विंशतिं चैव ददतो नास्ति पातकम् ।  
 राज्ञो दत्ता च षड्भागं देवतानां च विंशकम् ॥१९०



त्रयस्त्रिंशच्च विप्राणां कृषिकर्मां न लिख्यते ॥ -  
 कृष्या यथोत्पाद्य यवादिकानि  
 धान्यानि भूयासि मखान्विधाय ।  
 मुक्तो गृहस्थोऽपि पराशरः प्राक्  
 तस्या मया कश्चिदद्यादि शेषः ॥१६१  
 देवा मनुष्याः पितरश्च सर्वे  
 साध्याश्च यक्षाश्च सकिन्नराश्च ।  
 गावो द्विजेन्द्राः सह सर्वसत्त्वैः  
 कृष्यन्नपुमानि मनाक् करोति ॥१६२  
 यज्ञैतदालोच्य कृषिं विदध्यान्  
 लिप्येन्न पापेन स भूभवेन ॥  
 सीरेण तस्यातिविदारितापि  
 स्याद्भूतधात्री वनदानदात्री ॥१६३  
 पट्कर्माणि कृषिं ये तु कुर्युर्हात्वा विधिं द्विजाः ।  
 तेऽमरादिवरप्राप्ताः स्वर्गलोकमवाप्नुयुः ॥१६४  
 पट्कर्मभिः कृषिः प्रोक्ता द्विजानां गृहमेधिनाम् ।  
 गृहं च गृहणीमाहुस्तद्विवाहो मयोच्यते ॥१६५  
 इति श्रीगृह्यपराशरीये धर्मशास्त्रे सुनतप्रोक्तायां स्मृत्या  
 कृषिकर्मसीतायज्ञोपधर्मौ नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥

॥ अथ षष्ठोऽध्यायः ॥

अथ कन्याविवाहवर्णनम् ।

स्वयं च वाहितैः क्षेत्रैर्धान्यैश्च स्वयमर्जितैः ।  
 कुर्याद्विवाहयोगादि पञ्चयज्ञाश्च नित्यशः ॥१॥  
 अष्टौ विवाहा नारीणां संस्कारार्थं प्रकीर्तिताः ।  
 ब्राह्मादिक्रमेणैतान्सम्प्रवक्ष्याम्यतः पृथक् ॥२॥  
 जात्यादिगुणयुक्ताय पंस्त्वे सति वराय च ।  
 कन्याऽलङ्कृत्य दीयेत विवाहो वैधसः स्मृतः ॥३॥  
 रेतो मज्जति यस्याप्सु मूत्रं च ह्लादि फेनिलम् ।  
 स्यात् पुमांश्चक्षुषौ रेतैर्हि प्ररीतस्तु पण्डितः ॥४॥  
 यो यज्ञो वर्तमाने तु ऋत्विजे कर्म कुर्वते ।  
 कन्याऽलङ्कृत्य दीयेत विवाहः स तु दैविकः ॥५॥  
 वराय गुणयुक्ताय विदुषे सदृशाय च ।  
 कन्या गोद्वयमादाय दीयेताऽऽर्पः स उच्यते ॥६॥  
 कन्या चैत्र वरश्चोभौ स्वेच्छया धर्मचारिणौ ।  
 स्यातामिति च यत्रोत्तवा दानं कायविधिस्त्वयम् ॥७॥  
 एतावदेहि मे द्रव्यमित्युक्त्वा प्राग्वराय च ।  
 यत्र कन्या प्रदीयेत स वै दैत्यविधिः स्मृतः ॥८॥  
 यत्रान्योन्याभिलाषेण उभयोर्वर-कन्ययोः ।  
 तयोस्तु यो विवाहः स्याद्भान्धव प्रयित स तु ॥९॥  
 युद्धे हत्वा बलात् कन्या यत्राऽऽच्छिन्नाऽपहत्य च ।  
 उच्यते स तु विद्वद्भिर्विवाहो राक्षसः स्मृतः ॥१०॥

मुत्रा कापि प्रमत्ता वा द्यलात् कन्या प्रगृह्यते ।  
 सर्वेभ्यः स तु पापिष्ठ. पैशाचः ग्रथितोष्टमः ॥११  
 आद्या आद्यस्य षट् प्रोक्ता धर्म्याश्चत्वार एव हि ।  
 चत्वारोऽन्ये द्वितीयस्य आद्यस्य च द्वयस्य च ॥१२  
 पञ्चमश्च तथा षष्ठ. स्मृतौ तौ त्रि-चतुर्ययोः ।  
 द्वितीयस्यापि ये प्रोक्ता एतयोस्ते न चाष्टमः ॥१३  
 वैधसाद्यनुरूपेण द्वितीयः परयोः स्मृतः ।  
 सर्वे सप्तममेकस्य द्वितीयस्यैव कीर्तिताः ॥१४  
 अन्त्यापत्यधर्मौ प्रोक्ताद्युद्धाहौ शक्तिसूनुना ।  
 तथा युगस्वरूपेण प्रोक्तो दैत्यस्तु मानुषः ॥१५  
 तार्यन्ते प्राक्तनोऽधस्ताच्चतुरोऽऽप्रविद्याहजैः ।  
 स्वात्मना द्विगुणान् धर्म्यान् दश-सप्त-त्रयश्च षट् ॥१६  
 स्त्रीणामाजन्मशर्मार्थं वंशशुद्धौ प्रयत्नवान् ।  
 धरं हि धर्येद्विद्वाज्जात्यादिगुणसंपुत्तम् ॥१७  
 जाति-विद्या-वयः-शक्तिरारोग्यं बहुपक्षता ।  
 अर्थित्वं वित्तसम्पत्तिरष्टावेते वरे गुणा ॥१८  
 जातिर्विद्या च रूपं च शीलं चैव नवं वयः ।  
 अरोगित्वं विशेषेण पुंस्त्रे सत्यपि लक्ष्येत् ॥१९  
 जाति रूपं च शीलं च वयो नवमरोगिताम् ।  
 स्वाचारत्वं विशेषेण संलक्ष्य वरमाश्रयेन् ॥२०  
 सज्जानि रूप-वित्तं च तथाऽप्रवयसं दृढम् ।  
 सन्तोषजननं स्त्रीणां प्रज्ञावानाश्रयेद्भरम् ॥२१

- न जातिं न च विद्यां च वित्तं नाऽचरणं क्षिप्रः ।  
 • किन्तु ताः प्रीतिमिच्छन्ति तस्मात् प्रीतिकरं श्येत् ॥२२  
 पित्रा यत्र सगोत्रत्वं मात्रा यत्र सपिण्डता ।  
 न च तामुद्वहेत्कन्यां दारकर्मण्यनादृताम् ॥२३  
 कन्यायाश्च वरस्यापि यत्रोभयोर्मवेदतिः ।  
 तथा कन्यां वरो धीमान्जरयेद्वंशशुद्धये ॥२४  
 नाना मतानि सूर्येण सतां सन्ति वरम्प्रति ।  
 सन्तानस्य विशुध्यर्थं जात्यादिषु च नाऽन्यतः ॥२५  
 दूरस्थानामविद्यानां मोक्षधर्मानुयायिनाम् ।  
 शूराणां निर्धनानां च न देया कन्यकाः दुर्धैः ॥२६  
 नाऽतिदूरे न चाऽसन्न अत्याकृते चाऽतिदुर्बले ।  
 वृत्तिहीने च मूर्खे च पदसु कन्या न दीयते ॥२७  
 वर्जयेदतिरिक्ताङ्गी कन्यां हीनाङ्गरोगिणीम् ।  
 अतिलोम्रीं हीनलोम्रीमवाचमतिवाग्युताम् ॥२८  
 पिता पितामहो भ्राता माता मातामहोऽपि च ।  
 कन्यादाः स्युः क्रमेणैते पूर्वाऽभावे परः परः ॥२९  
 अधिकारी यदा न स्यात्तदाऽऽख्याय नृपस्य स्त्रा ।  
 तद्विरा च स्वयं गम्यं कन्यापि वरयेद्वरम् ॥३०  
 पिङ्गला कपिला कृष्णा दुष्टवाक्काकनिश्चनाम् ।  
 स्थूलाङ्ग-जङ्घ-पादां च सदा चाऽग्रियवादिनीम् ॥३१  
 त्यजेन्नग-नदीनाङ्गी पक्षि वृक्षर्क्षनामिकाम् ।  
 अहि-प्रेष्या-ऽन्त्यनाङ्गी च तथा भीषणनामिकाम् ॥३२

स्त्रियश्च यत्र पूज्यन्ते सर्वदा भूषणादिभि ।  
 देवा पितृ मनुष्याश्च मोहन्ते तत्र यदमनि ॥४४  
 स्त्रियस्तुत्रा स्त्रिय साभाद्रुष्टाश्च दुष्टदेवता ।  
 पर्षयन्ति कुल तुल नाशयन्त्यपमानिता ॥४५  
 नाऽपमान्या स्त्रिय सद्भि पति अशुर देवरे ।  
 भ्रात्रा पित्रा च मात्रा च तत्पापघुभिरेव च ॥४६  
 स्त्रियाश्च पुण्यायापि यत्रोमयोर्मन्दधृनि ।  
 तत्र धर्मा ऽर्थात्मा स्युस्तन्धीना यत्तदरमी ॥४७  
 पण्डमानि नृजा तेषां येषां भाया पतिशता ।  
 पतिभोक तु तां याति तपसा येन योगवित् ॥४८  
 पतिप्रता तु माप्नी स्त्री अपि दुष्कृतकारिणम् ।  
 पतिमुद्धृत्य याति शां केकीव पतितोदगाम् ॥४९  
 जीवन्त्यापि मृतो यापि पतिरेव प्रभु स्त्रिया ।  
 नायव देवतं तासां तमेव प्रभुमप्येव ॥५०  
 मनसापि हि दुष्ण स्त्री यान्यभावा प्रिय पतिम् ।  
 सा याति नरफ घोरे तद्द्रोदादणुतोऽपि च ॥५१  
 नियोज्य गृहकृत्येषु सर्वदा ता नृभि स्त्रिय ।  
 गृहात्थासत्तचित्तास्तास्तदेवार्हन्ति शोचितुम् ॥५२  
 स्त्रीणामष्टगुण कामो व्यवसायश्च षड्गुण ।  
 लज्जा चतुर्गुणा तासामातारश्च तदर्धव ॥५३  
 न वित्त नैव जातिश्च नाऽपि रूपमपेक्षते ।  
 किन्तु ताभि पुमान्नेव इति मत्वेव भुज्यते ॥५४

विकुर्वाणाः स्त्रियो भनुरायुष्य-धननाशकाः ।  
 अनायासेन तास्तस्य परासक्ता भवन्ति हि ॥१५५  
 नारीणां च नदीनां च गतिर्न ज्ञायते बुधैः ।  
 कुलं कूलप्रपाते च कालक्षेत्रो न विद्यते ॥१५६  
 चेष्टा-चारित्र-चित्राणि देवा नैव विदुः स्त्रियाम् ।  
 किं पुनः प्राणिमात्रास्तु सर्वथा नष्टबुद्धयः ॥१५७  
 तस्मात्ताः सर्वथा रक्षयाः सर्वोपायैर्नृभिः सदा ।  
 श्वशुरैर्देवराद्यैस्ताः पितृ-भ्रात्रादिभिस्तथा ॥१५८  
 विवाहात् प्राक् पिता रक्षे यौवने तु पतिस्ततः ।  
 रक्षेयुर्वार्यके पुत्रा नास्ति स्त्रीणां स्वतन्त्रता ॥१५९  
 स्यातन्त्र्येण विनश्यन्ति कुलजा अपि योऽपितः ।  
 अस्मात्तन्त्र्यमतः स्त्रीणां प्रजापतिरक्ल्पयन् ॥१६०  
 अशौचाश्च सशौचाश्च अमेध्या अपि पायनाः ।  
 दुर्वाचोऽपि सुवाचस्तास्तस्मादन्त्रेऽप्येक्यताः ॥१६१  
 शौचं वाचं च मेध्यत्वं सोम-गन्धर्व-पावकाः ।  
 ददुस्तासां वरानेतास्तस्मान्मेध्यतराः स्त्रियः ॥१६२  
 भर्तारो यो भविष्यन्ति युष्मच्चित्तानुसारिणः ।  
 यथेन्द्राकामिनः सर्वे तासामिन्द्रो वरं ददौ ॥१६३  
 तस्मात्तदिच्छया प्रीतिं पुमानिच्छेत्तया स्त्रियः ।  
 रक्षणीयास्ततस्मास्तु सर्वभावेन योषितः ॥१६४  
 सामाह मृक्यमित्याद्यैर्देवैर्यस्ता नृणां तनौ ।  
 अर्धकाया नराणां ताः स्त्रीणां जातः पृथक् व्रतम् ॥१६५

न दिवापि क्षियं गच्छेदिच्छंस्तदिच्छयापि च ।  
 न पर्वसु न सन्ध्यासु नाऽऽद्यर्तुचतुरात्रिषु ॥६६  
 यन्ध्याष्टमे ऽधिवेत्तव्या नवमे च मृतप्रजा ।  
 एकादशे स्त्रीजननी सद्यस्त्रप्रियवादिनी ॥६७  
 नोदक्यां न दिवा गच्छेत् सगर्भां च व्रतस्थिताम् ।  
 अधिगच्छेद्विद्वान्यस्तदायुः क्षयमेति च ॥६८  
 न वक्त्रेऽभिगमं कुर्यान् पाणिग्राही स्वयोपितः ।  
 कुर्याच्चेत्पितरस्तस्य पतन्ति नरकेऽशुचौ ॥६९  
 भार्याधीनं मुखं पुसां भार्याधीनं गृहं धनम् ।  
 भार्याधीना सुपोत्पत्तिर्भार्याधीनः शुभोदयः ॥७०  
 यत्र भार्या गृहं तत्र भार्याहीनं गृहं वनम् ।  
 न गृहेण गृहस्थः स्याद्भार्यया कथ्यते गृही ॥७१  
 गृही स्याद्गृहधर्मेण स वै पञ्चमः प्रादिकः ।  
 तद्धीनो न गृहस्थः स्यात्कुर्यात्तं यन्नतस्ततः ॥७२  
 पञ्चयज्ञविधानेन कुर्यात्पञ्च महामयान् ।  
 श्रौते वा यदि वा स्मार्त्ते पञ्चयज्ञात्र ह्यपयेत् ॥७३  
 कुर्युः पञ्चमहायज्ञान् सूनादोषापनुत्तये ।  
 पञ्चसूना भवन्त्यत्र सर्वेषां गृहमेधिनाम् ॥७४  
 कण्डन्युदककुम्भी च चुल्ली पेयण्युपस्करः ।  
 यदाऽऽदौ वेदमारभ्य स्नात्वा भक्त्या द्विजोत्तमः ॥७५  
 अध्यापयेद्द्विजाञ्छिष्यान्स वै ब्रह्ममखः स्मृतः ।  
 यत् स्नात्वाऽहरहः सर्वान्देवाञ्च मनुजान्पितॄन् ॥७६

तर्पयेदम्भसा भक्त्या पितृयज्ञः स वै मतः ।  
 श्रौते वा यदि वा स्मार्ते यज्जुहोति हुताशने ॥७७  
 विधिवन्नित्यशो विप्रः स तु दैवमयः स्मृतः ।  
 दशस्वारासु यः कुर्याद्दधुतशेषाद्बलिं द्विजः ॥७८  
 इन्द्रादिभ्यस्तथाऽन्येभ्यः स वै भूतमसो मतः ।  
 समायातातिथिं भक्त्या यज्ञोजयति नित्यशः ॥७९  
 अन्यानभ्यागताश्चैव सा मनुष्येष्टिरच्यते ।  
 एवं पञ्चमसान् कुर्वन्मनु-मांसाऽऽज्य-पायसैः ॥८०  
 स सन्तर्प्य पितृन्देवान्मनुष्यान् स्वर्गमाप्नुयात् ।  
 गृहस्था य उपामीरन् धारं धेनुं चतुस्तनीम् ॥८१  
 स्वर्गोक्तं पितृणां च पूज्यास्तेऽतिविधिविधिः ।  
 चत्वारस्तु स्तना एते ये चतुर्वेदसंज्ञिताः ॥८२  
 स्वाहाकारो वपट्कारो हन्नकारस्तथा स्वधा ।  
 देवानां भागधेयो हौ अन्ये च मनुजन्मनाम् ॥८३  
 पितृणां च चतुर्थेऽनु इति वेदनिदर्शनम् ।  
 इति निर्वर्त्य विधिवत्सकलं कर्म नैत्यकम् ॥८४  
 प्राणामिहोत्रविधिना भुञ्जीताश्रमधापहम् ।  
 अदत्त्वा षोडशवर्गस्य ह्यकृत्वाऽध्यापनादिकम् ॥८५  
 अमाक्षिकं च योऽश्नीयात्सोऽश्नीयात्किञ्चित्प द्विजः ।  
 प्राङ्मुखादिकमेणाऽश्नन्नायुः कीर्तिं धियो ऋतम् ॥८६  
 अविविधिविधिगत्यासु यत्तदश्नन्ति राक्षसाः ।  
 अथ प्राणामिहोत्रस्य श्रूयतां द्विजसत्तमाः ॥८७



वक्ष्यमाणो विधिः पुण्यः प्रेत्य चेह च पावनः ।  
 यो विधिर्देवताभ्यस्तं संसारबन्धनाशकृत् ॥८८  
 तद्विदस्तु दिवं यान्ति मुक्ता देवाहणादपि ।  
 उद्वेद्यद्विदित्वाश्नन्पुण्यानेकविंशतिम् ॥८९  
 सर्वेष्टिफलभाग्यायाद्वैधर्म्यं क्षयमक्षयम् ।  
 यः कालाकालविद्धिप्रो नैनःस्पर्शां स कर्हिचित् ॥९०  
 सोऽसृष्टैना विशेषतः यद्वत्वा नैति संसृतौ ।  
 दरा पञ्चांगुलव्यासं नासिकाया घट्टि स्थितम् ॥९१  
 जीवो यत्र विद्युद्भेदत सा कला पोडशी स्मृता ।  
 सर्वमेतत्तया व्याप्तं त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥९२  
 ब्रह्मयिद्येति विख्याता वेदान्ते च प्रविष्टिता ।  
 न वेदं वेदमित्याहुर्वैद्यनाम परं पदम् ॥९३  
 तत्पदं विदितं येन स विप्रो वेदपारगः ।  
 आहुतिः सा परा ज्ञेया मा च शान्तिः प्रकीर्तिता ॥९४  
 गायत्री सा च विज्ञेया सा च सन्ध्या प्रकीर्तिता ।  
 तज्जाप्यं तद्य वै ज्ञेयं तद्व्रतं तदुपासितम् ॥९५  
 तां कलां यो विजानाति स कलाज्ञो द्विजः स्मृतः ।  
 तत्तुरीयपदं शान्तं यस्मिंस्त्रीनमिदं जगत् ॥९६  
 तज्ज्ञात्वा परमं तत्त्वं न भूयः पुरुषो भवेत् ।  
 प्राणमार्गाम्नाथः प्रोक्तास्तिष्ठो नाड्यः प्रकीर्तिताः ॥९७  
 ईडा च पिङ्गला चैव सुषुम्ना च तृतीयका ।  
 ईडा च वैष्णवी नाडी ब्रह्माणी पिङ्गला स्मृता ॥९८

सुपुत्रा चेश्वरी नाडी त्रिधा प्राणप्रदाः स्मृताः ।  
 उत्तरं दक्षिणं ज्ञेयं दक्षिणोत्तरसंक्षितम् ॥६६  
 मध्ये तु विपुलं ज्ञेयं पुटद्वयविनि स्मृतम् ।  
 संक्राति-विपुत्रे चैव यो विजानाति विग्रहे ॥१००  
 नित्यमुक्त स योगी च ब्रह्मनादिभिर्हन्यते ।  
 मध्याह्ने चार्धरात्रे च प्रभातेऽस्तमये तथा ॥१०१  
 विपुषन्तं विजानीयात्पुटद्वयविनि स्मृतम् ।  
 हृत्पुण्डरीकमरणीं मनो मन्यानमेव च ॥१०२  
 प्राणरज्ज्वा न्यसेदग्निमात्माभ्यर्च्युं प्रतिष्ठितः ।  
 ज्वालेत्पूषेणाऽग्निं स्वापयेत्कुम्भकेन तु ॥१०३  
 रेचकेणोर्ध्ववक्त्रेण ततो होमं करोति यः ।  
 यत्तद्दधृदि स्थितं पद्ममधोनालं व्यवस्थितम् ॥१०४  
 तस्मिन्विकसिते पद्मे प्राणो वायुर्विसर्पति ।  
 वामहस्तवृते पात्रे दक्षिणे चाम्भसि स्थिते ॥१०५  
 सनादमुद्यरेद्विप्रो अच्छिन्नाग्रं तु पूरयेत् ।  
 पूरणात् पूरकं प्राहुर्निश्चलं कुम्भकं भवेत् ॥१०६  
 निर्गच्छति शनैर्नायू रेचकं स विनिर्दिशेत् ।  
 स्वाहान्तैः प्रणवागैश्च स्वस्वनाम्ना च वायुभिः ॥१०७  
 जीवात्मा योजितः पष्ठः पडाहुत्या हुतः भवेत् ।  
 जिह्वादत्तं प्रसेदन्नं दन्तैश्चैव न तत् स्पृशेत् ॥१०८  
 दशनैः स्पृष्टमात्रेण पुनराचमनं चरेत् ।  
 मुख आहवनीयोऽग्निर्गार्हपत्यस्तथोदरे ॥१०९

हृदये दक्षिणाम्निश्च गृह्याग्निश्चापि दक्षिणे ।  
 सभ्यश्चोत्तरगतश्चिन्त्य इत्यग्निस्मरणक्रम ॥११०  
 प्राणाशेषाग्निहोत्रादि चिन्तयेत्तद्वदेव नु ।  
 होतारं प्राणमित्याहुर्मूढातारमपानवम् ॥१११  
 ब्रह्माणं व्यानमित्येके उन्नानोऽध्ययुमित्यपि ।  
 समानं चेह यज्वानमिति श्रुत्विक्त्रमं युध ॥११२  
 अहङ्कारं पशुं कृत्वा प्रणवं यूपमित्यपि ।  
 बुद्धिरित्यरणिः पृथ्वी लोमानि च कुशा स्मृता ११३  
 मनो विभक्ता द्यग्निजहा इति तज्ज्ञा प्रचक्षते ।  
 कृत्वा निमात्रमोद्धारं दुद्धारं च तथा पुन ॥११४  
 वत्तिष्ठ जननाथाऽग्ने हरित्योदितपिद्मल ।  
 सप्तपरिधये तुभ्यं क्षुद्रहिदैवत च यत ॥११५  
 विजिह्व जाठरायाऽग्ने स्वाहाप्राणाय व्यत्यय ।  
 इन्द्रगोपकपर्णाय त्रिजिह्वायाग्निदैवतम् ॥११६  
 ॐ स्वाहेति अपानाय स्वाहाकारान्तमुषरेत् ।  
 गौक्षीरसमवर्णाय पर्जन्यं वह्निदैवतम् ॥११७  
 स्वाहोदानाय सोद्धारमनलाय परार्चये ।  
 ताडित्समानवर्णाय वाय्वग्निदैवताय ते ॥११८  
 ॐ स्वाहा च समानाय ॐ स्वाहा चाह वेधसे ।  
 तर्जनी-मध्यमा-ऽङ्गुष्ठैर्लघ्ना प्राणस्य चाहुति ॥११९  
 कनिष्ठा-ऽनामिका-ऽङ्गुष्ठैर्व्यानस्य परिकीर्तिता ।  
 मध्यमा-ऽनामिका-ऽङ्गुष्ठैरपानायाहुतिः स्मृता ॥१२०

मध्यमा-ऽन्तामिकास्त्वन्यामुदाने जुहुयाद्वयुधः ।  
 समाने सर्वैरुद्धृत्य आहुतिः स्यात्समानतः ॥१२१  
 जलं पीत्वा तु तृप्यन्ति रैचयेच्च शनैः शनैः ।  
 ततोऽन्यद्भव्यमश्नीयात्पूण्यायोदरस्य च ॥१२२  
 विधिं प्राणामिहोत्रस्य ये द्विजा नैव जानते ।  
 अयानेन तु मुञ्चन्ति तेषां सुखमपानवत् ॥१२३  
 यो ज्ञात्वा तु विधिं मुहुक्ते यथोक्तमिदमाचरेत् ।  
 इहामुत्र च पूज्यत्वं ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥१२४  
 त्रि सप्तकुलमुद्धृत्य दातुरप्यक्षयं भवेत् ।  
 दातुरपि हि यम्पुण्यं भोक्तुश्चैव हि तत्फलम् ॥१२५  
 दाता चैव तु भोक्ता च तावुभौ स्वर्गगामिनौ ।  
 यो जानाति विधिं चेभं सभवेद्ब्रह्मवित्तमः ॥१२६  
 एकं पिबति गण्डूषं त्यजेद्दधं धरातले ।  
 स हतः पितृ-दैवत्यमात्मानं नरकं प्रजेत् ॥१२७  
 रहस्यं सर्वशास्त्रेषु सर्वशास्त्रेषु दुर्लभम् ।  
 ज्ञानानामुत्तमं ज्ञानं न कस्यचित् प्रकाशयेत् ॥१२८  
 विप्राणामिहोत्रस्य ये द्विजा नैव जानते ।  
 ज्ञानानि योऽप्रकाश्यानि पुंसामविदुषां वदेत् ॥१२९  
 स प्रणाश्य फलं तेषामात्मानं नरकं नयेत् ।  
 योऽज्ञात्या ह्यप्रकाश्यानि पुंसामविदुषां वदेत् ॥१३०  
 प्राणायामफलं हत्वा आत्मानं नरकं नयेत् ।  
 योऽश्नीयाद्विधिवद्विप्रः कृतपात्रपरिमहः ॥१३१

पूजितान्नमवाग् जुष्टं सापोशानं ससाक्षिकम् ।  
 वाग्यतो न्यस्तपात्रे च विप्र-क्षत्र-विशां क्रमात् ॥१३२॥  
 वाग्यतो न्यस्तपात्रस्त्रीन् मासानष्टाचपि द्विजः ।  
 तस्य त्रिरात्रं पुण्यातिर्दानेऽपि कथयो विदुः ॥१३३॥  
 चतुस्त्रिकोणं घृतं च विप्र-क्षत्र-विशां क्रमात् ।  
 प्राहुः परिहृतं सन्तस्तद्धीनान्नं तु राक्षसम् ॥१३४॥  
 गृहीयात्प्रागपोशानं तथा भुक्त्वा सकृत्स्वपः ।  
 अनन्तरमघृतं तत्तथाहुःकमन्नं द्विजन्मनाम् ॥१३५॥  
 काले भुक्त्वा समुत्थाय प्रेक्ष्य विप्रं समीक्ष्य च ।  
 अहःपतिं तत्र स्थित्वा चिन्तयेद्बहु कृत्यक्रम ॥१३६॥  
 भार्या भोजनशेलाया भिक्षां सप्तऽथ पञ्च वा ।  
 दत्त्वा शेषं समश्नीयात्तापत्य-भृत्यकैः सह ॥१३७॥  
 निर्वर्त्य सकलं सापि किञ्चित्स्थित्वा सुखेन तु ।  
 स्वस्त्रीयशक्तिकार्येषु सापि स्यात्तत्परा पुनः ॥१३८॥  
 उपरस्य पश्चिमा सन्ध्या हुत्वा चैव हुताशनम् ।  
 क्रिञ्चित्पश्चात्समश्नीयात्सार्यं प्रातरिति श्रुति ॥१३९॥  
 स्वाध्यायमभ्यसेत्क्रिञ्चित्पश्चामद्वयं शयीत च ।  
 शयानो मन्थनी यामौ ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥१४०॥  
 सुशयने शयीताथ एकान्ते च स्त्रियामह ।  
 गोपनं मैथुनादीनां वदन्ति मुनिपुङ्गवाः ॥१४१॥  
 ऋतुक्षपासु पुत्रार्थी आधानविधिना द्विजः ।  
 प्रसाद्य भस्मना योनिमिति मन्त्रनिर्दर्शनम् ॥१४२॥

कृत्वाऽऽधानविधानं तु स्त्रीयोगमभ्यसेत्पुनः ।  
 मन्थेद्विकृतो योनौ विकाराद्विकृताः प्रजाः ॥१४३  
 ब्राह्मे मुहूर्तं च थाय प्रातः सन्ध्यामुपक्रमेत् ।  
 आसूर्यदर्शनात् प्रातः सायं चैवर्षददर्शनात् ॥१४४  
 वह्निःसन्ध्यामुपासीत सम्प्राप्तावम्भतः सदा ।  
 उपासिता वह्निःसन्ध्या विशिष्टफलदा भवेत् ॥१४५  
 अनृतं मद्यगन्धं च दिवा मैथुनमेव च ॥  
 पुनाति वृषलस्याश्रं सन्ध्या वहिरुपासिता ॥१४६  
 सिन्दूराण्णमं भाति नभो धावद्वितारकम् ।  
 उदयेऽस्तमये भानोस्तावत्सन्धेति शक्तिजः ॥१४७  
 आधानतो द्वितीये तु मासे पुंसधनं भवेत् ।  
 सीमान्तोन्नयनं पण्डे कार्यं मासेऽष्टमे ऽपि वा ॥१४८  
 जातस्य जातकर्म स्याद्विधिवच्छ्राद्धपूर्वकम् ।  
 दिने चैकादशे नामकर्म स्यात् च द्विजन्मनाम् ॥१४९  
 तुर्ये निष्क्रमणं मासे पण्डेऽन्नप्रासनं तथा ।  
 चूडाकर्म तृतीयेऽब्दे कार्यं वा कुलधर्मतः ॥१५०  
 सर्वं स्त्रिया विमन्त्रं तु कार्यं कायविशुद्धये ।  
 यस्य नश्युर्द्विजस्यैताः त्रियाश्चैव कथंचन ॥१५१  
 स धातयःसन् परित्याज्यो द्विजो यस्माद् द्विजन्मनाम् ।  
 मुञ्जमोर्ण-शणानां तु त्रिवृता रशना स्मृता ॥१५२  
 कार्पास-शणमेपौर्णान्युपवीतानि वर्णशः ।  
 पलाश-वट-पीलूनां दण्डाश्च क्रमशः स्मृताः ॥१५३

काष्णं च रौरवं वास्तमजिनानि द्विजन्मनाम् ।

शिरो ललाट-नासान्ताः क्रमाद्वण्डाः प्रकीर्तिताः ॥१५४

अग्रणाः सत्रयोऽङ्गुष्ठा उक्ताः शुभकरा नृणाम् ।

गायत्र्या त्रिष्टुप्-जगत्या त्रयाणामुपनायनम् ॥१५५

गायत्र्यामविशेषो वा मुञ्जादिष्वपरेषु च ।

तत्सवितुस्तां सवितुर्विश्वा रूपाणि वा क्रमात् ॥१५६

औपनायनिका मन्त्रा विप्रादीनामुदाहृताः ।

ब्राह्मणो विप्रगेहेषु नृपस्तेषूत्तमेषु च ॥१५७

वैश्यो विप्र-नृपेष्वेव धुर्याद्विक्षां स्ववृत्तये ।

एका न न द्विजोऽग्नीयाद्ब्रह्मचाख्यते स्थितः ॥१५८

भिक्षाव्रतं द्विजातीनामुपवाससमं स्मृतम् ।

प्रतिग्रहो न भिक्षा स्यान्न ताया परपाकता ॥१५९

सोमपानसमा भिक्षा अतोऽग्नीत स भिक्षया ।

भिक्षया यस्तु भुञ्जीत निराहारः स उच्यते ॥१६०

भिक्षामनभिशस्तेषु स्याचारेषु द्विजेषु च ।

भिक्षेत नित्यं क्रमशो गुरोः कुलं विवर्जयेत् ॥१६१

स्वसारं मातरं चापि मातृष्वसारमेव च ।

भिक्षेत प्रथमो भिक्षा या चान्या न विमानयेत् ॥१६२

‘भवति भिक्षा मे देहि’ ‘भिक्षां भवति देहि मे’ ।

‘भिक्षां मे देहि भवति’ क्रमेणैवमुदाहरेत् ॥१६३

द्वादशाब्दं व्रतं धार्यं षट्त्रय्यब्दं तु श्रुतिम्प्रति ।

आदित्याब्दे त्यजेत्तद्वै दत्त्वा तु गुरवे वरेम् ॥१६४

त्रयस्तु स्नातकाः प्रोक्ताः विद्यात्रतोपसेविनः ।

विद्यो समाप्य यः स्नायाद्विद्यास्नातक उच्यते ॥१६५

समाप्य च घृतं यस्तु घृतस्नातक उच्यते ।

यज्ञं समाप्य यः स्नाति स द्विनामाऽभिधीयते ॥१६६

द्वयं समाप्य यः स्नायात्स द्विनामाऽभिधीयते ।

अष्टैक-द्वादशाब्दानि सगर्भाणि द्विजन्मनाम् ॥१६७

मुल्यकालो घृतस्यैव ह्यन्य उक्तो विपर्यये ।

द्विगुणाब्देषु कर्तव्या क्रमादुपनतिर्द्विजैः ॥१६८

हीनगायत्रिका प्रात्या उक्तकालावनन्तरम् ।

नाध्याप्या नैत्र चोद्वाद्या व्यवहारविवर्जिताः ॥१६९

न याज्या नार्यकार्येषु प्रयोज्यास्त इति श्रुतिः ।

स्त्रीवज्रिलोम यक्त्रा ये तिलोमदेह-वक्षसः ॥१७०

उक्षोरकाऽनपयाश्च अदेश्यास्तेऽपि गर्हिताः ।

येऽजस्रं विहितं कुर्युः प्राप्नुयुस्ते सदा शुभम् ॥१७१

दीर्घायुष्यमदारिद्र्यं सुप्रजास्त्वमरोगिता ।

अगर्हितत्वं लोकेऽत्र विदुरनिपिद्धकारिणः ॥१७२

क्षीणायुस्त्वं दरिद्रत्यमप्रजास्त्वं च रोगिता ।

गर्हितत्वं च लोकेषु विदुर्निपिद्धकारिणः ॥१७३

प्रातर्वा यदि वा सायं नाद्यादन्नमनर्चितम् ।

नानाद्यमनपोशानं शुभप्रेषुद्विजन्मना ॥१७४

आपोशानं त्रिना नाद्यान्नाद्यादन्नमनर्चितम् ।

अनार्यं न दिवा सायं शुभमिच्छन् समस्तुते ॥१७५



'पोडशाब्दानि विप्रस्य द्वाविंशतिर्नृपस्य च ।'  
 चतुर्विंशतिरन्यस्य घ्रात्यास्ते स्थुरतःपरम् ॥१८६  
 उपनेया न ते विप्रैर्नाध्याप्याः शूद्रधर्मिणः ।  
 व्ययहेर्या नैव याज्या इति धर्मविदो विदुः ॥१८७  
 स्त्रीणामुद्वाह एको वै वेदोक्तः पावनो विधिः ।  
 स्त्री-पुंसोर्यत्र विन्यासस्तयोरन्योन्यमुच्यते ॥१८८  
 स्वस्मिन्यस्माद्विभर्त्येषा पतिं, विभर्ति सोऽपि ताम् ।  
 अतो भार्या च भर्ता चेत्यत्र वेदो निदर्शनम् ॥१८९  
 पतिर्विंशति यज्ञायां गर्भो भूत्वेह मातरम् ।  
 तस्यां पुनर्नवो भूया दशमे मासि जायते ॥१९०  
 जायोक्ता तेन भर्ता वै यदस्यां जायते पुनः ॥१९१  
 इयमाभवनं भार्या बीजमस्यां निषिच्यते ।  
 'देवा ऊर्चुर्मनुष्याश्च स्वभार्या जननी ब्रु वः ॥१९२  
 आत्मना जायते ह्यात्मा सा चैव पतितारिणी ।  
 भार्या जाया जनन्येषा इति वेदे प्रतिष्ठिता ॥१९३  
 यस्मात्स त्राति पुत्राम्नो नरकात् पुत्र उच्यते ।  
 सर्वा संसृतिमाहृत्य स याति ब्रह्मणैकताम् ॥१९४  
 पिता जातस्य पुत्रस्य पश्येच्चेज्जीवतो मुक्षम् ।  
 सर्वं तेन फलं प्राप्तमैहिकामुष्मिकं च यत् ॥१९५  
 किं दण्डैरजिनैस्तीयस्तपोभिः किं समाधिमिः ।  
 पुमांसः पुत्रमिच्छन् स वै लोके वदावदः ॥१९६

प्राणोऽन्नमस्मिन् शरणं हि चासौ रूपं दिग्भ्यं पशवो विवाहा ।

सखा च यज्वा कृपणश्च पुत्री ज्योति परं पुत्र इहाप्यमुत्र ॥१८७

स पुण्यकृत्तमो लोके यस्य पुत्राश्चिरायुषः ।

विशेषेण हि धर्मज्ञा स परं ब्रह्म विन्दति ॥१८८

पुत्रेण प्राप्यते स्वर्गो जातमात्रेण तु ध्रुवम् ।

तस्मादिच्छन्ति सर्वे हि पशवोऽपि वयांसि च ॥१८९

जायोयास्तद्धि जायात्वं यदस्यां जायते पुन ।

पुत्रस्यापि च पुत्रत्वं यत्राति नरकार्णवात् ॥१९०

यः पिता स तु पुत्र इयात् जायैव हि जनन्यपि ।

न पृथक्त्वं विदुस्तज्ज्ञाश्चोद्धाऽपरयोरपि ॥१९१

अयं हि पन्थाः पुरुषस्य तस्य ध्रुवं भवेत्पुत्रजन्मेह यस्य ॥

तदीक्ष्य चोर्ध्वं पशवो वयांसि पुत्रार्थिनो मातरमारुहन्ति ॥१९२

जनिष्यमाणानिच्छन्ति पितरः स्वकुले सुतान् ।

कश्चिद्भूया गयाया नोऽनश्य पिण्डान् प्रदास्यति ॥१९३

यक्ष्यत्यन्योऽध्वमेघेन नीलं मोक्षयति गोवृषम् ।

एष्टव्यं पितृभिः सर्वं पुत्रेभ्यः सकल फलम् ॥१९४

शुद्धं शौर्येफचित्तो वा प्राणान्मोदयति सयुगे ।

दानद्वो वा हुरुक्षेत्रे ह्यानी पाथ भविष्यति ॥१९५

जीवतो वाक्यवरणात् क्षयाहे भूरि भोजनात् ।

गयायां पिण्डदानां त्रिभिः पुत्रस्य पुत्रता ॥१९६

पुच्छे शिरसि यः शुक्लं शुक्लायाहोदित वपुः ।

देवान्भीष्टो नीलोऽयमुत्सृष्ट पावनो वृषः ॥१९७

धर्मं तथा शाश्वतमीशलोकम्  
 अत्रापि विद्वज्जनपूज्यतां च ॥२०८  
 वेदाः सहाद्वैत्सपुराणविद्याः  
 शास्त्राणि वेद्यानि च तद्विहीनम् ।  
 कुर्युर्न वै तान्यपि संस्मृतानि  
 नरं ध्विप्रं प्रवदन्ति वेदाः ॥२०९  
 वेऽधीतवेदाः क्रियया विहीनाः  
 जीवन्ति वेदैर्मनुजाधमास्तान् ।  
 वेदास्त्यजेयुर्निधनस्य काले  
 भीडं शकुन्ता इव जातपक्षाः ॥२१०  
 आचारहीननरदेहगताश्च वेदाः  
 शोचन्ति किं नु कृशयन्त इतिस्म चित्ते ।  
 यस्मोऽभवद्वपुषि चास्य शुभप्रहीणे  
 स्थानं तदत्र भगवान् विधिरेव शोच्यः ॥२११  
 कर्तव्यं यन्नतः शौचं शौचमूला द्विजातयः ।  
 शौचाचारविहीनानां सर्वाः स्युर्निष्फलाः क्रिया ॥२१२  
 तत्तद्विद्विविधं प्रोक्तं बाह्यमाभ्यन्तरं तथा ।  
 विष्णुशोधनं बाह्यं चित्तशुद्धिस्तथाऽऽन्तरम् ॥२१३  
 मृद्भिरद्भिरनालस्यं तत्कर्तव्यं द्विजातिभिः ।  
 भावशुद्धिः परं शौचमादुराभ्यन्तरं बुधाः ॥२१४  
 गन्धलेपापहं बाह्यं शौचमाहुर्मनीषिणः ।  
 यस्य पुंसस्तु तच्छौचं शौचैस्तस्य किमन्यकैः ॥२१५

याङ्-मनो-जलशौचानि सदा येषां द्विजन्मनाम् ।

त्रिभिः शौचैरुपेतो यः स स्वर्ग्यो नात्र संशयः ॥२१६

स्त्रियं रिरंसुर्द्रविणं जिदीर्षुर्वधं चिकीर्षुर्मनुजः परस्य ।

विवक्षुरत्यन्तमवान्यवाचं कथं स शुद्धिं समुपैति शौचात् १ ॥२१७

किं निष्कामस्य नारीभिः किं गतासोऽथ भेषजैः ।

जितेन्द्रियस्य किं शौचनिष्फलं मूर्खदानवत् ॥२१८

न गतिर्मूर्खदानेन न तारोऽम्युनि चारमनः ।

तस्मात्तस्य न दातव्यं सह दात्रा स भजति ॥२१९

यथा भस्म तथा मूर्खो विद्वान्प्रज्वलितान्नियत ।

होतव्यं च समिद्धेऽनौ जुहुयात् को नु भस्मनि ॥२२०

यथा शूद्रस्तथा मूर्खो शूद्रश्च भस्मवत्तथा ।

शूद्रेण सह संवासं मूर्खे दानं विवर्जयेत् ॥२२१

प्रहीता यो न चेद्विद्वान् तं दात्रा रोहिको यथा ।

आत्मानं तारयेत्तं च नदीं वैतरणीं द्विजः ॥२२२

यो मूर्खो विशदाचारः पट्कर्माभिरतः सदा ।

स नयन् स्वर्गमात्मानं मृदाश्चैष न पीडयेत् ।

न विद्या न तपो यस्य ह्यादत्ते च प्रतिग्रहम् ।

निपातयन् स दातारमात्मानमप्यधो नयेत् ॥२२४

हेम-भूमि-तिलान् गाश्च अविद्वानाददाति यः ।

भस्मीभवति सोऽष्टाय दातु स्यान्निष्फलं च तत् ॥२२५

तस्मादविद्वान्नादद्यादल्पशोऽपि प्रतिग्रहम् ।

विपतत्वापरिज्ञानी धिपेणाल्पेन नश्यति ॥२२६

सर्वं गवादिकं दान पात्रे दातव्यमर्चितम् । ,  
 विद्वद्भिर्न त्वपात्रे तु गतिमिच्छद्विरात्मन ॥२२७  
 हस्ति-कृष्णाजिनाद्यास्तु गृहीता ये प्रतिग्रहा ।  
 सद्धिप्रास्ताञ्च गृहीयुर्गृह्णानास्तु पतन्ति ते ॥२२८  
 कृष्णाजिनप्रतिग्राही हयानां शुक्तविक्रयी ।  
 नवश्राद्धस्य यो भोक्ता न भूय पुरुषो भवन् ॥२२९  
 यो गृह्णाति कुरुक्षेत्रे ग्रामं गा द्विमुखीं गजम् । ।  
 नवश्राद्धाक्षमुप्यश्च यज्यां निर्माल्ययद्विजाः ॥२३०  
 एते यान्त्यन्धतामिह यो यो यन्मनुष्यहस्तकम् ॥२३१  
 विष्णोश्च वज्रोश्च रवेश्च जाता वृत्रा च राक्षसश्च मुनीश गौश्च ।  
 काले मुपात्रे विधिना प्रदत्ता प्राप्नोति लोकत्रयमेतदुक्तम् ॥२३२  
 वेदविद्वान्सदाचार सदा रसति सभिधौ ।  
 भोजने चैव दाने च वर्जनीयो न सत्तमै ॥२३३  
 अत्यासन्नानधीयानान्त्राक्षणान्यो व्यतिव्रमेत् ।  
 भोजने चैव दाने च दिनस्त्यासवर्मं कुलम् ॥२३४  
 शूद्रोऽपि निराचारा प्रतिवासनिवासिन ।  
 अन्यत्र हव्यं कन्याभ्यां भोज्यां स्युरुत्सवादिषु ॥२३५  
 प्राक्तप्रतिग्रहाभावे प्राप्ताया बृहदापदि ।  
 विप्रोऽश्नन्नप्रतिगृह्णत्या यस्तत्त्वतोऽपि नापभाक् ॥२३६  
 गुवादिषोऽप्यवगार्थं देवाद्यर्थं च सर्वत ।  
 प्रत्यादद्याद्द्विजाग्रस्तु भृत्यथमात्मनोऽपि च ॥२३७

न भोक्तव्यमभोज्यान्नं वन्द-भूलादिकं च यत् । ।  
 न पातव्यमपेयं च द्विजैरत्यन्तगर्हितम् ॥२४६  
 सत्यं युक्तं सदा ब्रूयान्छर्नेर्धमं समाचरेत् ।  
 यमान्सनियमान्कुर्याद्गार्हस्थ्यं व्रतमाचरेत् ॥२४७  
 मातृ-पितृनुपाध्यायान् गुरुन्विप्रान्सदाऽर्चयेत् ।  
 एताच्छ्रेष्ठास्तथा चान्यामित्यं विप्रामिन्दनम् ॥२४८  
 दमं सेवेत सत्ततं दानं दद्याच्च सर्वदा ।  
 दयां च सर्वदा कुर्यात्तद्विना नरकाश्रयः ॥२४९  
 दाम्पत्यं सर्वदाऽऽत्मानं मनो दाम्यं सदा द्विजैः ।  
 दयञ्चमिति चैवैषां श्रुतिर्याजसनेयिकी ॥२५०  
 यन्विदं (यत्तिधा) कारकं कुर्यात्स्नानयितुर्ध्वनिं दिवि ।  
 वदेद्वेति दमं दानं दयामिति च शिक्षयेत् ॥२५१  
 रसा रसैः समा प्राह्णा देया अपि च नान्यथा ।  
 न रसैर्लवणं प्राह्यं समतो ह्रीनतोऽपि वा ॥२५२  
 तिला अपि समा देया धान्यैरन्यैर्द्विजातिभिः ।  
 प्रपीड्या नैव यंत्रेषु ब्रूयुरेतन्मनीषिणः ॥२५३  
 तिलवत्सर्ववस्तूनि सस्नेहानि द्विजातिभिः ।  
 अप्रपीड्यानि यंत्रेषु ब्रूयुरेतन्मनीषिणः ॥२५४  
 विक्रयव्यपदेशेन दुग्धं दध्यादिसर्पिषाम् ।  
 शुद्रभ्यान्न तिरस्कुर्यादुपास्यान्नावधीरयेत् ॥२५५  
 लोभात्कुर्याद्द्विजन्मा यः स तु शुद्रसमस्त्यहान् ।  
 न भिन्द्याच्च समभ्यर्च्यान्न विक्रीणीत गर्हितान् ॥२५६

अदेयानि न ॥ दद्यादस्याज्यानि न वै त्यजेत् ।  
 अभाष्यान्नैव भाषेत् हीनाङ्गाद्याश्च न क्षिपेत् ॥२६०  
 न संवदेत् पित्राद्यैः पतिताद्यैर्न संविशेत् ।  
 न मतिं नीचवर्णाय दद्यादुच्छिष्टमेव च ॥२६१  
 मतिं शूद्रस्य यो दद्याद्यश्चैनं पर्युपासते ।  
 न किञ्चित्स्य चाल्येयं व्रतादि नियमादिकम् ॥२६२  
 आचक्ष्णान्तु तद्धमं नरकाम्नौ प्रपच्यते ।  
 नाद्यादर्घ्यं निषिद्धस्य स्वप्याद्धा नार्द्धं रात्रिषु ॥२६३  
 वेदविद्यावित्तानानि विक्रीणीत न कर्हिचित् ।  
 नापत्यानि रसाद्यानि भूवृत्तिं चान्वये सति ॥२६४  
 नापः पिबेत् स्वपाणिभ्यां न च कण्डूतिकुट्टवेत् ।  
 विदिग्ध-प्रत्यगुदमस्तु शयीताहि न सन्ध्ययोः ॥२६५  
 पादुकादि च पालाशं न वृक्षादिनिकृन्तनम् ।  
 नोत्सृज्यं घृविनाद्यं च कदाचिद्वै गवादिषु ॥२६६  
 पद्भ्यां स्पृश्यं गवाद्यं नो नोच्छिष्टं न च तद्गतिः ।  
 न लब्धं यत्स-तंत्र्यादि चाप्यग्न्योर्नान्तरा गतिः ॥२६७  
 न द्वयोर्विप्रयोर्नाग्न्योः सौरभेय्योः पति-स्त्रियोः ।  
 विप्रान्न्योर्विप्रपिण्डानां नोम्रोक्ष्णोर्विष्णु-तार्क्ष्ययोः ॥२६८  
 सौरभेयोर्जलान्न्योश्च माहेयी-जलयोरपि ।  
 भानु-व्योमादिकानां तु न कुर्यादन्तरा गतिम् ॥२६९  
 भोजनादिषु नासक्तां पश्येन्न विगतांशुकाम् ।  
 न गच्छेत्स्त्री रजोयुक्तां न चाशनीयात्तया सह ।  
 न गच्छेत्स्त्री रोगयुक्तां प्रसुप्यान्न तया सह ॥२७०

उत्तरीयं विना नैव न नमो ऽध. शयीत त्र । ॥  
 न रोहे चैत्र, मार्गदी न निषिद्धककुम्भुगः ॥२७१  
 नोपगर्हं सुराचांदि न च विष्ठागृहान्तिके । ॥  
 अतिकालाप्तियाने च शुभमिच्छन्विवर्जयेत् ॥२७२  
 ज्येष्ठेन्द्रचाप-भद्राद्या मूलनाम्ना न निर्दिशेत् । ॥  
 इन्द्रचापं धयन्ती गौर्न ज्ञातव्ये परस्य ते ॥२७३  
 वर्जयेद्भावनं चैव, पादयोः कास्यभाजने । ॥  
 पैशुन्यं मर्मभेदं च न वदेन्मलेच्छभाषितम् ॥२७४  
 प्राकृतं च, कुशास्त्राणि पापण्डं हेतुकानि च । ॥  
 न श्रोतव्यानि त्रिप्रेण यातनाकारणानि च ॥२७५  
 न करं मस्तके दद्यान्मस्तकं न करे तथा । ॥  
 न जानुनो शिरो धार्यं नाऽप्रायुतगिरि भ्रमेत् ॥२७६  
 कर्द्व्यचोरा



योऽन्नं वाद्रुष्यपिकस्याद्यादजापालादिकस्य च ।  
 अन्यस्यापि निषिद्धस्य सोऽनन्तं नरकं व्रजेत् ॥२८७  
 पाणिगृहीतभार्यायां सत्यां यस्तु नराधमः ।  
 शूद्रीहस्तेन भुञ्जीत पतितः स सदैव तु ॥२८८  
 त्यक्ता येनोदभार्या तु त्यक्तः स पितृ दैवतैः ।  
 त्यक्तो देवैः स पापीयाच्छूद्रादप्यधमः स्मृतः ॥२८९  
 यः शूद्रीं भजते नित्यं शूद्रो तु गृहमेधिनी ।  
 वर्जितः पितृदेवैस्तु रौरवं यात्यसौ द्विजः ॥२९०  
 यः शूद्रायां च स्वयं जातो ह्यन्यस्यां सोऽपि वै पुनः ।  
 अन्यस्यां च पुनः सोऽपि किमस्य प्रेत्य चिन्तनम् ॥२९१  
 सर्वान् भुञ्जीत नरकान्निवशति त्वेकवर्जितान् ।  
 रौरवादीन्क्रमेणैव पापिष्ठो यावदम्यरम् ॥२९२  
 हेमन्तशिशिरर्त्तुश्च प्रोष्ठपद्याः परस्य च ।  
 पञ्चमपरपक्षेषु कार्याः सामिभिरष्टकाः ॥२९३  
 हेमन्ते शिशिरे चैका एकैकाथ तथा परा ।  
 प्रोष्ठपद्यां द्विजास्तिस्रो शष्टका इति केचन ॥२९४  
 दर्शश्च पौर्णमासश्च तथैवाऽऽग्रयणद्वयम् ।  
 चातुर्मास्यव्रतान्येव कार्याणि साम्निकैर्द्विजैः ॥२९५  
 अनूचानकृतं कुयुः सदैव व्रतचारिणः ।  
 अनूचानकुले जाताः सदैव व्रतचारिणः ।  
 अग्निहोत्ररता नित्यं माता पित्रादिपूजकाः ॥२९६

प्रतिग्रहनिवृत्ताश्च जप होमपरायणाः ।  
 वृत्तवन्तश्च ये विप्राः स्वातन्त्र्यास्ते प्रकीर्तिताः ॥२६७॥  
 सङ्क्रान्तिरर्कवारश्च व्यतीपातो युगादयः ।  
 शुभर्क्ष-दिन-योगेषु कार्याः साग्निभिरष्टकाः ॥२६८॥  
 न शूद्राद्भिक्षितेनैतत्कर्तव्यं मर्म सद्विज्ञैः ।  
 चण्डालत्नमवाप्नोति यज्ञार्थं शूद्रयाचकः ॥२६९॥  
 लब्धं यज्ञाय यो विप्रो न दद्याद्यज्ञकर्मणि ।  
 स धायसोऽथ वा गृध्रः काको वाऽथ प्रजायते ॥३००॥  
 शिलोच्छृत्तिर्विप्रः स्यादथ बैकाहिकाशनः ।  
 ऋग्बृहदहिकाशनो वास्यात् कुम्भीकुतूलधान्यरुः ॥३०१॥  
 पूर्वपूर्वतरः श्रेयाश्च तेषां सद्भिः प्रकीर्तितः ।  
 सोमपः स्यात् त्रिवर्षाभ्यस्तत्पूर्वकृत्समाशनः ॥३०२॥  
 सोमेष्टिं पशुयज्ञं च कुर्यात् प्रतिवासरम् ।  
 इष्टिर्वैश्वानरी वा तु कर्तव्यैतदसम्भवे ॥३०३॥  
 सत्यामर्थस्य सम्पत्तौ न कुर्याद्दीनदक्षिणम् ।  
 तत्कृतं च भवेद्द्वयं प्राप्नुयात्पशुयोनिताम् ॥३०४॥  
 भद्राप्तं प्रदातव्यं पात्रे दानं समर्चितम् ।  
 याचिस्तेऽपि हि दातव्यं पूतं च श्रद्धया धनम् ॥३०५॥  
 शूद्राभं ब्राह्मणोऽभ्यर्च्य मासं मासार्थमेव च ।  
 तद्योनावेव जायेत सत्यमेतद्विदुर्बुधाः ॥३०६॥  
 आशूदरस्थशूद्राभो भृतः श्वाचोपजायते ।  
 द्वादशं दश बाणौ च गृध्र शूकर पुल्कसाः ॥३०७॥

उदरस्थितशूद्राग्नौ ह्यधीयानोऽपि नित्यशः ।  
 जुह्वन्वापि जपन्वापि गतिमूर्च्छां न विन्दति ॥३०८  
 अमृतं ब्राह्मणस्यान्नं क्षत्रियान्नं पयः स्मृतम् ॥३०९  
 वैश्यस्य चान्नमेवान्नं शूद्रान्नं रुधिरं स्मृतम् ॥३१०  
 आमं शूद्रस्य पक्वान्नं पक्वान्छिष्टमुच्यते ॥३११  
 तस्मादामं च पक्वं च शूद्रस्य परिवर्जयेत् ॥३१२  
 तस्माच्छूद्रं न भिक्षेरन्यद्वार्थं सद्विजातयः ॥३१३  
 समदानमेव चच्छूद्रस्तस्मात्तं परिवर्जयेत् ॥३१४  
 कणानामथ वा भिक्षां कुर्याद्विद्वृत्तिरुशितः ॥३१५  
 सच्छूद्राणां गृहे कुर्वन्न तत्पापेन लिप्यते ॥३१६  
 विशुद्धान्वयसञ्जातो निवृत्तो मांसं मद्यतः ॥३१७  
 द्विजभक्तिर्वाणिज्यतिस्मच्छूद्र-सम्प्रकीर्तित ॥३१८  
 उदक्यापट्टं सङ्घुष्टं वाह्नितं वाप्युदक्यया ॥३१९  
 श्वसृष्टं शकुनोत्सृष्टं प्रयत्नेन विवर्जयेत् ॥३२०  
 उच्छिष्टं च पदापट्टं-शुक्लं च पतितेक्षितम् ॥३२१  
 पर्युषितं चिरस्थं च केश-कीटाशुपाहतम् ॥३२२  
 पङ्क्तयुच्छिष्टं गवाघ्रातं प्रयत्नेन विवर्जयेत् ॥३२३  
 नाभोरग्रेतदशनं शमिच्छूद्रतो द्विजातयः ॥३२४  
 शूद्राणामपि भोज्यान्नाभ्यु सीरि-नापितादयः ॥३२५  
 सस्नेहमशनं भोज्यं चिरस्थमपि यद्भजेत् ॥३२६  
 अनाक्ता अपि भोज्याः स्युः मयःश्रितयवाद्यः ॥३२७  
 गर्भिण्यस्तस्मृतिभ्यां गवादेर्वर्जयेत्पयः ॥३२८

स्त्रीणामेकशफोद्रीणां तथारण्यकमाविकम् ।  
 प्रसूता ब्राह्मणी गौश्च महिष्योजास्तथैव च ॥३१६  
 दशरात्रेण शुद्धयन्ति मूमिसस्यं तवं पयः ।  
 शाकादिकं च विदूजातं कवकानि च वर्जयेत् ॥३२०  
 मांसं कीटादिभिर्जुष्टं प्रयत्नेन विवर्जयेत् ।  
 ये वयः कृत्यमभन्ति तथा विष्ठाभुजश्च ये ॥३२१  
 शुक-टिट्ठिभ-दात्यूहाः कपोत-पिक-सारिकाः ।  
 सेधाद्याश्च पञ्चतस्त्रान् सिंहाद्यान्मत्स्यकांस्तथा ॥३२२  
 पर्मशः खोदितानद्यात्सवांकारांश्च वर्जयेत् ।  
 भक्ष्यं प्राणालये मांसं भाद्व-यज्ञोत्सवेऽप्यपि ॥३२३  
 कृत्वा च विधिवच्छ्राद्धं पश्चात्तत् स्वयमश्नुते ।  
 नाद्यादविधिना मांसं मृत्युकालेऽपि धर्मवित् ॥३२४  
 यदैवाव्ययसम्पत्तिस्तदैवामन्त्रयेद् द्विजान् ।  
 यत्र वा तत्र वा काले नार्थं त्वविधिनाऽऽभिषम् ॥३२५  
 भक्ष्यन्नरके तिष्ठेत्पशुलोमसमाः समाः ।  
 गृहस्थोऽपि हि यो नाद्यात्पशितं तु कदा च न ॥३२६  
 स साक्षान्मुनिभिः प्रोक्तो योगी च ब्रह्मलोकगः ।  
 न स्वयं च पशुं हन्याच्छ्राद्धकालेऽप्युपस्थिते ॥३२७  
 कृत्यादैः सारमेयाद्यैर्हतं भृगादिमाहरेत् ।  
 एतच्छाकवदञ्जन्ति पवित्रं द्विजसत्तमाः ॥३२८  
 समर्थो यस्य यस्तु स्यादन्नं दत्त्वातु देहिनाम् ।  
 सतामिति निरातङ्गो लोकदृष्टं निगद्यते ॥३२९

अन्नादेरपि भक्ष्यस्य स्नेह मद्याऽऽमिषस्य च ।  
 महाफला निवृत्ति स्यात्प्रवृत्तिः स्वर्गसाधना ॥३३०॥  
 एकोऽब्दशतमश्वेन यजेत पशुना द्विजः ।  
 नान्यस्तु मांसमन्नाति स्वर्गप्राप्तिस्तयोः समाः ॥३३१॥  
 हेमराजत-शङ्खानां पात्राणां वैणवस्य च ।  
 चर्मणो रज्जुवस्त्राणां शुद्धिर्जायेत वारिणा ॥३३२॥  
 स्फयादोनां यज्ञपात्राणां धन्यानां वाससामपि ।  
 अन्येषां चयरूपाणां प्रोक्षणात् शुद्धिरिष्यते ॥३३३॥  
 मार्जनान्मलपात्राणां हस्तेन मलकर्मणि ॥  
 अम्भोजपत्रकैरुष्णैः शुद्ध्यतः कौशिकाविकैः ॥३३४॥  
 श्रीफलैरंशुपट्टानां सारिष्टैः कुतपस्य च ।  
 मृष्मयानि पुनः पारुः क्षौमाणि सितसर्वपैः ॥३३५॥  
 शुद्धं च फारहस्तस्थं पण्यं यत्स्यात्प्रसारितम् ।  
 भैक्ष्यं च प्रोक्षणाच्छुद्धेत्पृष्टिः साक्षात् यस्य तु ॥३३६॥  
 स्त्रीमुखं च सदा शुद्धं भूमिलेपविचर्जिता ।  
 अपरा दहनाद्यैश्च गृहं मार्जन-लेपनैः ॥३३७॥  
 द्रवद्रव्याणि शुद्ध्यन्ति घट्टिना प्लावनेन च ।  
 मन्वादाद्यैर्ह तं मांसं सर्वदा शुचि कीर्तितम् ॥३३८॥  
 सप्तवृत्सौरभेयाश्च स्वभावस्थं महीगतम् ।  
 वदन्ति सूर्यो वारि पवित्रमिव सर्वदा ॥३३९॥  
 गौर्वह्नि-भानवच्छाया जलप्रश्वं वसुन्धरा ।  
 विष्णुषो मक्षिका वायुर्न दुष्यन्ति कदा च न ॥३४०॥

शुचिः प्रस्थापने वत्सो अजाश्वौ मुखतस्तथा ।  
 शुचिः प्रसवणे वत्सस्तथाजाश्वौ मुखे शुची ।  
 न नृ गौर्मुखतो मेध्या न च गोमुखजा मलाः ॥३४१  
 सोम-भास्करयोर्भाभिः पथशुद्धिः प्रकीर्तिता ।  
 ओष्ठाधरौ श्मश्रुकरौ सस्नेहौ भोजनादनु ॥३४२  
 नदुप्येच्छक्तिजः प्राह बाल-वृद्धौस्त्रियोमुखम् ॥३४३  
 स्नात्वा पीत्वा च भुक्त्वा च सुप्त्वा तप्त्वा तथैव च ।  
 गत्वा रथ्यादिके चैव शुद्धिराचमनेन तु ॥३४४  
 नापो मूत्र-पुरीषाभ्यां नाग्निर्दहति कर्मणा ।  
 न स्त्री दुप्यति जारेण न वित्रो वेदकर्मणा ॥३४५  
 पद्माश्मलोहाः फल-काष्ठ-चर्म-  
 भाण्डस्थतोयैः स्वयमेव शौचात् ।  
 पुसा निशास्वभ्रानि चाऽसखाना  
 स्त्रीणां च शुद्धिर्निहिता सदापि ॥३४६  
 नभसः पंचदश्यां तु पंचम्यां च तथाऽपरे ।  
 नभस्यस्य चतुर्दश्यामुपाकर्म यथोदितम् ॥३४७  
 तद्विदः केचिदिच्छन्ति नभसः श्रयणेन तु ।  
 हस्तेन वाथ पञ्चम्यामभ्यायानां वदन्ति तन् ॥३४८  
 यच्छास्त्रयोपनीतः स्यात् ब्रह्मचारी द्विजोत्तमः ।  
 तच्छास्त्राविहितं तस्य उपाकर्मादि कीर्त्यते ॥३४९  
 अतो वेदाधिकारित्वं वेदपाठस्य कीर्तने ।  
 अनुपाकृतविप्रादेर्वेदाध्ययनदुष्कृतम् ॥३५०

आत्मन्यशुचि देशे तु विद्यत्स्तनितरोद्विसे ।  
 मृधे च कलहे देशविप्लवे लोकविग्रहे ॥३६२  
 पांशुर्पेऽम्बुमध्ये च दिग्दाह-प्राग्मदाहयोः ।  
 नीहारे च भवेद्विद्वान्सन्धयोरुपयोरपि ॥३६३  
 धावंश्च न पठेद्विद्वान्पूतिगन्धस्तथैव च ।  
 विशिष्टे चागते गेहे गात्रास्तृद्निर्गमे तथा ॥३६४  
 भोजनायोपविष्टस्य ह्युत्थितस्यार्द्रपाणिनः ।  
 घान्तेऽऽघान्ते तथाऽऽजीर्णे महारात्रेऽतिमारुते ॥३६५  
 रजोवृष्टौ च यानादौ आरुढस्य तथा द्विजः ।  
 एतानन्याश्च तत्कालाननाध्यायान्विदुर्बुधाः ॥३६६  
 यो धर्जयेदनध्यायान्नेदाध्ययनवृद्धिजः ।  
 भवन्ति तस्य सफला वेदाः प्रोक्ताः फलप्रद्व्राः ॥३६७  
 ये चैतेषु पठन्त्यज्ञाः पाठलोभेन लोभिताः ।  
 न शाश्वता भवेद्विद्या निष्फला चैव जायते ॥३६८  
 यः पठेद्विधिवद्वेदान् व्रती चेन्द्रियसंयमी ।  
 ब्रह्मत्वमिह लोकेऽपि ऐश्वर्यमुखभाग्भवेत् ॥३६९  
 जनानां शृण्वतां मार्गे गच्छन्त्यस्तु पठेद्द्विजः ।  
 निष्फलास्तस्य वेदाश्च वेदविप्लवदोषभाक् ॥३७०  
 यः पठेत्स्वरहीनं तु लक्षणेन विवर्जितम् ।  
 सङ्क्षोर्णप्राग्ममध्ये तु स भवेद्वेदविप्लवी ॥३७१  
 ये स्वाध्यायमधीयीरन् अनध्यायेषु लोभतः ।  
 वञ्चरूपेण ते मन्त्रास्तेषां देहे व्यवस्थिताः ॥३७२

॥ मन्मथोऽध्यायः ॥

अथ आष्टवर्णनम् ।

आष्ट' वृद्धावचन्तेमग्धाया-मदण-मष्टमे ।  
 म्यतोपात-विपुस्तृणपक्ष-पात्रार्गल्लिखु ॥१  
 अष्टका हवने द्वे च आष्टम्रति यदा रगिः ।  
 पुण्य आष्टम्य कालोऽयमृषिभिः परिकीर्तितः ॥२  
 युगादिषु च कर्तव्यं मन्यन्ततादिरौऽपि च ।  
 आष्टकालो शर्व प्रोक्ते मन्त्रार्थैर्मर्कटभिः ॥३  
 नपाश्रे नवतोये च नयन्तन्ते तथा गृहे ।  
 नावैश्वेषु चेदन्ते पितरो हि मघास्त्रिव ॥४  
 काणः पौनर्मथो रोगी पिशुनो वृद्धिजीविदः ।  
 कुनन्तो मत्तरो मूरो मित्रभूक् कुनामी गदी ॥५  
 विद्वप्रजननःश्वित्रि-श्यावदन्ताववीर्णिनः ।  
 हीनाङ्गश्चातिरिक्ताङ्गो विह्वलः परनिन्दकः ॥६  
 श्ठीया-ऽमिश्रास्त-बाधुष्ट-भृतकाभ्यापकास्त्रया ।  
 कन्यादूषी यणिवृत्तिर्विनामिः सोमविक्रयी ॥७  
 भार्याजितोऽनपत्यश्च कुण्डाशी कुण्डगोलकः ।  
 पित्रादित्यागकृन्तेनो वृषलीपति-वर्जकौ ॥८  
 अनुत्तमृत्तिस्त्यक्तातः परपूर्वपतिस्तया ।  
 अजापालो मादिपिकः कर्मदुष्टाश्च निन्दिताः ॥९



यो ऽसत्प्रतिग्रहप्राही यश्च नित्यं प्रतिग्रही ।  
 ग्रहसूचक-दूतौ च पितृश्राद्धेषु वर्जिताः ॥१०  
 एकादशाहे भुञ्जन्तः शूद्रान्नरससंयुताः ।  
 गुरुतल्पगो ब्रह्मघ्नो यस्य चोपपत्तिर्गृहे ॥११  
 प्रेतस्पृक् तैलनिर्णेक्ता बहुयाजक-याचकौ ।  
 वक-काकविडाला-ऽश्व-शूद्रघृत्तिश्च गर्हितः ॥१२  
 यागदुष्ट-बालदम्भकौ नित्यमप्रियवाक् च यः ।  
 आसक्तो द्यूतकामादायतिवाक् चैव दूषितः ॥१३  
 निराचारश्च ये विप्राः पितृ-मातृविवर्जिताः ।  
 विद्वांसोऽपि हि नाभ्यर्च्यन्ते पितृश्राद्धेषु सत्तमैः ॥१४  
 न वेदैः केवलैर्वापि तपसा केवलेन वा ।  
 सङ्कुत्तैरेव सा प्रोक्ता पात्रता ब्राह्मणस्य च ॥१५  
 यत्र वेदास्तपो यत्र यत्र धृत्तं द्विजाग्रमे ।  
 पितृश्राद्धेषु तं यन्नाद्विद्वान्विभ्रं समर्चयेत् ॥१६  
 वेदशास्त्राद्येविच्छान्तः शुचिर्धर्ममनाः सदा ।  
 गायत्रीब्रह्मपिन्ताकृत्पितृश्राद्धेषु पावनः ॥१७  
 रथन्तरं बृहज्ज्येष्ठसामवित्त्रिमुपर्णकः ।  
 त्रिमधुश्चापि यो विप्रः पितृश्राद्धेषु पूजितः ॥१८  
 मातामहश्च दौहित्रो भागिनेयोऽथ मातुलः ।  
 मातृस्वमेयतज्जश्च तथा मातुलजोऽपि धा ॥१९  
 जामाता स्वशुरो धन्धुर्मर्षिर्धाता च तत्पुत्रः ।  
 सुवृत्ताश्च सप्तधाराभ्येते श्राद्धेषु पावनाः ॥२०

ऋत्विगुरुरुपाध्याय आचार्य श्रोत्रियोऽपर ।  
 एते श्राद्धेषु वै पूज्या ह्यति-सम्बन्धि-वान्धवा ॥२१  
 अग्निहोत्री च यो विप्र आवसथ्यामिकोऽपि च ।  
 पितृ-मातृपरावेतौ भोक्तव्यौ हव्य-कव्ययोः ॥२२  
 कृष्येकवृत्तिजीवी यो भक्तो मात्रादिकेषु च ।  
 पदकर्मनिरत पूज्यो हव्य-कव्ये सदैव हि ॥२३  
 क्षत्रवृत्तिः सदाचारो मात्रादिभक्तितत्परः ।  
 शुचि पदकर्मयुक्तश्च हव्य-कव्येषु पूजित ॥२४  
 युगानुरूपतो यस्तु विद्याचारदिसंयुतः ।  
 स पूज्योऽनभिशक्तश्च पदकर्मनिरतो द्विज ॥२५  
 इत्युक्तगुणसम्पन्नान्प्रक्षाल्यान्पूर्ववासरे ।  
 निमन्त्रयेत् तान् भक्त्या नियोगारूढानपूर्वकम् ॥२६  
 सव्येन देवतार्थं तु पित्र्यमपसव्यवान् ।  
 ततस्तैश्चरितव्यं स्यादुक्तं पितृजतं द्विजैः ॥२७  
 जितेन्द्रियैस्तु भाव्यं स्यादहोरात्रमतन्द्रितैः ।  
 तस्मिन्नहनि प्रातर्वा यत्र श्राद्धमुपस्थितम् ॥२८  
 निमन्त्रयेत् तान्भक्त्या तैश्च भाव्यं चितेन्द्रियैः ।  
 विप्रोर-पार्श्व-पृष्ठस्थाः पितृ-मातामहादयः ॥२९  
 भुञ्जन्ति क्रमशः श्राद्धे तथा पिण्डाशिनोऽपि च ।  
 निमन्त्रितो द्विजः श्राद्धे न शयीत स्त्रियासह ॥३०  
 अध्वानं न तु वै चाप्यान्न धूयादनृतं यचः ।  
 नाधीयीत दिवा स्वापं न कुर्वीत न संवदेत् ॥३१

न स्लेच्छ-पतितैः साधं न वदेश निषिद्धम् ॥  
 प्राङ्मुखौ दैविकौ विप्रौ विप्राक्षय उदङ्मुखाः ॥३२  
 एकैको वोभयत्र स्यादसम्पत्ताविति क्रमः ।  
 पात्रं वा दैविकं कृत्वा विप्र एकस्तु पैतृके ॥३३  
 इति वा निषपेच्छ्राद्धं निर्धनश्चान्यदाचरेत् ।  
 गत्वारण्यममानुष्यमूर्ध्वबाहुर्धिरौत्पदः ॥३४  
 निरन्नो निर्धनो देवाः पितरो माऽनृणं कृथाः ।

न मेऽस्ति धित्तं न गृहं न भार्या  
 श्राद्धं कथं वः पितरः करोमि ।  
 घने प्रविश्येह स्तं मयोन्नैर्  
 भुजौ कृतौ धर्मनि मारुतस्य ॥३५  
 श्राद्धर्णमेतद्भवतां प्रदत्तं  
 मह्यं दयध्वं पितृदेवताद्याः ।  
 आख्याय चोत्क्षिप्य भुजावितस्ततो  
 दिवा च रात्रिं समुपोष्य तिष्ठेत् ॥३६  
 भोन्नरस्तेन कृतेन तेषा-  
 मृणेन मुक्तः पितृदेवतानाम् ।  
 निर्वित्त-निर्भाग्य-निराश्रयाणां  
 श्राद्धस्य मार्गः कथितो मुनीन्द्रैः ॥३७

मयाऽऽख्यातं रुदित्वा वः पितरः श्राद्धदेवताः ।  
 श्राद्धर्णस्य विमुक्तोऽहं महिताः पितरो मया ॥३८

कृतोपवासस्तत्राहि श्राद्धर्णान्मुच्यते द्विजः ।  
 एतच्चापि न यः कुर्यात्पितरस्तेन वै हताः ॥३६  
 सम्पत्तावर्थ-पात्राणामेकैकस्थ त्रयस्त्रयः ।  
 पित्रादेर्ग्राह्याणाः प्रोक्ताश्चत्वारो वैश्वदैविके ॥४०  
 द्वौ चापि दैविके विप्रौ चैकैको वा न दोषभाक् ।  
 स्यान्मातामहिकेऽप्येवमेकोऽपि वैश्वदैविके ॥४१  
 नत्वंवैकं तु सर्वेषामाश्वलायनमतस्थितः ।  
 पितृणामर्चयेद्विप्रमत्रपिण्डा निदर्शनम् ॥४२  
 न मातामहिकं श्राद्धं श्रौतमुक्तं तु सामिकैः ।  
 अनमिक्तस्तु तत्कुर्यादिति केचिन्मतं विदुः ॥४३  
 सामिकैरपि कार्यं स्याच्छ्राद्धं मातामहं द्विजैः ।  
 पदद्वैवत्यमिति ह्येके एके तु पार्वणद्वयम् ॥४४  
 अपुत्रस्य पितृव्यस्य तत्पुत्रैर्भ्रातृजो भवेत् ।  
 स एव तस्य कुर्यात् पिण्डदानोदकक्रियाः ॥४५  
 पार्वणं तेन कार्यं स्यात्पुत्रघट्टभ्रातृजेन तु ।  
 पितृस्थानेषु तं कृत्वा शेषं पूर्ववदुच्यते ॥४६  
 श्राद्धं पत्यापि कार्यं स्यादपुत्रायास्तु योपितः ।  
 तस्यापि हि तया कार्यमेकत्वं हि तयोर्यतः ॥४७  
 भ्रातृज्येष्ठस्य कुर्यात् ज्येष्ठो भ्राताऽनुजस्य च ।  
 दैवहीनं तु तत्कुर्यादिति धर्मविदो विदुः ॥४८  
 पितुः पुत्रेण कर्तव्या पिण्डदानोदकक्रिया ॥  
 पुत्राभावे तु पुत्री च तदभावे सहोदरः ॥४९

मित्रादीनां च कर्तव्यं समीहन्ते यतोऽयमी ।  
 नावज्ञेयास्तु ते सर्वे कृते तु स्यान्महाफलम् ॥५०  
 पितामहस्तदन्यो वा यस्य जीवन् भवेद्विजः ।  
 प्रत्यक्षास्तेऽपि वै पूज्याः संखित्यर्थं यतश्च सन् ॥५१  
 विद्यमानत्रयाणां स्यात्प्रत्यक्षः पूज्य एव सः ।  
 गौतमस्य मतं त्येतदिति यासिष्ठजोऽब्रवीन् ॥५२  
 विद्यमाने तु पितरि श्राद्धं कर्तुमुपस्थितः ।  
 पितृवत्पितृपित्रादेः कुर्याच्छ्राद्धमसंशयम् ॥५३  
 पुत्रिकायाः सुतः श्राद्धं निर्वपेन्मातुरेव सः ।  
 तत्पितुर्निर्वपत्यस्मात्तृतीयं तु पितुःपितुः ॥ ५४  
 अत एव द्विजः पुत्रोऽमुब्रह्म कथं च न ।  
 उद्बोद्धुः पुत्रः पुत्रोऽसौ पुत्रोऽसौ मातुरेव हि ॥५५  
 पुत्रश्च दुहितुःपुत्रः समौ तौ धार्मिके पथि ।  
 अथाहृतौ च विप्रोक्तौ तुल्यौ तौ शक्तिजोऽब्रवीत् ॥५६  
 सुख्यं यथा पितुःश्राद्धं तथा मातामहस्य च ।  
 पुत्र दौहित्रयोर्लोके विशेषो नोपपद्यते ॥५७  
 दौहित्रः पावनः श्राद्धे कालस्तु कुनपस्तथा ।  
 तथा कृष्णास्तिला विद्वन्निति शास्त्रविदो विदुः ॥५८  
 काम्यमाभ्युदयं चैव द्विविधं पार्वणं स्मृतम् ।  
 यथाकामं तु काम्यं स्याद्ब्रह्मावभ्युदये स्मृतम् ॥५९  
 क्षत्रियायां तु यो जातो वैश्यायां च तथा सुतः ।  
 ब्राह्मणस्य पितुस्तौ तु निर्वपेतां द्विजाग्र्यवत् ॥६०

क्षत्रियस्य सुतश्चैव तथा वैश्यमुक्तोऽपि च ।  
 श्रुतान्नेन द्विजास्तर्प्य श्राद्धद्वयं च निर्वपेत् ॥६१  
 आमात्रेण तु शूद्रस्य तूष्णीं च द्विजपूजनम् ।  
 कृत्वा श्राद्धं तु निवाप्य सजातीनाशयेत्तथा ॥६२  
 यः शूद्रो भोजयेद्विप्राञ्छृतपाकाशनेन ह्यु ।  
 स तद्विप्रकृमैर्नोभिलिप्यते शक्तिजोऽब्रवीत् ॥६३  
 शूद्रपाकं द्विजेभ्यश्च विभवान्धो ददाति यः ।  
 कृमो भवन्ति पाताले स युगानेकविंशतिम् ॥६४  
 भोजितेन तु विप्रेण यत्पापं तस्य जायते ।  
 तेनासौ लिप्यते मूढो यः शूद्रो भोजयेद्द्विजान् ॥६५  
 योऽहंमन्यो द्विजाग्रं चास्तु शूद्रधितेन भोजयेत् ।  
 स गच्छेन्नरकं घोरं पुनरावृत्तिदुर्लभम् ॥६६  
 यत्किञ्चित्कलियपं विप्रे कृतपूर्वं तु तिष्ठति ।  
 तेनासौ लिप्यते पापी यः शूद्रो भोजयेद्द्विजान् ॥६७  
 शूद्रोऽपि तु यो भुङ्क्ते मतिपूर्वं द्विजाधम ।  
 कृमित्वं याति विष्ठाया युगानि ह्येकविंशतिः ॥६८  
 शूद्रोऽपि तु यो भुङ्क्ते पञ्चाहानि द्विजाधमः ।  
 स तद्विष्ठाकृमित्वं तु प्राप्नोति हि शतं समाः ॥६९  
 अतो न भोजयेद्विप्रान्निर्वपेन्नैव पूजयेत् ।  
 शूद्रान्नं भोजनाशुक्तं इति पाराशरोऽब्रवीत् ॥७०  
 न भोजयेत् स्त्रियं श्राद्धे यद्यपि घृतचारिणीम् ।  
 पात्रं तस्यै समर्प्य स्यादिति धर्मविदब्रवीत् ।  
 द्विजन्मानो न कुर्वीरच्छ्राद्धमामाशनेन तु ॥७१

यदैव स्युः प्रवासस्था भार्या यत्र न सन्निधौ ।  
 व्यवधानेन भार्याया ग्रहणे पुत्रजन्मनि ।  
 कुर्यादामाशनश्राद्धमिति पाराशरोऽब्रवीत् ॥७२  
 अग्नौकरणपिण्डांश्च कुर्यादामाशनेन तु ।  
 सतिलैर्दधिमन्त्राज्यसम्पृक्तैः ससुरैरपि ॥७३  
 यवाद्यं संस्कृतान्नेन द्रव्यं वापि च निर्वपेत् ।  
 जलेन पयसा वापि न स्यादश्राद्धकृत्या ॥७४  
 आमाम्नेन द्विजैः कार्यं न कदाचिदपि द्विजाः ।  
 श्रपयित्वा द्विजौकस्तु तथापि पाकमाश्रयेत् ॥७५  
 न कुर्यात्परपाकेन नैकपाकेन तु द्वयम् ।  
 नैकश्राद्धे द्वयं कुर्यान्न च कुर्यात्पराश्रमुक् ॥७६  
 पित्रादीनां सगोत्रा ये तथा मातामहस्य च ।  
 तेषामेकेन पाकेन कार्यं पिण्डनिर्वर्जितम् ॥७७  
 केचित्सप्तपिण्डयमिच्छन्ति समगोत्रतयाऽनघ ।  
 अपि मातामहो न स्याद्विज्ञगोत्रतया तथा ॥७८  
 पृथक्कर्तुमशक्यं स्यादर्थ-पात्राद्यसम्भवे ।  
 अवश्यं तत्र कर्तव्यमेकदैवमतः श्रयेत् ॥७९  
 येषां नोद्वाहसंस्कारा ह्यन्यसंस्कार संस्कृताः ।  
 साङ्कल्पिकं भवतेषां श्राद्धं कार्यं मृतेऽङ्गि ॥८०  
 केचित्सप्तपिण्डयमिच्छन्ति ब्रह्मसंस्कारवत्तया ।  
 आद्यो हि ब्रह्मसंस्कारस्तस्मात्पिण्डः प्रदीयते ॥८१

पर्वस्वपि निमित्तेषु कर्तव्यं पिण्डसंयुतम् ।  
 पितृणां त्रिविधा यस्माद्गतिः प्रोक्ता मुनीश्वरैः ॥८१  
 वैश्वदेवः सदा कार्यो श्राद्धे च समुपस्थिते ।  
 पाकशुद्धयर्थं मेवैतत्पूर्वमेव विधीयते ॥८२  
 वैश्वदेवोपतश्चैव श्राद्धकाले विशेषतः ।  
 पाकशुद्धिस्तु विज्ञेया भुक्तोच्छिष्टं तु वर्जयेत् ॥८३  
 सम्प्राप्ते पार्वणश्राद्धे एकोद्दिष्टे तथैव च ।  
 अग्रतो वैश्वदेवः स्यात् पश्चादेकादशोऽहनि ॥८४  
 एकोद्दिष्टे विशेषेण प्रागेव ह्यग्निपूजनम् ।  
 कालस्तु कुतपस्तस्य रौहणः पार्वणस्य च ॥८५  
 वामतश्चासनं दद्यात्पितृकार्येषु सत्तमः ।  
 दैविकं दक्षिणं तद्वदिति पाराशरोऽब्रवीत् ॥८६  
 आसने चासनं दद्याद्दामे वा दक्षिणेऽपि वा ।  
 पितृकार्येषु वामं तु दैवे कर्मणि दक्षिणम् ८७  
 पितृश्राद्धेषु यो दद्यादक्षिणं दर्भमासनम् ।  
 नाश्नन्ति पितरस्तस्य सार्धानि वत्सराणि पद ॥८८  
 तस्माद्दामत एवात्र पितृकर्मणि चासनम् ।  
 दैविके दक्षिणं तद्वदिति वासिष्ठोऽब्रवीत् ॥८९  
 कुत्र काले च कर्तव्यं श्राद्धं तत्पितृकं प्रभो ! ।  
 वदस्व निश्चयं तत्र विवदन्त्यपरेऽत्र तु ॥९०  
 पञ्चदशमुहूर्ताहस्तत्रागार्धदिनं स्मृतम् ।  
 अपराधं स्मृता रात्रिस्तन्मध्यः कुतपो मतः ॥९१



यथा यथा च हस्तत्वं पुंसः स्थानेन सम्भवेत् ।  
 तथा तथा पवित्रः स्थात्कालः श्राद्धार्चनादिषु ॥६२  
 द्वायेयं पुरुषस्यैवं तत्पादाद्यो भवेद्यथा ।  
 आधानश्राद्धदानादेः स कालोऽश्वयकृत्स्मृतः ॥६३  
 अयुतं तु मुहूर्तानामर्घं ह्यष्टदशाधिकम् ।  
 त्रिशस्त्रितैरहोरात्रमिति माध्यन्दिनी श्रुतिः ॥६४  
 मध्याह्ने तु गते सूर्ये न पूर्वे न च पश्चिमे ।  
 तुल्याग्रसंस्थिते चैव सोष्टमो भाग उच्यते ॥६५  
 दिवस्याष्टमेभागे मन्दो भवति भास्करः ।  
 स कालः कुतपो ह्येयस्तत्र दत्तं तु चाक्षयम् ॥६६  
 मध्याह्नचलितो मानुः किञ्चिन्मन्दगतिर्भवेत् ।  
 स कालो रोहिणो नाम पितॄणां दत्तमक्षयम् ॥६७  
 तस्मात्सर्वप्रयत्नेन रोहिणं तु न लङ्घयेत् ।  
 अकाले विधिना दत्तं न देव-पितृगामि तत् ॥६८  
 अब्दवृद्धिर्भवेद्यत्र तत्राऽऽन्दमुभयात्मकम् ।  
 श्राद्धं तत्र च कुर्वीत मासयोरुभयोरपि ॥६९  
 नवन्त्यं दिवसं कुर्यान्मासयोरुभयोरपि ।  
 पिण्डवर्जमसङ्क्रान्ते सङ्क्रान्ते पिण्डसंयुतः ।  
 पष्टिभिर्दिवसैर्मासश्चिशद्भिः पक्ष उच्यते ॥१००  
 संक्रान्तिरहितः पक्षस्तत्र फायं विपिण्डिकम् ।  
 सिन्नीवाली भक्षिक्रम्य यदा सङ्क्रमते रविः ।  
 युक्तं साधारणैर्मासैः स काल उत्तरो भवेत् ॥१०१

सङ्क्रान्तिवर्जितः कालः समलः पापसम्भवः ।  
 रक्षसां भागवेयोऽसौ असयादिविवर्जितः ॥१०२  
 तत्र नैमित्तिकं कार्यं श्राद्धं पिण्डविवर्जितम् ।  
 नित्यं तु सततं कार्यमिति पाराशरोऽब्रवीत् ॥१०३  
 अहोभिर्गुणितैर्यस्यात्तरकार्यं यत्र सर्वदा ।  
 तिथि-तक्षत्र योगाश्च जातकमादिकाश्च ये ॥१०४  
 नैमित्तिकाश्च ये चान्ये कार्यास्तेऽपि मलिस्तुचे ।  
 तीर्थस्नानं गजच्छायां द्विसुखी गोप्रदानवत् ॥१०५  
 मलिस्तुचेऽपि कर्तव्यं सपिण्डीकरणादिकम् ।  
 आमयणममात्रास्यामष्टकमहसङ्क्रमम् ॥१०६  
 अधिमासेऽपि कार्यं स्यादिति पाराशरोऽब्रवीत् ।  
 नित्यं च नित्यः कार्यमिष्टीः काम्याश्च वर्जयेत् ॥१०७  
 वार्षिकं पिण्डवर्जं स्यादन्यस्मिन्पिण्डसंगुतम् ।  
 इष्टिरामयणं श्राद्धमन्याहार्यं च सर्वदा ॥१०८  
 कर्तव्यं सततं विप्रैरिष्टीः काम्याश्च वर्जयेत् ।  
 दैवे कर्मणि सम्प्राप्ते तिथिर्यत्रोदितो रथिः ।  
 सा तिथिः सकृदा ह्येवा निपरीता तु पैतृके ॥१०९  
 वृद्धिमदिवसे कार्यं श्राद्धमाभ्युदिकं द्विजैः ।  
 क्षीयमाणे दिने कार्यं श्राद्धं विद्वन् ! क्षयादिकम् ॥११०  
 मित्रे चैव सगोत्रे च पितृ मातृसहोदरे ।  
 आसनं नैव दातव्यं भोक्तव्यं एवमेव ते ॥१११  
 ग्राहणं न सगोत्रं च पूजयेत्पितृकर्मणि ।  
 नोऽतिप्रति तत्तेषां किन्तु स्याच्च निराशता ॥११२  
 ५१

स्वगोत्र भोजयेद्यस्तु पितृश्राद्धेषु वै द्विजः ।

हता स्युः पितरस्तेन न भुक्तमुपतिष्ठते ॥११३॥

श्राद्धं कुर्यान्दिनोऽज्ञानात् स्वगोत्रं यन्तु भोजयेत् ।

स लुपितृदेवस्सन्नरकं प्रतिपद्यते ॥११४॥

तस्मान्न गोत्रिणं विप्रं भोजयेद्विप्रिपूर्वकम् ।

ज्ञातिमत्त्वेन भोज्यास्ते उरियतैस्तु द्विजोत्तमैः ॥११५॥

दक्षिणाप्रवणे देशे श्राद्धं कुर्यान्तु पैतृकम् ।

पितृणां पावनो देशः स प्रोक्तोऽश्रयतृनिकृत् ॥११६॥

देशे काले च पात्रे च विधिना हविषा च यत् ।

तिलैर्दूर्गैश्च मन्त्रैश्च श्राद्धं स्याच्छ्रद्धयान्वितम् ॥११७॥

तैजसानि तु पात्राणि स्रग्ध्यायं भोजनाय च ।

मृत्पापाणमयान्येके अपराण्यपरे विदुः ॥११८॥

पलाश पद्म-पत्राणि अनिपिद्धानि यानि च ।

तानि श्राद्धेषु कार्याणि पितृ देयहितानि च ॥११९॥

वृद्धिश्राद्धेषु मन्यन्ते मृण्मयानि तु केचन ।

शौनकस्य मतं ह्येतद्यथा कार्यं तु मृण्मयम् ॥१२०॥

एकद्रव्याणि कार्याणि पात्राणि भोजनार्थयोः ।

त्रीणि पैतृकपात्राणि द्वे दैवे वञ्चदैविके ॥१२१॥

एकस्य वैश्वदेवानि पैतृकाण्येकवस्तुनः ।

इति वा तानि कार्याणि भेदमेकत्र वर्जयेत् ॥१२२॥

वटाऽथवाऽर्कपत्रेषु कुम्भी तिलदुकयोरपि ।

कोविदार-तरुजेषु न भुञ्जीत कदाच न ॥१२३॥

सुरभी-नागरुणाद्यैः करवीर-करञ्जकैः ।  
 बिल्वैर्यस्त्वर्चयेद्विद्वान् पितृन् आद्धेऽप्यगर्हितैः । ।  
 तद्भुञ्जन्तेऽपुराः आद्धं निराशौः पितृभिर्गतैः ॥१२४  
 सर्वाणि रक्तपुष्पाणि निषिद्धाण्यपराणि च ।  
 वर्जयेत् पितृकार्येषु केतकी कुपुमानि च ॥१२५  
 गो-रम्भा-भृङ्गराजाद्यैर्मल्लिकाकुलजकैरपि ।  
 समर्चयेद्द्विजान् आद्धे हज्य-कज्योदितैर्द्विजैः ॥१२६  
 न दद्याद्गुग्गुलं आद्धे द्विजानां पितृदेवते ।  
 धूपाभावे गुडो देवो घृतदीपं द्विजोत्तमाः ॥१२७  
 कुङ्कुमाद्यं चन्दनं च देयं गन्धविमिश्रितम् ।  
 ऊर्ध्वं च तिलकं कुर्याद्देवे पित्र्ये च कर्मणि ॥१२८  
 निराशाः पितरो यान्ति यस्तु कुर्यात्त्रिपुण्ड्रकम् ।  
 पवित्रं यदि वा दर्भं फरे कृत्वा द्विजाक्षर ॥१२९  
 समालभेद्द्विजानस्तन्छादमासुरं भवेत् ।  
 गन्धाश्च विविधा देयाः कर्पूरागरुमिश्रिताः ॥१३०  
 शक्या यस्माणि देयानि तद्भावे च निष्कयम् ।  
 दीपश्च सर्पिषा देयस्तिलतैलेन वा पुनः १३१  
 नकाष्ठतैलैरन्यैस्तु कदाचित् सापपाऽऽनसै ॥१३२  
 देशधर्मं समाश्रित्य वंशधर्मं तथापरे ।  
 सूरयः आद्धमिच्छन्ति पार्वणं च क्षयान्तापि ॥१३३  
 स्त्रोणामपि पृथक् आद्धं ते मन्यन्तेऽभ्यधर्मनः ।  
 मातामहस्य गोत्रेण मातुस्तेन सपिण्डानाम् ॥१३४

मातामहा महेच्छन्ति मातुस्तेऽपि सपिण्डताम् ।

स्त्रीणां स्त्रीगोत्रसम्बन्धात्पुगोत्रेण नृणां यत ॥१३४

सपिण्डी करणे काले श्राद्धद्वयमुपस्थितम् ।

देवाद्यं प्रथमं कुर्याद्वितृग्नां तदनन्तरम् ॥१३५

देवाद्यं पावणं प्रोक्तं प्रेतप्राद्धमथापरम् ।

एकं वं तु नत पश्चात्कृत्वा विप्रांश्च भोजयेत् ॥१३६

पितृगामर्त्यपात्राणि प्रेतपात्रमथापरम् ।

प्रेतपात्रं तु तत्कृत्वा पितृपात्रेषु योजयेत् ॥१३७

ये समाना इति द्वाभ्यां पूर्वमच्छेपमाचरेत् ।

सपिण्डीकरणं यस्य कृतं न स्याद्विजन्मनः ॥१३८

अद्वैतं तस्य देवं स्याद्विण्डमेकं तु निर्वपेत् ।

सपिण्डीकरणं चैतत्त्रिधाधैव क्षयाहिरुम् ॥१३९

एकादशाहिकं द्वाद्यं मासि मासि च मासिरुम् ।

वर्षे वर्षे च कर्तव्यं स्मृतेऽहनि च सत्पुनः ॥१४०

नाऽदुर्ग्रहस्य सपिण्डत्वं केचिदिच्छन्ति तद्विदुः ।

विशेषतोऽनपत्यस्य सत्यप्यत्राधिकारिणि ॥१४१

त्रिधमानः पिता यस्य सचेद्यदि त्रिषद्यते ।

तदन्तरा सपिण्डत्वं वदन्ति श्राद्धवादिनः ॥१४२

आभ्युदयिकसम्पत्तावर्चां प्रागेव कारयेत् ।

कुर्यात्परिजनेनैतत्पर्यं वापि द्विजोत्तमः ॥१४३

सन्यसन्सर्वकर्माणि तच्छाद्धाय च तद्दिनम् ।

अग्निदाहदिनं चैके केचिन्मृतदिनं विदुः ॥१४४

विदेशस्थे श्रुताहस्तु कृष्णा वा द्वादशी सिता ।

संप्रामे संस्थितानां च प्रेतपक्षे शशिक्षये ॥१४५

अग्नि-सर्पादिमृत्यूनां पण्मासोपरि सत्क्रिया ।

तेषां पार्वणमेवोक्तं क्षयाहेऽपि च सत्तमैः ॥१४६

चन्द्रक्षया-अनाशक-संयुगेषु यः प्रेतपक्षे मृतयान् सपिण्डः ।

सपिण्डनानन्तरयादिकानि भवन्ति तेषामिह पार्वणानि ॥१४७

अग्नि-सर्पादिमृत्यूनां पण्मासोपरि सत्क्रियाः ।

क्षयाह्निकानि कार्याणि ब्रूयुर्मविदो जनाः ॥ } १४८

अब्दादृष्टं चरन्त्येके कृत्वा च वैष्णवं बलिम् ।

विष्णुर्चनं विना नावांग्रदत्तमुपतिष्ठति ॥१४९

विद्युता मृक्षपातेन सर्पेण महिषेण वा ।

इत्यादिकेन मृत्युः स्यात्तिथौ यत्र च तत्र वै ॥१५०

तन्निमित्तस्य तृप्त्यर्थं मासि मासि क्षयाह्निकम् ।

कर्तव्यमवधौ यावत्ततः कुर्यात् सत्क्रियाम् ॥१५१

अनाशकमृतानां च क्षयाहेऽपि च पार्वणम् ।

सन्न्यासयद्भि मन्यन्ते केचिद्विदुरदैविकम् ॥१५२

एकोदिष्टमदैवं स्यात्तथैकार्घ्यपवित्रकम् ।

आवाहना-अनौकरणहीनं तदपसव्यवत् ॥१५३

पूर्वोत्तरपूरं देशे श्राद्धं स्यान्मातृपूर्वकम् ।

सित-पितादिपिष्टेन चर्चिते भूतले च तत् ॥१५४

उद्दिष्टकृतुकालस्य तत्प्रागेव विधीयते ।

आभ्युदयिकदैवानि पूरांहे स्युरितिष्ठतिः ॥१५५

तिलाक्षतोदकैर्युक्तान्यासनानि प्रदक्षिणात् ।  
 परिहृत्यादि पृष्ठेन कृत्वा च शान्तिपूर्वकम् ॥१५६॥  
 ग्रीहयो यव-गोवृमा अक्षताश्चहताः स्मृताः ।  
 अक्षतामलकैः पिण्डान्दधि-कर्कन्धुमिश्रितैः ॥१५७॥  
 नान्दोगुरेभ्यो देवेभ्यः प्रदक्षिणकुशासनम् ।  
 पितृभ्यामनुमेभ्यश्च प्रदक्षिणमिति स्मृतिः ॥१५८॥  
 कर्कन्धुभिर्यवैः पुष्पैः शमीपत्रैस्तिलैस्तथा ।  
 तेभ्यो हव्यं प्रदातव्यः पितृभ्यो वैवतैस्सह ॥१५९॥  
 मातामहानामप्येवं पश्यैवत्यं श्रिये द्विजः ।  
 माङ्गल्यपूर्वकं मयं गन्धाद्यपि च धारयेत् ॥१६०॥  
 एनिकृत्पितृ-मातृणां धूपो देयश्च गुग्गुलुः ।  
 घृताभिघारधूपो वा यथा स्यात्परिपूर्णता ॥१६१॥  
 दीपाश्च बह्वो देयाः विप्रं प्रतिघृतेन च ।  
 सैन्धेन येन फेनापि नवनीतेन चैव हि ॥१६२॥  
 मालत्या शतपत्र्या वा मद्रिका-कुन्दयोरपि ।  
 चेतस्या पाटलाया वा यजो देया न लोहिताः ॥१६३॥  
 घासोमि च यथाशक्त्या दद्यात्तेभ्योऽपि निष्कयम् ।  
 परिपूर्णं यथा तत्स्यात्तथा कार्यं भवेदिति ॥१६४॥  
 मुग्धैः भूषणैस्तत्र मालाद्वैतमथा नरेः ।  
 पुद्गमाग्न्युत्तिग्नाह्नं भांड्यं तु ब्राह्मणेः मह ॥१६५॥  
 स्त्रियोऽपि श्युस्तथाभूता गीत-नृत्यादिदक्षिणाः ।  
 दुःसुमीनाः षष्ठाङ्गा मङ्गल्यनियारिकाः ॥१६६॥

पात्रद्वयमतोऽर्थं क्षेत्रसं चैक्यस्तुजम् ।  
 सापं च सपञ्चित्रं तत्समन्वयं विधानतः ॥१५८  
 प्राङ्मुखोऽमरतीर्थेषु शन्नो देव्योदकं क्षिपेत् ।  
 यवोऽसीति यवांस्तत्र तूष्णीं पुण्याणि चन्दनम् १७६  
 यवोऽसि पुण्यामृतमिशितोऽसि  
 समस्तधान्यप्रभुरस्यमुत्र ।  
 मरुन्मनुष्य-पितृवंशमृष्यै  
 क्षितायतोणोऽसि हितोऽसि पुंसाम् ॥१८०  
 उत्पातपूर्वकमिमानमृतेन वेधा  
 भूयः प्रसन्नमनसा तदुपासितः सन् ।  
 पिक्षेप तान्यरुगलोरुक्षिताय शिक्ताः  
 तेनामृता घमणदैवतका यमूषुः ॥१८१  
 अनीतशान्तिरधिरिगान्यरुगस्य लोकात्  
 अन्नप्रभून्भुवि यवान्मुल्लोकमृष्यै ।  
 सत्पिष्टपक्षिषा पितृदेवतानां  
 गृप्ता यमन्ति दिवि ते परदानवाचः ॥१८२  
 ततः सः करं न्यस्य विप्रदक्षिणजानुनि ।  
 देवानायाह्वियेऽहमिति वाचमुदीरयेत् ॥१८३  
 आयाह्वयेत्यनुज्ञातो विद्देवास आगमम् ।  
 विद्देवाः शृणुतेममिति मन्त्रद्वयं पठेत् ॥१८४  
 मांमेव मह रात्रेति केचित्पठन्त्यदोऽपि च ।  
 व्याह्वय मन्त्रमात्रात् एते दत्त्वा पवित्रकम् ॥१८५



अर्चयेत्तं द्विजं पुष्पैर्दद्याद्ध्यं करे पुनः ।  
 विश्वेभ्यस्त्वेव देवेभ्यस्तुभ्यमर्घ्यं प्रदीयते ॥१८६  
 या दिव्या इति मन्त्रेण पाणौ त्रिप्रस्य तं क्षिपेत् ।  
 अपस्तव्यमतः कृत्रा निर्वर्त्य वैश्वदैविकम् ॥१८७  
 आपो भूमिगताः केचिदादित्येत्यभिमन्त्र्य च ।  
 पुनस्ताभिः कराभ्यां च कुर्वन्ति मुत्तमार्जनम् ॥१८८  
 उदकं गन्ध-धूपान् च वासांसि चन्दनं व्रजः ।  
 दद्यादपस्तव्ययद्भूत्रा दद्यात्पितृकुरात्मनम् ॥१८९  
 सोदकान्द्विगुणं भुग्नान्मतिलान्सुशानपि ।  
 गोरर्णमात्रकान्सामान्प्रदद्याद्भूमिपार्ष्वतः ॥१९०  
 यत्तु यत्तं मगोत्रं च पितृनाम च शर्मयत् ।  
 उषायं परयोक्तद्विदं तुभ्यं कुरात्मनम् ॥१९१  
 पितृमर्घ्यपात्राणि संपूज्य दक्षिणामुग्रः ।  
 तिलोसीरथेतदुग्राय यत्रस्थाने तिलान्क्षिपेत् ॥१९२  
 भूलप्रसव्यजानु सन्पितृतीर्थेन चाञ्चयत् ।  
 पितृभ्योऽन्नमनाः कुर्यात्पितृभ्योऽन्नमरोपतः ॥१९३  
 आयादयिष्ये पितृदीननुत्तः ॥१९४  
 वरान्ताहंरति प्रोदीर्य तथाऽयन्तु न इत्यपि ॥१९४  
 अन्येऽयपह्णामुग इत्यादपि पठन्ति हि ।  
 अन्नविन्नव्यपोषणं यत्तव्यमिति केचन ॥१९५  
 प्राग्यद्विप्रार्पणं कायं प्राग्यदर्थप्रसेचनम् ।  
 प्राग्यदर्थं मनुष्याय प्राग्यं मुत्तमार्जनम् ॥१९६

एते तिलास्तु विधिना शशिलोकस्तु  
 प्राहृत्य भोजनहितेन शुभाय घन्याः ।  
 क्षिप्या मलानि पुरुषस्य च तर्पणाद्यैर्  
 ये घ्नन्ति तेषु भुवि सत्सु कुतो भयं स्यात् ॥१९७

तिलोऽसि तारापतिदेवतोऽसि  
 हितोऽयरोपपितृ-देवनानाम् ।

कर्तासि तृप्तिं परमां पितॄणां

गुणं हातस्त्वं विधिसम्भयोऽसि ॥१९८

अर्घ्यपात्राणि सर्वाणि कृ दा तान्याद्यपात्रके ।

पितॄभ्य स्नानमसीति न्युग्रां कुर्यादधश्च तन् ॥१९९

यस्तूदरेत्तदक्षानादर्घ्यपात्रं तु पैतृकम् ।

तद्धि श्राद्धमभोज्यं त्र्याहकुद्वैः पितृगणैर्गतेः ॥२००

आश्रित्य प्रथमं पात्रं तिष्ठन्ति पितरो गृणाम् ।

श्राद्धं तस्मात्त तडिद्वानुदरेत्प्रथमं सुधीः ॥२०१

पात्रयेत्पविष्यं तु यामो दत्त्वा विधानतः ।

पंक्तिमूर्धन्यमेवात्र पृच्छेदिति हि केचन  
 पितृश्राद्धे प्रधानत्वात्सामस्त्येनाथ वा पुनः ॥२०६  
 तूष्णीं यत्र तु होमादौ प्रजापतिस्तु तत्र तु ।  
 तृतीयं मनसा दद्याद्यमायास्तिरति वा पुनः ॥२०७  
 अह्नयेवास्मिस्तस्मिन्वा संश्रादोभून्मनोर्गिरः ।  
 अह्नव्या चाम्यतो वाणी अभूद्यहो प्रजापतेः ॥२०८  
 अग्नायाहुतयः प्रोक्तास्तिष्ठ एव मनीषिभिः ।  
 अग्निवद्विप्रपात्रेषु पश्चात्तज्जुहुयाद्द्विजः ॥२०९  
 अग्नौकरणशेषं तु पितृपात्रेषु दापयेत् ।  
 प्रतिपाद्य पितॄणां तु दद्याद्देवैश्चैविकैः ॥२१०  
 यश्चाग्नौकरणं दद्यात्पितृविप्रकरेण च ।  
 तेनोच्छ्रेयितमेतत्तयात्समाप्तिस्तावतैव तु ॥२११  
 पितरः करयकत्राश्च बन्धियकत्राश्च देवताः ।  
 अतःपाणौ न तदेयं पात्रे देयं कुशान्विते ॥२१२  
 वैश्वदेविकविप्राणां पात्रे वा यदि वा करे ।  
 अनग्निवस्तु तद्दद्यात्प्रथमं वैश्वदैविकैः ॥२१३  
 हुतशेषमशेषाणां पात्रे दद्याद्द्विजोत्तमः ।  
 पृच्छेत्सर्वांश्च यत्कृत्यं सामान्येन द्विजोत्तमान् ॥२१४  
 दद्यादाग्नौकरणं चान्यन् विप्राणां तृतिरुद्विजैः ।  
 परिवर्ष्यमिति मूयुस्तनो विधिरनन्तरम् ॥२१५  
 प्रागाग्नौकरणं दद्यादत्रा चान्यन्तु तृमिष्टम् ।  
 एकीकृतं तु मुञ्जानाः प्रीणयन्ति नृणां पितॄन् ॥२१६

परियेप्य हविः सर्वं तदथं यच्च वै शृतम् ।  
 अभिमन्त्र्य ततः पात्रे आपोशानप्रदानवत् ॥२१७  
 अन्नपूगस्य पात्रस्य कर्तव्यमभिषेचनम् ।  
 अपो दद्यात् तु सकल्यमेव श्राद्धविधिर्वरः ॥२१८  
 वर्जितानि न दद्यानि पितृप्रीति विजानता ।  
 हविष्याणि प्रदेयानि वक्ष्यमाणानि वर्जयेत् ॥२१९  
 निष्प्रायान् राजमाषांश्च कुलित्यान् कौरदूषकान् ।  
 मसूरान् शीतपार्कं च पुलार्कं शणमर्कटाः ॥२२०  
 आढव्य सितसिद्धार्थं घृणानि स्निग्धान्यकम् ।  
 पिण्याकं परिदग्धं च मथितं च विवर्जयेत् ॥२२१  
 नापि भीरस-निर्गेन्धं वरञ्च सर्वसक्तुकम् ।  
 अप्रोक्षितं च यदिकश्चित्पयुपितं विवर्जयेत् ॥२२२  
 लोहितान्मृक्षनिर्यासान्प्रत्यक्षलक्षणानि च ।  
 कृतदृष्ट्यानि लवण सधाः पलाण्डुजातयः ॥२२३  
 कृष्णजीरक वंशाम्राष्टृणानि च विवर्जयेत् ।  
 हुम्भिका-यूष-पालङ्क्यः कट्फलं तण्डुलीयकम् ॥२२४  
 नीलिका च सितच्छत्रा शोभाञ्जन-कुमुम्भिकाः ।  
 कोविदार-करञ्जौ च मुमुक्षां मूलकं तथा ॥२२५  
 कृष्माण्डं गौरवृन्ताकं बृहत्याश्च फलानि च ।  
 फरीरफल-पुष्पाणि विडङ्गं मरिचानि च ॥२२६  
 जम्भारिका मुजम्बीरा मुपवी घोजपूरकाः ।  
 जम्बयलायूनि पिप्पल्यः पटोलं पिण्डमूलकम् ॥२२७

मसूराञ्जनपुष्पं च श्राद्धे दत्त्वा पतत्यध ।

विपच्छद्महत्तं मांसमन्यच्च चिरसंस्थितम् ॥२०८

नित्यं श्राद्धेऽपि घञं स्याद्विद्वराह-चकोरयोः ।

श्वायम्भुवादिभिः सर्वैर्मुनिभिर्धर्मदर्शिभिः ॥२२६

निपिद्धानि न देयानि पितृणामहितानि च ।

एकेन किञ्चित् अपरेण किञ्चित् किञ्चित् किञ्चित् परैर्मुनीन्द्रैः ।

श्राद्धे निपिद्ध क्षरानादि विद्वन्सर्वं पितृणां ननु किञ्च देयम् ॥२३०

सौवीर-तितैलत्रणादिकैस्तथात्रस्य शुद्धिर्भवतीह यैस्तु ।

तद्बीजपूरान्मरिचादियोगात्सिद्धं प्रदेयं ननु दुष्यतीह ॥२३१

श्राद्धे तु यस्य द्विज दीयमानं पित्रादिकस्येह भवेन्मनुष्यैः ।

यद्वस्तु यस्येह मनस्यभीष्टमासीत्पुरा तस्य तदेव देयम् ॥२३२

दातुश्च यस्मिन्मनसोऽभिच्छाप श्रद्धा भवेत्तत्र तु दीयमाने ।

श्राद्धेऽपि देयं विधियत्तदेव तद्वत्तमभ्युपमिति प्रवादः ॥२३३

आनीतमम्भो निशि यत्कथञ्चित् यथाणिदत्तं भवतीह विद्वन् ।

हेमाश्वुनिक्षेपहरिस्तृतिभ्यामब्जिद्रुतामेति पराशरोक्तिः ॥२३४

यत्क्षीरसत्तैश्च वण्डयोगाद्वालाभिवेयं भवतीह विद्वन् ।

प्राण्यङ्गमूपान्मरिचादियोगात् पाकस्य सिद्धिं प्रयदन्ति तज्ज्ञाः ॥२३५

ग्रीहयो यत्र-गोधूमा मुद्रा मापास्तिलास्तथा ।

नीवार श्यामकाण्य च अकृत्स्नमग्नयानि च ॥२३६

आरण्यकालशाकादि प्रतिपिद्वापराणि च ।

माहेयीक्षीरमभ्यादि सद्गुणादिपिशितानि च ॥२३७

शर्करा-गुड-खण्डादि संशुद्धं क्षौद्रमेव च ।

पितृश्राद्धे हरिर्मुखं यद्वा तद्वाप्यलाभतः ॥२३८

यदेहिनामत्र शरीरमुद्देश्य धाता सप्तज्वाशननाम किञ्चित् ।

तत्सर्वधान्याग्नमिति ह्यग्निं त्रेधा मुनीन्त्रेण पराशरेण ॥२३९

शामायश्वादि कुरुमुजाति यत्किञ्चिदस्मिन्नुपसारमूतम् ।

आरण्यजं वा कृषिसम्भवं वा मत्स्यं तदुक्तं मुनिनाऽग्नेषु ॥२४०

काण्डोद्भवं यत्रशनेषु किञ्चिन् पद्मोद्भवं वा स्यत्सम्भवं वा ।

यत्पुष्पसारं बहुसारमस्मिन्सर्वाणि धान्यानि च शूकयन्ति ॥२४१

यत्सर्वसारं सतुपं च भक्ष्यं नि शूकशूकान्त्रितमत्र किञ्चित् ।

आप्यायनं देहमृता च सद्यस्तत्प्रोक्तमग्नं ह्यग्नेन सद्भिः ॥२४२

प्रतिश्रुतं च भुक्तं च फटुतिकं च यत्तथा ।

केचिदूचुरदेयानि यत् स्वातप्रतिरोपितम् ॥२४३

तुण्डिकेरान्यलाघूनि लिङ्गाख्यानि च यानि तु ।

श्राद्धे नित्यमदेयानि प्राह सत्यवतीपतिः ॥२४४

सोङ्कारया वै गायत्र्या दशावर्तितया जलम् ।

पूतं तु तेन तत् प्रोक्ष्यं सर्वमग्नं विशुद्धये ॥२४५

शुद्धयत्योथ कूर्माण्ड्यं पावमान्यस्तरत्समाः ।

पूतं तु वारिणैताभिरग्नशोधनमुत्तमम् ॥२४६

तद्विष्णोरिति मन्त्रेण गायत्र्या च प्रयत्नवान् ।

प्रोक्षयेदशानं सर्वं शूद्रदृष्ट्यादिशुद्धये ॥२४७

गृहाग्नि-शिशु-देवानां यतीनां ब्रह्मचारिणाम् ।

तावन्न दीयते किञ्चिद्यावत् पिण्डान्नं निर्वपेत् ॥२४८

काञ्चित्कं दधि तर्कं च शृतं चाशृतमेव वा ।

पूर्वाह्ने न प्रदातव्यं एकोद्दिष्टेऽथ पार्वणे ॥२४१॥

आपिण्डदानतो दद्याद्वर्तिकञ्चिच्च श्राद्धवासरे ।

तेनैव पितरो यान्ति श्राद्धं गृह्णन्ति नैव च ॥२४२॥

परिवेषयेत्समं सर्वं न कार्यं पंक्तिभेदनम् ।

पंक्तिभेदी वृथापाकी नित्यं ब्राह्मणनिन्दकः ।

आदेशी वेदविक्रेता पञ्चैते ब्रह्मघातकाः ॥२४३॥

यद्येकपक्ष्यां विपमं ददाति स्नेहाद्भयाद्वा यदि चार्थलोभात् ।

वेदैश्च दृष्टं ऋषिभिश्च गीतं तद्ब्रह्महत्यां मुनयो वदन्ति ॥२४४॥

देवान्पितॄन्मनुष्यांश्च बहिमभ्यागतांस्तथा ।

अनभ्यक्ष्य तु भुञ्जानो वृथापाक इति स्मृतः ॥२४५॥

पृथ्वी ते पात्रमित्येतत्क्षौरपीति पिधानरूपम् ।

एतद्वै ब्राह्मणस्यास्य जुशेमि चामृतेऽमृतम् ॥२४६॥

इदं विष्णुरिति होतन्मन्त्रमुष्ण्य चापरे ।

द्विजाङ्गुष्ठं च तत्राग्ने निवेशयन्ति तद्विदः ॥२४७॥

जप्त्वा व्याहृतिभिः साग्नां गायत्रीं मधुमतीरिति ।

सङ्कल्प्याजमपोशानं धूयाथ मधुमभ्यति ॥२४८॥

आपोशानं प्रदेवान्नं न तत्संकल्पयेद्द्विजः ।

सङ्कल्प्यग्नरके याति निराशः पितृभिर्गतैः ॥२४९॥

आपोशानोदके विप्रपाणौ तिष्ठति यो द्विजः ।

सङ्कल्पं कुरुतेऽज्ञानात् स्युस्तस्य पितरो हताः ॥२५०॥

जप्या वै वैष्णवान्मात्रान्निप्रान्त्र्यूयाद्यथासुगम् ।  
भुञ्जीरन्वायतास्तेतु पितृ-देवहितैषिणः ॥२५६  
अत्युष्णमशनं कायं वचो वाच्यं पितृष्वदः ।  
शूद्रं च शूकर-ध्वाङ्ग-कुक्कुटानपनाययेत् ॥२६०  
भुञ्जते ब्राह्मणा यावत्तावत्युष्णं जपेज्जपम् ।  
पावमान्यानि वाक्वानि पितृसूक्तानि चैव हि ॥२६१  
सतस्तृप्तान् द्विजान्पृच्छेत्तृप्तास्येत्यनुशासनम् ।  
तृप्तास्मेति द्विजा ब्रूयुस्तदन्नं विकिरेद्भुवि ॥२६२  
सकृत्सकृत्स्वपो दत्त्वा शेषमन्नं निरेदयेत् ।  
यथानुज्ञा तथा कृत्वा पिण्डांस्तदनु निर्वपेत् ॥२६३  
यद्यद्भुक्तं द्विजैरन्नं तत्तदादाय विसरः ।  
स्थालीपाकं तिलोपेतं दक्षिणाशामुखस्ततः ॥२६४  
अबन्तिज्य तिलान्दर्भात्पिण्डार्थमवनीतले ।  
तस्मिन्निर्वपेत्पिण्डान् गोत्रनामकपूर्वकान् ॥२६५  
ये देवलोकं पितृलोकमापुः प्राप्तास्तथैवं नरकं नरा ये ।  
अग्नौ हुतेन द्विजभोजनेन तृप्यन्ति पिण्डैर्भुवि ॥ प्रदत्तैः २६६  
यदन्नं लेपरूपं तु क्रमात्तेषु च निक्षिपेत् ।  
प्रक्षाल्य सलिलं तत्र अचनेजनवत्पुनः ॥२६७  
निवृत्तानर्चयेत्पिण्डान् पुष्प-गन्धविलेपनैः ।  
दीप-वास, प्रदानेन पितॄनर्च्य समाहितः ॥२६८  
यासो यस्त्रिंशो दद्याद्विधिवन्मन्त्रपूर्वकम् ।  
केचिऽदत्राऽविकं लोम केचिन्मनं न तत्त्विति ॥२६९



पञ्चाशद्वार्षिको यस्तु दद्याल्लोमं स्वमंशुकम् ।  
 तद्वश्यं प्रदेयं स्याद्विधिसम्पूर्णताकृते ॥२७०  
 परितं यदि वा दधं करात्तत्र विनिःक्षिपेत् ।  
 प्रक्षाल्ये हस्तावाचम्य प्राक्षणादिकमाचरेत् ॥२७१  
 निर्घपन्त्यपरे पिण्डान् प्रागेव द्विजभोजनात् ।  
 खादयेद्युः शकुन्तास्तान्पितृणां तृप्तिस्तपराः ॥२७२  
 मातामहानामप्येवं विप्रानाचामयेद्यथ ।  
 वाचयेत् द्विजान्स्वस्ति दद्याच्चैवाक्षयोदकम् ॥२७३  
 दक्षिणा हेम देवानां पितॄणां रजतं तथा ।  
 शतया दद्यात्स्वधाकारं व्याहरेच्छाद्रुद्रद्विजः ॥२७४  
 तिष्ठन्पिण्डान्तिके घृयाद्वाचयिष्ये स्वधामिति ।  
 वाच्यतामिति विप्रोक्तिः प्रवदेद्गोत्रपूर्वकम् ॥२७५  
 स्ववोच्यतामिति घृयादस्तु स्वधेति तद्वचः ।  
 ऊजं धहन्तीरुषार्यं जलं पिण्डेषु सेचयेत् ॥२७६  
 याः काश्चिदेवताः श्राद्धे विश्वशब्देन जल्पिताः ।  
 प्रीयतामिति च घृयाद्विप्रैरुक्तमिदं जपेत् ॥२७७  
 दातारो नोऽभिर्यन्तां देवाः सन्ततिरेव च ।  
 श्रद्धा च नो मास्यगमद्गु देयं च नोऽस्तिवति ॥२७८  
 न्युञ्जपिण्डार्घ्यपात्राणि कृत्योक्तानानि संग्रवात् ।  
 क्षिप्त्वा पिण्डेष्वतो विप्रान्पितृपूर्वं विसर्जयेत् ॥२७९  
 वाजे वाजे इति ह्युक्त्वा आमाषाजस्य तान् घृहिः ।  
 घृयात्प्रदक्षिणीरुष्य क्षम्यमित्यमित्यपि ॥२८०  
 ५२

सन्तानेषुस्त्रयोदश्यां न पिण्डान् पातयेन्नरः ।  
 पातयेत्तमनिच्छंश्च प्राद सत्यवतीपतिः ॥२६२  
 मघायुक्तत्रयोदश्यां पिण्डनिर्वपणं द्विजः । -  
 स सन्तानो नैव कुर्यादित्यन्ये क्वयः विदुः ॥२६३  
 यः सङ्क्रमे भानुदिने च कुर्यादुपोषणं पारणकं द्विजन्मा ।  
 पिण्डप्रदानं पितृभे च तद्वज्रप्रेष्ठो विपद्येत सुतो ऽनुजो वा २६४  
 पुत्रदा पञ्चमी कर्तुंस्तथैवैकादशी तिथिः । -  
 सर्वकामा त्वमावास्या पञ्चम्यूर्ध्वं शुभाः स्मृताः ॥२६५  
 अन्नं क्षीरं घृतं शौद्रमैक्ष्यं कलशशकचत् ।  
 एतैस्तु तर्पितैर्विभ्रैस्तर्पिताः पितरो नृणाम् ॥२६६  
 देशः पथं च कालश्च हविः पात्रं च सत्क्रियाः ।  
 पितृ-दैविकचित्तत्वं योगश्रेष्ठितृभादिभिः ॥२६७  
 शौचं च पात्रशुद्धिश्च श्रद्धा च परमा यदि ।  
 अन्नं तत्तृप्तिकृच्छ्राद् एतत्पुत्रं न चाऽमिषे ॥२६८  
 यस्तु प्राणिवधं कृत्वा मासेन तर्पयेत् पितृन् ।  
 सोऽविद्वार्थदं दग्ध्वा कुर्यादङ्गारविक्रयम् ॥२६९  
 क्षिप्त्वा मृषे यथा किञ्चिद्बाल आदातुमिच्छति ।  
 पतत्यज्ञानतः सोऽपि मासेन श्राद्धकृत्तथा ॥३००  
 सर्वथाऽन्नं यदा न स्यात्तदैवामिषामाश्रयेत् ।  
 ब्राह्मणश्च स्त्रियं जाद्यात्तस्य स्वादिदत्तं यदि ॥३०१  
 अधान्यत् पापमृत्यूनां शुद्धयर्थं श्राद्धमुच्यते ।  
 कृतेन तेन येषां तु प्रदत्तमुपतिष्ठति ॥३०२

दन्ति-शृङ्गि-गर-च्याल-नीरानि-वन्धनैस्तथा ।

विशुद्धिर्धात-वृक्षैश्च विप्रैश्च स्यात्मना हताः ॥३०३

घणसञ्जातकीटैश्च म्लेच्छैश्चैव हतास्तथा ।

पापमृत्यय एवैते शुभगत्यर्थमुच्यते ॥३०४

नारायणघलिः कार्यो विधानं तस्य चोच्यते ।

उर्ध्वं पण्मासतः कुर्यादेके उर्ध्वं तु घत्सरात् ॥३०५

तेषां पापव्यपोहायं कार्यो नारायणो घलिः ।

धौतवासाः शुचिः स्नात एकादश्यामुपोषितः ॥३०

शुद्धरक्षे तु सम्पूज्य विष्णुमीशं यमं तथा ।

नदीतीरं शुचिर्गत्या प्रदद्यादश पिण्डकान् ॥३०७

क्षौद्रा-ऽऽज्य-तिलसंयुक्तान् हविषा दक्षिणामुतः ।

अभ्यर्च्य पुष्प धूपार्घ्यैस्तत्राम-गोत्रपूर्वकान् ॥३०८

विष्णुध्यानमनाः कुर्यात्ततः स्नानम्भसि क्षिपेत् ।

निमन्त्रयेत् विप्राश्च पंच सप्ताऽथ वा नय ॥३०९

द्वादश्यां कुतपे स्नातान्वीनवस्त्रान्समागतान् ।

कृष्णाराधनकृद्भक्त्या पादप्रक्षालितान्छुभान् ॥३१०

दक्षिणाप्रवणे देशे शुचिस्तानुपवेशयेत् ।

द्वौ दैवे तु त्रयः पित्र्ये प्राद्मुत्तोदङ्मुत्तान्द्विजान् ॥३११

असिना-ऽऽवाहनाय च कुर्यात् पार्वणवद्द्विजः ।

भोजयेद्भक्ष्य-भोज्यैश्च क्षौद्रैश्चवाज्य-पायसैः ॥३१२

सृष्टान् स्नात्वा ततो विप्रान्स्मृतिं पृच्छेद्यथाविधि ।

भोज्येन तिलमिश्रेण हविष्येण च तान् पुनः ॥३१३

पञ्च पिण्डान्प्रदद्याद्वै देवं रूपमनुस्मरन् ।  
 विष्णु-ब्रह्म-शिवेभ्यश्च त्रीन्पिण्डांश्च यथाक्रमम् ॥३१४  
 यमाय सन्तुगायाथ चतुर्थं पिण्डमुत्सृजेत् ।  
 मृतं सञ्चित्य मनसा गोत्र-नामकपूर्वकम् ॥३१५  
 विष्णु-मृग्या क्षिपेत्पिण्डं पञ्चमञ्च ततः पुनः ।  
 दक्षिणाभिमुखश्चैव निर्वपेत्पञ्च पिण्डकान् ॥३१६  
 आचम्य ब्राह्मण पश्चात्त्र्योक्षणादिकमाचरेत् ।  
 हिरण्येन च वासोभिर्गोभिर्मन्या च तान्द्विजान् ॥३१७  
 प्रणम्य शिरसा पश्चाद्विनयेन प्रसादयेत् ।  
 तिलोदकं करे दत्त्वा प्रेतं संमृत्य चेतसि ।  
 गोमृगं क्षिपेत्पाणौ त्रिणु द्बुद्धौ निवेश्य च ॥३१८  
 दहिर्गन्ध्या तिलाम्भस्तु तस्मिंदद्यात्समाहितः ।  
 मित्रभृत्यैर्निजैः साद्धं पश्चाद्बुद्धीत वाग्यतः ॥३१९  
 एषं विष्णुमते स्मिन्वा यो दद्यात्त्रायपमृत्यवे ।  
 समुद्धृतिं तं प्रेतं पराशरघचो यथा ॥३२०  
 सर्वेषां पापमृत्यूनां कार्यो नारायणो बलिः ।  
 तस्माद्दुर्घं च तेभ्यो हि प्रदत्तमुपतिष्ठति ॥३२१  
 एवं श्राद्धैः समस्तान्यः सन्तर्पयति वै पितॄन् ।  
 ददत्यनुत्तमास्तस्य पितरस्तर्पिता यरान् ॥३२२  
 विद्या-तपोमुग्यान्युग्रान्पूज्यत्वमय योपितः ।  
 सौभाग्यैश्वर्य-सेजश्च यत्नं छैष्ठ्यमरोगताम् ॥३२३

यशः शुचित्वं कुर्यानि सिद्धिं चैवात्मवान्छिताम् ।  
 यशश्च दीर्घमायुश्च तथैवानुत्तमां मतिम् ॥३२४  
 अधान्यस्त्रिचिदाख्यामि पितृणां तु हिताय वै । ।  
 कृतेन स्वल्पकं नापि प्राप्नुवन्ति विघेः फलम् ॥३२५  
 उच्छिष्टस्य विसर्गाय विधिस्तात्कालिको हि यः । ।  
 धाद्वहैर्विहितं यत्प्राक् पितृणां हितकाङ्क्षिभिः ॥३२६  
 आदाय सर्वमुच्छिष्टमवनेजनवद्बुधः ।  
 तत्रैव निक्षिपेत् भूमौ तिल दर्भसमन्वितम् ॥३२७  
 नरकेषु गता ये वै अपमृत्युमृता मम ।  
 एतदाध्यायनं तेषां चिरायास्त्यति चोचरेत् ॥३२८  
 वरस्य मभ्यतो देवाः फरपृष्ठेतु राक्षसाः ।  
 पात्रस्यालम्भनादौ च तस्मात्तं न प्रदर्शयेत् ॥३२९  
 दर्भाश्च स्वयमानेया दक्षिणाप्रवणोद्भवाः ।  
 तर्पणाद्गुञ्जिता ये वै इत्याद्याश्च त्रिवर्जयेत् ॥३३०  
 न कुशं कुशमित्याहुर्बर्भमूलं कुश स्मृतः ।  
 छिन्ना दर्भा इति प्रोक्तास्तदग्रं पुनपः स्मृतः ॥३३१  
 हरिता यज्ञिया दर्भा पीतकाः पाक्याक्षिकाः ।  
 सवुशाः पितृदेवत्यान्छिन्ना वै वैश्वदेविकाः ॥३३२  
 दभमूले स्थितो ब्रह्मा दर्भमध्ये जनार्दनः ।  
 दर्भाग्निं शङ्करस्तस्थौ दर्भा देवग्रयान्विताः ॥३३३  
 अहन्येकादशे श्राद्धे प्रतिमासं तु षत्सरम् ।  
 प्रति संवत्सरं कार्यमेकोद्दिष्टं तु सर्वदा ॥३३४

एकरय प्रथमं श्राद्धसर्वांगञ्दाद्य मासिकम् ।  
 प्रतिसंवत्सरं चैव शेषं त्रिपुरूपं स्मृतम् ॥३३५  
 सपिण्डीकरणादूर्ध्वं प्रतिसंवत्सरं सुतैः ।  
 माता-पित्रोः पृथकार्यमेकोद्दिष्टं क्षयाहनि ॥३३६  
 सपिण्डीकरणादूर्ध्वं प्रतिसंवत्सरं द्विजः ।  
 एकोद्दिष्टं प्रकुर्वीत पित्रोरप्यत्र पार्वणम् ॥३३७  
 चतुर्दश्यां तु यच्च श्राद्धं सपिण्डीकरणे कृते ।  
 एकोद्दिष्टविधानेन तत्कुर्याच्चञ्चलपातिते ॥३३८  
 पित्राद्यस्तयो यस्य शस्त्रपातास्तनुकगात् ।  
 सम्भूतैः पार्वणं कुर्यादष्टकानि पृथक् पृथक् ॥३३९  
 सपिण्डीकरणादूर्ध्वं पितुर्यः प्रपितामहः ।  
 स तु लेपभुगित्येव प्रच्छ्रमः पितृपिण्डतः ॥३४०  
 सपिण्डीकरणादूर्ध्वं कुर्यात्पार्वणवत्सदा ।  
 प्रतिसंवत्सरं विद्वच्चञ्चललेयो विधिः स्मृतः ॥३४१  
 सपिण्डता तु कर्तव्या पितुः पुत्रैः पृथक् पृथक् ।  
 स्वाधिकारप्रवृत्तत्यादितरः श्राद्धकर्तव्यत् ॥३४२  
 तीर्थश्राद्धं गयाश्राद्धं श्राद्धं वा परपरन्धिकम् ।  
 सपिण्डीकरणे कुर्यादकृते तु निवर्तते ॥३४३  
 यस्य संवत्सरादर्वाकं सपिण्डीकरणं भवेत् ।  
 प्रतिमासं तस्य कुर्यात् प्रतिसंवत्सरं तथा ॥३४४  
 अर्वाकं संवत्सराद्बृद्धौ पूजे संवत्सरंऽपि च ।  
 ये सपिण्डीकृताः प्रेता न तु तेषां पृथग्विक्रया ॥३४५

एकपिण्डीकृतानां तु पृथक्त्वं नोपपद्यते ।  
 सपिण्डीकरणादूर्ध्वं मृते कृष्णचतुर्दशीम् ॥३४६  
 अर्वांस्तत्सरादूर्ध्वं मृते कृष्णचतुर्दशीम् ।  
 ये सपिण्डीकृतास्तेषां पृथक्स्तेनोपपद्यते ।  
 पृथक्स्तरकरणे तस्य पुनः पार्या सपिण्डता ॥३४७  
 स्त्रियं शशत्रा पतिर्मात्रा तया सह सपिण्डयेत् ।  
 तत्सद्भावे पितामहा तन्मात्रा चापरे विदुः ॥३४८  
 नान्यथा तु पितामहा मातामहास्तथाऽपरे ।  
 उदकं पिण्डदानं च सहभर्त्रा प्रदीयते ॥३४९  
 अपुत्रा ये मृता, त्रेविंश्रियो वा पुण्याऽपि वा ।  
 तेषामपि च देयं स्यादेवोद्दिष्टं च पार्षणम् ॥३५०  
 अपुत्राश्च मृता ये च पुमाराः ससृता अपि ।  
 तेषां समानता न स्यात् स्वधा नाभिरम्यताम् ॥३५१  
 भर्त्रा सपिण्डता स्त्रीणां वार्गेति वचनो विदुः । । ।  
 स्वध्या सहोपरे तस्यास्तन्मात्रा चापरे विदुः ॥३५२  
 अनपत्येषु प्रतेषु न स्वधा नाभिरम्यताम् ।  
 गौर्दिष्टेषु सर्वेषु न स्वधा नाभिरम्यताम् ॥३५३  
 मित्रं यन्तु सपिण्डेभ्यः स्त्री-पुमारस्य चैव हि ।  
 श्वाढे मामिकं धाद्वं संवत्सरं तु नान्यथा ॥३५४  
 अप्रत्ययगतश्चैव पुत्रं देशं यवम्यथा ।  
 यो यथा क्रियया यन्तु न तर्ह्यपि निरपेक्षः ॥३५५

दाढ्यायं दृश्यते रुद्धिर्मानवं लिङ्गमेव च ।  
 दृढीकृत्वा च विद्वद्भिर्लोकरुद्धिर्गरीयसी ॥३५६॥  
 विकल्पेषु च सर्वेषु स्वयमेकैकमादित्त ।  
 अङ्गीकरोति यं कर्ता स विधिस्य नेतरः ॥३५७॥  
 षडून् हि याजयेत्तस्तु वर्णवाक्षांश्च नित्यशः ।  
 स्तेचद्राश्च शौण्डिकांश्चैव स विप्रो बहुयाजकः ॥३५८॥  
 यश्च धैर्येण दुष्टात्मा गो सुवर्णापहारकः ।  
 सङ्गृहीतासवर्णस्त्रिः स विप्रो गण उच्यते ॥३५९॥  
 यस्तते यश्च चौर्येण सुवर्णेनोपहारकः ।  
 सङ्गृहीतमवर्णस्त्रि म विप्रो गौण उच्यते ॥३६०॥  
 मृते भर्तुरि या नारी रहस्यं कुरुते पतिम् ।  
 तस्य वैभवायेद्गर्भं सा नारी गणिका स्मृता ॥३६१॥  
 अन्यदत्ता तु या कन्या पुनरन्यत्र दीयते ।  
 अपि तस्या न भोक्तव्यं पुनर्भूः सा प्रकीर्तिता ॥३६२॥  
 कौमारं पतिगुत्सृज्य यास्वन्यं पुरुषं प्रिता ।  
 पुनः पत्युर्गृहं गच्छेत्पुनर्भूः सा द्वितीयका ॥३६३॥  
 अस्तत्सु देवरेषु स्त्री धान्धवैर्या प्रदीयते ।  
 सवर्णाय सपिण्डाय सा पुनर्भूस्तृतीयका ॥३६४॥  
 प्राप्ते द्वादश वर्षेऽत्र या रजो न विभर्ति हि ।  
 धारितं तु तया रेतो रेतोधाः सा प्रकीर्तिता ॥३६५॥  
 या भर्तुर्व्यभिचारेण कामं चरति नित्यशः ।  
 तस्या अपि न भोक्तव्यं सा सवेत्कामचारिणी ॥३६६॥



पतिं हित्वा तु या नारी गृहादन्यत्र गच्छति ।  
 चरेषु रमते नित्यं स्वैरिणी सा प्रकीर्तिता ॥३६७  
 भर्तुः शासनमुल्लंघ्य स्वकामेन प्रवर्तते ।  
 दीव्यन्ती च हसन्ती च सा भोक्तामचारिणी ॥३६८  
 पतिं विहाय या नारी सवर्णमन्यमाश्रयेत् ।  
 वर्तते ब्राह्मणत्वेन द्वितीया स्वैरिणी तु सा ॥३६९  
 मृते भर्तरि या याति क्षुत्पिपासातुरा परम् ।  
 तत्राहमिति सम्भाष्य तृतीया स्वैरिणी तु सा ॥३७०  
 देरा-कालाद्यपेक्ष्यैव गुरुभिर्या प्रदीयते ।  
 उत्तरज्जताहमाऽन्यस्मै चतुर्थी स्वैरिणी तु सा ॥३७१  
 आसु पुरास्तु ये जाता यज्ज्रास्ते दृश्य-वक्ष्ययोः ।  
 तथैव पतयस्तासां पर्जन्याः प्रयन्नतः ॥३७२  
 श्राद्धं तैश्च न पर्जन्यं प्रतिलोमविधानतः ।  
 धैश्चश्राद्धं पितृश्राद्धं प्रतिलोमविधानतः ।  
 यणांशमयदि स्यास्ते संजीर्णजन्मसम्भवा ॥३७३  
 मानुषां च पितृणां च स्त्रीयानां पिण्डदाः स्मृताः ।  
 उपपत्तिमुत्रो यस्तु यश्चैव त्रीणिपत्ति ॥३७४  
 परपूर्वपतेर्जाताः सर्वे वक्ष्यां प्रयन्नतः ।  
 अजापान्नादिजाताश्च विशेषेण तु वर्णवे ॥३७५  
 मृतानुगमन नास्ति ब्राह्मण्या ब्रह्मशासनात् ।  
 इतरेषु च वर्णेषु तत्र परममुच्यते ॥३७६

भर्तुश्चित्तां समारोहेद्या च नारी पतिव्रता ।

अह्नयेकादशे प्राप्ते पृथविपण्डे नियोजयेत् ॥३७७

श्रौतैश्च स्मातेमंत्रैश्च दम्पत्यावेकतां गतौ ।

एकमृत्युगतौ चैव घट्ठावेकत्र तौ हुतौ ॥३७८

एकत्वं च तयोर्यस्माज्जातमाद्याधसानिकम् ।

एकादशादिकं श्राद्धमेकमेव स्मृतं बुधैः ॥३७९

आरुह्य भर्तुश्चित्तिमंगना या प्राप्नोति मृत्युं यदु सत्ययुक्ता ।

एकादशादे तु तयोर्विधेयं श्राद्धं पृथक्स्वर्गमपेक्ष्य सद्भिः ॥३८०

एकत्वं चिच्छ्रान्ति पतिमहीणा एकादशाद्वाद्विषु ये नृनार्यः ।

ते स्वर्गमार्गं विनिहत्य कुर्षुः स्त्रीसत्त्वात्तान्नरकेऽधियासम् ॥३८१

समानमृत्युना यस्तु मृतौ भर्ता च योपिताम् ।

तस्याः सपिण्डता तेन पिण्डमेकत्र निर्वपेत् ३८

स्त्रीपात्रं पतिपात्रे तु सिचयेदेकमेव हि ।

श्राद्धे त्रिपुरुषे त्रीणि तत्रत्यक्षं पितृन्प्रति ॥३८३

पत्या सह परामुत्प्राप्तेनेवास्याः सपिण्डता ।

पितामशापि चान्यत्र एतेदाह पराशरः ॥३८४

अन्यप्रीतौ न चान्यस्य वृत्तिः कुत्रापि दृश्यते ।

एवं धीमानमुत्रापि तस्मान्नैकत्वमाश्रयेत् ॥३८५

एकत्वाश्रेयणं धर्मो नार्यां लुप्तो भवेद्भुवम् ।

तस्याः सुरुतसामर्थ्यात्पत्युः स्वर्गमिहेष्यते ॥३८६

भर्ता सह मृता या तु नावलोकमभीप्सनी ।

साऽऽश्राद्धे पृथविपण्डा नैकत्वं तु बुधैः स्मृतम् ॥३८७

पतिमृत्यु स्त्रियो मृत्युर्निमित्तमेव जायते ।  
 निर्निमित्तो न वैमृत्युर्मृत्युना चैकता भवेत् ॥३८८  
 भर्तासह मृता भार्या भर्तारं सा समुदरेन् ।  
 तस्या पतिव्रताधर्म पिण्डैक्येन हतो भवेत् ॥३८९  
 वलीयस्त्रेन धर्मस्य तुच्छत्वाच्चागसस्तथा ।  
 धर्मेण लुप्यते पापमेकत्रे समता सद्यो ॥३९०  
 नैकत्रं तु तयोरस्माद्वचनं श्राद्धकर्मणि ।  
 पृथगेव हि कर्तव्यं श्राद्धमेवादशादिकम् ॥३९१  
 यानि श्राद्धानि वायाणि तान्युक्तानि पृथक् पृथक् ।  
 कर्तव्यं यैस्तु तेऽयुक्तं विशेषं च निरोधत ॥३९२  
 औरसाणां स्मृता पुत्रा मुनिभिर्द्वादशैव तु ।  
 यथा जात्यनुसारेण घणानामनुसारत ॥३९३  
 पिण्डप्रदा प्रमेग म्यु पुत्रांभाव पर पर ।  
 यस्माद्यो जायते पुत्र स भवेत्तस्य पिण्डः ॥३९४  
 तस्मात्तस्मादपीदस्ते मृता प्रेतस्यमागता ।  
 तस्मादवश्यमेव हि श्राद्धं वायं विधानत ॥३९५  
 शुद्धस्य दामिज पुत्र कामान्मुम पिण्डः ।  
 जात्या जात मुनो मस्तु पिण्डः स्यामुनोऽपि च ॥३९६  
 जनकस्य न विच्छिन्नादर्थानामप्रवर्जनात् ।  
 वायुभूताश्च पितरो दत्ताभिराश्रिण मदा ।  
 तस्मान्नेभ्य मदा देय नृभिर्धर्मतै सदा ॥३९७

ये स्वाण्ड-मांस-मधु-पायस-मर्पिरन्नेर-  
 देशे च कालसहिते च सुपात्रदत्तैः ।  
 ग्रीणन्ति देव-मनुजान्पितृवंशजातान्  
 तेषां नृणां तु पितरो वरदा भवन्ति ॥३६८  
 मया श्राद्धविधिः प्रोक्तो वर्णानां पितृवृत्तिकृत् ।  
 एवं दास्यति यः श्राद्धं वरान्सर्वानवाप्स्यति ॥३६९  
 इति श्रीवृहत्पराशरीये धर्मशास्त्रे सुवत्प्रोक्तायां संहितायां  
 श्राद्धाधिकारो नाम सप्तमोऽध्यायः समाप्तः ।

—ॐ—

अष्टमोऽध्यायः

॥ अथ शुद्धिवर्णनम् ॥

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि शुद्धिं पराशरोदिताम् ।  
 सूतके वाप्यशौचे वा यथावत्तां निबोधत ॥१  
 प्रसवं सूतकं प्रादुरशौचं शावमुच्यते ।  
 यावत्कालं च यन्मात्रं तथा तावन्निगद्यते ॥२  
 केषां चित्तेन वै मांसं केषां चिन्मरणान्तिरुम् ।  
 सद्यः शौचास्तथा चान्ये अन्ये चैकाहिकाः स्मृताः ॥३  
 त्रि-पद्-दश-दशद्वाभ्यां दशापि सह पञ्चभिः ।  
 तान्येव त्रिगुणान्याहुर्दिनान्येव मनीषिणः ॥४

यक्ष्यमाणं निबोधध्वमुत्क्रममिदं द्विजाः ।  
 शक्तिजो यन्मुनीनां च प्राग् ब्रवीत्कलिधमविन ॥५  
 विष्णुध्यानरत्नानां च सदैव ब्रह्मचारिणाम् ।  
 गृहमेधिद्विजानां तु तथैव व्रतचारिणाम् ॥६  
 वेदतत्त्वार्थवेत्तृणां नित्यस्नानकृतां तथा ।  
 अतस्संसर्गिणामेषां नाशौचं नापि सूतकम् ॥७  
 संसर्गवर्जयेद्यत्नात्संसर्गो दोषकारणम् ।  
 पुण्याश्रमादिसंसर्गं वर्जने स्यादकिल्बिषी ॥८  
 षडन्ति मुनयः प्राच्याः संसर्गो दोषकारणम् ।  
 असंसर्गः स्वकर्मस्थो द्विजो दोषर्न लिप्यते ॥९  
 दानोद्वाद्देष्टि-संपाप्ते देशविशुद्धकादिके ।  
 सद्यः शौचं द्विजातीनां सूतकाशौचयोरपि ॥१०  
 दानृणां व्रतिनामेके कथयः सत्त्रिणामपि ।  
 सद्यः शौचसदोषाणामूचुर्धर्मविदः फलौ ॥११  
 सर्वमंत्रपवित्रस्तु अग्निहोत्री षडङ्गवित् ।  
 राजा च भोत्रियश्चैव मद्यः शौचाः प्रकीर्तिताः ॥१२  
 देशान्तरगते जाते मृते वाऽपि भगोत्रिणि ।  
 शेषाहानि दशादाय्यां सद्यः शौचमतः परम् ॥१३  
 सत्यप्येकनिवासे तु सद्यः शौचं विशोधनम् ।  
 पिण्डनिर्वर्तने जाते मृते चापि भगोत्रजे ॥१४  
 सद्यः शौचं विषातत्र्यमरांश्च दश जन्तानः ।  
 मान्यवादिषु विज्ञेयमन्यदूर्ध्वं विधीयते ॥१५

नाऽऽशौच-सूतके स्याता नृपतीना कदा च न ।

यत्तत्कर्मप्रवृत्तस्य श्रुतिरजो दीक्षितस्य च ॥१६

पृथक्पिण्डमृते घाले निर्देशेऽन्यत्र च श्रुते ।

जाते वापि च शुद्धिः स्यात्सद्यः शौचादसंशयम् ॥१७

सर्वेदः सामिरेकाहाद् ब्राह्मणः शुद्धिमाप्नुयात् ।

तथैकाहो नृपे संस्थे तथैव ब्रह्मचारिणि ॥१८

दुर्भिक्षे राष्ट्रभङ्गे च आपत्काल उपस्थिते ।

उपसर्गान्मृते वापि सद्यः शौचं विधीयते ॥१९

गो-विप्रार्थविपन्नाना माहवेषु तथैव च ।

ते योगिभिः समा ह्येया सद्यः शौचं विधीयते ॥२०

विप्रे संस्थे घृतादर्वाक् श्रोत्रिये च तथा द्विजे ।

अनूचाने गुरौ चैव आचार्ये चापि संस्थिते ॥२१

असंस्कृतस्त्रियां रात्रि श्रोत्रिये निधनं गते ।

त्रिरात्रमप्यशौचं स्यात्तथैवोदकदायिनः ॥२२

विद्वाननम्रिको विप्रस्त्रिरात्राच्छुद्धिमाप्नुयात् ।

मनीषिणः परे ब्रूयुरसपिण्डे अहं मृते ॥२३

प्रेसीभूतं च यः शूद्रं ब्राह्मणो हानदुर्वलः ।

नियतं ह्यनुगच्छेत् त्रिरात्रमशुचिर्भवेत् ॥२४

पट्टात्रं नवरात्रं च शवस्यूशां विशुद्धिकृन् ।

अहं चैव विशुद्धयर्थं धर्मशास्त्रविदो विदुः ॥२५

अनाथं ब्राह्मणं प्रेतं ये वहन्ति द्विजातयः ।

पदे पदे यद्यफलमनुपूर्वं लभन्ति ते ॥२६

अशुचित्वं न तेरा तु पापं वाऽशुभकारणम् ।  
 जलाव-गाहनात्तेषां सदा शौचं विधीयते ॥२७  
 असगोत्रमसम्बन्धं प्रेतीभूतं तथा द्विजम् ।  
 उद्वा दग्धा द्विजाः सर्वे स्नानान्ते शुचयः स्मृता ॥२८  
 एकरात्रं घदन्त्येके मदा स्नानं तथाऽपरे ।  
 गोप्रादादिमृतानां च मुनयः शुद्धिकारणम् ॥२९  
 हस्त शूरो विपद्येत शत्रुभियत्र कुत्रचित् ।  
 स मुक्तो यतिव्रतमद्य प्रविशेत्परपेषसि ॥३०  
 संन्यासो युद्धसंस्थश्च सम्भुगं शत्रुभिर्नरः ।  
 सूर्यमण्डलमेक्षारायिनि प्राहुर्मनीषिणः ॥३१  
 पराङ्मुखे हते सैन्ये यो युद्धाय नियतते ।  
 तत्पदानीष्टितुल्यानि स्युस्तियाद् पराशरः ॥३२  
 यदने प्रविशेत्तेषां लोहितं शिरसः पतन् ।  
 सौमपानेन ते तुल्या निन्दयो रुधिरस्य वै ॥३३  
 सन्यासेन मृता ये ये प्रधने ये सनुत्यजः ।  
 मुक्तिभाजो नरास्तेस्युरिति वेदोऽपि क्रीतयेत् ॥३४  
 सद्यः शौचं विधातव्यं शुद्धिरेवं विधीयते ।  
 नोपयन्ते ते मृता लोके सो ब्रह्मवपुर्गमाः ॥३५  
 मन्थ्याचारविहीनानां सूतकं ब्राह्मणे भूषम् ।  
 अशौचं वा दशाहं स्यादिति पाराशरोऽब्रवीत् ॥३६  
 रागाः ॥ द्वादशाहः स्यात्पक्षो वैश्यस्य पावनः ।  
 वृषभस्य सद्या मामराज्यादादेऽप्यपि धर्मतः ॥३७

क्षपा च पक्षिणी संक्षिप्ततुल्यदिमु कीर्तिताः । ११८  
 गर्भस्त्रावे च पाते च रात्रयो माससम्मिताः ॥३८,  
 स्त्रायं गर्भस्य त्रिद्व्यसो मासादर्वाक् चतुर्थकात् ।  
 पातमूर्ध्वं यदन्येके तत्राधिन्यं च सूतकम् ॥३९,  
 ऋणि-व्यसनि-रोगार्त-पराधीन-कदर्यकाः ।  
 कृष्णायन्तो निराचाराः प्रितृ-मातृविवर्जिताः ॥४०  
 स्त्रीजिताश्चानपत्याश्च देव-ब्राह्मणवर्जिताः ।  
 परद्रव्यं जिघृक्षन्तः सद्यः सूतकिनः सदा ॥४१  
 सूतके मृतशौचे वा अन्यदापद्यते यदि ।  
 पूर्णैरतु शुद्धैश्च जाते जातं मृते मृतम् ॥४२  
 एक पिण्डाश्च दायादाः पृथक्द्वार-निकेतनाः ।  
 जन्मन्यपि मृते वापि क्षेत्रं वै सूतकं भवेत् ॥४३  
 भृश-यहि-प्रपाते च देशान्तरमृतेषु च ।  
 बाले प्रेते च सन्यस्ते सद्यः शौचं विधीयते ॥४४  
 अजातदन्ता ये बाला ये च गर्भाद्विनिर्गताः ।  
 न तेषामग्निसंस्कारो नाशौचं नोदकक्रिया ॥४५  
 विवाहोत्सव-यज्ञेषु कर्तारो भृत-सूतके ।  
 पूर्वसंस्क्रितानर्थ-भोज्यान्तानत्रवीन्मनुः ॥४६  
 शिलिपनं कुरुक्राश्रैव दासी-दासस्तथैव च ।  
 इत्यादीनां न ते स्यातामनुगृह्णन्ति यान् द्विजाः ॥४७  
 पिता पुत्रेण जातेन दद्याच्छास्त्रं यथाविधि ।  
 पितृणां विविधानं दत्तं तत्राप्यनन्तकम् ।  
 तत्राप्यनन्तकं दासं परद्रव्यं पुत्रजन्मनि ॥४८



प्रसवे च द्विजातीनां न कुर्यात्सङ्करं यदि ।  
 दशादाच्छुष्यते माता अवगाह्य पिता शुचिः ॥४६॥  
 अविमानादतिकोषात्स्नेहाद्वा यदि वा भयात् ।  
 उद्बध्य प्रियते चास्तु न सत्याग्निः प्रदीयते ॥४७॥  
 न स्नायान्नोदकं दद्यान्नापि कुर्यादशौचताम् ।  
 सर्पेण शृंगिणा वापि जलेन चाग्निना तथा ॥४८॥  
 न स्नानादौ विपन्नस्थ तथाचैवात्मघातिनः ।  
 अर्वाक् द्विहायनादग्निं न दद्यान्मृतश्च यः ॥४९॥  
 किन्तु तान्निस्त्रनेद्रुमौ तुत्यान्नैषोदकक्रियाम् ।  
 सर्पादिप्राप्तमृशूनां षड्विंशद्विंशदिकाः क्रियाः ॥५०॥  
 पण्मासे तु गते कार्या मुनिः प्राह पराशरः ।  
 शास्त्रदृष्टे भुधैः कार्यमस्थिसञ्चयनादिकम् ॥५१॥  
 तत्कृत्वा तूतदियसैः शुद्धिमर्हति धर्मतः ।  
 अन्याममृतविप्राणां ये घोढारो भवन्ति हि ॥५२॥  
 अग्निशस्त्रैश्च ये तेषां तथोदकादिवायिनः ।  
 उद्बन्धनमृतयापि वरिष्ठन्याङ्गज्जुपाराकम् ॥५३॥  
 ते सर्वे पापसंयुक्ताः प्रायश्चित्तस्य भाजनाः ॥५४॥

मनुर्वा याज्ञवल्क्यश्चु षसिष्ठः प्राह निष्कृतिम् ।  
 सा कृतादिषु वर्णानां सति धर्मे चतुष्पदे ॥६०  
 मानसा वाचिका द्योपास्तथा धै कार्यकारिताः ।  
 धर्माधीना नृणां सर्वे जायन्ते तेऽप्यनिच्छताम् ॥६१  
 तेषामुपरताक्षाणां प्रत्यहं शुभमिच्छताम् ।  
 शक्तिज्ञो निष्कृतिं प्राह युगधर्मानुरूपतः ॥६२  
 विकृतव्यवहाराणां पापो निष्कृतिरुद्विजः ।  
 कति विप्रैः कथं रूपैरिति वाच्या भवेद्भि सा ॥६३  
 तद्रूपं च प्रवक्ष्यामि यावद्भिः सा द्विजैर्भवेत् ।  
 यथाविधाश्च विप्रास्पुरिति विद्वन् प्रकीर्त्यते ॥६४  
 पर्यदशाधरा प्रोक्ता ब्राह्मणैर्वेदपारगैः ।  
 सा यद्रूपा स धर्मः स्यात् स्थयम्भूरित्यकल्पयन् ॥६५  
 वेद-शास्त्रविदो विप्रा यं ब्रूयुः सप्त पञ्च वा ।  
 त्रयो वाऽपि स धर्मः स्यादेको वाऽध्यात्मवित्तमः ॥६६  
 संयमं नियमं वाऽपि उपवासादिकं च यत् ।  
 तद्विरा परिपूर्णं स्थानिष्कृतिव्यावहारिकी ॥६७  
 न लक्ष्णेणापि मूर्खाणां न चैवाऽधर्मवादिनाम् ।  
 विदुषां नापि लुब्धानां न चापि पक्षपातिनाम् ॥६८  
 श्रुता-ध्ययनसम्पन्नः सत्यवादी जितेन्द्रियः ।  
 सदा धर्मरतः शान्त एकः पर्यत्वमहति ॥६९  
 न सा वृद्धैर्न सरणैर्न सुरूपैर्नान्वितैः ।  
 त्रिभिरेकेन पर्यन् स्याद्द्विद्विद्विर्विदुषापि च ॥७०

ययसा लघवोऽपि स्युर्द्विधा धर्मत्रिदो द्विधा ।

शिशवोऽपि हि मध्यस्था सर्वत्र समदर्शना ॥७१

न ता वृद्धैर्भवेद्विप्रैर्वृद्धा सुधर्मनादिनः ।

यत्र सत्यं स धर्मः स्यान्नञ्जल यत्र न गृह्यते ॥७२

न सा सभा यत्र न सन्ति वृद्धा वृद्धान ते ये न वदन्ति धर्मम् ।

धर्मो वृथा यत्र न सत्यमस्ति सत्यं न तद्यत्र दृष्टानुविद्धम् ॥७३

निष्कृतौ व्यवहारे च व्रतस्याशसने तथा ।

धर्मं वा यदि धाड्यमं परिपन्नाद् तद्ववेत् ॥७४

स्त्रीणां च बाल वृद्धानां स्त्रीणानां कुशरीरिणाम् ।

उपवासाद्यशक्तानां कर्तव्योऽनुग्रहश्च वै ॥७५

ज्ञात्या देश च काल च व्यय सामर्थ्यमेव च ।

वर्तव्योऽनुग्रहः सद्भिर्मुनिभिः परिकीर्तितः ॥७६

लोभान्मोहाद्व्यन्मैव्याद्यपि कुर्युरनुग्रहम् ।

नरक यान्ति ते मूढा शतधा बाप्तराचिनः ॥७७

प्रविश्य पर्यदं ते वै सभ्यान्नामप्रतः स्थिताः ।

यथाफालं प्रकुर्युर्हो प्रायश्चित्तं तदोरितम् ॥७८

नित्यं यथाचते देवा घदन्तोऽत्र द्विनातयः ।

मव कुर्वन्ति नियमं गतपातं न सशयः ॥७९

प्रसादो द्विविधो ज्ञयो देव्यश्चामुख एव च ।

म्रीडयापि च तत्रैव देया तथैव ते द्विधा ॥८०

व्यवहारे गोसमैस्तु प्रार्थ्यादपि वैरतः ।

यथाशक्तं च तत्तर्पणं तत्तथैव निषेदयेत् ॥८१

यस्तेषामन्यथा ब्रूयात्स पापीयान् संशयः ।  
 सत्यमसत्यमेवात्र विपर्यस्तं वदेद्यतः ॥८२  
 स एवानृतमादी स्यात्सोऽनन्तं नरकं व्रजेत् ।  
 ज्योतिषं व्यवहारं च प्रायश्चित्तं चिकित्सितम् ॥८३  
 अजानन् यो नरो ब्रूयात्साहसं किमतः परम् ? ।  
 व्यवहारश्च तैः प्रोक्तो मन्त्राद्यैर्धर्मवादिभिः ॥८४  
 प्रजाभिर्नतु सर्वाभिर्मान्यैश्चैव तु मानवैः ।  
 तच्छ्रोत्रकप्रमाणानि लिखितादीनि तैर्विना ॥८५  
 जलादीनि च दिव्यानि साख्योक्तशपथानि च ।  
 अन्ये जनपदाचारा कुलधर्मस्तथापरः ।  
 परिपद्व्याख्यानैर्मध्या निर्णेतव्या यथाविधि ॥८६  
 जन्मजात्यनुसारेण देश-कालादिधर्मतः ।  
 कर्तव्यः सत्तमैः सर्वैर्मननीयश्च वादिभिः ॥८७  
 गो-ब्राह्मणहतादीनां तथा द्रुमादिकारिणाम् ।  
 तप्तकृच्छ्रेण शुद्धिं श्यादिति पाराशरोऽथर्वात् ॥८८  
 भोजयेद्ब्राह्मणान्पश्चात्सवृषा गौश्च दक्षिणा ।  
 जायन्ते पापनिर्मुक्ताः शक्तिमूनोर्यथाऽन्नचः ॥८९  
 अनाशकान्निवृत्तां ये ब्रह्मचर्यात्तथा द्विजाः ।  
 वैडालिकास्ते विज्ञेयाः सर्वधर्मविवर्जिताः ॥९०  
 सर्वत्र प्रावेशन्तो ये ये च वैडालिकैः संभाः ।  
 तेषां सर्वाण्यपत्यानि पुल्कंसैः सह पातयेत् ॥९१

ग्रीणां च बाल-मृद्धानां क्षयीणां कुशरीरिणाम् ।  
 उपवासाद्यशक्तानां कर्तव्योऽनुग्रहश्च तैः ॥६२  
 ज्ञात्वा देशं च कालं च वयः सामर्थ्यमेव च ।  
 वतन्योऽनुग्रहः सद्भिर्मुनिभिः परिकीर्तितः ॥६३  
 ब्रह्मघ्नश्च सुरापश्च स्तेयो गुबंङ्गनागमः ।  
 एतेषां निष्कृतिं ब्रूयादेतत्संसर्गिणामपि ॥६४  
 द्वादशाब्दं च विचरेत् ब्रह्मघ्नस्तत्कपालधृक् ।  
 सवेत्र ख्यापयन्कर्म भिक्षां विप्रेषु संचरन् ॥६५  
 दृष्ट्वा सेतुं समुद्रस्य क्वातया वै लवणाभसि ।  
 ब्राह्मणेषु चरन् भिक्षा स्वकर्म ख्यापयन्बुधुचिः ॥६६  
 मुण्डितस्तु शिखावर्ज्यः सकौपीनो निराश्रयः ।  
 चीर चीवरवासा वै त्रिः स्नायी सन् शुचिर्भूतः ॥६७  
 संयताक्षश्चरेद्भ्रान्तश्चङ्गोपानद्विवर्जितः ।  
 ब्रह्मघ्नोऽस्मीत्यहं वाचमिति सर्वत्र वै यदेत् ॥६८  
 गनां च विरातिं दद्यादक्षिणां धूपसंयुताम् ।  
 ब्राह्मणेभ्यो निवेद्यैताः शुचिराख्याय भूपतेः ॥६९  
 पूर्वोक्तप्रत्यवायानां प्रायश्चित्तमिदं स्मृतम् ।  
 ब्राह्मणानां प्रसादेन तीर्थेषु गमनेन च ॥१००  
 गोशतस्य प्रदानेन शुष्यन्ति नात्र संशयः ।  
 अधभृद्येवमेवस्य ज्ञात्वा शुद्धिमवाप्नुयात् ॥१०१  
 आख्याय नृपतेर्वाऽपि तेन संशोधितः शुचिः ।  
 महापापानि सर्वाणि कथयित्वा महीपतेः ॥१०२

निष्कृतिं तद्विरा दद्यादन्यथा तेऽपि सत्समाः ।  
 रोगार्ताङ्गं द्विजं वापि मार्गे खेदसमन्वितम् ।  
 दृष्ट्वा कृत्वा निरासं कं ब्रह्मन्ः शुद्धिमाप्नुयात् ॥१०३॥  
 असंख्यातं धनं वत्या विप्रेभ्यो वापि शुष्यति ।  
 अरण्ये निर्जने जप्त्वा शुष्येद् वै वेदसंहिताम् ॥१०४॥  
 सुरापस्य प्रपश्यामि निष्कृतिं भोतुमर्हथ ।  
 सुरापस्तु सुरां तप्तां पयो वा जलमेव वा ॥१०५॥  
 तप्तं गोमूत्रमाज्यं वा सूतः पीत्वा विशुष्यति ।  
 जटी वा चैलयासी वा ब्रह्महत्याप्रतप्तं परेत् ॥१०६॥  
 यद्यक्षानात् पियेद्विप्रो द्विजातिर्यां सुरां पुनः ।  
 पुनः संस्कारफरणाच्छुद्धयेदाह परारारः ॥१०७॥  
 स्तेयं कृत्वा सुयणस्य शुद्धये सद्यं द्विजातये ।  
 समर्प्य, मुसलं राक्षे स्यापयेस्तेयकर्मकृत् ॥१०८॥  
 शक्तिं चोभयतस्तीक्ष्णामायसं दण्डमेव च ।  
 रादिरं लगुडं वापि हत्यादेकेन स नृपः ॥१०९॥  
 जीयन्नपि भरेच्छुद्धो मुक्तो वा तेन पाप्मना ।  
 मृतमेतदेत्य संशुष्येदिति पारारारोऽप्रवीत् ॥११०॥  
 अयः प्रतिकृतिं कृत्वा वज्रिवर्णां च तां धमेत् ।  
 गुप्यंगनागमं तस्यां लोहमप्यां तु शाययेत् ॥१११॥  
 वृषणौ पुनस्तृकृत्य भैरुं स्यामुत्सृजेत्तनुम् ।  
 स गतः शुद्धिमाप्नोति नान्यतस्तस्य निष्कृतिः ॥११२॥

संवत्सरं चरेत् कृच्छ्रं प्रजापत्यमथापि वा ।  
 चान्द्रायणं चरेद्वापि श्रीन्मासान् नियतेन्द्रियः ॥११३॥  
 व्रते तु क्रियमाणं वै निपत्तिः स्यात्कथञ्चन ।  
 स मृतोऽपि भोक्त्रुद्ध इति धर्मविनिर्णयः ॥११४॥  
 अनिर्दिष्टस्य पापस्य तथोपपातकस्य च ।  
 तच्छुद्धयैपायनं कुर्याच्चार्द्रं व्रतं समाहितः ॥११५॥  
 तिष्ठेन्मासं पयोऽशित्वा पराकं वा चरेद्ब्रह्मम् ।  
 अनिर्दिष्टस्य पापस्य शुद्धिरेषा प्रकीर्तिता ॥११६॥  
 ब्राह्मणः क्षत्रियं हत्वा गयां दद्यात्सहस्रकम् ।  
 वृषेणेकेन संयुक्तं पापादस्मात्प्रमुच्यते ॥११७॥  
 ग्रीणि वर्गाणि शुद्धयथे ब्रह्मन्स्य व्रतं चरेत् ।  
 चान्द्रायणानि वा ग्रीणि कृच्छ्राणि ग्रीणि वा ऽऽचरेत् ॥११८॥  
 वैश्यं हत्वा द्विजश्चैवमव्यमेकं व्रतं चरेत् ।  
 गवां लोकशतं दद्याच्चरेच्चान्द्रायणानि च ॥११९॥  
 कृच्छ्राणि ग्रीणि वा कुर्याद्वचनाद्विदुषामसौ ।  
 ये हन्युरप्रदुष्टां स्त्रीं चातुर्वर्णां द्विजातयः ।  
 शूद्रहत्या व्रतं त्रे तु चरन्तः शुद्धिमाप्नुयुः ॥१२०॥  
 शूद्रा ये चानुलोम्येन निहन्त्यव्यभिचारिणीम् ।  
 मुनयः शुद्धिमिच्छन्ति चन्द्रव्रतेन केचन ॥१२१॥  
 व्यभिचारास्तु ते हत्वा योषितो ब्राह्मणादयः ।  
 शिलघेनुं घातमात्रं क्रमाददुर्विशुद्धये ॥१२२॥





संवत्सरं चरेत् कृच्छ्रं प्रजापत्यमथापि वा ।  
 चान्द्रायणं चरेद्धापि त्रीन्मासान् नियतेंद्रिय ॥११३  
 व्रते तु क्रियमाणे वै निपत्तिः स्यात्स्थं चन ।  
 स मृतोऽपि भवेच्छुद्ध इति धर्मविनिर्णयः ॥११४  
 अनिर्दिष्टस्य पापस्य तथोपपातकस्य च ।  
 तच्छुद्धयेपावनं कुर्याद्वाटं व्रतं समाहित ॥११५  
 तिष्ठेन्मासं पयोऽशित्वा पराकं वा चरेद्ब्रतम् ।  
 अनिर्दिष्टस्य पापस्य शुद्धिरेषा प्रकीर्तिता ॥११६  
 ब्राह्मणः क्षत्रियं हत्वा गया दद्यात्सदस्रम् ।  
 वृषेणैकेन संयुक्तं पापादस्मात्प्रमुच्यते ॥११७  
 ग्रीणि वर्गाणि शुद्ध्यर्थं ब्रह्मन्स्य व्रतं चरेत् ।  
 चान्द्रायणानि वा ग्रीणि कृच्छ्राणि त्रीणि वा ऽऽचरेत् ॥११८  
 वैश्यं हत्वा द्विजश्चैवमद्भमेकं व्रतं चरेत् ।  
 गवां ह्येकशतं दद्याच्चरेच्चान्द्रायणानि च ॥११९  
 कृच्छ्राणि त्रीणि वा कुर्याद्वचनाद्विदुषामसौ ।  
 ये हन्युरप्रदुष्टा स्त्री चातुर्वर्णा द्विजातयः ।  
 शूद्रहत्या व्रतं ते तु चरन्तः शुद्धिमाप्नुयुः ॥१२०  
 शूद्रा ये चानुलोभ्येन निहन्त्यव्यभिचारिणीम् ।  
 मुनयः शुद्धिमिच्छन्ति चन्द्रव्रतेन वै चन ॥१२१  
 व्यभिचारात्तु ते हत्वा योपितो ब्राह्मणादयः ।  
 तिलधेनु वरतमो वै क्रमाद्बुधैर्विशुद्धये ॥१२२

साध्वीना तु नरो दृष्ट्वा गमां चैव सहस्रकम् ।  
 चोर्णन शुद्धिमाप्नोति योपाहृत्यावृतं चरेत् ॥१२३  
 अथ गोघ्नस्य वक्ष्यामि निष्कृतिं श्रोतुमर्हथ ।  
 यथा यथा विपत्तिं स्याद्गवां तथोपपद्यते ॥१२४  
 गोघातो पंचगव्याशी गोष्ठशायी च गोनृग ।  
 मासमेकं द्रुतं चोत्तरां गोप्रदानेन शुद्ध्यति ॥१२५  
 एकपादे तु लोमानि द्वये श्मश्रुनिरुन्तनम् ।  
 पादत्रये शिरसावजं सशिरसं तु निपातने ॥१२६  
 सशिरसं षपनं कृ या द्विसन्ध्यामवगाहनम् ।  
 गमा मध्ये घसेद्रात्रौ दिवा गाः समनुव्रजेत् ॥१२७  
 तिष्ठन्तीभिश्च तिष्ठेत व्रजन्तीभि सह व्रजेत् ।  
 पियन्तीभि पियेत्तोयं संविशन्तीभिश्च संविशेत् ॥१२८  
 गृह-वर्णादितंयुतं चर्मोत्कृत्य तदावृतः ।  
 विप्रौकं मु चरेद्भिक्षां स्वयं रयापयन्व्रती ॥१२९  
 गोघ्नस्य देहि मे क्षिप्तमिति वाचमुदीरयेत् ।  
 मासमेकं द्रुतं दृष्ट्वा गोप्रदानेन शुद्ध्यति ॥१३०  
 चौर द्यावादिरेभ्यश्च सर्वप्राणीः समुदरेत् ।  
 गर्गप्रपात-पराश तथान्यादपकारतः ॥१३१  
 भोजयेद्दशाह्णान्पश्चात्सुप्त धूपादिपूर्वकम् ।  
 दद्याद्वा च घृतं चकं सतः शुद्ध्यति त्रिविधात् ॥१३२  
 मुनय केचिद्विद्वन्ति विचित्रासु विपत्तिषु ।  
 यथामग्नयसस्तासु पृथक् पृथक् विनिश्चयितम् ॥१३३

शस्त्र-वस्त्राश्म-मृत्पिण्डं यष्टि-मुष्टि-प्रधावनम् ।  
 योक्त्रेण सारणं रोषो बन्धनं विधुवप्रयः ॥१३४  
 ग्रह-पङ्क-प्रपातश्च वद्धन्याद्यादिभक्षणम् ।  
 क्षुत्तृद-रोगचिकित्सा च तथाऽतिदोह-धादने ॥१३५  
 मृत्युस्थानानि चैतानि गवामति प्रधावनम् ।  
 प्रमूयात्सुयनेतेषु प्रायश्चित्तं पराशरः ॥१३६  
 उपेक्षणं च पङ्कदौ तथोपविषभक्षणे ।  
 वक्ष्यमाणक्रमेणैतच्छृणुष्व द्विजसत्तमाः ॥१३७  
 शस्त्रेण त्रीणि कृच्छ्राणि तदर्थं वा समाचरेत् ।  
 अश्मना द्वे चरेत्कृच्छ्रे मृत्पिण्डे नापि कृच्छ्रकम् ॥१३८  
 यष्ट्याघाते चरेत्कृच्छ्रे साक्षान्मुष्ट्या तु सचरेत् ।  
 योक्त्रेण पादमेकं तु सारणे पादमेव च ॥१३९  
 रोधने कृच्छ्रपादे द्वे कृच्छ्रमेकं तु बन्धने ।  
 धूपपाते चरेत्कृच्छ्रमथं वाप्या समाचरेत् ॥१४०  
 गोशस्त्रपिण्डघाते च प्राजापत्यं चरेद्द्विजः ।  
 क्षुत्तृद रोगचिकित्सासु कृच्छ्रमुत्प्रेक्षणे चरेत् ॥१४१  
 पतितां पङ्कज्वां वा अवलिप्तां च यो नरः ।  
 रस्य चान्यस्य चोपेक्ष्य मासं कृच्छ्रं चरेत्पुष्टिः ॥१४२  
 एका चेद्दृढभिर्षदा श्वेदिता चेन्निघ्नयेत् गौः ।  
 पादं पादं चरेयुग्मे इति पाराशरोऽर्वाङ् ॥१४३  
 सुषदा येऽवलिताङ्गा वश्यन्तो मोषकुर्वते ।  
 घातनोद्योगं मोक्षं चरेयुग्मे ऋषं नराः ॥१४४

या गतादौ विपद्येत क्ष्वेडिता सम्प्रपत्य वा ।  
 पादे क्ष्वेडितयोरुक्तं सत्कर्ता व्रतमाचरेत् ॥१४५  
 प्रबद्धा रज्जुदोषेण गोर्विपद्येत यस्य सः ।  
 व्रतपादं चरेच्छुद्धैः किञ्चिद्दद्याच्च दक्षिणाम् ॥१४६  
 योगामपालयन् तु ह्यादति वा वाहयेद्द्यूषम् ।  
 यदि म्रियेत सहोपात्तदा कृच्छार्द्धमाचरेत् ॥१४७  
 घासं यो न क्षुबार्तस्य वृषार्तस्य न वा जलम् ।  
 स्वीकृतस्य न चेद्दद्यात्स तत्पादव्रतं चरेत् ॥१४८  
 या तु वद्धा चिकित्सायं विराल्यकरणाय च ।  
 औषधादिप्रदानाय पिपत्तौ नास्ति पातरूपम् ॥१४९  
 विधुत्पातादि-दाहाभ्यां कुण्डस्य पतनादिभिः ।  
 गोभिर्विपत्तिमापन्नैस्तत्र दोषो न विद्यते ॥१५०  
 पालयन्पश्यतोऽरण्ये गौस्तु व्याघ्रादिभिर्हता ।  
 अकुर्वतः प्रतीकारं कृच्छ्रार्धं तस्य पावनम् ॥१५१  
 शृण्वन् शून्येषु पालेषु सधान्यारण्यगामिषु ।  
 पाले संमापयत्युर्गहन्यास्तत्र न दोषभाक् ॥१५२  
 गर्भिणी गर्भशल्या तु सत्रं तु विराल्यतः ।  
 यज्ञतो गोर्विपद्येत तत्र दोषो न विद्यते ॥१५३  
 गर्भस्य पातने पादं द्वौ पादौ गाग्रसंभवे ।  
 पादोर्न व्रतमाचष्टे हत्वा गर्भमचेतनम् ॥१५४  
 अङ्ग प्रस्यंगमूलेन सत्रमे चेतनान्विषे ।  
 द्विगुणं गोमूत्रं बुधविषा गोघ्नस्य निष्कृतिः ॥१५५

यस्माद्युत्त्रासने गौश्च गलदामरुदोपतः ।  
 पादयोर्वधने चैव पादोनं व्रतमाचरेत् ॥१५६॥  
 घण्टाभरणदोषेण गौश्चेद्वधमवाप्नुयात् ।  
 चरेदयं व्रतं तत्र भूषणार्थं च यत्कृतम् ॥१५७॥  
 गोविपत्ति-वधाशङ्को शुदांघो जैव निष्कृतिम् ।  
 सतद्रोरोमतुल्यनि नरकाण्याविशेत्समाः ॥१५८॥  
 यस्मात्पापसम्भोक्त विप्रागाधनसत्तरः ।  
 तद्वत्सं निष्कृतिं युयांघ्रतैनाः सोऽनुते शुभम् ॥१५९॥  
 अन्यत्प्राणिग्रहस्याथ प्रवक्ष्यामि विरोधनम् ।  
 गजादिवधशुद्धयर्थं यद्व्रतं या च दक्षिणा ॥१६०॥  
 हस्तिनं तुरगं हत्वा वृषभं सरमेव ॥ ।  
 वृषन्त्यं धा शतगुणं वृषं दद्यात्प्रथमम् ॥१६१॥  
 क्षणाद्गोनिधायं कृत्वा परगोवधवृत्तरः ।  
 तस्याथ निष्कृतिं युयांघ्रशुद्धिमपेक्षया ॥१६२॥  
 हंसं श्येनं कर्पिं शृङ्गं जल-स्थलशितगण्डिनम् ।  
 भासं च हत्वा शुर्गायः शुद्धये देयाः पृथक् पृथक् ॥१६३॥  
 हंस-भारस-चक्राक्ष-मयूर-मद्गु युष्मदुत्तमम् ।  
 आढो-पारायस मूषिं शुक्ला नगभोजनात् ॥१६४॥  
 मेघा-उज्ज्वलो वृषं दद्यात्प्रत्येकं शुद्धये द्विजः ।  
 मनोपिणो यदन्त्येनां प्राणिनां यद्यनिष्कृतिम् ॥१६५॥  
 मूषि-भारस-हंसादिसिन्धु-भारसशुभशुभान् ।  
 शुक्र-टिट्ठिमसंयन्तो नत्ताशी यकृदा शुचिः ॥१६६॥

पारावत-कपोतघ्नः सारि-तित्तिर-चापहा ।  
 त्रिसंव्यातर्जले प्राणानायम्य स्याच्छुचिर्द्विजः ॥१६७  
 काकं गृध्रं च श्येनं च अन्यं कृत्वाक्षपक्षिणम् ।  
 हत्वा स्यादुपवासेन शुद्धिमाह पराशरः ॥१६८  
 मार्जारं मूषकं सर्पं हत्वाऽजगर-द्विण्डिमौ ।  
 शक्रेभोजनं दण्डमायसं च ददन् शुचिः ॥१६९  
 मेनं च शराकं गोधा हत्वा कूर्मं च शलकम् ।  
 यार्ताकं गृज्जनं जग्ध्या ऽहोरात्रोपोपणान्शुचिः ॥१७०  
 वृषं च जंजुकं हत्वा सरक्ष्मो तथा द्विजः ।  
 त्रिरात्रोपोषितः शुद्धेयत्तिलप्रस्थप्रदानतः ॥१७१  
 द्विजः शाखामृगं हत्वा सिद्धं चित्रकमेव च ।  
 कृत्वा सप्तेष्वपवासान् दद्याद्ब्राह्मणभोजनम् ॥१७२  
 मदियोग्रज्जाऽन्धानी हत्वा चान्यतमं द्विजः ।  
 श्रिः क्रात्वा चोपवासेन शुद्ध स्याद्द्विजपूतनात् ॥१७३  
 वराहं यश्चि च रीहं हत्वा भृगमकमतः ।  
 अफालकृष्टभोजी सन् नक्तनैकेन शुद्धयति ॥१७४  
 अथान्यत्सम्पन्नक्ष्यामि अष्टत्यश्वशानादियु ।  
 अभक्ष्यभक्षणादौ च निष्कृतिं श्रोतुमर्ह्य ॥१७५  
 उदय्या, प्राण्णी स्पृष्टा मातंगपतितेन च ।  
 पान्द्रायणेन शुद्धेयत द्विजानां भोजनेन च ॥१७६  
 कापालिकादिको नारी-गणशङ्काम्या तथा पराम् ।  
 भुक्त्वा विनष्टाहेन स्याच्छुद्धि चन्द्रस्तेन तु ॥१७७

कामतस्तु द्विजः कुर्यादुक्तस्त्रीगमनं यदि ।  
 चंद्रयतद्वयं शुभं प्राह पाराशरो मुनिः ॥१७८  
 दुग्धं सलवणं सक्तू सद्गुग्धाजिशि सामिपान् ।  
 दन्तच्छिन्नान्सहृद्वान्पृथक् पीतजलानि च ॥१७९  
 योऽद्यादुच्छिद्रमाश्रयं तु पीतशेषं जलं पिबेत् ।  
 एकैकशो विशुद्धययं विप्रः चंद्रवृतं चरेत् ॥१८०  
 घातांसि धावतो यत्र पतन्ति जलविन्दवः ।  
 तत्र पुष्पं जलस्थानं नरकस्य शिलान्तिकम् ॥१८१  
 तत्र पीया जलं विप्रः शान्तस्तृप्परिपीडितः ।  
 तदेनसौ विशुद्धययं कुर्याच्चान्द्रायणं व्रतम् ॥१८२  
 नदी शैलद्विपी चैव रजकी घण्टादिनीम् ।  
 गत्वा चान्द्रायणं कुर्यात्तथाचमोपजीविनीम् ॥१८३  
 गां नृपं चैव वैश्यं च शूद्रं धाप्यनुलोमजम् ।  
 क्षत्रियादिसिखं गत्वा विप्रश्चान्द्रायणं चरेत् ॥१८४  
 ब्राह्मणान्नं दद्वच्छूद्रः शूद्रान्नं ब्राह्मणो दद्वत् ।  
 द्वाप्येतावभोऽप्याग्नौ चरेतां शशिनो व्रतम् ॥१८५  
 निमेषगमं प्रितोऽविप्रः शूद्राहृतश्च योऽश्नुते ।  
 आमंत्रयिष्य-भोग्यस्तौ शुद्धयेतामैश्वर्येण तु ॥१८६  
 मामानार्थं च यो गच्छन्मात्रा सह सगोत्रजम् ।  
 मातुलस्य मुतां चैव विप्रश्चान्द्रायणं चरेत् ॥१८७  
 पीषट्ठेषं जलं पीत्वा भुक्तशेषं तथा घृतम् ।  
 अस्या मूत्र-पुरीषे तु द्विगश्चान्द्रायणं चरेत् ॥१८८

सूनिहस्ताश्च गोमांसमत्स्यमश्वमरुमृतः ।  
 पीत्वा चन्द्रवृत्तं कुर्यात्प्रायश्चित्तं शुद्धिदं परम् ॥१८६  
 सामिः सत्पंचयज्ञान्यो न कुर्वीत द्विजाधमः ।  
 परपाकरतो नित्यं आत्मपाकचिबर्जितः ॥१८७  
 अदाता च सदा लुब्धः श्वपचः परिकीर्तितः ।  
 यो द्विजोऽत्याग्नमश्नाति स कुर्यादेन्द्रवं वृतम् ॥१८८  
 गणिका-गणयोरन्नं यदन्नं बहुयाजकम् ।  
 सीमान्तोन्नयने भुक्त्वा द्विजश्चान्द्रायणं चरेत् ॥१८९  
 अजानन् सम्यगश्नीयात्पुत्रजनमनि यो द्विजः ।  
 सोऽमदयसममश्नाति द्विजश्चान्द्रायणं चरेत् ॥१९०  
 महापातकिनामार्त्तं योद्यादक्षानतो द्विजः ।  
 अक्षानात्तत्तच्छुं तु क्षानाच्चान्द्रायणं चरेत् ॥१९१  
 मपात-विष-यद्ध-यस्यु-प्रवृज्योदन्धनाशकात् ।  
 श्रुतो हतश्च हंता च मृत्युवासनिकाः मृताः ॥१९२  
 केचिदेतद्विशुद्धयमिच्छन्ति वृतमेवम् ।  
 दक्षिणां सवृत्तां गां च दद्याद् द्विजभोजनम् ॥१९३  
 गृहद्वारेऽतिथौ प्राप्ते तस्यादत्त्वा समस्तुते ।  
 अमोज्यमशनं तच्च भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत् ॥१९४  
 सव्यदस्तास्थिते दर्मे यो द्विजः समुपस्थितः ।  
 असुरपानेन तुल्यं च पीत्वा चान्द्रायणं चरेत् ॥१९५  
 भुक्त्वा शय्यागतः पीत्वा विप्रश्चान्द्रायणं चरेत् ।  
 अभक्ष्येन समं तद्वै प्रायश्चित्तं समं भवेत् ॥१९६



आसन्नारुडपादः सन्वस्रस्यार्धमधः कृत्वा ।  
 धरामुखेन यो भुंक्ते द्विजश्चन्द्रायणं चरेत् ॥२००॥  
 उद्धृत्य वामहस्तेन यत्किंचित्त्विवते द्विजः ।  
 सुरापानेन तत्तुल्यं पोत्रा चान्द्रायणं चरेत् ॥२०१॥  
 शृष्टेन तेन संस्त्रायाद्यदि सञ्जुप्तमश्नुते ।  
 चत् चान्द्रायणं शुद्धैः त्रीणि कृच्छ्राणि वा द्विजः ॥२०२॥  
 अशनीयाद्येन शृष्टेन उच्छिष्टं चास्तुते हि मः ।  
 चरेच्चान्द्रायणं शुद्धैः त्रीणि कृच्छ्राणि च द्विजः ॥२०३॥  
 चान्द्रायणं नयश्च द्वे पाराको मासिके मतः ।  
 न्यूनाद्दे पादकृच्छ्रं स्यादेकादः पुनराच्छिदे ॥२०४॥  
 स्नानमन्येषु कुर्यात् प्राणायामं जपं तथा ।  
 यः स्पर्शिणीनां च पुनर्भुञ्ज्य च यः कामर्चादिद्विजयोपिता च ।  
 रेतोधृता पाकमनाय दद्याद्विप्रः स चन्द्रोत्तमकृच्छ्रिः स्यात् ॥  
 वैमन्यज्ञातचादाली द्विजातेर्यदि तिष्ठति ।

महापातकं शुद्ध्यर्थं सर्वा निष्कृतयो नरैः ।  
नृप-ग्रामेशविदितैः कुर्वाणैः शुद्धिराप्यते ॥२१०  
सुरामूत्र-पुरीषाणां लीढा त्रेकमकामतः ।  
पुनः संस्कारकरणाच्छुद्धयेदाह पराशरः ॥२११  
अभक्ष्यभक्षणो विप्रस्तयैवापेयपानंकृत् ।  
व्रतमन्यत्रकुर्वीत वदन्त्यन्ये द्विजोत्तमाः ॥२१२  
कुशा-ज्ज्वा-ऽध्वत्य-पालाश-मिल्वोदुन्धरवारिणा ।  
पीतेन जायते शुद्धिः पट्टाग्रेण न संशयः ॥२१३  
द्रोण्यम्यूशीर-कुम्भामः श्वसृष्टं केशवारि च ।  
धीत्वारण्ये प्रपातोऽयं पंचगव्यं शिवच्छुचिः ॥२१४  
भण्डस्थितमभोज्यान्नं पयो-दधि-घृतं पिबन् ।  
द्विजातेरुपवासः स्याच्छूद्रो दानेन शुद्ध्यति ॥२१५  
तत्तोयपीतजीर्णागः तपश्च चरेद्द्विजः ।  
याते तु तज्जले सद्यः प्राजापत्यं समाचरेत् ॥२१६  
रजकार्घ्यपुपानेन प्राजापत्यं बुधैस्मृतम् ।  
वान्ते जले तद्वधं तु शूद्रः स्यात्पादकृच्छ्रकृत् ॥२१७  
चाण्डालकूपपानेन महदेनः प्रजायते ।  
गोमूत्रयावकाहाराः सुद्धेयुर्दिवसैस्त्रिभिः ॥२१८  
घृतं दधि तथा दुग्धं गोष्ठे वाऽशौचसूतके ।  
अभिचारस्य तद्भुक्त्वा भुक्त्वा वा शूद्रभोजनम् ॥२१९  
द्रुपदा वा तिजो जप्त्वा मानस्तोकमथोपि वा ।  
क्षुधातिपीडितः पश्चादिति प्राह पराशरः ॥२२०

सूतकालं द्विजो भुत्वा त्रिरात्रोपोषणाच्छुचिः ।  
 तोयपाने स्वसौ कुर्यात्पंचगव्यस्य चाशनम् ॥२२१  
 द्रोणाढकं तदधं वा प्रस्थं प्रस्थार्धमेव वा ।  
 घृतमुच्छिद्रसंसृष्टं प्रोक्षणाच्छुचितामियान् ॥२२२  
 चरुपक्वं शृतं पक्वं अन्नं काकाशुपाहतम् ।  
 तद्मासस्थानसंन्यागात्सुतं हेमान्मुक्षिचनान् ॥२२३  
 केचित्ददन्ति तद्ग्रास्तु तस्याग्निनायचूडनम् ।  
 केचित्प्रग्नयुक्तेन पारिणा प्रोक्षणं त्रिदुः ॥२२४  
 वेश-कीटकसंदुष्टं अन्नं मक्षिकयापि च ।  
 मूह्यस्मवारिणा तत्र क्षेप्यं शुद्धिकारणम् ॥२२५  
 उद्वया माद्यणी स्पृष्टा क्षत्रियापि सुद्वयया ।  
 अर्धं कृच्छ्रं चरेत्पूरां तदर्धमपरा चरेत् ॥२२६  
 प्राजापत्यं विशःपत्या विट्पत्नी पादमाचरे ।  
 शूद्रास्पृष्टा चरेत्कृच्छ्रं शूद्री दानेन शुद्ध्यति ॥२२७  
 माद्यया माद्यणी स्पृष्टा वैश्योद्वयया च से ।  
 चरेतां पादकृच्छ्रे द्वे कृते स्नाने विदुद्वयति ॥२२८  
 माद्यगी क्षत्रियां स्पृष्टा माद्यणीमतमाचरेत् ।  
 अपरा क्षत्रियायास्तु पञ्चव्यमेवमन्ययोः ॥२२९  
 रजस्वत्या तु मंसृष्टा श्र-विट्-शूद्रैश्च वायसैः ।  
 स्नानं वायजिराहारं पंचगव्येन शुद्ध्यति ॥२३०  
 उद्वया माद्यगी स्पृष्टा मेद-मानंग-भिद्वयैः ।  
 गोमूत्रयारवादारा पद्मात्रेण च शुद्ध्यति ॥२३१

उच्छिष्टो ब्राह्मणः स्पृष्ट्वा द्विजातिस्त्रीं रजस्वलाम् ।  
 प्राजापत्येन संशुद्ध्यर्घीर्णकृच्छ्रेण वा पुनः ॥२३२  
 पदन्ति कथय. केचिदेतदोपविशुद्ध्ये ।  
 प्राणायामशतं चास्य पंचगव्यस्य भक्षणात् ॥२३३  
 उच्छिष्टो ब्राह्मणः स्पृष्टो ब्राह्मण्युद्ध्यया चरेत् ।  
 प्राजापत्यं च गायत्रोमयुतं नियतं सकृत् ॥२३४  
 क्षत्रिण्यादिभिरुच्छिष्टैः संस्पृष्टो व्रतमाचरेत् ।  
 अनुच्छिष्टमनु तत्पर्यं स्नानकर्म यतः स्मृतम् ॥२३५  
 रजकादिकसंस्पर्शो द्विजन्मोदस्ययोपितः ।  
 प्राजापत्यं चरेद्विप्रा अन्याश्चरेयुरंशतः ॥२३६  
 उद्ध्ययां ब्राह्मणीं गत्वा क्षत्रियो वैश्य एव च ।  
 त्रिरात्रोपोपितः प्राश्य गव्यमाज्यं शुचिर्ममेत् ॥२३७  
 क्षत्रिणीं चैव वैश्यां च जानन् गत्वा तु कामतः ।  
 चरेत्स्तान्तपनं विप्रस्तत्पापस्य विमोक्षकृत् ॥२३८  
 वैश्यां च क्षत्रियो गत्वा वैश्यश्च शूद्रिणीं तथा ।  
 प्राजापत्यं चरेत्तां ताविति ब्राह्म पराशरः ॥२३९  
 उच्छिष्टा ब्राह्मणी स्पृष्टा शुना वा वृषलेन वा ।  
 अशुद्धा वा भवेत्तावद्यावन्नस्यादुपोषणम् ।  
 शुद्धा भवति सा तावद्यावत्पश्यति शीतगुम् ॥२४०  
 विप्रोप्य सृजनीं वैश्यां सहिष्णुप्रीमजां खरीम् ।  
 प्राजापत्यं चरेत्तया लोकैकस्य विशुद्ध्ये ॥२४१

शूद्रो नु प्राज्ञाणो गत्वा मासं मासार्धमेव वा ।  
 गोमूत्रयावकाहारो मासार्धेन विशुष्यति ॥२४०  
 नृपोऽप्यस्वजनां गत्वा प्राजापत्यं समाचरेत् ।  
 वैश्यपत्नीमसौ गत्वा कन्या सातपनं शुचिः ॥२४३  
 शूद्रो नु क्षत्रियो गत्वा गोमूत्रयावकाशनः ।  
 दशभिर्दिवसैः शुद्धयेद्दैत्यः सोऽथेवमेव हि ॥२४४  
 उत्तमागमनेऽनार्याः सर्वे ते स्युः कराग्निना ।  
 महापथं च संप्राज्याः खरयानेन योषितः ॥२४५  
 चाण्डालीमेव भिक्षानामभिगम्य सकृत्स्त्रियम् ।  
 चाण्डाल-मेद-भिक्षानामभिगम्य स्त्रियं नरः ।  
 शुद्धये पयोधनं कुर्यान्मामार्धमथमर्पणम् ॥२४६  
 पतिता च द्विजाप्रथम्वी प्राजापत्यं परेद्विजः ।  
 तैलिरस्य स्त्रियं गत्वा तथा मग्नवृत्तस्त्रियम् ॥२४७  
 अज्ञानाभिगतौ स्त्रीणां पुंमामनुलोमजस्य च ।  
 इमा निष्कृतिमिन्द्रन्ति घृतयोनिं च पेषन ॥२४८

उपाध्याय-नृपा-ऽऽचार्य-शिष्य-योपिद्रुमी नरः ।  
 पण्मासान्कृच्छ्रचरणान्कृद्धिमाह पराशरः ॥२५२  
 कृतचाण्डालसंस्पर्शः शत्रून्मूत्रकरो द्विजः ।  
 पट्टात्रोपोपणान्कृद्धेयद्भुत्वा ऽऽचान्तो नवद्युभिः ॥२५३  
 उर्वोच्छिष्टस्य संशुद्धेय केचित्प्राजापतिव्रतम् ।  
 यराकं पञ्चगव्यं च केचिदाहुर्मनीषिणः ॥२५४  
 उच्छिष्टो ब्राह्मणः स्पृष्ट उच्छिष्टेन द्विजेन तु ।  
 आचम्यैव तु शुभ्येता विष्णुनामानुकीर्तिनात् ॥२५५  
 क्षत्रियेण तु संस्पृष्टो ब्राह्मणो नक्तभोजनात् ।  
 वैश्येन चैव संस्पृष्टो नक्ताशी पञ्चगव्यपः ॥२५६  
 शूद्रेण तु च संस्पृष्टो एकरात्रोपवासकृत् ।  
 उच्छिष्टैः पुनरेतैस्तु प्रोक्तं द्विगुणमर्हति ॥२५७  
 उच्छिष्टः शूद्रसंस्पृष्टः शुना वापि द्विजोत्तमः ।  
 उपोष्य पञ्चगव्येन शुद्धिः स्यादपरे विदुः ॥२५८  
 अनुच्छिष्टोऽपि यत्स्पर्शास्त्राति वर्णी विशुद्धये ।  
 उच्छिष्टः तस्य संस्पर्शं चरेत्प्राजापतिव्रतम् ॥२५९  
 रजकाद्यन्त्यजैः स्पृष्टः शुद्धेयैतस्यार्धमाचरेत् ।  
 उदक्या ब्राह्मणी कृच्छ्रात्प्राजापत्यादथापरे ॥२६०  
 उदक्या ब्राह्मणी स्पृष्टा शुना वा वृषलेन वा ।  
 तावत्तिष्ठेन्निराहारा स्नात्वा कालेन शुद्ध्यति ॥२६१  
 उदक्या सूतिका म्लेच्छसंस्पर्शोऽवमिते, रवौ ।  
 दिवाहृतान्बुनास्नात्वा शुद्ध्यद्विप्राप्तिसन्निधौ ॥२६२

वदन्त्यपां पवित्रत्वं दिवा सूर्यांशु-मारते ।  
 चन्दयित्वा पवित्रत्वं मन्दार्कस्मिन्-वायुभिः ।  
 मुनयो धर्मवेत्तारो रात्रौ चंद्रांशु-रस्मिभिः ॥२६३  
 मरुच्च प्राद्वण प्राश्य पङ्कजं पञ्चगव्यकम् ।  
 हेमो दद्याद्य पण्मासान्दत्त्वा गां च विशु द्यति ॥२६४  
 पञ्चाहेन नृप शुद्धयेत्पञ्चमासान्ददद्य गाः ।  
 चतुर्भिर्दिग्दशैर्वैश्यैश्चतुर्मासान् गवा सह ॥२६५  
 ज्येष्ठेण तु चतुर्थेन ददन्मासत्रयं च गाम् ।  
 मघात्पक्षाद्भवेच्छुद्ध एतद्वाह पराशर ॥२६६  
 रत्नं नि मायं त्रिप्रस्य पामतोऽकामतोऽपि वा ।  
 गायत्र्यष्टसहस्रेण जप्तेन तु भवेच्छुद्धिः ॥२६७  
 यो यस्य हस्ते भूमिं हेम गामभ्रमेव वा ।  
 स तं यत्राध्यगाद्यापि मरुत शुद्धिमाप्नुयात् ॥२६८

श्व-जंघुक-धृकाद्यैश्च यदि दष्टो भवेन्नरः ।  
 सचैलो जलमाविश्य दत्वाज्यं शुद्धिमर्हति ॥२७३॥  
 शुनो प्राणावलीढस्य नखैर्विलिखितस्य च ।  
 यतीनां दर्शनं कार्यमग्निना चोपचूलनम् ॥२७४॥  
 अवज्ञां तु गुरोः कृत्वा नक्तं तस्य च भोजनम् ।  
 नक्षत्रदर्शनं तदन्य इति प्राह पराशरः ॥२७५॥  
 कुमारी तु शुना स्पृष्टा जम्बुकेन वृकेण वा ।  
 यां दिशं व्रजते सूर्यस्तां दिशं सा विलोकयेत् ॥२७६॥  
 दिवसे तु यदा ग्रामे शुना स्पृष्टो भवेद्द्विजः ।  
 विप्रं प्रदक्षिणीकृत्य घृतं प्राश्य विशुध्यति ॥२७७॥  
 घातुर्वर्ण्यास्तु या नारी कृत्वाभिगमनापि च ।  
 प्रक्षाल्य नाभितो ऽधस्तादाचान्तस्तु शुचिर्नरः ॥२७८॥  
 विप्रे मैथुनिनि स्नानं केचिद्राक्षि शिरोविना ।  
 नाभिं यावत् विशस्तद्वाङ्गिगशौचोऽन्त्यजः शुचिः ॥२७९॥  
 अभिगच्छन्सुतार्थं च श्रुतावृत्तौ स्त्रियं द्विजः ।  
 न च कुर्यात् स स्नानं नाभेरधस्तु शोधयेत् ॥२८०॥  
 त्यङ्कारं तु गुरोः कृत्वा हुंकारं तु गरीयसः ।  
 प्रसाद्यैतावनशनन्स्यात्स्नात्वा शुद्धो द्विजोत्तमः ॥२८१॥  
 विवादे शास्त्रतो जित्वा जयो यस्य न जायते ।  
 श्मशाने जायते तस्य तमोभावेन दुष्कृतम् ॥२८२॥  
 ताडयित्वा कृणेनापि रुन्धे वाऽऽबन्ध रज्जुना ।  
 फलहादपि निर्जित्य संप्रसाद्य विशुध्यति ॥२८३॥



अवगूर्य चरेत् कृच्छ्रमतिकृच्छ्रं निपातने ।  
 कृच्छ्रातिकृच्छ्रोऽस्तृष्पाते कृच्छ्रोऽस्यान्तरशोणिते ॥२८४  
 प्रेतमूढा च दग्धा च शुद्धिः स्नानाद्विजन्मनाम् ।  
 उपवासेन चैकेन ब्रह्मकूचं च पावनम् ॥२८५  
 प्रेतीभूतं च यः शूद्रं ब्राह्मणो ज्ञानदुर्बलः ।,  
 अनुगच्छेन्नीयमानं त्रिरात्रमशुचिर्भवेत् ॥२८६  
 त्रिरात्रे तु ततः पूर्वं नदीं गत्वा समुद्रगाम् ।  
 प्राणायामशतं कृत्वा घृतं प्राश्य विशुध्यति ॥२८७  
 अंगुल्या दन्तकाष्ठं च प्रत्यञ्जलयणं तथा ।  
 मृत्तिकाभक्षणं चैव तुल्यं गोमासभक्षणम् ॥२८८  
 कृत्वाऽन्यतममेतेषां शुद्ध्यर्थमात्मनो हितम् ।  
 चरेत्तद्विशिष्टं विप्र इति प्राहुर्मनीषिणः ॥२८९  
 फेचिद्वदन्ति मुनयः कृच्छ्रं सान्तपनं तथा ।  
 सदद्वयं पाददृष्ट्रं वा प्राहुरन्ये द्विजोत्तमाः ॥२९०  
 अर्धोच्छिद्यो द्विजोऽस्तानाद्यात्यर्घं नहि किञ्चन ।  
 भुक्त्वाऽनाचम्य वा कुर्याद्विष्मूत्रं केह निष्कृतिः ? ॥२९१  
 नकोपवासी वारो तु अन्यत्र द्विगुणं चरेत् ।  
 अष्टोत्तरशतं जप्त्वा गायत्र्याः शुद्धिर्हति ॥२९२  
 अर्धोच्छिद्यो द्विजः स्पृष्ट शुना वा वृषलेन वा ।  
 नक्षत्रदर्शनेऽभीयासंचगज्यपुरस्सरम् ॥२९३  
 अर्धोच्छिद्यश्च विप्राद्याः शूद्रसंप्रसाः ।  
 उपवासेन शुद्धेभ्युः पंचगव्यस्य पावनतः ॥२९४

श्व-काकी-काकसंस्पृष्टो भुञ्जानो ब्राह्मणश्च यः ।  
 तदन्नस्य परित्यागं कृत्वा ज्ञानेन शुभ्यति ॥२६५  
 विना यज्ञोपवीतेन भोजनं कुरुते यदि ।  
 अथ मूत्र-पुरीषे वा रेतः सेचनमेव वा ॥२६६  
 त्रिरात्रोपोषितो विप्रः पादकृच्छ्रं तु भूमिपः ।  
 अहोरात्रोपितो वैश्यः शुद्धिरेषा पुरातनी ॥२६७  
 विप्रः क्षुत्कृत्य निष्ठोऽन्य कृत्वा चानृतभाषणम् ।  
 घचनं पतितैः कृत्वा दक्षिणं श्रवणं स्पृशेत् ॥२६८  
 विप्रस्य दक्षिणे कर्णे नित्यं यस्मिन् पावकः ।  
 अंगुष्ठे दक्षिणे पाणौ तस्मात्तेन च स स्पृशेत् ॥२६९  
 प्रेक्षणं शशिनोऽर्कस्य ब्रह्मेश-विष्णुसंस्मृतिम् ।  
 गायत्र्याः शत साहस्रं सर्वपापहरं स्मृतम् ॥३००  
 गायत्र्यष्टसहस्रं तु ब्रह्मदत्ताविशोधनम् ।  
 शूद्रवधे द्विजाग्रस्य गायत्र्यष्टसहस्रकम् ॥३०१  
 राक्षः पञ्चसहस्रं तु स्याद्विशश्च तदर्धकम् ।  
 योगेन गतशीलस्तु यदि वा स्यात्सदा नरः ॥३०२  
 विप्रश्च सम्मताचारस्तावुभौ सर्वदा शुची ।  
 मक्षिकां सन्ततीधारा विप्रुपो ब्रह्मविन्दवः ।  
 स्त्रीमुत्तं बालवृद्धौ च न दुष्यन्ति कदाचन ॥३०३  
 आत्मस्त्रीह्यात्मबालश्च आत्मवृद्धस्तथैव च ।  
 आत्मनः शुचयः सर्वे परेषामशुचीनि तु ॥३०४

उत्पन्नमातुरे स्नानं दशकृत्वस्त्वनानातुरः ।

स्नात्वा स्नात्वा स्पृशेदेनं ततः शुद्धयेत्स आतुरः ॥३०५

विवाहोत्सव-यज्ञेषु संग्रामे जलसंप्लवे ।

पलायने तथारण्ये स्पर्शदोषो न विद्यते ॥३०६

आद्यसङ्गी समो द्योपी सङ्गसङ्गी तदर्थतः ।

तत्सङ्गी तृतीयभागी तुरीयस्तु न दोषभाक् ॥३०७

आद्यस्प्रष्टुर्भवेत्स्नानं द्वितीयस्यापि तत्तस्मृतम् ।

शिरः प्रोक्षणमन्येषामन्यत्राऽऽचमनं स्मृतम् ॥३०८

पलाश-शिशिपाकाष्ठदन्तधावनकुन्नरः ।

दिवाकीर्तिसमस्तावद्यायद्वा नैव पश्यति ॥३०९

पद्माश्म-लोहं फल-काष्ठ-चर्म-

भाण्डस्सतोयैः स्वयमेव शौचात् ।

पुंसां निशास्वध्यनि नि सदाना

जोणां च शुद्धिर्विहिता सदैव ॥३१०

स्नानं स्पृष्टेन येन स्यात्काष्ठ-चैर्यदि तत्स्पृशेत् ।

नावारोहणयत् स्पर्शं तत्रोपस्पर्शनाच्छुचिः ॥३११

स्त्रे-ऋ-लूताशनास्पर्शं क्षेत्रे वा यदि वा स्थले ।

उपस्पृशेत् शिरः प्रोक्ष्य संगुद्धो जायते द्विजः ॥३१२

वस्त्रसंस्पर्शने तस्य सचैलाद्भावगाहनम् ।

अङ्गस्पर्शेनवत्तस्य यदन्ति द्विजमत्तमाः ॥३१३

चाण्डालोदकसंस्पृष्टः शुद्धः स्नानेन जायते ।

तथा तद्भाण्डसंस्पर्शं स्नानमाहुर्मनीषिणः ॥३१४

उदकया स्पर्शने स्नानमंशुवेनान्तराऽपि वा ।  
 तत्स्पृष्टेऽपि भवेत्स्नानं तुल्याः सर्वा रजस्रलाः ॥३१५  
 संस्पर्शं मेद-मिद्धानां तथैव मद्गघातिनाम् ।  
 पतितानां च संस्पर्शं स्नानमेव विधीयते ॥३१६  
 रजस्रलादिसंस्पर्शं उपस्पर्शनमेव च ।  
 उदकयायास्त्रितोयेऽष्टि केचिदाचमनं विदुः ॥३१७  
 प्रथमेऽह्नि चाण्डाली द्वितीये मद्गघातिनी ।  
 तृतीये रजफो प्रोक्ता चतुर्थे तु मिश्रुष्यति ॥३१८  
 पुरुषतः पुरा दैत्यं त्रिशीर्षाख्यं जघान यत् ।  
 तद्वधे मद्गहत्यायाः स्त्रीणां स मद्गदौ फलम् ॥३१९  
 आसां तत्प्रभृति स्त्रीणामस्पृश्यत्वं सदा भवेत् ।  
 अंशुर्दिनत्रयं ह्येतद्गुरु गुण्यादिकल्पितम् ॥३२०  
 शयराश्च पुलिन्दाश्च कैयताश्च नटास्तथा ।  
 एतान् रजफसन्तुल्यान् केचिदाहुर्मनीषिणः ॥३२१  
 रजस्याद्यभिगम्यत्वे वैश्या गो-मूत्र यावकम् ।  
 धरन्ति षड्गुणाद्गोभिः कृच्छ्रं वा द्विगुणं भवेत् ॥३२२  
 मद्ग क्षत्रिय विद्वाता शूद्रास्तेऽनुक्रमेण तु ।  
 क्रमातिक्रमतश्चान्ये स्लेच्छान्त्यवर्णसंभवाः ॥३२३  
 भोज्याशनास्तु सच्छूद्रा अमोज्यान्नाः परे स्मृताः ।  
 आमाशनानि भोज्यानि शृतमुच्छिष्टमुच्यते ॥३२४  
 दास नापित गोपाल पुलमित्रा र्ध्वसीरिणः ।  
 भोज्यान्ना नापितश्चैव यथात्मानं निवेदयेत् ॥३२५

पर्युपितं चिरस्थं च भोज्यं स्नेहसमन्वितम् ।  
 यव गोधूम माषाणां स्नेह गौरसविक्रयः ॥३२६  
 आपद्गतो द्विजोऽश्वीयाद्गृहीयाद्वा यतस्ततः ।  
 न स लिप्येत पापेन यद्यपत्रमिवाम्भसा ॥३२७  
 क्षापितं शूद्रगेहेऽन्नं कटु पक्वं च यद्भवेत् ।  
 नीत्वा नद्यन्तिके तद्वै प्रोक्ष्य भुजङ्ग दोषभाक् ॥३२८  
 गायत्र्योङ्कारपूताभिः केचिदद्विष्य प्रोक्षणम् ।  
 मन्यन्ते विष्णुमन्त्रेण कलिधर्मं समाश्रिताः ॥३२९  
 आमं मांसं घृतं क्षौद्रं स्नेहाश्च फलसम्भवाः ।  
 स्नेहभाण्डस्थिता ह्येते निष्कान्ताः शुचयः स्मृताः ॥३३०  
 आभीरभाण्डसंस्थानि पयो दधि घृतानि च ।  
 तावत्पूतं हि तद्भाण्डं यावत्तत्र तु तिष्ठति ॥३३१  
 पूतानि सर्वपण्यानि फारहस्तस्थितानि च ।  
 अदत्तानि च भक्ष्याणि यन्नस्तु द्विजातिभिः ॥३३२  
 सर्वरूपहृत्करैर्युक्ता शय्या रक्ताशुकानि च ।  
 पुष्पाणि चैव शुष्यन्ति प्रोक्षितानि च संशयः ॥३३३  
 अलेपं मृण्मयं भाण्डं भाण्डसंचयमेव च ।  
 प्रोक्षणादेव शुष्येत सलेपमप्रितापनात् ॥३३४  
 कास्यं च भस्मना शुष्येत् मद्यमांसविवर्जितम् ।  
 मूत्रा मूत्र पुरीषाभ्यां शुष्यते ताप लेपनैः ॥३३५  
 अलिप्तं मद्य मूत्राद्यैस्ताम्रमस्तेन शुष्यति ।  
 रजसा स्त्री मनोदुष्टा नद्यश्च वेगसंयुताः ॥३३६

अवेगमपि यद्भूरि सरिद्वारि हृदे च यत् ॥ ।  
 सकृदस्पृश्यसंस्पृष्टं न दुष्यति च तत् हृदः ॥३३७  
 सत्येन पूयते वाणी धर्मः सत्येन वर्धते ।  
 तस्मात्सत्यं हि वक्तव्यमात्मशुष्यै द्विजातिभिः ॥३३८  
 रथ्याकर्दमतोयानि नायः पथि लृणानि च ।  
 मारुताक्रेण शुष्यन्ति निशि चन्द्रर्क्षमाप्तैः ॥३३९  
 यथानम्भषमुक्तानि प्रायश्चित्तानि सत्तम ।  
 उक्तानुक्तानि सर्वाणि शास्त्राण्यानि द्विजातिभिः ॥३४०  
 प्रायश्चित्तं न यत्प्रोक्तं धर्मशास्त्रप्रवक्तृभिः ।  
 द्विजैस्तत्र प्रकृत्यं स्याद्धर्मशास्त्रार्थचिन्तकैः ॥३४१

उक्ता मया निष्कृतयः ममासात्  
 संशुद्धये वर्णचतुष्टयस्य ।  
 प्रतानि तेषां विहितानि यानि  
 यक्ष्याम्यतन्त्रानि निबोधयेति ॥३४२

इति श्री बृहत्पराशरीये धर्मशास्त्रे मुन्यतप्रोक्तायां मनुस्मृत्या  
 प्रायश्चित्तनिर्णयो नाम अष्टमोऽध्यायः ।

## नवमोऽध्यायः ।

॥ अथ व्रतोपवासविधिवर्णनम् ॥

व्रतान्यथ प्रवक्ष्यामि ह्येन्दवादिक्रमेण तु ।  
 पापक्षयः कृतैर्यैः स्याद्धर्मार्थे तु महोदयः ॥१  
 चन्द्रवृष्याऽग्नीयात् प्रासान् शुक्ले कृष्णे च हासयेत् ।  
 चन्द्रक्षये न भोक्तव्यं यवमण्यं शशिप्रतप्तम् ॥२  
 विपरीतक्रमेणाश्नन्नादावादाय हासयेत् ।  
 वर्धयेदन्यपक्षे तु पिपीलीमण्यमैन्दवम् ॥३  
 अष्टावष्टौ समश्नीयात्सप्तती प्रतिवासरम् ।  
 अष्टमासिकमित्येतच्चान्द्रायणमथापरम् ॥४  
 शतद्वयं तु पिंडानां चत्वारिंशत्समन्वितम् ।  
 मासेनैवोपभुजीत चांद्रायणमथापरम् ॥५  
 चतुर प्रातरश्नीयात्सायं प्रासांश्च तावत्ता ।  
 शिशुचांद्रायणं तज्ज्ञैः प्रोक्तं पापप्रणोदनम् ॥६  
 मध्यन्दिने यदश्नीयादष्टौ प्रासान् दिनंप्रति ।  
 चान्द्रायणं यतीनां तु बृहन्नैः परिकीर्तितम् ॥७  
 शिष्यण्डसम्मितान् प्रासान् चन्द्रवृत्तो प्रयोजयेत् ।  
 दोषः स्यादन्यथाभावे तस्मादुक्तं समाश्रयेत् ॥८  
 एरुभुक्तेश्च नक्तैश्च तथैवाऽप्याचितैरपि ।  
 उपवासैश्चतुर्भिश्च कृच्छ्रं षोडशभिर्दिनैः ॥९

उष्णं जलं पयः सर्पिरेकैकं च त्र्यहं पिवेत् ।  
 वायुभक्षस्त्यहं तिष्ठेत्तप्तकृच्छ्रोऽयमुच्यते ॥१०  
 पलमेकं जलं पीत्वा पलमेकं तथा पयः ।  
 पलमेकं तथाज्यस्य मानमेतत्प्रकीर्तितम् ॥११  
 एतत्तृत्रिगुणं तज्जैर्महासान्तपनं स्मृतम् ।  
 प्राजापत्यं च कृच्छ्रं च पराकस्त्रिगुणो महान् ॥१२  
 पद्मोदुम्बर-राजीव-विल्वपत्रं कुशोदकम् ।  
 प्रत्येकं प्रत्यहं प्राश्य पर्णकृच्छ्रः प्रकीर्तितः १३  
 प्रत्येकं प्रत्यहं गर्भ्यं मूत्रं शकृत्पयो दधि ।  
 घृतं कुशोदकं पीत्वा उपवासश्च तत्समः ॥१४  
 एभिः सप्ताशनैदकं दिव्यं सान्तपनं द्विजैः ।  
 सप्ताहेन तु कृच्छ्रोऽयं मुनिभिः परिकीर्तितः ॥१५  
 एतत्तु त्रिगुणं तज्जैर्महासान्तपनं स्मृतम् ।  
 प्राजापत्यं च कृच्छ्रं च पराकस्त्रिगुणो महान् ॥१६  
 एकभुक्तं च नक्तं च अयाचितविशेषणे ।  
 पादकृच्छ्रोऽयमुद्दिष्टः क्षिप्तं प्राजापतिवतम् ॥१७  
 अयमेवातिरुच्छ्रः स्यात्पाणिपूता(रा)न्नभोजनः ।  
 कृच्छ्रातिरुच्छ्रः पयसा दिवसानेवविंशतिः ॥१८  
 दिनैर्द्वादशभिः प्रोक्तः पराकः समुपोषितैः ।  
 एक-द्वयह-त्र्यहादीनि नक्तं चैव यथाश्रुतम् ॥१९  
 सम्प्राश्य तिलपिण्याकं तर्कं तोयं कुशोदकम् ।  
 पञ्चमे ह्युपवासः स्यात्सौम्यकृच्छ्रोऽयमुच्यते ॥२०



चान्द्रायणे च कृच्छ्रे च त्रिकालं स्नानमाचरेत् ।  
 स्नानद्वयं तु कर्तव्यं ब्रूतेध्वेवापरेषु च ॥२१  
 शक्तिं ज्ञात्वा शरीरस्य स्नानं कर्तव्यं तथा वृतम् ।  
 असामर्थ्ये तु कायस्य याच्यः पर्यदनुग्रहः ॥२२  
 ब्रह्मकृच्च प्रवक्ष्यासि घृतानामुत्तमं घृतम् ।  
 कृतेन येन मुच्यन्ते प्राणिनः सर्वकिल्बिषैः ॥२३  
 नीलिकायास्तु गोमूत्रं कृष्णायाः शरुदुद्धरेत् ।  
 पयस्त्वतिसुवर्णायाः पीतायाश्च तथा दधि ॥२४  
 कपिलाया घृतं तद्वन्महापातकनाशनम् ।  
 अभावे सर्ववर्णायाः कपिलायाः समुद्धरेत् ॥२५  
 पलानि पञ्च मूत्रस्य अङ्गुष्ठार्धं तु गोमयम् ।  
 क्षीरं सप्तपलं ग्राह्यं तथा दध्नः पलत्रयम् ॥२६  
 घृतं चाष्टपलं ग्राह्यं पलमेकं कुशाम्भसः ।  
 मन्त्रैः सर्वाणि चैतानि अभिमन्त्र्याथ मिश्रयेत् ॥२७  
 गायत्र्या चैव गोमूत्रं गन्धद्वारेति गोमयम् ।  
 आप्यायस्वेति घै क्षीरं दधिक्रावणस्तथा दधि ॥२८  
 तेजोऽसि शुक्रमित्याज्यं देवस्य त्वा कुशोदकम् ।  
 निष्कं पञ्चगव्यं च पात्रेषु क्रमतः पिबेत् ॥२९  
 मध्यमेन पलाशस्य सत्पत्रेण पिबेद्बृहज्जिह्वः ।  
 द्वितीयं पद्मपत्रेण ब्रह्मपत्रेण चापरे ॥३०  
 चतुर्थं ताम्रपत्रेण सत्पत्रेण चतुर्थं बृहज्जिह्वः ।  
 आलोढ्य प्रणवेनैव निर्मथ्य प्रणवेन च ॥३१

उद्धृत्य प्रणवेनैव प्राशयेत्प्रणवेन तु ।

विष्णुं संस्त्रापयेद्भक्त्या पञ्चगव्येन चार्चयेत् ॥३२

सूष्माण्डैर्जुहुयान्मंत्रैः पञ्चगव्यं हुताशने ।

सव्याहृत्या च गायत्र्या तथैव प्रणवेन च ॥३३

ब्रह्मकूर्चमिदं प्रोक्तं व्रतं पञ्चदिनात्मकम् ।

पञ्चगव्यं च सम्प्राश्य पञ्चरात्रोपवासकृत् ॥३४

नक्तेन वा समश्नीयाद्यायञ्छक्त्या दिनानि च ।

पाश्चाद्विक्रं पारणकं व्रतस्यास्य प्रकीर्तितम् ॥३५

निर्वहेत्सर्वपापानि ब्रह्मकूर्चमिदं स्मृतम् ।

अन्ये वदन्ति कवय उपवासविना व्रतम् ॥३६

जप-होमादि कर्तव्यं देवतार्चनमेव वा ।

पञ्चगव्यं च होतव्यं पञ्चगव्यं समश्नीयात् ॥३७

ब्राह्मणान् भोजयेत्तावद्यावत्कुर्यादिदं व्रतम् ।

यत्कगस्थिगर्तं पापं विद्यते पुरुषस्य च ॥३८

ब्रह्मकूर्चो दहेत्सर्वं समिद्धोऽग्निरिवेन्धनम् ॥३९

यावन्ति पापानि भवन्ति पुंसि देवादकामादपि कामतो वा ।

उक्तानि तेषां मुनिना व्रतानि शुष्यर्थमेतान्यपराणि चैवम् ॥४०

धर्मार्थमेतानि कृतानि पुंसां दद्युर्दिवौकस्त्वविमुक्तसिद्धिः ।

अत्रापि पूज्यत्वमशेषलोकैस्तेजशरीरो विचरन् विभाति ॥४१

यस्यास्ति भीतिः पुरुषस्य पापादिच्छेदं कर्तुं क्षयमेनसा च ।

प्रोत्थेव तं च व्रतदानजप्यं प्रोद्दिश्यमेतन्न तदन्यतस्तु ॥४२

चान्द्रायणे च कृच्छ्रे च त्रिकालं स्नानमाचरेत् ।  
 स्नानद्वयं तु कर्तव्यं वृतेष्वेवापरेषु च ॥२१  
 शक्तिं ह्वात्वा शरीरस्य स्नानं कर्तुं तथा व्रतम् ।  
 असामर्थ्ये तु कायस्य याच्यः पर्षदनुग्रहः ॥२२  
 ब्रह्मकूचं प्रवक्ष्यासि व्रतानामुत्तमं व्रतम् ।  
 कृतेन येन मुच्यन्ते प्राणिनः सर्वकिल्बिषैः ॥२३  
 नीलिकायास्तु गोमूत्रं कृष्णायाः शरुदुद्धरेत् ।  
 पयस्चतिसुवर्णायाः पीतायाश्च तथा दधि ॥२४  
 कपिलाया घृतं तद्वन्महापातकनाशनम् ।  
 अभावे सर्ववर्णायाः कपिलायाः समुद्धरेत् ॥२५  
 पलानि पथ्य मूत्रस्य अङ्गुशार्धं तु गोमयम् ।  
 क्षीरं सप्तपलं ग्राह्यं तथा दध्न् पलत्रयम् ॥२६  
 घृतं चाष्टपलं ग्राह्यं पलमेकं कुशाम्भसः ।  
 मन्त्रैः सर्वाणि चैतानि अभिमन्त्र्याथ मिश्रयेत् ॥२७  
 गायत्र्या चैव गोमूत्रं गन्धद्वारेति गोमयम् ।  
 आप्यायस्तेति वै क्षीरं दधिक्राव्णस्तथा दधि ॥२८  
 तेजोऽसि शुक्रमित्याज्यं देवस्य त्वा कुशोदकम् ।  
 निज्जं पञ्चगव्यं च पात्रेषु ब्रह्मतः पिबेत् ॥२९  
 मध्यमेन पलाशस्य तत्पात्रेण पिबेद्द्विजः ।  
 द्वितीयं पद्मपात्रेण ब्रह्मपात्रेण चापरे ॥३०  
 चतुर्थं ताम्रपात्रेण तत्पिबेद्भूतहृद्द्विजः ।  
 आलौक्यं प्रणवेनैव निर्मथ्य प्रणवेन च ॥३१

उद्धृत्य प्रणमेनैव प्राशयेत्प्रणवेन तु ।  
 विष्णुं संस्त्रापयेद्भक्त्या पञ्चगव्येन चार्चयेत् ॥३२  
 कूर्माण्डैर्जुहुयान्मंत्रैः पञ्चगव्यं हुत्वाशने ।  
 सव्याहृत्या च गायत्र्या तथैव प्रणवेन च ॥३३  
 ब्रह्मकूर्चमिदं प्रोक्तं घृतं पञ्चदिनात्मकम् ।  
 पञ्चगव्यं च सम्प्राश्य पञ्चरात्रोपवासवृत् ॥३४  
 न त्तेन वा समश्नोयाद्यावच्छ्रुतया दिनानि च ।  
 पाश्चात्तिकं पारणकं वतस्यास्य प्रकीर्तितम् ॥३५  
 निर्दहेत्सर्वपापानि ब्रह्मकूर्चमिदं स्मृतम् ।  
 अन्ये वदन्ति कत्रय उपवासविना व्रतम् ॥३६  
 जप-होमादि कर्तव्यं देवतार्चनमेव वा ।  
 पञ्चगव्यं च होतव्यं पञ्चगव्यं समश्नित्यात् ॥३७  
 ब्राह्मणान् भोजयेत्तावद्यावत्कुर्यादिदं व्रतम् ।  
 यत्परास्त्रिगतं पापं विद्यते पुरुषस्य च ॥३८  
 ब्रह्मकूर्चो दहेत्सर्वं समिद्धोऽग्निरिवेन्धनम् ॥३९  
 यावन्ति पापानि भवन्ति पुंसां देवादकामादपि कामतो वा ।  
 उक्तानि तेषां मुनिना व्रतानि शुभ्यर्थमेतान्यपराणि चैवम् ॥४०  
 धर्मार्थमेतानि कृतानि पुंसां दद्युर्दिवौकस्त्वग्निमुक्तसिद्धि ।  
 अत्रापि पूज्यत्वमशेषलोकैस्तेज शरीरी त्रिचरन् विभाति ॥४१  
 यस्यास्ति भीतिः पुरुषस्य पापादिच्छेदकं कर्तुं क्षयमेनसा च ।  
 प्रीत्येव तं च व्रतदानजप्यं प्रोदिष्यमेतन्न तदन्यतस्तु ॥४२

वदन्ति दाने मुनयः प्रधानं कर्तुं युगे नान्यदिहास्ति किञ्चिन् ।  
विशोधनं सर्वमिहापि पूज्यं वदामि तस्मादथ दानधर्मान् ॥४३॥

इति बृहत्पाराशरीये धर्मशास्त्रे सुवत्प्रोक्तानां संहितायां  
तेन्दुवादिवतनिर्णयो नाम नवमोऽध्यायः ॥ ६ ॥

—ॐ—

दशमोऽध्यायः ।

॥ अथ सर्वदानविधिवर्णनम् ॥

दानानि विधिना साधं जगौ यानि पराशरः ।  
व्यासस्य तानि वक्ष्यामि श्रूयतां द्विजसत्तमाः ॥१॥  
दानेन प्राप्यते स्वर्गो दानेन सुखमश्नुते ।  
इहामुत्र च दानेन पूज्यो भवति मानवः ॥२॥  
न दानात् परमो धर्मस्त्रिषु लोकेषु विद्यते ।  
तस्माद्दानं प्रदातव्यं यथाशक्त्या सदा नरैः ॥३॥  
मुमुक्षवोऽपि योगीशा भिक्षादानोपजीविनः ।  
अन्नं तोय-समायुक्तं प्रयगेते तथैव च ॥४॥  
तोयमन्नं च वाच्छन्ति किं पुनः सानुरागिणः ।  
सर्वोपरकरसंयुक्तं गृहं च गृहमावृकम् ॥५॥  
वृषादियुक्तं सीरं च वृषमेरुं तथैव च ।  
गृष्टाग्निना प्रदानेन गोप्रदानं तथैव च ॥६॥

सौरभेयी द्विवक्त्रां च तिलवेनुमतः परम् ।  
 घृतवेनुं पयोवेनुं हेमवेनुं सुविस्तरम् ॥७  
 कृष्णाजिनप्रदानं च चाजिस्यंदनमेव च ।  
 एकराजिप्रदानं च तथा तस्य परिग्रहः ॥८  
 सुखासनानि यानानि हस्ति रथं तथा गजम् ।  
 एकहस्तिप्रदानं च कन्यादानफलं तथा ॥९  
 भूमिदानफलं चैव तुलापुरुषमेव च ।  
 हेम-रूप्यप्रदानं च भणिकादिसमन्वितम् ॥१०  
 प्रपु-सीसक-ताम्रादिसर्वधातुप्रदानवत् ।  
 नक्षत्र-तिथि-योगेषु यद्यत्तदानजं फलम् ॥११  
 विद्यादानफलं चैव प्राणदानं तथैव च ।  
 अभयादिकृद्दानानि प्रतिग्रहे यथा विधिः ॥१२  
 इष्टा पूर्ता फलोपेक्षा सर्वं विस्तरतो मया ।  
 शक्तिसूनोः श्रुतं पूर्वं क्रमात्कथयतः शृणु ॥१३  
 गोहिरण्यादिदानानां सर्वेषामप्यनुत्तमम् ।  
 अन्नदानमपेक्षन्ते सर्वेऽपि हि दिवौकसः ॥१४  
 अन्नार्थं मातरिश्वायमन्नार्थं च तथाऽनलः ।  
 अन्नार्थं सविता देवो याति ज्वलति भासते ॥१५  
 अन्नकामः ससर्जेदं विधिरव्यस्तिलं जगत् ।  
 अन्नात्परतरं तत्त्वं न भूतं न भविष्यति ॥१६  
 दद्यादहरहस्तस्मादन्नं विप्राय मानवः ।  
 श्रुतं वा यदि वा चामं स ग्वर्गे सुखं मेधते ॥१७

शोभनान् संभृतान् कुम्भान् पक्वाग्रपरिपूरितान् ।  
 अपूपैर्मोदकाद्यैश्च दत्त्वा दिवि सुगं वसेत् ॥१८  
 मणिकं वलशान्वाऽपि यः पूरयति शक्तितः ।  
 सुशुभाद्भिर्द्विजौकस्तु मंजूणांशो दिवं व्रजेत् ॥१९  
 द्विजान् यः पाययेत्तोयं अन्यानपि पिपासितान् ।  
 प्रप्रां तु कारयेद्गोप्त्रे देवलोऽन्मयाऽनुयान् ॥२०  
 यद्वातृणादिकं दद्याद्विपांसु च प्रतिश्रयम् ।  
 पादाभ्यङ्गं तर्पधांसि शीते प्रावरणानि च ॥२१  
 उपानत् पादुके चैव ददत्कामानवाप्नुयान् ।  
 सप्तधान्यसमायुक्तं तर्प स्नेहसमन्वितम् ॥२२  
 सर्वोपस्करसंयुक्तं सर्वालंकारभूषितम् ।  
 हिरण्य-गो-घृषा-ऽश्वैश्च तूली-शय्योपधानकैः ॥२३  
 वरस्त्रीभूषणैर्युक्तं सकारयं साम्रभाजनम् ।  
 कण्डण्यादिसमायुक्तं ददत् पात्राय मानवः ॥२४  
 पक्ष्मेष्टकचितं कृत्वा सर्वलक्षणसंयुतम् ।  
 मृष्मयं वा तथा सद्यः कृत्वा चाश्वमयं तथा ॥२५  
 दत्त्वा स्थानमवाप्नोति प्राजापत्यमसंशयम् ।  
 प्राकारा यत्र सौवर्णा गृहाण्युच्चैस्तराणि च ॥२६  
 माणिक्य-गारुडवर्ग्यैर्मौक्तिकैर्भूषितानि च ।  
 देवकन्यासहस्रेण स धृतो गीत-नृत्यकैः ॥२७  
 सेन्यमानोऽप्सरसहैः प्राजापतिसमं वसेत् ।  
 अनङ्गाहौ च धूर्वाहौ बलवन्तौ सुलक्षणौ ॥२८

तहणौ सुविषाणौ च घंटाभरणभूषितौ ।  
 अदुष्टावेक्यणौ तु सशिरौ दक्षिणान्वितौ ॥२६  
 य आहूय द्विजाग्न्याय दद्याद्भक्त्या तु मानवः ।  
 सोऽनङ्गुद्रोमतुल्यानि स्वर्गे वर्षाणि तिष्ठति ।  
 अप्सराभिर्बृत्तो नित्यं सेव्यमानः सुरासुरैः ॥३०  
 एकोऽपि हि वृषो देवो घूर्णहः शुभलक्षणः ।  
 अरोगश्चापरिच्छिद्यो यस्मात्स दशगोसमः ॥३१

एकेन दत्तेन घृषेण यस्माद्भवन्ति दत्ता दश सौरभेयाः ।  
 माहेष्यतो यद्दरणीसमानात्तस्माद्बुधपात् पूज्यतमोऽस्ति नान्य ॥

गृष्टिदानं प्रवक्ष्यामि यथा देयं द्विजातिभिः ।  
 यो विधिर्दक्षिणायाश्च तथा सर्वं नियोधत ॥३३  
 एकरात्रोपितः स्नातो गोदाता पञ्चगव्यपः ।  
 पञ्चामृतेन संस्नाप्य सम्पूज्य गरुडध्यजम् ॥३४  
 सप्तसा यस्त्रसंयुक्ता सितयज्ञोपवीतिनीम् ।  
 सुविषाणां मुरूपां च सर्वलक्षणसंयुताम् ॥३५  
 हेमकल्पितगृगां च मुरूप्यचरणामकाम् ।  
 पयस्त्रिनी सुशीलां च हिरण्योपरिसंस्त्रिताम् ॥३६  
 प्रत्यङ्मुखस्त्राय विप्राय गृष्टिं ता च उदङ्मुखीम् ।  
 त्वमिमां प्रतिगृह्णीयाः प्रीतोऽस्तु केशवोऽजया ।  
 इति दत्तोदकं हस्ते पदान्यष्टौ विसर्जयेत् ॥३७  
 व्यावर्तेत ततःपश्चात्प्रणम्य शिरसा द्विजम् ।  
 अनेन विधिना धेनुं यो विप्राय प्रयच्छति ॥३८



स विष्णुप्रीणनायति विष्णुलोऽमसंशयम् ।  
 आत्मनः पुरुषान् मत्त प्रागधन्नाय मम च ।  
 आत्मानं ममज्जन्मोत्थात्पापाद्विमोचयेन्नरः ॥३६॥  
 पदे पदे तु यज्ञस्य गौरात्माय च मानयः ।  
 फल्गमाप्नोति विप्रेन्द्राः शुभ्रादैतत्पुग दरेः ॥३७॥  
 सर्वकामसमृद्धात्मा सर्वलोकेषु प्रजितः ।  
 नाम्नाप्यधौघहन्ता च यावदिन्द्राक्षनुर्दश ॥३८॥  
 इक्ष्वाकुणा तथा चान्यैर्गृध्रा यमुनाधिपैः ।  
 यैर्या नृभिरियं दत्ता जग्मुस्तेऽपि च विष्टपम् ॥३९॥  
 पश्यन्ति दीयमाना ये ये भवन्त्यनुगोदकाः ।  
 तेऽपि पापाद्विनिर्मुक्ता विष्णुलोऽमवाप्तुयुः ॥४०॥  
 पादद्वयं मुखं योऽन्या प्रमवन्त्याः प्रदश्यते ।  
 तदा च द्विमुखी गौः स्यादेया यावन्न सूर्यते ॥४१॥  
 क्षोणीतुल्या तदा सा गौः सर्वैर्हता मुनीश्वरैः ।  
 सापि प्राग्विधिना देया सकांस्यदोहना द्विजाः ॥४२॥  
 एकत्र पृथिवी सर्वा मशैल-वन-कानना ।  
 तस्या गौर्ज्यायसी साक्षादेव त्रीभयतोमुखी ॥४३॥  
 गोवत्सस्य च लोमानि यावत्संरयानि सत्तमाः ।  
 तावत्सङ्ख्यायानि वर्षाणि ध्रुवं ब्रह्मजने वसेत् ॥४४॥  
 अरोगामपरिद्विष्टा धेनुं गामथ वापि च ।  
 दत्वा स्वर्गमवाप्नोति यावदाभूतसंक्षयम् ॥४५॥

तिलधेनुं प्रवक्ष्यामि प्रीणनाय हरेरिमाम् ।  
 यथा तुष्यति गोविन्दो दत्तया नु गवाऽनघ ॥४६  
 ब्रह्मादिवर्णहा गोघ्नः पितृ-मातृसुहृद्घातृ ।  
 अग्निदो गुरुहा चैव तथैव गुरुतल्पगः ॥४७  
 सर्वपापसमायुक्तो युक्तो यश्चोपपातकैः । । ।  
 सर्वैः पापैः प्रमुच्येत तिलधेन्या प्रदत्तया ॥४८  
 अनुलिप्ते महीपृष्ठे यस्त्राजिनसमावृते ।  
 धर्मज्ञाः केचिदिच्छन्ति कुत्तपे च तिलास्तृते ॥४९  
 आस्तीर्य त्वाविकं भूमौ तत्र कृष्णाजिनं पुनः ।  
 तिलास्तु प्रक्षिपेत्तत्र कृष्णादकचतुष्टयम् ॥५०  
 कुर्यादुत्तरतोऽभ्यर्णे आढकेन तु वत्सकम् ।  
 सर्वरत्नैरलङ्कुर्यात्सौरभेयां सवत्मकाम् ॥५१  
 कार्यं हेममये शृङ्गे चरणा राजतारुतथा ।  
 मिष्टान्नरसना कुर्याद्गन्धघ्राणवती शुभाम् ।  
 आस्यं गुहमयं तस्याः सास्ना सूत्रमयी तथा ॥५२  
 ताम्रपृष्ठेभ्रुपादा च कार्या मुक्ताफलक्षणा ।  
 प्रशतपत्रप्रवणा फलदन्तवती तथा ॥५३  
 शुभ्रस्रव्ययलाङ्गुला नवनीतस्तनान्विता ।  
 नारिकैर्वाजपूरैश्च जम्बीरैर्नारिकेलकैः ॥५४  
 घदरा-ऽऽम्ररूपित्यैश्च मणिमुक्ताफलार्चिताम् ।  
 सितवस्त्रयुगच्छन्नां सितच्छत्रसमन्विताम् ॥५५

स विष्णुप्रीणनाद्याति विष्णुन्योरुमसंशयम् ।  
 आत्मनः पुरुषान् मत्त प्रागधन्नाथ मत्त च ।  
 आत्मानं मत्तजन्मोत्थात्पापाद्विमोचयेन्नरः ॥१६॥  
 पदे पदे ॥ यज्ञस्य गोर्वत्सस्य च मानवः ।  
 फल्गुमाप्नोति विप्रेन्द्राः शुभ्राच्चैतरुग दरेः ॥१७॥  
 सर्वकामसमृद्धात्मा सर्वलोकेषु पूजितः ।  
 नाम्नाप्यधोपहन्ता च यावद्दिद्राश्चतुर्दश ॥१८॥  
 इक्ष्वातुणा तथा चान्यैर्बहुधा यमुधाविपैः ।  
 यैर्या नृभिरियं दत्ता जग्मुस्तेऽपि च विष्टपमे ॥१९॥  
 पश्यन्ति दीवमाना ये ये भवन्त्यनुमोदकाः ।  
 तेऽपि पापाद्विनिर्मुक्ता विष्णुलोचनवानुयुः ॥२०॥  
 पादद्वयं मुखं योऽन्यां प्रमथन्त्याः प्रहरयते ।  
 तदा च द्विमुखी गौः म्यादेया यावन्न सूर्यते ॥२१॥  
 क्षोणीतुल्या तदा सा गौः सर्वैरुक्ता मुनीश्वरैः ।  
 सापि प्राग्विधिना देया सकाम्यदोहना द्विजाः ॥२२॥  
 एकत्र पृथिवी सर्वा मशैल-वन-कानना ।  
 तस्या गौर्ज्यायसी साक्षादेव त्रिभयतोमुखी ॥२३॥  
 गोर्वत्सस्य च लोमानि यावत्संख्याति सत्तमाः ।  
 तावत्सङ्ख्यानि वर्षाणि ध्रुवं ब्रह्मजने वसेत् ॥२४॥  
 अरोगामपरिद्विष्टां घेनुं गामथ चापि च ।  
 दत्त्वा स्वर्गमवाप्नोति यावदाभूतसंक्षयम् ॥२५॥

तिलधेनुं प्रवक्ष्यामि प्रीणनाय हरेरिभाम् ।  
 यथा तुष्यति गोविन्दो दत्तया नु गवाऽनघ ॥४८  
 ब्रह्मादिवर्णहा गोघ्नः पितृ-मातृसुहृद्घातृ ।  
 अप्रिदो गुरुहा चैव तथैव गुरुतल्पगः ॥४९  
 सर्वपापसमायुक्तो युक्तो यश्चोपपातकैः ।  
 सर्वैः पापैः प्रमुच्येत तिलधेन्वा प्रदत्तया ॥५०  
 अनुलिप्ते महीपृष्ठे यस्त्राजिनसमावृते ।  
 धर्मज्ञाः केचिदिच्छन्ति कुतपे च तिलास्तृते ॥५१  
 आस्तीर्य त्वाधिकं भूमौ तत्र कृष्णाजिनं पुनः ।  
 तिलास्तु भाक्षिपेत्तत्र कृष्णादफचसुष्टयम् ॥५२  
 कुर्यादुत्तरतोऽभ्यर्णे आढकेन तु वत्सकम् ।  
 सर्वरत्नैरलङ्कुर्यात्सौरभेर्या सघटसकाम् ॥५३  
 कार्यं हेममये शृङ्गे चरणा राजतारतथा ।  
 मिष्टान्नरसनां कुर्याद्गन्धघ्राणवती शुभाम् ।  
 आस्यं शुद्धमयं तस्याः सास्ना सूत्रमयी तथा ॥५४  
 ताम्रपृष्ठेक्षुपादा च कार्या मुक्ताफलैश्चजा ।  
 प्रशरतपत्रश्रवणा फलदन्तवती तथा ॥५५  
 शुभ्रस्रल्लयलाङ्गूला नवनीतस्तनान्विता ।  
 नारिङ्गैर्वीजपूरैश्च जम्बीरैर्नारिकेलकैः ॥५६  
 बदरा-ऽऽम्ररूपित्वैश्च मणिमुक्ताफलार्चिताम् ।  
 सितवस्त्रयुगच्छत्रा सितच्छत्रमगन्विताम् ॥५७

इदं विधां च तां कुर्यात् श्रद्धया पर्यान्वितः ।  
 काश्योपदोहना दद्यात्केशवः प्रीयतामिति ॥६६  
 कुर्याच्च गृष्ट्रिविद्वान् दमामप्युत्तरामुग्मीम् ।  
 सम्यगुगार्थं विधिना दत्त्वेन द्विजोत्तमः ॥६७  
 सर्वपार्ष्णिनिर्मुक्तः पितरं सपितामहम् ।  
 प्रपितामहं तथा पूर्वं पुरुषाणां चतुष्टयम् ॥६८  
 पुत्रपौत्रमधस्ताद्येत्तथैव च चतुष्टयम् ।  
 द्विजेन्द्रास्तारयन्त्येतान् तिलधेनुप्रदा नराः ॥६९  
 यश्च गृह्णाति विधियत्पुरुषान् सोऽपि तावत् ।  
 चतुर्दश तथा ये च ददतश्चानुमोदकाः ॥७०  
 दीयमानां च पश्यन्ति तिलधेनुं च ये नराः ।  
 शृण्वन्ति ये च तां भक्त्या दीयमानां द्विजोत्तमाः ॥७१  
 तेऽप्यशेषाचनिर्मुक्ताः प्रयान्ति विष्णुलोकताम् ।  
 प्रशान्ताय मुरारीलाय तथाऽमृतसरिणे नृपः ।  
 तिलधेनुं नरो दद्याद्वेदस्नाताय धर्मिणे ॥७२  
 त्रिरात्रं सतिलाहारस्तिग्धेनुं ददाति यः ।  
 एकरात्रं पुनर्भक्त्या तिलानत्ति प्रयत्नतः ॥७३  
 दातुर्विशुद्धपापस्य तस्य पुण्यवतो द्विजाः ।  
 चान्द्रायणादप्यधिकं शस्तं तत्तिलभक्षणम् ॥७४  
 एवं प्रतिप्रदीतापि आदत्ते विधिना द्विजः ।  
 स तारयति दातारमात्मानं च न संशयः ॥७५

प्रतिग्रहसुदीप्ताग्निदग्धविप्रमुखेरिताः ।

न स्फुरन्तीह मन्त्राश्च जप-होमादिकेषु च ॥६६

न दानं दीयते तस्य न सं कर्मणि योजयेत् ।

निष्फलं तत्कृतं कर्म मृतस्यौषधदानवत् ॥७०

अथातः संप्रवक्ष्यामि धृतयेनुमपि द्विजाः ।

- ये न सा विधिना देया सं प्रवक्ष्याम्यशेषतः ॥७१

वक्ष्यामि धेतुं धृतपूरकल्या विधिं च वस्तूनि च यैः प्रकल्या ।

तस्याः प्रदानेन फलं हि यच्च क्रिया च पात्रं त्वनुपूर्वं यच्च ॥७२

गोक्षीर-सर्पिर्मधु-खण्ड-दध्ना संस्नाप्य विष्णुं शुभधारिणा च ।

संपूज्य पुष्पैश्च विलेप्य गन्धै(दद्यान्निवेद्यैर्)र्द्धत्वा नैवेद्यं च सधूप-दीपम् ॥

धृते च बहिर्धृतमेव सोमो धृते च सूर्यो धृतमेव वारि ।

प्रवेदि तस्मात् धृतमेव विद्वन् ! धृते प्रदत्ते सकलं प्रदत्तम् ॥

धृतेन गन्धेन तु पूर्णकुम्भं प्रकल्प्यते गौः करकेन वत्स ।

हिरण्यगर्भां मणि-रत्नशोभा कुरुष्व कर्पूरसुचारुतासाम् ॥७५

शृङ्गे च कृष्णागरुदारवे च सौवर्णनेत्रे पटसूत्रसाक्षा ।

क्षीरं च पुच्छं गुड-दुग्धवक्त्रं जिह्वा च तस्या वरशर्करायाः ॥७६

द्राक्षोथैश्चैव रज्जूरैरन्यैः स्नादुफलैरपि ।

उरस्तस्याः प्रकर्तव्यं पृष्ठं ताम्रं च धीमता ॥७७

शृणुयष्टिमयाः पादाः शफा रौप्यमयास्तथा ।

धा यैश्च सप्तभिः पार्श्वं लोमानि सितसर्पपैः ॥७८

कांस्यदोहा प्रवर्तव्या सितवस्त्रावृता तथा ।

सितच्छत्रसमायुक्ता सितचामरभूषिता ॥७९

वत्सस्य कुर्यादिति भूषणानि प्रोक्तानि सर्वाण्यपि यानि धेनो ।  
 अङ्गानि सवाणि च तद्वदस्य ह्यत्र सप्तस्र च तथैव विप्रा ॥८०  
 गृहाण चैना मम पापहर्त्यं दुस्तारसप्तारपयोधिषोव । ।  
 सप्तारतारो भय भूमिदेव । द्यौं प्रदेह्यमयमङ्ग जिह्वन् ॥८१  
 विष्णु सुरेशो घृतरश्मिरम्या प्रीतोऽस्तु शनेन वर ददातु ।  
 वप्राहृत्य चैतन्नि न हस्ततोय दत्त्वा क्षमस्येति च वारिविधेया ॥८२  
 दात्रा द्विजेनात्र तु पूर्वमुक्त सप्तारस्य सर्पिर्घृतमात्मशुष्यै ।  
 कार्यं प्रमुक्तोऽखिलकिल्बिषस्तु प्राप्नोति कामान् घृत-दुग्धमिश्रान् ॥

घृत क्षीरवहानद्यो यत्र पायसरुर्दमा ।

तेषु लोकेषु त्रिनेन्द्र स पुण्येषूपजायते ॥८४

पितुरुर्ध्वं तु ये सप्त पुरुषास्तस्य येऽन्यथा ।

तेषु तान् द्वित्रिलोकेषु स नयेद्भूतकिल्बिष ॥८५

सकामानां प्रिय गृष्टि कथिता तव सत्तम ।।

विष्णुलोने नरा यान्ति सकामा घृतधेनुश ॥८६

जलधेनु प्रनक्ष्यामि प्रीयते दत्तया यया ।

देयदेवो हृषीकेश सवश सर्वभावन ॥८७

जलकुम्भ द्वित्रिश्रेष्ठ सुवणदजतस्थितम् ।

रत्नगर्भमरोपस्तु ग्राम्येधास्यै समन्वितम् ॥८८

सितवस्त्रयुगञ्छत दूवा पट्टशोभितम् ।

कुत्र मासो सुरेशीर वालकामलत्रैर्युतम् ॥८९

प्रियगुपप्रसयुक्त सितयक्षोपवीतिनम् ।

सोपानक च सञ्छत्र दर्भविष्टरसस्थितम् ॥९०

चतुर्भिः संवृतैः पात्रैस्त्रिलपूर्णैश्चतुर्दिशम् ।  
 स्थण्डिलं दधिपात्रेण घृत-क्षौद्रवता मुखे ॥६१॥  
 उपोषितः समभ्यर्च्य वासुदेवं सुरेश्वरम् ।  
 पुष्प-पूषोपहारैश्च यथाविभवसंभवम् ॥६२॥  
 तस्मिन् कुम्भे लिखेद्ध्येनुं सवत्सरा यक्षकर्मभिः ।  
 प्रतिष्ठा तत्र कुर्यात् मन्त्रीर्वेदचतुष्टयैः ॥६३॥  
 सङ्कलय जलधेनुं च समभ्यर्च्य जनार्दनम् ।  
 पूजयेद्ब्रह्मरूपं तद्वत्कृतं जलमयं युधः ॥६४॥  
 अत्रोच्चरपरे केचित्पूजयेत् घृतचत्सरम् ।  
 पञ्चांशेन तु शुभ्रमस्य चतुर्धांशेन चापरे ।  
 एवं सम्पूज्य गोविन्दं जलधेनुं सवत्सकाम् ॥६५॥  
 सितगन्धर्व शान्तो धीतरागो विमत्सरः ।  
 दद्याद्विप्राय तं मित्रं प्रीतये जलशायिन ॥६६॥  
 जलशायी जगज्ज्योतिः प्रीयतां वैशयो मम ।  
 इति चोवाच विप्रेन्द्रो विप्राय प्रतिपादयेत् ॥६७॥  
 अपकारानिना स्थेयमहोरात्रमतः परम् ।  
 अनेन विधिना दत्त्वा जलधेनुं द्विजोत्तमा ॥६८॥  
 सर्वाङ्गादमवाप्नोति यन्मातुः श्यायति मानवः ।  
 शरीरारोग्य-दीर्घायुः प्रशस्य सर्वकामकृत् ॥६९॥  
 नृणां भवति दत्तायां जलधेनुर्वा न संशयः ।  
 इमामपि प्रशंसन्ति जलधेनुं द्विजोत्तम ॥१००॥



ये नरास्तेन वै यान्ति विष्णुलोकमसंशयम् ।  
 हेमा-ऽऽज्याम्भ-तिलैर्विद्वन् धेनुर्यद्यपि कल्पिता ।  
 तथापि ते च भक्ष्याः स्युर्ममशास्त्रमतादृताः ॥१०१  
 भक्षण्यं च यद्वस्तु धेन्वंगेषु प्रकल्पितम् ।  
 तस्यादृश्यं तदभ्येति वेदमन्त्रैः प्रतिष्ठितम् ॥१०२  
 पुनः संवृतमन्त्रेषु तदाकुंचनमुद्रया ।  
 कृते विमर्जने तेषां वस्तुरूपं पुनर्भवेत् ॥१०३  
 अथान्यत्संनक्ष्यामि दानादा मुत्तमं परम् ।  
 यद्वत्वा मानवो याति सायुज्यं परवेधसः ॥१०४  
 धेनुर्वेद्या मुवर्णस्य कारयित्वा द्विजातये ।  
 या दत्त्वा ग्राह् महीपाला ब्रह्मणः सदनं गताः ॥१०५  
 सा चतुर्भिस्त्रीभिर्वापि शुद्धवर्णपलैर्द्विजः ।  
 पलाभ्यामपि च द्वाभ्यां पलेनैकेन वा पुनः ॥१०६  
 हीनं तु नैव पतव्यं सत्यां सम्पदि सद्द्विजाः ।  
 हीनं तु कुर्वतो दानं दातुस्तन्निष्फलं भवेत् ॥१०७  
 चतुर्धा शेन धेन्यास्तु हेमं घत्सं प्रकल्पयेत् ।  
 सर्वरत्नैरलङ्कुर्यात् वक्ष्यमाणक्रमेण तु ॥१०८  
 राजतं घत्सकं कुर्याद्ब्रूयुरन्ये च तद्विवः ।  
 अलङ्काराश्च सर्वेऽपि गोवद्रत्नैः प्रकल्पयेत् ॥१०९  
 सकाशाद्वासुदेवस्य या शुभ्राव युधिष्ठिरः ।  
 दत्त्वा प्राप्तो हरेर्लोकं सा मयेयमुदीरिता ॥११०

मुक्ताफलशफा कार्या प्रवालकविपाणिका ।  
 पद्मरागाक्षियुग्मा च घृतपात्रस्तनान्विता ॥१११  
 कर्पूरा-ऽगरुलालाटा शर्करारदना स्मृता ।  
 मिष्टान्नमुखसंयुक्ता शंखशृंगांतरा तथा ॥११२  
 जाल्यशुक्तिललाटा च द्राक्षादिरमना तथा ।  
 सुपद्मयुग्मपार्श्वा सा क्षौमसास्नावती तथा ॥११३  
 इक्ष्वंघ्रिगुण्डजानुश्च पञ्चगव्यशुद्धा स्मृता ।  
 नारीकेलैश्च कर्णव्यौ कर्णौ पृष्ठं च कांस्यकम् ॥११४  
 सत्यदृसूत्रलाङ्गूला सप्तधान्यसमायुता ।  
 फल-पुष्पोपसम्पन्ना छत्रोपातृत्समन्विता ॥११५  
 सुवर्णधेनुमार्याय विप्राय प्रतिपादयेत् ।  
 अभ्रमेधसहस्रस्य दद्यात् फलमवाप्नुयात् ॥११६  
 कुलानां हि सहस्रं तु स्वर्गं नयत्यसंशयम् ।  
 किमन्यैर्वहुभिर्दानैरर्ल हेमगवाऽनया ॥११७  
 हेमधेनुप्रदानेन कृतकृत्यो हि वर्तते ।  
 हिरण्यगर्भो भगवान् प्रीयतामिति कीर्तयेत् ॥११८  
 उपवासी विशुद्धात्मा दत्त्वा सोम-रविग्रहे ।  
 दीयमानां च पश्यन्ति ये नरा हेमगामिमाम् ॥११९  
 पश्यमानां च शृण्वन्ति तेऽपि यान्ति त्रिविष्टपम् ।  
 यत्रास्ते लिपिता मोहे स्वर्गदानस्य संस्तुतिः ।  
 रक्षो भूत-पिशाचाद्यास्ततो नश्यन्ति सद्विजाः ॥१२०

एता मयोक्तास्तत्र वत्स । सर्गा गृष्ट्यादिका विस्तृतोऽत्र गावः ।

इक्ष्वाकुभूभृ प्रभृतिक्षितीशा जग्मुर्द्विं या विधिरथ दत्त्वा ॥१२१

कृष्णाजिनस्य दानस्य प्रवक्ष्यामि शुभं विधिम् ।

प्रमाणं च विधिर्यस्य यस्मै विप्राय दीयते ॥१२२

वैशाल्या पूर्णिमाया च कार्तिज्यामथ वापि च ।

उभयोक्तप्रदातव्यं रत्रि-सोमप्रहेऽपि च ॥१२३

अष्टिद्रुमच्छिद्रमलोमकं च सद्याणैत्रं सशर्कं सशेकम् ।

साण्डप्रदेशं सत्रिपाणवक्त्रं शस्तं प्रदाने सितकृष्णचर्म ॥१२४

एवमेतद्विधं चर्म गृहीत्या द्विज पायनम् ।

कल्पयेद्धेनुवत्तच्च हेमशृंगादिकं तथा ॥१२५

शृङ्गे हेममये तस्य शफाश्च रजतस्य च ।

मुक्ताफलैश्च लाङ्गूलं कुर्यात् शाट्वं विवर्जयेत् ॥१२६

अनुलिते महोपृष्ठे प्रसृते कुतर्पेऽशुके ।

तत्र प्रसारयेन्मार्गं तिलैस्तदपि पूरयेत् ॥१२७

घदन्ति तद्विदः सर्वे चतुर्द्रोणैस्तु पूरयेत् ।

पुंसो नाभिप्रमाणं तु अपरे कनयो विदुः ॥१२८

नाभिमात्रं वदन्त्यन्ये राशिं कुर्यादिति द्विजः ।

तिलैश्च पूरयेत् पश्चादजिनं च समन्ततः ॥१२९

हेमनोभं च तं कुर्यात् हेन्ना कर्पेण त द्विजः ।

शक्त्या वापि प्रकर्तव्यं मन शुद्धियथा भवेत् १३०

सौवर्णं क्षीरपूर्णं तु पात्रं प्राच्यां निधापयेत् ।

रात्रिर्न दधिपूर्णं तु तथा दक्षिणतो द्विजः ॥१३१

ताम्रमाज्यभृतं पात्र पश्चिमायां दिशि स्मृतम् । ॥ १३१ ॥  
 क्षौद्रपूगं तथा कास्यं चतुर्दिक्षु क्रमेण तु ॥ १३२ ॥  
 शक्त्या चापि च कर्तव्यं वित्तरात्रं विनर्जयेत् ।  
 दद्याद्देविदे चैव ब्राह्मणायाहिताग्नये ॥ १३३ ॥  
 परिधाध्याऽहते चन्ने अलङ्कृत्य च भूषणैः ।  
 चत्त्रो गृह्य. कार्या इत्यन्ये ऋतयो विदुः ॥ १३४ ॥  
 यदन्ति मुनयो गाथां मार्गमाहात्म्यवेदिनः ।  
 नानानिधाश्च विद्वांसः पुराणार्थविशेषे विदुः ॥ १३५ ॥  
 यस्तु कृष्णाजिनं दद्यात्सगुरं शृंगसंयुतम् ।  
 तिलैः प्रच्छाद्य वासोभिः सर्वैरलङ्कृतम् ॥ १३६ ॥  
 मत्समुद्रमुदा तेन सशैलं धनं कानना ।  
 चनुरग्रा भवेत्ता पथिनी नात्र संशयः ॥ १३७ ॥  
 कृष्णाजिने तिलान् दत्त्वा हिरण्यं मयुः सर्पिषा ।  
 ददाति यस्तु निप्राय सर्वं तरनि दुष्कृतम् ॥ १३८ ॥  
 यः कृष्णाजिनमास्तीर्य देमरत्रयुतेस्तिष्ठेत् ।  
 येष्वावृतं सोपयासो निष्णोरायतने तथा ॥ १३९ ॥  
 वैशारद्यां पूर्णिमाया वा कार्तिन्या वा समाहितः ।  
 दद्याद्विधे त गोयुके मद्यत्ते च यतेन्द्रिये ॥ १४० ॥  
 आहिताग्नी समन्तानि प्रदद्याद्भरिदक्षिणम् ।  
 यावन्त्यजिनलोमानि तिला यस्त्रस्य तन्वतः ॥ १४१ ॥  
 तावन्त्यट्टसद्भ्राणि दाता त्रिण्यपुरे वमेन ।  
 विशेषमपरे मूयुर्निपुरायनयोर्द्वयोः ॥ १४२ ॥

तस्य हस्तोदकं दद्यात्प्रीयतां वेशधो मम ।  
 एवं हस्तिरथं दद्यात्समभ्यर्च्य द्विजातये ।  
 निहत्य सर्वपापानि विष्णुलोके महीयते ॥१६४  
 वसेच्चतुर्भुजस्तत्र सेव्यमानश्चतुर्भुजैः ।  
 अतः तत्कालमातिष्ठेच्छङ्ख-चक्र-गदाधरः ॥१६५  
 पश्यन्तीह रथं ये तु दीयमानं नरा द्विज ! ।  
 तेऽपि विष्णुपुरं यान्ति वासिष्ठजयचो यथा ॥१६६  
 एकमपीह यो दद्याद्दस्तिनं च सभूषणम् ।  
 सवस्त्रं हेमरदनं नरैरजतकल्पितं ॥१६७  
 मणि-मुक्ताफलैर्युक्तं सुवर्ण-रजसान्वितम् ।  
 पूर्वोक्ताय तु विप्राय चतुर्थेऽथ वा द्विजाः ॥१६८  
 यो दद्याद्विधिवत्सोऽपि सदा विष्णुपुरं वसेन् ।  
 विधिवद्यश्च गृह्णाति सर्वमेव प्रतिग्रहम् ॥१६९  
 दानृलोकमवाप्नोति पराशरयचो यथा ।  
 अलङ्कृत्य तु यः कन्या ब्राह्मोद्वाहेन यच्छति ॥१७०  
 अन्योद्वाहेन केनापि गजदानशतं लभेत् ।  
 गजदानस्य यत्पुण्यं तस्मान्छतगुणं फलम् ॥१७१  
 कन्यादा विधिवत्सर्वं प्राप्नुवन्ति ह्यसंशयम् ।  
 पुत्रदानं च वाञ्छन्ति केचिद्वत्स मनीषिण ॥१७२  
 कन्यादानात्परं ध्रुव पुत्रदानं शतोत्तरम् ।  
 भूमिं सस्यवतीं दद्यात् यस्तु विप्राय मानवः ॥१७३

स मूल-शूक्तुल्यानि विष्णुश्लोके सदा वसेत् ।  
 पद्भित्तु सहितान् विप्रान्वंशानुभयतो दश ।  
 तानेव द्विगुणान्याहुरिति केचिन्नियर्तनम् ॥१७४  
 दशहस्तैर्भवेद्वंशश्चतुर्भिस्तैस्तु विस्तरः ।  
 दैर्घ्येऽपि दशभिर्घंशैर्गोचर्म परिकीर्तितम् ॥१७५  
 अपि गोचर्ममात्रेण भूमिं दद्याद्द्विजासये ।  
 विष्णुलोकमवाप्नोति केचिदाहुर्मनीषिणः ॥१७६  
 पञ्चहस्तकदण्डानां चत्वारिंशद् दशाहता ।  
 पञ्चभिर्गुणिता सा तु नियर्तनमिति स्मृतम् ॥१७७  
 बालवत्सकधेनूनां सहस्रं यत्र तिष्ठति ।  
 स द्वे नियर्तनं ज्ञेयं इति केचिद्वदन्ति हि ॥१७८  
 ताम्रपट्टे पटे वाऽपि लेखयित्वा च शासनम् ।  
 ग्रामं विप्राय वा दद्याद्दशसीरक्षितिं पुनः ॥१७९  
 सीरस्यैकस्य वा दद्यात्तस्य पुण्यं किमुच्यते ।  
 भूम्यंशुकणिकानुल्याः समा विष्णुपुरे वसेन् ॥१८०  
 भूमिदानात्परो धर्मस्त्रैलोक्येऽपि न विद्यते ।  
 पादैकमात्रदानेन तस्य विष्णुपुरे स्थितिः ॥१८१  
 तस्य दानात्परो धर्मस्तदुद्धृतेः पातकं परम् ।  
 तस्मात्तां यज्ञतो दद्याद्भरणं च विवर्जयेत् ॥१८२  
 इदं भूमिदानस्य प्रत्यक्षं चिह्नमीक्ष्यते ।  
 क्षितिदः हरगतो भद्रः श्रितिनाथः पुनर्भवेत् ॥१८३

मुनक्ति च पुनर्भोगान् यथा दिवि तथा मुनि ।  
 गजैर्यज्ञैर्नैर्युक्तो हेम-रत्नविभूषितः ॥१८४  
 वरस्त्रीगणसंसेव्यः स्तूयमानः स्वबन्धुभिः ।  
 ह्यग्राह्यारसंयुक्तो गीतवाद्योत्सवादिभिः ॥१८५  
 इत्यादि भूमिदानस्य चिह्नं ते घत्स । कीर्तितम् ।  
 वित्तेनऽपि हि यः क्रोत्या भूमिं विप्राय यच्छति ॥१८६  
 यावत्तिष्ठति सा भूमिस्तावत्सर्गो महीयते ।  
 गृह्भूमिं च यो दद्याद्दद्यादाश्रममात्रकम् ॥१८७  
 गृहोपकरणं दत्त्वा गृहदानफलं लभेत् ।  
 हस्तमात्रा च यो दद्याद्भूमिं विप्राय मानवः ॥१८८  
 किष्कुमात्रा च यो दद्याद्भूमिं वेदविदे नरः ।  
 तस्यापि हि महापुण्यं दद्यादंगुलमात्रकम् ॥१८९  
 नैतस्मात्परमं दानं किञ्चिदस्ति धरातले ।  
 पुण्यं फलं प्रवक्ष्यामि विशेषेण ॥ तच्छृणु ॥१९०  
 यत्र ईमानि सद्मानि मणिभिर्भूषितानि च ।  
 प्राकारा यत्र सौवर्णाश्चतुर्द्वाराः सतीरणाः ॥१९१  
 दिव्याश्चाप्सरसो यत्र तत्सा सहस्रा हानेकराः ।  
 सुपर्वाणो कसायुक्तौ ग्रीवाभरणभूषितौ ॥१९२  
 दृष्ट्वा कामदेवोऽपि भवेत्कामातुरः क्षणान् ।  
 सुपेशा मुललाटाश्च घालचन्द्रोपमध्रुवः ॥१९३  
 सुनासा-वर्णं गण्डाश्च शुभोष्ठाधरपट्टयाः ।  
 सुग्रीवा भुजपाल्यमाः पीनोत्तुङ्गस्तनास्तथा ॥१९४

सुमध्योरुनितम्बाश्च मुश्रेण्यश्च शुभोरुकाः ।

सुजानु-जङ्घ-गुल्फाश्च सुपादाः सुनखास्तथा ॥१६५

केन रूपेण ता वर्ण्या भवन्त्यप्सरसो द्विजाः ।

वैष्णव्यो गणिकास्सर्वा दिव्यस्त्रग्बन्धूपणाः ॥१६६

दिव्यानुलेपलिप्ताङ्गा दिव्यालङ्कारभूषिताः ।

मन्मथोऽपि हि ता दृष्ट्वा भवेत्कामातुरः स्वयम् ॥१६७

सुनीनामपि चेतासि या दृष्ट्वा चुक्षुभुः क्षणात् ।

वर्ण्यन्ते ताः कथं देव्यो या लक्ष्मीप्रतिमोपमाः ॥१६८

वैष्णवाप्सरसां सङ्घैर्वृतश्चामरधारिभिः ।

गीयमानश्च गन्धर्वैस्तूयमानश्च दैवतैः ॥१६९

वसेद्विष्णुपुरे तावद्यावद्विष्णुरजः क्षितौ ।

पुण्यं च भूमिदानस्य कथितं तत्र वरसक ! ॥२००

मैरुधरित्री कुलपर्वताश्च पाथोऽण्वः स्वर्गतलादिकादिः ।

देयानि सर्वाणि च सर्वकामैः प्रोक्तानि दानानि पुराणविद्भिः ॥२०१

आत्मतुल्यं सुवर्णं वा रजतं द्रव्यमेव च ।

यो ददाति द्विजाग्रधेभ्यस्तस्याप्येतत्फलं भवेत् ॥२०२

ब्रह्महत्यादिपापैस्तु यदि युक्तो भवेन्नरः ।

स तत्रापविनिर्मुक्तः प्रोक्ते विष्णुपुरे वसेत् ॥२०३

तुलापुरुष-भूमी च दीयमाने च ये नराः ।

पश्यन्ति तेऽपि यान्ति ह्ये च स्थिरानुमोदकाः ॥२०४

गुडं वा यदि वा रण्डं लवणं चापि तोलितम् ।

यो ददात्यात्मना तुल्यं नारी वा पुरुषोऽपि वा ॥२०५



पुमान्प्रद्युम्नवत् स स्यान्नारी स्यात्पार्वतीसमा ।

सौभाग्यरूपसंयुक्तो मुञ्जीताऽन्ते त्रिविष्टपम् ॥२०६

हिरण्यं दक्षिणायुक्तं सवस्त्रं भूषणान्वितम् ।

अलङ्कृत्य द्विजाम्ब्यं तं परिधाप्य च वाससी ॥२०७

एण्डादि तोलितं पञ्चाद्विप्राय प्रतिपादयेत् ।

सर्वकामसमृद्धात्मा चिरकालं वसेदिवि ॥२०८

उष्ट्रं खराजौ महिषं च मेघमश्वं करेणुं सहिषोमज्जौ च ।

मूयुः खरोद्रीमविको मुनोन्द्राः हेमादियुक्तं सकलं च दानम् ॥२०९

धराणि रत्नानि च हैम-रूप्यं शुभानि यासांसि च कांक्ष्यताम्रे ।

उपाधिमात्रं करभादि कृत्वा हेमादिदानं द्विज दीयते हि ॥२१०

केचिद्वदन्ति चैतानि कृत्वा हैममयानि च ।

सर्वोपस्करयुक्तानि देयानि हेमघेनुवत् ॥२११

अर्चयित्वा हृषीकेशं पुण्येऽह्नि विधिपूर्वकम् ।

अग्निशुद्धं सुवर्णं च विप्रायाहूय यच्छति ॥२१२

स मुत्तया विष्णुलोकं तु यदाऽऽगच्छति संसृता ।

तदाऽसौ तेन पुण्येन धनयुक्तो द्विजो भवेत् ॥२१३

यो रूप्यमुत्तमं दद्यादर्थिने ब्राह्मणाय च ।

सोऽस्तीव धनसंयुक्तो रूपयुक्तश्च जायते ॥२१४

माणिस्यानि विचित्राणि नानानामानि यो नरः ।

तथा ताम्रं च कांस्यं च त्रपु चा मीसकादिकम् ॥२१५

यो दद्याद्भक्तितो विप्रः सोमलोऽमवाप्नुयान् ।

स सम्भुज्य तु तं लोकं रूपवानिह जायते ॥२१६

घृतं ददाति यो विप्रः सोऽप्यन्तं सुखमश्नुते ।  
 भोजनाभ्यञ्जनाय वा भवेत्सोऽपि सुखी नर ॥२१७  
 सततं तैलदानेन भोजनाभ्यञ्जनाय च ।  
 स्निग्धदेहोऽतितेजस्वी रूपयुक्त प्रजायते ॥२१८  
 मृगनाभि च कर्परं तगरं चन्दनादिकम् ।  
 गन्धद्रव्याणि यो दद्याद्धनी भोगी स जायते ॥२१९  
 ताम्बूलं पुष्पमालाश्च पुष्पस्याभरणानि च ।  
 यो दद्याद्वेपवान्भोगी धनयुक्त स जायते ।  
 सुमतिर्वीर्यवाश्चैव धनयुक्तश्च सर्वदा ॥२२०  
 शिशिरतौ च यो दद्यादनलं सेन्धनं नरः ।  
 स समिद्धोदरामि सन् प्रज्ञासूर्ययुतो भवेत् ॥२२१  
 यो दद्याद्दुर्लभानां च नित्यमेधासि मानवः ।  
 श्रियायुक्तो भवेद्वा सद्ग्रामे चापराजित ॥२२२  
 अथ किं बहुनोक्तेन दानधर्मविवेचने ।  
 यद्यदिष्टतमं याय तत्तस्मै प्रतिपादयेत् ॥२२३  
 तिलान् दध्नाश्च नित्यार्थं कृणान्यास्तरेणाय च ।  
 भुक्त्या स तु सुखं स्वर्गं ज्ञातुमात्र भवेद्भुवि ॥२२४  
 गुडमिश्रुरसं स्पण्डं दुग्ध-स्पर्जूर-प्रायकान् ।  
 फलानि दत्त्वा सर्वाणि स्वादूनि मधुराणि च ॥२२५  
 सर्वाणि फलशकानि लवणानि तथा द्विज । ।  
 स्थाल्यादिगृहपाकं च दत्त्वा गोत्राधिको भवेत् ॥२२६

कूष्माण्डं त्रपुषं दत्त्वा घृन्ताकादि पटोलकान् ।  
 शुभानि कन्दमूलानि सुहृष्टः पुत्रवान् भवेत् ॥२२७  
 घदरा-ऽऽत्र-कपित्थानि सर्जूर-दाडिमानि च ।  
 चिञ्चामलकं दत्त्वा पुत्रवानिह जायते ॥२२८  
 या नारी द्विज । चैतानि द्विजे भक्त्योपपातयेत् ।  
 सर्वं तस्या भोक्तृद्वि घेनुदानसमन्वितम् ।  
 सुपुत्रा सुभगा पुत्रा पार्षतोवेह जायते ॥२२९  
 योऽर्थिने कृण-काष्ठानि ब्राह्मणायोपपादयेत् ।  
 सर्वं दत्तं भवेत्तस्य घेनुदानसमं फलम् ॥२३०  
 भोजनान्छदने दत्त्वा दत्त्वा चोपानहौ द्विजः ।  
 रत्नलोकोकं तु सम्भुज्य पूर्णकामोऽत्र जायते ॥२३१

याः पण्यनार्योऽतिमकामपुत्रं कामोपभुक्त्यै निजदत्तदेहाः ।  
 गीर्वाणचेतोहरूपवत्यः पौरन्दरास्ता गणिका भवन्ति ॥२३२

गृहं वा मठिकं वाऽपि शयना-ऽऽसन-विष्टरम् ।  
 दत्त्वा च कशिपुं विद्वान् विप्रान् यः पाठयेन्नरः ॥२३३  
 महीदानादिर्ह व्यास ! विद्यादानं शताधिकम् ।  
 विद्यार्थिनाथ विप्राणां पादाभ्यङ्गमुपाजहौ ॥२३४  
 यो ददाति द्विजश्रेष्ठ ब्रह्मलोकोकं स गच्छति ।  
 आदावारम्य वेदास्तु शास्त्रं वाऽन्यतमं द्विजः ॥२३५  
 अध्यापयेद्द्विजान् शिष्यान् विद्यादानं तदुच्यते ।  
 तृपाध्यायं निवेशयामे तस्य कृत्वा च येतनम् ॥२३६

विद्यां भक्त्या प्रयच्छेद्यः परब्रह्मण्यसौ विरोत् ।

विद्यार्थिने च विप्राय यो दद्याद्भोजनं द्विजः ॥२३७

पादाभ्यङ्गं तथा स्नानं सोऽपि विद्यांशमाप्नुवेत् ।

यः स्वयं पाठयेद्विप्रान् स्नात्वा भक्त्या च स द्विजः ॥२३८

साक्षात् ब्रह्म समध्येति भूयो नायाति संसृतौ ।

श्रुचं वा यदि वार्धं च पादं पादार्धमेव च ॥२३९

अध्यापयति तस्याऽपि नास्ति शिष्यस्य निष्कृतिः ।

मन्त्रहृत् च यो दद्यादेकं वाऽपि शुभाक्षरम् ।

तस्य दानस्य वै शिष्यो निष्कृतिं कर्तुमक्षमः ॥२४०

यद्विप्र शिष्यप्रतिपादितेन विद्याप्रदानेन न तुल्यमस्ति ।

दानं धरिद्रामग्निनाशि किञ्चित्स्मात्प्रदेयं सततं तदेव ॥२४१

रोगार्तस्यौषधं पथ्यं यो ददाति नरो यदि ।

अन्यस्यापि च कस्यापि प्राणदः स तु मानवः ॥२४२

न . . . . . च ।

न . . . . . ।

आदत्तैः प्राणहीनेन प्राणदानमतोऽधिकम् ॥२४३

अन्नं प्राणो जलं प्राणः प्राणघ्नोऽपि मुच्यते ।

तस्मादौषधदानेन दाता मुरसमो द्विजाः ॥२४४

प्राणदानं च यो दद्यात्सर्वेषामपि देहिनाम् ।

स याति परमं स्थानं यत्र देवश्चनुभुञ्जः ॥२४५

यो दद्यान्मधुरां वाचमाश्वासनकरोमृताम् ।

रोग-क्षुधादिनार्तस्य स गोमेधफलं लभेत् ॥२४६

रूप-द्रविणसंयुक्तो भार्यां रूपवतीं लभेत् ।  
 नरः प्राप्नोति धर्मज्ञ प्रमाणं राजवेश्मनि ॥२५८  
 नारी च शुभभर्तारं रूप-सौभाग्यसंयुतम् ।  
 प्राप्नोति विपुलान्भोगान्नात्र कार्या विचारणा ॥२५९  
 पौर्णमासीषु चैतासु मासर्क्षसंयुतासु च ।  
 एतेषामेव दानानां फलं दशगुणं लभेत् ॥२६०  
 महापूर्वासु चैतासु फलमक्षय्यमश्नुते ।  
 द्वादश्यां शुक्लपक्षस्य चैत्रे यत्प्रदो नरः ॥२६१  
 अक्षय्यान् लभते भोगान्नाफलोकेऽविनश्वरे ।  
 इत्येतत्कथितं विप्र फलं चैत्रस्य सत्तम ॥२६२  
 दद्याद्धैमं च वैशाखे द्वादश्यां यो नरः सिते ।  
 शुक्ले छत्रोपानहौ च विष्णुलोकमवाप्नुयात् ॥२६३  
 आस्तीर्य शयनं दत्त्वा प्रणम्य भोगशायिनम् ।  
 आपादशुद्धादश्यां श्वेतद्वीपमवाप्नुयात् ॥२६४  
 श्रावणे यत्प्रदानेन विष्णुसायुज्यमृच्छति ।  
 गोदः प्रयाति गोलोकं मासे भाद्रपदे द्विजः ॥२६५  
 मीणयेदध्रिरसं यच्च दत्त्वा तथाश्विने ।  
 विष्णुलोकमवाप्नोति कुलमुद्धरते स्वकम् ॥२६६  
 फंवलस्य प्रदानेन कार्तिक्यां भोगमाप्नुयात् ।  
 प्रदानं लवणानां तु मार्गशीर्षे महाफलम् ॥२६७  
 धान्यानां च तथा पौषे दातुणामप्यनन्तरम् ।  
 फाल्गुने सर्वगन्धानां भवेदानं महाफलम् ॥२६८

अशौचे सूतके चैव न देयं न प्रतिग्रहः ।  
 सत्तोरपि तथोर्दया सदा चामयदक्षिणा ॥२७६  
 रात्रौ दानं न दातव्यं दातव्यमभयं द्विजैः ।  
 इमानि त्रीणि देयानि विद्या-कन्याप्रतिग्रहः ॥२८०  
 देवानामतिथीनां च गवामपि च पूजनम् ।  
 रात्रायपि हि कर्तव्यमिति पाराशरोऽब्रवीत् ॥२८१  
 शुचिः सप्तशुचिराऽपि दद्याद्गृहीत चोभयम् ।  
 अभयस्य दानकालोऽयं यदा भयमुपस्थितम् ॥२८२  
 अन्यप्रतिग्रहो विद्वन् ब्राह्मणश्च शुचिना द्विज ।  
 अशौचे सूतके वाऽपि न तु माह्ना भवन्ति ते ॥२८३  
 अभ्यक्तेन च धमेऽह ! तथा मुक्तशिखेन च ।  
 स्नात्वाऽऽचम्य पयः क्षुर्य गृहीत प्रयतः शुचिः ॥२८४  
 द्रव्यस्य नाम गृहीयाद्दाता तथा निवेदयेत् ।  
 तोयं दद्यात् तथा दाता दाने त्रिविर्यं स्मृतः ॥२८५  
 प्रतिगृहीता सावित्रं सर्वं मन्त्रमुदोत्सरेत् ।  
 साध्यं द्रव्येण तत्सर्वं तद्द्रव्यं च सदैवतम् ॥२८६  
 समापय्य ततः पश्चात्कामं स्तुत्वा प्रतिग्रहम् ।  
 प्रतिग्रही पठेदुच्चैः प्रतिगृह्य द्विजोत्तमात् ॥२८७  
 मन्त्रं पठेच्च राजन्यो उपाशु च तथा विशः ।  
 मनसा च तथा शूद्रात्कर्तव्यं स्वस्तिराचनम् ॥२८८  
 सोऽङ्गारं ब्राह्मणो ब्रूयान्निरोद्धारं महीपतिः ।  
 उपाशु च तथा वैश्यः स्वस्ति शूद्रे तथैव च ॥२८९

न दानं यशमे दद्यात्त मयाभ्रोपकारिणे ।  
 न नृशमीशरीरेभ्यो दामेष्ट्यश्च धार्मिकः ॥२६०  
 पात्रभूगोऽपि यो विप्रः प्रनिगृह्य प्रतिपदम् ।  
 जमस्तु विनियुञ्जीत तस्मै देयं न तद्वशम् ॥२६१  
 मन्थयं कुन्ते यस्तु ममादाय इत्यन्तः ।  
 धर्माय नोपयुञ्जीत न तं नरस्त्वर्षयेत् ॥२६२  
 यस्मैदामा द्विजाय न्यादुद्वीकृत्य तं नरः ।  
 दानं न हृदि मन्थित्य जलमपरे जलं शिपेत् ॥२६३  
 पदन्ति मुनयो गाथां परोक्षे दानमन्वृतम् ।  
 परोक्षमशयं दानं प्रत्यभ्रातरोऽपि भजेत् ॥२६४  
 पात्रं मनसि मन्थित्य गुणधन्तमभोषितम् ।  
 अप्सु प्राप्नोत्यह्ने वा भूमौ वापि जलं शिपेत् ॥२६५  
 दानकाले तु मग्नप्राप्ते पात्रे धामनिधौ जलम् ।  
 अन्यविप्रकरे दद्याद्दानं पात्राय दीयते ॥२६६  
 विष्णुर्भुवर्णो यत्र गृह्णत्वाह करोदकम् ।  
 तद्दानं मद्यसम्प्राप्तमक्षयमिति विष्णुमीः ॥२६७  
 लक्ष्मीधराय यद्दत्तं दग्निद्रायार्चिने द्विजाः ।  
 तदक्षयं समुद्विष्टमिति पाराशरोऽब्रवीत् ॥२६८  
 राज्यध्वजं च राजानं भूयो राज्ये निवेशयेत् ।  
 विष्णुलोकं चिरं मुत्तमा भूयो भूमिपतिर्मयेत् ॥२६९  
 प्रतिश्रुत्य द्विजायाधं यो न यच्छति तं पुनः ।  
 न च स्मारयते विप्रस्तुल्यं तदुपपातकम् ॥३००

प्रतिश्रुत्य च यत्किञ्चिद्द्विजेभ्यो न प्रयच्छति ।  
 स वै द्वादश तन्मानि शृगालयोनिमाप्नुयात् ॥३०१  
 गृष्ट्यादीनथ वक्ष्यामि यथालक्षणरक्षितान् ।  
 मानं भूमितिलादीना यथावत्तन्निबोधत ॥३०२  
 अजातदन्ता या तु स्याद्द्रुमदन्तसमन्विता ।  
 वर्षादराक् चतुर्था च वत्सिकेति निगद्यते ॥३०३  
 सुरीला च सुवर्णा च नीरोगा च पयस्विनी ।  
 सवत्सा प्रथम सूता गृष्टिर्गौरभिधीयते ॥३०४  
 अरोगा याऽपरिच्छिन्ना प्रसववत्यथ सूतिका ।  
 सूता याऽतिपयोयुक्ता सा गौ सामान्यतः स्मृता ॥३०५  
 पूर्वोक्तगुणसंयुक्ता प्रत्यग्रप्रसवा तथा ।  
 साथ गौर्वनुरित्युक्ता वसिष्ठजयचो यथा ॥३०६  
 पञ्चगुह्यो भवेन्माप कर्प पोडराभिश्च तै ।  
 तैश्चतुर्भिः पलं प्रोक्त दाने मानं च पुण्यदम् ॥३०७  
 भद्र नरैकहस्ताभिः प्रसूतीभिश्चतसृभिः ।  
 मानक तैश्चतुर्भिश्च सेतिकेति प्रकीर्तिता ॥३०८  
 ताभिश्चतसृभिः प्रसूतुर्मिराढरुश्च तै ।  
 द्रोणश्चतुर्मितैरुक्ता धान्यमानमिति स्मृतम् ॥३०९  
 तिलप्रसूतिभिर्भाण्डं चतुर्भिर्यत्नपूर्वते ।  
 तैश्चतुर्भिश्च कर्षो हि तैश्चतुर्भिश्च वै पलम् ॥३१०  
 पलैश्च तैश्चतुर्भिः स्यात् श्रोपाटी तच्चतुर्ग्रहम् ।  
 करकं चतसृभिस्ताभिश्चतुर्भिस्तैर्घटः स्मृतः ॥३११



ईर्ष्या मन्द्युनां दानं यद्दानमर्थकारणात् ।  
 यो ददाति द्विजातिभ्यो बालभावे तदश्नुते ॥३२२  
 स्वयं नीत्वा च यद्दानं भक्त्या पात्रे प्रदीयते ।  
 अप्रमेयगुणं तद्धि उपतिष्ठति यौवने ॥३२३  
 यत्सद्विप्राय बृद्धाय भक्त्या च परया यत् ।  
 दीयते वेदविदुषे तदुपतिष्ठति बार्हते ॥३२४  
 तस्मात्सर्वास्वयस्थासु सर्वदानानि सत्तमाः ।  
 दातव्यानि द्विजातिभ्यः स्वर्गमार्गमभीप्सवा ॥३२५  
 भूमेः प्रतिग्रहं कुर्याद्भूमिं कृत्वा प्रदक्षिणाम् ।  
 करे गृह्य तथा कन्या दास दास्यौ तथा द्विजः ॥३२६  
 करं तु हृदि चिन्त्यत्य धन्यो ज्ञेयः प्रतिग्रहः ।  
 आरुह्य च गजस्योक्तः कर्णेऽधस्य सदासु च ॥३२७  
 तथा चैकराफाना च सर्वेषामविशेषतः ।  
 प्रतिगृहीत गां शृङ्गे पुच्छे कृष्णाजिनं तथा ॥३२८  
 कर्णजाः पशवः सर्वे प्राद्याः पुच्छे विचक्षणैः ।  
 प्रतिग्रहं तथोष्ट्रस्य आरुह्यैव तु पादुके ॥३२९  
 ईपायां तु रथोऽश्वे वा छत्रं दण्डे विधारयेत् ।  
 द्रुमाणमथ सर्वेषां मूले न्यस्तकरो भवेत् ॥३३०  
 आयुधानि समादाय तथाऽऽमुष्मन् विभूषणम् ।  
 धर्मजस्तथा स्पृष्ट्वा प्रविश्य च तथा गृहम् ॥३३१  
 अवतीर्य तु सर्वाणि जलस्थानानि यानि तु ।  
 उपविश्य च शय्यायां स्पर्शयित्वा करेण वा ॥३३२  
 ५७

द्रव्याण्यन्यानि चादाय स्पृष्ट्वा वा ब्राह्मणः पठेत् ।  
 कन्यादाने तु न पठेत् द्रव्याणि तु पृथक् पृथक् ॥३३३  
 प्रतिग्रहाद्विजश्रेष्ठ तथैवान्तर्भवन्ति ते ।  
 द्रव्याणामथ सर्वेषां द्रव्यसंग्रयणाभरः ॥३३४  
 याचयेज्जन्मादाय ॐकारेण प्रतिग्रहम् ।  
 प्रतिग्रहस्य यो धर्म्यं न जानाति द्विजो विधिम् ।  
 स द्रव्यस्तेयसंयुक्तो नरकं प्रतिपद्यते ॥३३५

अथापि वक्ष्यामि विरोधिरोपान् घाजिप्रदाने च प्रतिग्रहे च ।  
 दातृ-प्रहीणोरपि येन पुण्यं स्वर्गाय जायेत शृणुष्वमेतत् ॥३३६  
 गृहीत योऽयं त्रिधिवद्विजेन्द्रा कुर्वांसौ पञ्चदिनानि पूर्वम् ।  
 पञ्चोपचारैरुत पिप्पुपूनां कूष्माण्डमन्त्रौर्घृत-दुग्धहोमम् ॥३३७  
 यद्ग्राम इत्यादि मरुत्तलयं सोङ्कारभूरादिभिरन्वितं च ।  
 प्रत्येकमष्टौ जुहुयाद्द्विजाग्यं सौर्येण मन्त्रेण च तद्वदष्टौ ॥३३८  
 पष्ठ्या प्रयुक्तं निरातं जुहोति कुर्याच्च गायत्रिजपं सहस्रम् ।  
 पश्चात्स गृह्णन् तुरगं द्विजाग्यस्तथा स्वमात्मानमजं नयेत् ॥३३९  
 दाताऽपि चतुद्वयतमाग्निद्व्याद्द्विजाग्यरत्नाक्तनपापशुष्यै ।  
 द्वायग्यम् सूर्यजनं लभेते सर्वत्र पूज्यौ द्विज वृन्दमध्ये ॥३४०  
 अश्वप्रतिग्रहविधिं च प्रतिग्रहं च जानाति योऽश्वस्य पुराणगाथा ।  
 स एव धन्यः स च पूजनीय इदं लोके द्विज-देवमान्य ॥३४१  
 विरोपपृथ्व्यप्रतिपादनाय त्रिधौ भद्रं द्विज यत्र यत्र ।  
 प्रागुत्तमेतत्पुनरुच्यते यत्तच्छ्रूयतामत्र हि कथ्यमानम् ॥३४२

श्रावणे शुक्लपक्षे तु द्वादश्यां प्रीयते हरिः ।  
 गोप्रदानेन विप्रेन्द्र वदन्त्येतन्मनीषिण ॥३४३  
 पौषे शुक्ले तथा वत्स द्वादश्यां पृतधेनुकाम् ।  
 पृतार्चः प्रीणनायालं प्रदद्यात्फलदायिनीम् ॥३४४  
 तथैव माघद्वादश्यां प्रदत्ता तिलगौर्द्विजाः ।  
 केशघ्नं प्रीणयत्याशु सर्वान् कामान् प्रयच्छति ॥ ३४५  
 ज्येष्ठे मासि सिते पक्षे द्वादश्यां जलधेनुकाम् ।  
 दत्ता विप्राय विधिना प्रीणयत्यम्बुशायिनम् ॥३४६  
 यत्र वा सत्र वा काले यद्वा तद्वा प्रदीयते ।  
 विशेषार्थमिदं प्रोक्तं नान्यत्काले निषेधनम् ॥३४७  
 विष्णुमुद्दिरय विप्रेभ्यो निःस्वेभ्यो यत्प्रदीयते ।  
 भवेत्तदक्षयं दानं मुत्तमत्वात्परैरिदम् ॥३४८  
 काले पात्रे तथा देशे धनं न्यायार्जितं तथा ।  
 यद्दत्तं ब्राह्मणश्रेष्ठे तदनन्तं प्रकीर्तितम् ३४९  
 चन्द्रे वा यदि वा सूर्ये दृष्टे राहौ महामहं ।  
 अक्षय्यं कथितं सर्वं तदप्यर्कं विशिष्यते ॥३५०  
 द्वादशीसु च शुक्लासु विशेषान् श्रावणेन च ।  
 यत्र यदीयते किञ्चित्तदनन्तं प्रजायते ॥३५१  
 विशेषाद्ध्युक्तेषु पक्षान्त्येषु च सर्वदा ।  
 तृतीयासु च मर्वासु शुक्लासु च विशेषतः ॥३५२  
 वैशाखे शुक्लपक्षे तु विशेषादपि मानवः ।  
 आपातो कार्तिकी चैव फाल्गुनी तु विशेषतः ॥३५३

तिष्ठत्यथैताः पौर्णमास्यो दाने विप्र महाफलाः ।

व्यतीपातेषु सर्वेषु समर्द्धेषु द्विजोत्तम ! ॥३५४

ग्रहसङ्क्रमकालेषु तीव्ररश्मेर्विशेषतः ।

तुला-मेघप्रवेशेषु योगेषु मिथुनस्य च ॥३५५

रश्मेर्माहाफलं दानं तेभ्योऽपि स्यान्महाफलम् ।

यदा भानु प्रविशति भरुं द्विजसत्तमाः ॥३५६

आषाढेऽध्वयुजे चैत्र पौषे चैत्रे तथैव च ।

द्वादशीप्रभृति प्रोक्तं पुण्यं दिनचतुष्टयम् ॥३५७

मिथुनं च तथा, कन्यां धनिनं मीनमेव च ।

प्रवेशो भास्करे पुण्यं कथितं द्विजसत्तमाः ।

षडशीतिमुखं नाम दाने दिनचतुष्टयम् ॥३५८

अच्छिन्ननाले यदसं पुत्रे जाते द्विजोत्तमाः ।

संस्कारे चैव पुरस्य तदक्षय्यं प्रकीर्तितम् ॥३५९

इष्ट्यश्च विविधाः प्रोक्तास्ताश्च कार्या यथोदिताः ।

सर्वा अपि हि सद्भिर्प्रेरिष्टधर्ममभोषुभिः ॥३६०

सत्पद्मनेविद्विजनाफलनिःसिद्धयैमुक्तानि क्रियन्ति विप्राः ।

दानानि वक्ष्याम्यथ पूर्त्तवर्गं स्याद्येन पुसां विहितेन पुण्यम् ॥३६१

ग्रहेश-हरि-सूर्याणां रुक्न्देमास्या-ऽध्विनो तथा ।

मातृर्णा च ग्रहार्णा च गृहाणि कारयेन्नरः ॥३६२

इष्टकादशकं वाऽपि यच्चाप्येयति विष्णवे ।

अनेन विधिना कुर्याद्विष्णुलोकमगन्तुयात् ॥३६३

एवं यः सर्वदेवानां मन्दिरं कारयेन्नरः ।  
 स याति वैष्णवं लोकं प्राप्यं योगशतैः कृतैः ॥३६४  
 समाचरति यो भग्न सुधाभिधवलं यदि ।  
 कुरुते देवहर्म्यं च विशिष्टैर्लप-चित्रकैः ॥३६५  
 सम्मार्जयति यश्चापि यतो यश्चानुलेपयेत् ।  
 प्रदीपं तत्र यो दद्यात्त याति विष्णुलोकताम् ॥३६६  
 पूजयेद्विधिना यस्तु पञ्चोपचारसंयुतः ।  
 स विष्णुलोकमभ्येति यावदाभूतसम्प्लवम् ॥३६७  
 यावन्त्यश्चेष्टकास्तत्र चिता देवस्य सदानि ।  
 तावन्त्यन्दसहस्राणि तत्कर्ता स्वर्गमाविशेत् ॥३६८  
 सन्निदस्य-तडागानि पुष्करिण्यश्च दीर्घिकाः ।  
 तथा कूपाश्च वाप्यश्च कर्तव्या गृहमेधिभिः ॥३६९  
 स्वातमात्रं प्रकतव्यमकाहिकमपि क्षितौ ।  
 यावत्पोतरा जलं गीस्तु तृषार्ता विदृषा भवेत् ॥३७०  
 पिबन्ति सर्वसत्त्वानि तृषार्तान्यम्भसामिह ।  
 वर्षाणि बिन्दुतुल्यानि तत्कर्ता दिवमायसेत् ॥३७१  
 उपकुर्वन्ति धावन्ति गण्डूपाणि क्रियासु च ।  
 कुर्वन्ति स्नान-शौचादि तयैवाचमनान्यपि ॥३७२  
 तावत्सहस्रानि वर्षाणि लक्षाणि दिवि मोदते ।  
 अपां स्रष्टा वसेत्स्वर्गे सेव्यमानोऽप्सरोगणैः ॥३७३  
 आरामाश्चापि कर्तव्याः शुभवृक्षैः सुशोभिताः ।  
 अश्वत्थोदुम्बर-प्लक्ष-चूत-राजाद-नीवरैः ॥३७४

जम्बू-निम्ब-कदम्बैश्च गजूरैर्नारिकेलैः ।

वज्रुलैश्चम्पकैर्हृद्यैः पाटला-श्लोक-त्रिधुकैः ॥३५५

द्रुमैर्नानाविधैरन्यैः फल-पुष्पोपयोगिमिः ।

जाती-जपादिपुष्पैस्तु शोभितारच समन्ततः ॥३५६

भलोपयोगिनः सर्वे तथा पुष्पोपयोगिनः ।

आरामेषु च कर्तव्याः पितृ-देवोपयोगदाः ॥३५७

शाथामुदाहरन्त्यत्र तद्विदः फलयोऽपरे ।

वृक्षरोपकलोकानां उक्ता या पुष्पवाटिकाः ॥३५८

अश्वत्थमेकं पिचुमन्दमेकं न्यग्रोधमेकं दशचिचिणीश्च ।

पद्मम्पकं तालशतत्रयं च पञ्चान्नवृक्षैर्नरकं न पश्येत् ॥३५९

वपिस्थ-त्रिल्वामलक्रीत्रयं च पञ्चामूत्रापी नरकं नयाति ॥३६०

यावन्ति स्यादन्ति फलानि वृक्षाल्मुद्बद्धिदग्धास्तनुभृद्वृक्षाद्याः ।

वर्षाणि तावन्ति घसन्ति नाके वृक्षैकयापान्निदशौघसे-याः ॥३६१

यावन्ति पुष्पाणि महीरूढाणां त्रिवौकसां मूर्ध्नि घरातले वा ।

पतन्ति तावन्ति च घत्सराणां कल्पानि वृक्षैर्देवमागृहन्ति ॥३६२

यत्कालपर्वदेमधुरैरजम्बुं शास्त्राच्युतैः स्यादुफलैर्नगाद्याः ।

सर्वाणि सत्वानि च तर्पयेयुस्तं श्राद्धदानेन च वृक्षनाथम् ॥३६३

उद्दिश्य पिण्ड्युं जगतामधीशं नारायणं यः मुहूर्तं करोति ।

आनन्त्यमप्नोति कृतं तु तस्मादनन्तरूपो भगवान्पुराण ॥३६४

दानानि सर्वाण्यभिधाय विद्वज्जिष्टं च पूर्वं गृहमेधिकर्म ।

कुर्वन्ति शान्तिं मनुजा शुभाय वक्ष्यामि तस्मादथ सर्वशान्तिम् ॥३६५

उक्तानि सर्वदानानि इष्टापूर्तञ्च सत्तमाः ।

अतः परं प्रवक्ष्यामि गणेशादिकशान्तयः ॥३८६॥

इति बृहत्पराशरीये धर्मशास्त्रे सुवतप्रोक्ताया स्मृत्या  
दानधर्मेषु पूर्तविनिर्णयो नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

अथैकादशोऽध्यायः ।

अथविनायकशान्तिविधिवर्णनम् ।

शान्तीनामथ सर्वासां महशान्तिः परा स्मृता ।

ग्रहेभ्योऽपि गणेशस्तु तस्य शान्तिरथोच्यते ॥१॥

यदि पुद्गलकर्माणि भवन्ति फलदानि हि ।

तदा धर्मोऽर्थ-कामास्तु संसिद्ध्येरन्तदा नृणाम् ॥२॥

तन्नृभिः क्रियमाणानां सर्वेषां कर्मणाममुम् ।

विघ्नार्थमस्तृजद्गद्गा शङ्करश्च विनायकम् ॥३॥

तेनोपहतपुसां कर्म स्यान्निष्फलं कृतम् ।

स्त्रीणामपि तथा सर्वं क्रियमाणं तु निष्फलम् ॥४॥

जलावगाहनं स्यन्ने क्रव्यादारोहणं तथा ।

खरोष्ट्र-म्लेच्छसंसर्गो मुण्ड-काषायवाससम् ॥५॥

पश्यन्त्यात्मनमेवेह सीदन्तं प्रतिवासरम् ।

यानि कुर्वन्ति कर्माणि तानि स्युः क्लेशदानि च ॥६॥

राजपुत्रो न राज्याप्त्या वराप्त्या न तु कन्यका ।  
 अन्तर्वद्री अपत्याप्त्या आचार्यत्वेन च द्विजः ॥९  
 अधीयानास्तु विशाप्त्या कृषिकृन् सस्यसम्पदा ।  
 वणिग्वर्तनलाभेन युज्यते निर्धनश्च सन् ॥८  
 तस्मात्तदुपशान्त्यर्थं समभ्यर्च्य गणेश्वरम् ।  
 स्नपनं कारयेत्तस्य विधिवत्पुण्यवासरे ॥६  
 चतुर्थां शुक्लपक्षे तु अयने चोत्तरे शुभे ।  
 पुण्याय सर्वसिद्ध्यर्थं कुर्याच्छान्तिं विनायकीम् ॥१०  
 स्वासनासीनं संस्थाप्य आरत्नार्पणचर्मणि ।  
 सितसर्पपङ्क्त्येन साज्येनाच्छादितस्य च ॥११  
 विलिप्तशिरमस्तस्य गन्धैः सर्वैस्तथोपधैः ।  
 अष्टौ वा चतुरो वापि शक्तिराच्यान् द्विजान् शुभान् ॥१२  
 एतद्वर्णैश्चतुर्भिश्च पुष्पैः कुम्भैश्च यज्जलम् ।  
 समानीतं निषेत्तत्र वक्ष्यमाणमृदस्तथा ॥१३  
 अश्वेभस्वान-वल्मीक-हृद-सङ्गममृत्तिकाः ।  
 रोचनां गुग्गुलुं गन्धान् तस्मिन्ममसि तान् क्षिपेत् ॥१४  
 एतद्वै पावनं स्नानं सहस्राक्षमृषिस्मृतम् ।  
 तेन त्वां शतशरेण पावमान्यः पुनन्त्यमुम् ॥१५  
 नवभिः पावमानीभिः कुम्भं तमभिमन्त्रयेत् ।  
 शक्रादिदशदिक्पाला ब्रह्मेश-केशवादयः ॥१६  
 आपस्ते घ्नन्तु दौर्भाग्यं शान्तिं ददतु सर्वदा ।  
 सुमित्रियान इत्याद्यैर्मन्त्रैरेकेऽभिषेचनम् ॥१७



वदन्ति वदतां श्रेष्ठा दौर्भाग्यस्योपशान्तये ।  
 समुद्रा गिरयो नद्यो मुनयश्च पतिव्रताः ॥१८  
 दौर्भाग्यं घ्नन्तु मे सर्वे शान्तिं यच्छन्तु सर्वदा ।  
 पाद-गुल्फोरु-जङ्घा-ऽऽन्त्र-नितम्बोदर-नाभिषु ॥१९  
 स्तनोर-बाहु-हस्ताग्र-ग्रीवा-र्मसाङ्गसन्धिषु ।  
 नासा-ललाट-कर्णभ्रू-पेशान्तेषु च यत् स्थितम् ॥२०  
 तदापो घ्नन्तु दौर्भाग्यं शान्तिं यच्छन्तु सर्वदा ।  
 स्नातस्य मस्तके दर्भान् साज्येन परिगृह्य च ॥२१  
 जुहुयात्सार्पधं तैलमौदुम्बरस्रुवेण तत् ।  
 मितश्च सन्मितश्चैव तथा सालफटकृदौ ॥२२  
 कूर्ममाण्डो राजपुत्रश्चेत्यन्तेस्वाहासमन्वितैः ।  
 नामभिश्च घालि दद्यान्मन्त्रैर्नमः स्वधान्वितैः ।  
 चतुष्पथं समाश्रित्य शूर्पे कृत्वा कुशास्तथा ॥२३  
 निधाय तेषु दर्भेषु शुक्राऽशुक्राश्च तण्डुलान् ।  
 ओदनं पललोपेतं पक्वमान्मत्स्यकानपि ॥२४  
 तथा मांसं च कुल्माषान् तथैव त्रिविधां मुराम् ।  
 पूरिकाण्डेरकापूपान्फलानि मूलकं चक्रः ॥२५  
 गणेशमातुः पार्वत्याः कुर्यादुपस्थितिं पुनः ।  
 दूर्वा-सर्पप-पुष्पैश्च पूज्यमर्चाञ्जलिं क्षिपेत् ॥२६  
 सौभाग्यमग्निदेहि देहि भगं रूपं यशोऽपि च ।  
 स्त्रियं पुत्राञ्च कामाञ्च तथा शौचं च देहि मे ॥२७

गणेशमातर्ह्ये चाले यत्किञ्चिन्मदभीप्सितम् ।  
 एकनाम्नैव तदेवि देहि गौरि ! वरान् वरान् ॥३८  
 ततस्तु वाससी शुक्ले परिधायाऽद्भुते शुभे ।  
 सितचन्दनलिताङ्गः सितस्रग्भूषणान्वितः ॥३९  
 तानन्याश्च द्विजान् सर्वान् भोजयेद्विविधाशनैः ।  
 वस्त्रयुग्मं गुरोर्दद्यात्तेषु तस्य वराशयः ॥४०

एतेन सम्पूज्य गणाधिनाथं विघ्नोपशान्त्यै जननीं तथास्य ।  
 स्मात्तौक्तसम्यग्बिघिना स कामान्प्रप्नोति चान्यान्मनसा यदिच्छेत् ॥३१  
 स्नात्वा विद्यायार्चनमभ्यिकायाः सम्पूज्य लोकान्सखिबन्धुमिश्रान् ।  
 आचार्यगृह्णान्वनिताः कुमारोः प्रष्टव्यविघ्नः श्रियमेति गुर्वीम् ॥३२  
 स्मृत्युक्तमन्त्रैर्विविधैर्युक्तैर्नित्यं शिनानन्दनपूजनं च ।  
 कृतान्तरायान्विनिहत्य सर्वान् कुर्यादथातो ग्रहयागमेनम् ॥३३

इति विनायकशान्तिविधिवर्णनम् ।

॥ अथ ग्रहशान्तिविधिवर्णनम् ॥

मुनीनां व्यासमुत्थानां शक्तिसूनुः पुरोऽब्रवीत् ।  
 शुभाय ग्रहपूजाया वदतस्तन्निबोधत ॥३४  
 यद्वर्णा यत्सुता विद्वन् जाता देशेषु येषु च ।  
 तेषां तदधिदैवत्यं समिधो दक्षिणा च या ॥३५  
 यस्य यत्र च दिग्भागे मण्डलं स्याद्विष्वक्तः ।  
 होमनर्मणि ये विप्रा या संख्या समिधामपि ॥३६

अग्निकुण्डप्रमाणं तु प्रमाणं समिधामपि ।  
 सर्वमेव यथोद्देशं वक्ष्यामि द्विजसत्तम ॥३७  
 रक्तः कश्यपजो भानुः शुक्रो ब्रह्मसुतः शशी ।  
 रक्तो रौद्रसुतो भौमः पीतः सोमसुतो बुधः ॥३८  
 पीतो ब्रह्मसुराचार्यः शुक्रो शुक्रो भृगुद्वहः ।  
 कृष्णः शनो रवेः पुत्रः कृष्णो राहुः प्रजापतिः ॥३९  
 कृष्णः केतुः कुरानूत्यः कृष्णः पापास्त्रयोऽप्यमी ।  
 कालिङ्गोक्तो यामुनः सोम आवन्त्यो भौम उच्यते ॥४०  
 मागवो बुध इत्युक्तः सैन्धवस्तु बृहस्पतिः ।  
 सैन्धवो दानवाचार्यः सौरिः सौराष्ट्रदेशजः ॥४१  
 राहुः सिंहलदेशोत्थो मध्यदेशमवोमिजः ।  
 जन्मदेशा इमे प्रोक्ता महजातकोत्तुभिः ॥४२  
 शम्भुं रविमुमो चन्द्रं स्कन्दं भौमं हरिं बुधम् ।  
 मल्लानं च गुहं विद्यात्पद्मं शुक्रं यमं शनिम् ॥४३  
 कालं राहुं विग्रगुप्तं केतुमित्यभिदैयतम् ।  
 एतद्विज्ञाय यः कुर्यात्तत्सर्वं सफलं भवेत् ॥४४  
 अर्कस्त्यर्काय होतव्यः सर्वव्याधिविनाशनः ।  
 सुषारावे च सोमाय पलाशः सार्वकामिकः ॥४५  
 खदिरश्चार्थलाभाय मङ्गलाय विवेकेभिः ।  
 स्वरूपकृद् रामागो होतव्यश्च बुधाय वै ॥४६  
 प्रभाप्रदस्तथाश्वत्यो होतव्योऽमरमन्त्रिणे ।  
 ऊर्जासौभाग्यकृद्दूर्वा दैत्याभात्याय सद्द्विजैः ॥४७

शमी पापोपशान्त्यर्थं होतव्या मन्दगामिने ।  
 दीर्घायुर्धर्मकृद्दूर्वा होतव्या राहवे द्विज ॥४८  
 धर्मविद्यार्थं दूर्धर्मः सद्धिप्रैर्वन्धिसूनवे ।  
 दधिक्षीराऽऽज्यसंमिश्राः समिधः शुभमृद्धये ॥४९  
 प्रादेशमात्रकाः सर्वा अष्टावष्टोत्तरं शतम् ।  
 अष्टाविंशतिरेकैकं संख्यैषा प्रतिद्वैतम् ॥५०  
 वृद्धौ तु फलभूयस्त्वमुक्तादन्यत्तु राक्षसम् ।  
 नवभयनकं लेख्यं चतुरस्रं तु मण्डलम् ॥५१  
 प्रदास्तत्र प्रतिष्ठाप्या वक्ष्यमाणक्रमेण तु ।  
 मध्ये तु भास्करः स्थाप्यः पूर्वदक्षिणतः शशी ॥५२  
 दक्षिणेन धरातुनुपुधः पूर्वोत्तरेण तु ।  
 उत्तरस्यो मुराचार्यः पूर्वस्यो भृगुनन्दनः ॥५३  
 पश्चिमास्यो शनिः पुर्याद्राहुर्दक्षिणपश्चिमे ।  
 पश्चिमोत्तरतः केतुरिति स्थाप्या ग्रहाः क्रमात् ॥५४  
 षटे वा मण्डले लेख्या ईशान्यां दिशि पावकात् ।  
 साम्रोऽर्कं स्फाटिकधन्वो रक्तचन्दनफोऽपरम् ॥५५  
 सोमगन्तु-मुराचार्यो रणशोभौ प्रकीर्तितौ ।  
 राजतो भृगुपुत्रश्च कार्णभ्र स शनैश्च ॥५६  
 राहुश्च सैमरुः कार्यः कार्यः केतुश्च वात्यजः ।  
 सप्तानेतन्मयान्वृत्त्या समभ्यर्च्य मदा गृहे ॥५७  
 लेख्येद्वर्णकः स्वः स्पर्शविधियत्पिष्टेन वा ॥  
 मद्राणां साधिदैवानां प्रतिष्ठापनमन्त्रकान् ॥५८

चदन्ति मन्त्रत्वार्थवेदिनो द्विजसत्तमाः ।  
 आदित्यं गर्भमित्युक्तमग्निं दूतमनेन च ॥५६  
 एताभ्यां स्थापयेदकं त्र्यम्बकमिति च शङ्करम् ।  
 अप्स्यन्तरोति शीताञ्जुं श्रीश्च ते इति पार्वतोम् ॥६०  
 स्योनापृथिवीति भौमं च यदक्रंदेति वा गुहम् ।  
 इदं विष्णुर्विधिं स्थाप्य तद्विष्णोरिति वै हरिम् ॥६१  
 इन्द्र आसां सुराचार्यं मातृहन्निनि वेधसम् ।  
 इन्द्रं दैवीभृत् गोसूनुं सजोपेत्यमराधिपम् ॥६२  
 शन्नो देवी रयेः सूनुं यमाय त्वा तथा यमम् ।  
 आयं गौरीति राहुश्च कालं कार्ष्णीत्सोति च ॥६३  
 ब्रह्मयज्ञेति वेतुं च चित्रं चित्रायसोरिति ।  
 भूयुरेतानि मंत्राणि मूलमन्त्रस्तथापरे ॥६४  
 आकृष्णेन च तीव्रांशोरिमन्देवा निशाकरम् ।  
 अग्निर्मूर्धेति भूसूनोर्द्विबुध्वं बुधस्य च ॥६५  
 बृहस्पतेरिति गुरोरज्ञात्परिश्रुतो भृगोः ।  
 शन्नो देवी शनैर्गन्तुः काण्डात्काण्डात्परस्य च ॥६६  
 फेत्तुं कृष्णभ्रमिसूनोरिति मन्त्राः प्रणीर्तिताः ।  
 वेदमन्त्रैर्विना कश्चिद्विधिर्नास्ति द्विजन्मनाम् ।  
 कर्तव्याः स्वस्वमन्त्रैश्च स्त्रैः स्वैश्च प्रतिदैवतम् ॥६७  
 संपृता सयवाश्चापि होतव्याश्च द्विजैर्मित्राः ।  
 मध्यमानामिकामूललम्बाद्गुप्तचतस्रभिः ॥६८

यावन्तोऽङ्गुलिभिर्माहास्तिलास्ताद्विराहुतिम् ।  
 हस्तमात्रं पृथग्स्थेन वेधोऽपि तावत्तैव तु ॥६६  
 बाहुमात्रं षट्स्थेके एके चाऽरत्निमात्रकम् ।  
 चतुरस्रं स्तनेत्कुण्डं एकयोनिसमन्वितम् ॥७०  
 शुभमेखलया युक्तं मुरान्तिरुत्तमम् ।  
 होमार्थं मण्डपं कुर्याद्यतुर्द्वारं सत्तोरणम् ॥७१  
 चतुर्दिक्षु ध्वजाः कार्या नानावर्णाः शुभावह्वहाः ।  
 तथा तत्रोदपुष्पाभ दूर्वा-पल्लवसंयुताः ॥७२  
 पुनर्नवीकृतं सप्त मण्डपाभाव आश्रयेत् ।  
 पट्कर्मनिरताः शान्ता ये न दग्धाः प्रतिप्रदौ ॥७३  
 नियोज्यास्तेऽमिकायांदौ स्फुरन्मंत्रा द्विजोत्तमाः ।  
 प्रतिप्रहसिदग्धस्य जप-होमादि मुख्यतः ॥७४  
 यस्य मन्त्राण्यवीर्वाणि तत्कृतं कर्म निष्फलम् ।  
 ओदनं सगुडं भानोः पायसं शशिनस्तथा ॥७५  
 हविष्यं भूमिपुत्रस्य क्षीराजं च क्षुधस्य च ।  
 पशित्रयं मत्तपुत्रस्य दध्ना तु भार्गवस्य च ।  
 पूगं द्रविः शनैर्गन्तुमांसं राटोः शृताशृतम् ॥७६  
 चित्राग्रमग्निसूत्रोऽथ भोजयानामभिरास्यजाः ।  
 श्वनटोमस्तथाऽन्येऽपि ये मदपृष्ठा द्विजोत्तमाः ॥७७  
 यथावर्णानि घामामि देयानि शुमुमानि च ।  
 देया गन्धाश्च सर्वेषां देयो धूपश्च गुग्गुलः ७८

धेनु शङ्खो वृषा ह्यणं वासांस्यथ सिता च गौ ।  
 अथिर-छागल-श्चैत्र ब्रमरो दक्षिणा स्मृता ॥५६  
 प्रत्यह प्रतिमास च प्रत्यह यत्र विधानत ।  
 वर्णिभिश्च ग्रहा पूज्या राजभिश्च सदैव हि ॥५७  
 दु रितो यस्नु यस्य स्यात्पूज्यस्तस्य स यत्रत ।  
 वधसैते नियुक्ता प्राक् स्वभक्त पूजयिष्यथ ॥५८  
 यत्र यच्छन्ति सह्यं त्रिप्रा वह्निं पास्तथा ।  
 असन्तुष्टा दहन्त्येते तस्मात्तानर्चयेत्सदा ॥५९  
 ग्रहाधीनमिदं सर्वमुत्पत्ति प्रलयात्मकम् ।  
 जगत्प्रभाव-भात्रौ च तस्मात्पूज्यतमा ग्रहा ॥६०  
 सानुकूलैर्मर्दयानि कुर्यात्कामाणि मानव ।  
 सफलानि भवन्त्यस्य निष्फलानि स्युरन्यथा ॥६१

कुर्वन्ति चैतद्विधिना ग्रहाणामातिथ्यमन्त्र प्रतिवासर ये ।  
 आरोग्यदेहा धन धान्ययुक्ता दीपायुष स्त्रीसहिता भवन्ति ॥६२

इति ग्रहशान्तिविधिवर्णनम् ।

॥ अथ गृह-काक तिर्यग् यमल शान्तिवर्णनम् ॥

यसत्तरकस्मात्सदनेष्वतोऽद्भुत वयोविशेषयुग्मदरण्यवासिन ।  
 विशेषतो गृध्र कपोत पिच्छलास्तथैव चोलूकसकाक वायसा ॥६३  
 तरलु गोमायु मृगारि शृङ्गका दिवाप्यवस्मादकुतोऽपि निर्मया ।  
 विशन्ति यत्ते तदतीव चाद्भुत गृहे पुरे शान्तिकमेव सिद्धये ॥६४

अथाहुतानि जायन्ते घर्णानां गृहमेधिनाम् ।  
 नानाविधानि तेषां तु प्रशान्त्यै शान्तिरुच्यते ॥८८  
 यस्याहुतानि जायन्ते मृत्यु तस्य वदेद्द्विजः ।  
 धन-धान्यक्षयं चापि भार्या-पुत्रक्षयं तथा ॥८९  
 भयं वा जायते शत्रो राक्षो वा जायते भयम् ।  
 शान्तितत्तत्र विधातव्या यथोक्ता मुनिपुङ्गवै ॥९०  
 यदि गोधूमशाखायां ययशाखोपजायते ।  
 यवे गोधूमशाखा स्याद्देवं सर्वाशनेषु च ॥९१  
 सर्पपे तिलशाखा चेत्तिलशाखामु सर्पपम् ।  
 मापे मुद्गरस्तु मुद्गरेस्यादसृग्बटिर्भवेद्यदि ॥९२  
 अम्भः प्रपूर्णेकुम्भेषु षडलदप्रिमयेक्षते ।  
 षड्वर्तनं च पूषानां मत्तो वा मधुजालकम् ॥९३  
 विधियद्वायुलिङ्गञ्च निर्वाप्य पयसां धनम् ।  
 मदायाताय मनसं हृदयं तु प्रशाम्यतु ॥९४  
 त्रि पथ-भग्न वा हुत्वा सर्वत्र स्त्रत्र तुल्यता ।  
 त्रियो गावो भद्रिप्यो वा मुक्तौ यस्तौ पण्डवौ ।  
 द्वौ द्वौ यत्र प्रजायेते शान्तितत्तत्र विधीयते ॥९५  
 वृषयद्रोद्वयं नर्देन् वदवाऽथ वदवाहेन ।  
 अन्तरौ प्रसूते ऽदि प्रमेदः प्रतिमामु च ॥९६  
 मृग-वटहादीनामगुनोऽपि व्रनिर्चदि ।  
 गृह पात्र-वपोताणां त्रिरोयुर्यदि वा गृहे ॥९७



यद्यपि तेन निर्वाप्य विधिवद्वारुणं चरुम् ।

मन्त्रैर्वरुणदेवत्यैर्जुहुयाद्वरुणाय तम् ॥६८

महारुणदेवाय जलानां पतये तथा ।

अन्यैर्वरुणदेवत्यैर्मन्त्रैश्च जुहुयाच्चरुम् ॥६९

जुहुयादाहुतीस्तिष्ठो मन्त्रैश्च घरुणाय तम् ।

अग्नस्य तुल्यता कृ ता स्याद्वाहन्तैर्वरुणदैरते ॥१००

इन्द्रचापेक्षण राज्ञौ शस्त्र-ञ्जलनं तथा ।

गजा-ऽश्वशफत्रस्त्रान्तर्जलनं च प्रतिक्षणम् ॥१०१

स्थूणाप्ररोहणं यत्स्याद्वाण्डस्थान्नप्ररोहणम् ।

विद्युन्निर्घातवज्राणां पतनं वा भवेत्पदि ॥१०२

मृदाकुं काकससगं विपरीतप्रदर्शनम् ।

शुभाय चरुगर्भेयो निर्वाप्यो विधिवद्विजैः ॥१०३

अग्नये त्वग्निराजाय महावैश्वानराय च ।

हृदये मम यश्चेत्तत्तत्सर्वं च चदेद्दुधः ॥१०४

महशान्तिश्च सर्वत्र शनै पूना विशेषतः ।

दक्षिणा सवृषा गोस्तु यक्षयुग्मं द्विजातये ।

प्रदद्याद्दोषशान्त्यर्थं सर्वोत्पातेषु वै द्विज ॥१०५

एतेषु चान्येष्वपि चाद्भुतेषु जातेषु सावित्रजपं सहस्रम् ।

होमं विदध्यादपि विष्णुमन्त्रे ब्रह्मेशमन्त्रैरपि वा द्विजोत्तम ॥१०६

इति—अद्भुतशान्तिवर्णनम् ।

॥ अथ रुद्रपूजाविधिवर्णनम् ॥

अभिधास्येऽथ रुद्राणां शान्तिर्या गृहभेदिनाम् ।

पश्चाद्गाना विधानं तु यत्कृतं हन्ति पातकम् ॥१०७

ब्राह्मणो विधिवत्प्रात्वा सर्वोपद्रवनाशनम् ।

कुर्याद्विधानं रुद्राणां यजुर्विधाननिर्मितम् ॥१०८

इषेत्वादिषु मन्त्रेषु खं ब्रह्माक्षेपु ध्या त्रिया ।

दशप्रणयुक्तेषु भूर्भुवःस्वरितोति च ॥१०९

आपं छन्दश्च दैवत्यं न्यासं च यिनियोगतः ।

पराशरोदितं बह्व्ये शेषं मुनिविभाषितम् ॥ ११०

मनो ज्योतिरपोऽप्यग्निर्मूर्धानं चैव मर्माणि ।

मानसलोके इतिष्ठेत्तत्प्रथमं पञ्चकं स्मरेत् ॥१११

याते रुद्रेति चूडायां शिरोऽस्मिन्महत्पर्यये ।

असद्व्याताः सद्ग्राणि ललाटे विन्यसेद्द्विजः ॥११२

पशुपोविन्यसेद्द्वे तु इयम्यकं तु यजामहे ।

मानसतोरु इति ह्येतन्नासिकायां न्यसेद्भुधः ११३

अथतत्पथनुर्बन्धये नीलप्रीयाय वा गले ।

नमस्ते आयुधं तपेत स्मरेन्मन्त्रं प्रकोष्ठके ॥११४

विन्यसेद्गर्भुमन्त्रोऽयं ये सीर्यानीति दम्तयोः ।

नमोऽनु विकिरेभ्यो वै हृदये मलनाशनम् ॥११५

नान्यां विद्वानन्यसेन्मन्त्रं नमो हिरण्यवाहये ।

गुप्ते भन्त्रान्नु संमर्य इमा रुद्राय इत्यपि ॥११६

मानोमहान्त इत्यूर्वोः एष ते रुद्र जानुनोः ।  
 अथ रुद्रमिति ह्येतज्जह्वयोर्मन्त्रमुच्यते ॥११७  
 सव्यं च पादयोन्यस्य वामं न्यस्योरुमध्यतः ।  
 अधोरं हृदि विन्यस्य मुने तत्पुरुषं न्यसेत् ।  
 ईशानं मुर्ध्नि विन्यस्य हंसं नाम सदाशिवम् ।  
 हंसहंसेति यो मूयात् हंसोनाम सदाशिवः ।  
 एषं न्यासविधिं कृत्वा ततः सङ्घुट्माचरेत् ।  
 कवचं मध्ययोचद्वै तदुपरि बिल्मिनेत्यपि ।  
 नेत्रं तु नीलप्रीधाय प्रमुञ्च धन्वतोऽस्त्रकम् ॥११८  
 य एतावन्त एतेन विश्वं पुर्विकप्रबंधनम् ।  
 ॐ मोमिति नमस्कारं ततो भगवते पुनः ॥११९  
 रुद्रायेति विधानज्ञो दशाक्षरं ततो न्यसेत् ।  
 प्रणवं विन्यसेन् मूर्ध्नि नकारं नासिकान्तरे ॥१२०  
 मौकारं तु हलादे तु मकारं मुण्डमध्यतः ।  
 गकारं कण्ठदेशे तु यकारं हृदये न्यसेत् ॥१२१  
 तेकारं दक्षिणे हस्ते रुकारं वामतो न्यसेत् ।  
 द्राकारं नाभिदेशे तु यकारं पादयोन्यसेत् ॥१२२  
 त्रात्तारमित्रं त्वन्नोऽग्ने मुगपन्थामिति ह्यपि ।  
 तत्त्रायामि वदेहाने नियुद्धिरित्यपीरयेत् ॥१२३  
 वयं सोमं तमीशानमस्मे रुद्रा इति स्मरेत् ।  
 स्योना पृथिवीतिना ह्येतन् द्विजः कुर्वीत सङ्घुटम् ॥१२४

सुत्रामादि दिशां पालान्प्राच्यादिषु स्मरेदथ ।  
 रौद्रीकरणमेतद्वै कृत्वा पापैः प्रमुच्यते ॥१२५  
 यक्ष-रक्षः-पिशाचाद्याः प्रेत-भूत-महादिकाः ।  
 दुष्टदैवत्य-शाकिन्यो रैवत्यो वृद्धकाश्च याः ॥१२६  
 सिंह-व्याघ्रादयोऽऽरण्या ये दुष्टश्चापश द्विजाः ।  
 स्लेष्ठा घन्धक-चोराद्या यमदूता वृकादयः ॥१२७  
 रौद्रभूतमिमं सर्वे द्विजं पश्यन्ति बलियत् ।  
 दैदीप्यमानमर्चिर्भिदुष्टदिग्गन्धकारकम् ॥१२८  
 दह्यमाना दयोयांस सप्तधामसु धामभिः ।  
 प्रगश्यन्ति हि ये दुष्टा द्विजास्ते रुद्ररूपिणः ॥१२९  
 पथास्य सौम्यमात्मानं सर्वाभरणभूषितम् ।  
 मृगलाञ्छनमूर्धानं शुद्धस्फटिकसन्निभम् ॥१३०  
 फणासहस्ररिष्कूर्मदुरगेन्द्रोपवीतितम् ।  
 सप्तापिबञ्ज्यलम्बालं जटाजूटकिरीटिनम् ॥१३१  
 सहस्रकरयद्भ्राजन् रज्ज्वाद्वाह्निभूषितम् ।  
 मत्स्याण्डाग्रण्टकशरारं नृरूपालरुधारिणम् ॥१३२  
 दैदीप्यमानं चन्द्रार्कज्ज्वलदग्नित्रिनेत्रिणम् ।  
 मैलोपयशुतिट्टद्वासरत्नन्धकापालमालिनम् ॥१३३  
 दीप्तनक्षत्रमालायदभ्रमालाधरं द्विजः ।  
 नि शेषशरिण्यपूण यमण्डलुचरं त्यजम् ॥१३४  
 जगद्वाधिर्यहन्नाहं दण्ड-हमदगारिणम् ।  
 येनूरवदनागेन्द्रमूर्द्धमणिरिराजितम् ॥१३५

मेखलार्ककिणीमालायुक्तारावविराजितम् ।  
 घर्घराद्यक्तनिर्गच्छद्रुम्भीरारावनूपुरम् ॥१३६  
 सहेमपट्टनीलाभव्याघ्रचर्मोत्तरीयकम् ।  
 विद्युत्प्रभासद्वा घृतमूर्द्धं सुरार्चितम् ॥१३७  
 समस्तभुशनाभारधरणोक्षासनस्थितम् ।  
 त्रैलोक्ययनितामौलिनतदेहाङ्गपार्वतिम् ॥१३८  
 लक्षसूर्यप्रभाभाद्यत्रैलोक्यकृतपाण्डुरम् ।  
 अमृतप्लुतद्विप्राङ्गं दिव्यभोगसमाकुलम् ॥१३९  
 दिग्दैवतैः समायुक्तं सुरागुरनमल्लतम् ।  
 नित्यं शाश्वतमव्यक्तं व्यापिनं नन्दिनं ध्रुवम् ॥१४०  
 द्विजो भ्यात्त्रैवमात्मानं सम्यक् रुद्रस्वरूपिणम् ।  
 सम्प्रप्यस्तान्तरायः सन् ततो यजनमारभेत् ॥१४१  
 अनुलिप्ते सुलिप्ते च देशे गोचमेमात्रके ।  
 स्थण्डिलेऽन्वुजमालिख्य मन्त्रैः प्रक्षाल्य तत्पुनः ॥१४२  
 तत्र पूजा प्रकर्तव्या नमश्च शम्भवाय च ।  
 मानो महान्तमिति च सिद्धमन्त्रं श्मरेद्वयुधः ॥१४३  
 स्वललाटे पुनर्भ्ययित्तेजोरूपं शिवं द्विजः ।  
 दशाक्षरेण मन्त्रेण दद्यात्पाद्यादिकं पुनः ॥१४४  
 न्यासमन्त्रैश्च सोद्धारैर्मानस्तोक इतीत्यपि ।  
 शम्भवायेति मन्त्रेण दद्याद्दधोदकादिकम् ॥१४५  
 पुष्प-धूप-प्रदीपादि यथालाभं निवेशकम् ।  
 दशाक्षरेण तेनैव नमः कुर्यात्पुनर्द्विजः ॥१४६

शिखा तस्य तु रुद्रस्योत्तरनारायणं द्विजः ।  
 शिरः पुष्पमूकं च शिवसङ्कल्पकं च हन् ॥१४७  
 कवचं चाप्रतिरथं नेत्रं विघ्नाद् धृदत्पिबन् ।  
 शतश्लोकमन्त्रेण देवस्यास्त्रं प्रवहयेत् ॥१४८  
 पञ्चाङ्गानि स्मरेदष्टप्रणवं च जपेद्द्विजः ।  
 उद्धृत्य प्रणवेनेशं विकिरिद्धे विसर्जयेत् ॥१४९  
 रुद्ररूपो द्विजो यश्च यदुयात्तद्धि सिध्यति ।  
 अक्षतान्वा तिलान्वापि यवान्वा समिधोऽपिवा ॥१५०  
 शम्भवायेति जुहुयात्सर्वांस्तानाज्यसितरान् ।  
 पञ्चपञ्चाथ पद् पद् वा अष्टावष्टौ तथापि वा ॥१५१  
 दशदशैवापश वा जुहुयात्साधको द्विजः ।  
 द्विज रघदारसंनुष्टु शुचि स्नातो यतेन्द्रिय ॥१५२  
 जप-तर्पण-होमादौ रतो यो यत्सरं जपेत् ।  
 दशानामभ्येधानां फलं प्राप्नोति वै द्विजः ॥१५३  
 सौवर्णग्रथिवीदानपुण्यभाक् जायते नरः ।  
 महापापोपपापैश्च मुक्तो रद्रत्यमृजति ॥१५४  
 ण्वादरागुणान् रुद्रानामृत्य याति रद्रताम् ।  
 रुद्रजापी शुचि पुण्यः पाह्नंय श्राद्धभुजः ॥१५५  
 पूजानां शनं सैनं ताडयेद्रुद्रजायकम् ।  
 एतौ योगिन सर्वे क्षातिभि सह सद्रवतैः ॥१५६  
 एतौ रुद्रजापी तु मान्य सर्वेऽस्तु देवतैः ।  
 पात्रमय परित्रं तु नाधिर्न रुद्रजापिनः ॥१५७

तस्मै दत्तं च तद्भुक्तं सदाऽनश्याय बल्यते ।  
वेदाङ्गवेदिनामतः शिवभक्तः सदाधिकः ॥१५८

इति रुद्रपूजाविधिवर्णनम् ।

॥ अथ रुद्रशान्तिविधिवर्णनम् ॥

अथातः सिद्धिकामः सन्कन्दमूलफलाशनः ।  
गोमूत्रयावक्क्षीरद्विशाकाऽऽज्यभोजनः ॥१५९  
हविष्यभोजनो वाऽसौ विप्रो योत्पन्नभोजनः ।  
जपहोमादि कुर्वाणो यथोक्तफलाभाग्भवेत् ॥१६०  
शिरसा सह रुद्राणां जप्तैर्दशशतैर्ध्रुवम् ।  
सर्वे मन्त्रा भवन्त्यस्य ब्राह्मणस्योक्तकारिणः ॥१६१  
सिद्धा मन्त्रा द्विजेन्द्रस्य चिन्तितार्थफलप्रदाः ।  
रुद्रस्यैवास्य सर्वे ते भवन्तोश्चरन्तोदिताः ॥१६२  
एकादश शुभान्कुम्भान् आहृत्य विधिसम्मितान् ।  
सहिष्यान्सवस्त्राश्च फलपुष्पोपशोभितान् ॥१६३  
गन्धोदकाऽऽतैर्युक्तान् पूजयेद्भुद्रभक्तिकृन् ।  
अथैकादशरुद्रैश्च एकैकमभिमन्त्रयेत् ।  
एवं संपूज्य तान्कुम्भान् नमस्कृत्याभिमन्त्र्य च ।  
पूजयेद्भक्तितो रुद्रानेकादश महागुणान् ॥१६४  
एकादशाहमात्मानमन्यं वा हित काम्यया ।  
विनायकोपसृष्टं च स्नायात्कारुण्यदाहतम् ॥१६५

घृतदत्ता काकबन्ध्यां स्नापयेत् तथाऽऽतुराम् ।  
 जपेदेतत्सकृद्विप्रः सर्वदोषैर्विमुच्यते ॥१६६  
 अनङ्गाहं च वस्त्रं च दग्धाद्वेनुं च दक्षिणाम् ।  
 भोजयेद्विदुषो विप्रान्समाप्तौ कर्मणो द्विजः ॥१६७  
 भक्षयेत्काशशस्त्राद्यैर्दधाशक्त्या समचयेत् ।  
 अथ वा चरुभिक्षाशो शिरोरुद्रसहस्रकम् ॥१६८  
 जपेद्गोष्ठे तथारण्ये सिद्धेश्वरे शिवालये ।  
 अग्न्यागारे समुद्रे च नदी-निर्मल-पर्वते ॥१६९  
 जपेदन्यत्र वा विद्वान् शुचौ देशे मनोरमे ।  
 धीरो दृढप्रतो मौनी त्यक्तक्रोधो यतेन्द्रियः ॥१७०  
 धौतवासास्त्वथ शायी रुद्रलोके महीयते ।  
 नमो गणेश्य इत्यस्य मन्त्रस्य ब्राह्मणोऽयुतम् ॥१७१  
 जातया च ध्रौफलैर्दुत्वा सबकार्येषु निद्विभाद् ।  
 नमोऽस्तु नीलग्रीवायेश्वेतन्मंत्रेण सप्रधा ॥  
 आयत्प्रीदस्मामाऽय विप संश्रवणे क्षिपेत् ।  
 विषेण कुञ्चते सद्यः कालदष्टोऽपि जीयति ॥१७२  
 विषम्याभिभवो न म्यान्नरस्य तस्य कर्हिचित् ।  
 प्रदप्रलं ज्वरप्रमं रक्ष. शाफिनिदूषितम् ॥१७३  
 मद्यराशनम्रमं च अन्यदोषोपगृहीतम् ।  
 प्रमुञ्च धन्यत इति भस्मना सर्वदेवता ॥१७४  
 शाह्येन्मुञ्च मुञ्चेति शीघ्रमेव विमुञ्चति ।  
 नमः शम्भवे इत्यस्य मन्त्रस्य चायुतं द्विजः ॥१७५



जप्त्वा स्वादिरसमिधो हुत्वा विप्रं सहस्रकम् ।  
तीक्ष्णैर्तैललुप्तं सम्यङ्मन्त्रान्ते चामुकं हन ॥१७६  
फट्फट्कारेण जुहुयात्क्षयो रोगश्चिराद्भवेत् ।  
जलमध्ये शतावर्तस्सद्यो वृष्टिर्निगद्यते ॥१७७  
नाभिमात्रे जले विप्रः प्रविश्य जुहुयाज्जलम् ।  
कुर्यादेकार्णां धात्रीं मन्त्रमाहारम्यतो भृशम् ॥१७८  
नमः शब्द इत्यमुना मन्त्रेण तु सहस्रकम् ।  
लवणं मध्वाहुतीनां तु राजा शीघ्रं वरी भवेत् ॥१७९  
द्विगुणां पञ्चाशसमिधं महावाणी प्रजायते ।  
त्रिगुणां नवपद्मानां पाताले सिध्यति ध्रुवम् ॥१८०  
चतुर्णेन मन्त्रेण वरदा श्री प्रवर्तते ।  
समुद्रगान्दीकूटे पुलिने वा पवित्रके ॥१८१  
खड्गोपरि श्रृङ्गशान्ता हुत्वा त्रिंशत् शतानि च ।  
खड्गविद्याधरो विप्रः शिवाज्ञातः प्रजायते ॥१८२  
अणिमाष्टगुणं हुत्वा जपेन्मन्त्रसहस्रकम् ।  
अणिमादिकसिद्धौ नापतिरेव भेदद्विजः ॥१८३  
छन्दोदैवतमार्पयमथात्त शतहस्त्रिये ।  
ज्ञानेन वर्मसम्यक्त्वं द्विजानां येन जायते ॥१८४  
आगानुवाके रुद्राणामाद्यायां च ऋचि द्विजः ।  
छन्दो गायत्रमन्यासु अनुष्टुप् तिसृषु स्मृतम् ॥१८५  
पङ्क्तिस्तिसृषु चित्रेया अनुष्टुप् सप्तसु स्मृतम् ।  
द्वयोश्च जगती विप्रा उत्तमाद्यानुवाकयोः ॥१८६

अद्यानुष्ठाके प्रथमा बृहती जगती तथा ।  
 अनुष्टुप् च एतीयाया द्वयोस्त्रिष्टुप् स्मृता द्विज ॥१८७  
 अपरासु तथानुष्टुप् अनुवाकद्वयं स्मृतम् ।  
 रुद्रः सर्वासु दैवतं विनियोगो यथोचितः ॥१८८  
 यज्ञभितादिपट्के च शिवसंवलमात्रकम् ।  
 रुद्रसु देवता षट्सु विनियोगो जपादिषु ॥१८९  
 सहस्रशोषा इत्यादि द्विगुणाष्टसु देवता ।  
 पुष्पो यो जगद्बीजमृषिर्नारायणः स्मृतः ॥१९०  
 छन्दः सर्वासु वाऽनुष्टुप् विनियोगो जपादिषु ।  
 अद्वयः सम्भूत इत्यादौ उत्तरनारायणस्तृयिः ॥१९१  
 आशु शिरान इत्यादिरप्रतिरथ उच्यते ।  
 पूर्वांशुवाक्ये दैवतं त्रिष्टुभ् छन्दं प्रकीर्तितम् ॥१९२  
 एतन्नाम्ना मुनिस्तत्र देवता अमरेभरः ।  
 आशु शिरान इत्यादिरप्रतिरथ उच्यते ।  
 त्रिष्टुभ् छन्दो जपादौ च विनियोगो यथोचितम् ॥१९३  
 इयम्यकमिति चैवात्र यमिष्ठस्थापंमुच्यते ।  
 दैवत्योमाषतिर्यत्र छन्दस्त्रिष्टुभ् प्रकीर्तित ॥१९४  
 त्रिभ्राट् धृष्ट इत्यादौ मूयो दैवतमुच्यते ।  
 एतन्मन्त्रिन्य मरुतं द्विजायो रुद्रजायमृत् ॥१९५  
 यद्यदारमते सत्तयधोगकन्दं भवेत् ।  
 वेदाध्यायस्य द्वागुगं श्रद्धया इविणस्य च ॥१९६

प्रजानामायुष कीर्तेर्भूयस्त्वं रुद्रजापिन ।  
 इमं मन्त्रं पवित्रं च रहस्यं पापनाशनम् ॥१६७  
 रुद्रत्रिधिं विधिश्रेष्ठं कुर्याद्विप्र शिवेरित ।  
 शैवागमनिशेषज्ञो वेद-वेदाङ्गपारग ॥१६८

कुर्याद्यदेवं विधिरद्विधानं शम्भोरजस्रं प्रथितं द्विजेन्द्रा ।  
 प्राप्नोति लोकं स शिवस्य साक्षाद्नापि सस्थाच्छिवस्य सुपूज्यः ॥१६९  
 मन्त्राणि सत्रांगि च सद्द्विजस्य निर्दशकर्तृणि भवन्ति तस्य ।  
 य. साधयेत्प्रोक्तविधानविज्ञो मन्त्राभिपूज्यः स तु शम्भुः स्यात् ॥२००  
 मन्त्रं त्रिनेत्रं जुहुयात् हुताशे यो बिल्वपत्रैर्धृत-दुग्धमिश्रैः ।  
 निहत्य मृत्युं श्रियमेति धात्र्या प्राप्नोति पञ्चच्छिवलोकमेव ॥२०१

पञ्चभागश्च पट्जात पञ्चैत्रं पञ्चवारुणम् ।  
 पट्जार्तिं च जपित्वा तु सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥२०२

इति रुद्रशान्तिविधिवर्णनम् ।

॥ अथ तडागादि प्रतिष्ठाविधिवर्णनम् ॥

अथात सम्प्रवक्ष्यामि तडागादिविधिं शुभम् ।  
 कृतेन येन तेषां तु प्रतिष्ठा सम्प्रजायते ॥२०३  
 अस्मन्नामस्य तातेन पृच्छते रघुपुङ्गवे ।  
 तडागाद्युत्सवे प्रोक्तो विधिः सोऽयं प्रकीर्तितः ॥२०४  
 दीर्घिरासु तडागेषु सन्निहत्यासु यो विधिः ।  
 तं पसिष्येऽवदत्सम्यक् दशरथस्य पृच्छत ॥२०५

तस्माच्च श्रुतवान् शक्तिः शुश्रावात्तः पराशरः ।  
 तत्रप्रसादेन तत्प्रोक्तो यो विधिः सम्प्रचक्षते ॥२०५  
 तडागादिनिपानानां यावन्नोत्सर्जनं कृतम् ।  
 तायत्तत्परकीयं तु स्नानादीनामनर्हकम् ॥२०७  
 अप्रतिष्ठितदेवानां न कार्यं पूजनं नरैः ।  
 अप्रतिष्ठितप्रातानामपेयं तोयमुच्यते ॥२०८  
 तदुत्सर्गः प्रकृतव्यो निजचित्तानुसारतः ।  
 चित्तशाठ्यं प्रहेयं स्यादित्युक्ताच्च पराशरः ॥२०९  
 सद्धिचिह्नः शुचिः शान्तो ब्राह्मणो धर्मवृद्धये ।  
 तदर्थं चरणयोऽमौ चतुर्भिर्गोक्षपैः सह ॥२१०  
 आचार्यस्तत्र कर्तव्यः पूर्तवर्मविपृद्धये ।  
 विपरीतमतिर्यः स्यात्तत्कृतं कर्मनिष्फलम् ॥२११  
 तडागपालिपृष्ठे तु मण्डपं तत्र कारयेत् ।  
 पूर्वोत्तरालये देशं शुचिः स्वरथः सगाहिराः ॥२१२  
 चतुर्गर्भं चतुर्द्वारं दशहस्तप्रमाणकम् ।  
 स्वामिद्वस्तप्रमाणेन तोरणानि च कारयेत् ॥२१३  
 पातका विविधाः कार्या नानावर्णाः समन्ततः ।  
 शुभपद्मसंयुक्ता द्वारेषु फलशाः स्मृताः ॥२१४  
 यथावर्णं यथावच्छं यथावर्णं प्रमाणनः ।  
 तथा शूपान्प्रचक्ष्यामि वर्णानां हितकाम्यया ॥२१५  
 पाल्माग्रां माध्वणः प्रोक्तो न्यग्रोधो भूमुजः स्मृतः ।  
 बेल्वो वैश्यस्य शूपं श्यावः कुट्टर्यो दुग्धरः स्मृतः ॥२१६

शिरः प्रमाणो विप्रस्य आकण्ठं क्षत्रियस्य च ।  
 उर प्रमाणो वैश्यस्य शूद्रस्य नाभिमरत्रक ॥२१७  
 चेदिका पादमूले तु यूपस्तत्र निरन्यते ।  
 यूपस्य दक्षिणे भागे तोरणं तत्र कारयेत् ॥२१८  
 द्रष्टव्यं च तन्मध्ये अष्टौ भागाः प्रकीर्तितः ।  
 तेगमुत्तरतः सोमं कुवेरं कुविदङ्गतम् ॥२१९  
 धनर्धं धन्वनागेति ईशायास्येति शङ्कम् ।  
 आकृणेनेत्यादिमन्त्रैश्च स्वैः । एवै कल्यास्तथा ब्रह्मा ॥२२०  
 प्रातारमिन्द्रमितीन्द्रं मग्निं दूतं च पावस्म ।  
 अग्निं पृथुरित्यादि धर्मराजं द्विजोत्तम ॥२२१  
 तद्विष्णोरिति वै विष्णु नमः सूतेति नैश्वर्तिम् ।  
 समर्पयस्तु इत्यादि मन्त्रैः सप्तशूर्गैस्तथा ॥२२२  
 वरुणस्योत्तमनमसि वरुणं च प्रपूजयेत् ।  
 एवं द्वाविंशतिस्थानानि मन्त्रोक्तानि पृथक् पृथक् ॥२२३  
 इमं मे, त्वज्ज, सत्वग्रस्तत्रायामि ह्युदुत्तमम् ।  
 समुद्रोऽसि समुद्रेति त्रीन् समुद्रान् निमीनपि ॥२२४  
 दशभिर्षांरुगैर्मन्त्रैराहुतीनां शतद्वयम् ।  
 शतमर्धं शतं वापि विंशत्यष्टोत्तरं शतम् ॥२२५  
 गोसहस्रं शतं वापि शताष्टं वा प्रदीयते ।  
 अलाभे चैव गां दद्यादेकामपि पयस्विनीम् ॥२२६  
 अरोगां वत्ससंयुक्तां सुरूपां भूषणान्विताम् ।  
 सौवर्णां राजतास्ताम्राः कांस्याः सोसाश्च शक्तिः ॥२२७

मत्स्या नकादयः कार्या विविधावर्तवृत्तयः ।

गो-वत्सौ वस्त्ररुद्धौ च आग्नेय्या दिशि संस्थितौ ॥२२८

वायव्याभिमुखौ तत्र कारयेद्वारिमध्यतः ।

वस्त्रपुष्मानि त्रिप्रेष्यो मुद्रिका-ल्लत्रिकादयः ॥२२९

भक्त्या चैताः प्रदातव्याः प्रसाद्य यन्नतो द्विजाः ।

विप्रान् मन्तोप्य देयानि दानानि विविधान्प्रपि ॥२३०

हेमपुष्पसंयुक्तां शय्या दद्युः शक्तितः ।

आसनानि प्रशस्तानि भाजनानि निवेदयेत् ॥२३१

एतत्प्रदक्षिणोक्तस्य ह्यारम्भना च विपश्चितः ।

प्रसादयेन् द्विजान् सर्वान्ग्राह्यनृत्तफलं नरः ॥२३२

कृत्वाञ्जलिपुटो भूया विप्राणामग्रतः स्थितः ।

मूयादेवं, भयन्नोऽत्र सर्वं विप्रवपुर्धराः ॥२३३

ते यूयं तारयध्वं मां संसारार्णवतो द्विजाः ।

आगता मम पुण्येन पूर्वकर्मप्रसाधकताः ॥२३४

धूर्मश्च मकरश्चैव सौर्यं स्वत्र कारयेत् ।

मीनाश्च रामभाश्चैव ताम्रा ददुर्एकाः स्मृताः ॥२३५

जलपुञ्जर-गोधाश्च सैमास्तत्र प्रचल्पयेत् ।

अन्येऽपि जलजास्तत्र शतितस्तान्प्रचल्पयेत् ॥२३६

श्मं पुष्पं प्रशस्त्रं च महागादिविधिं नरः ।

वापी-पूष-महागादौ कारयेन् प्राज्ञैर्बुधैः ॥२३७

प्रातःपिरवा सहागादि स्वभावाच्छाह्यवर्जितः ।

मानवः क्रोहति स्वर्गे थायदिन्द्राद्यनुर्दश ॥२३८

एतद्विधानं विदधाति भक्त्या खातेषु सर्वेषु तडागकेषु ।  
 सोऽमुत्र कामैः परिपूर्णदेहो भुङ्क्ते धरित्र्यामिह सर्वभोगान् ॥२३६॥  
 यदन्ति केचिद्वरुणस्य लोके प्रयाति भोगान्वरुणस्य भुङ्क्ते ॥  
 भुक्त्या चिरं तत्र पुनर्धरित्र्यां नरेन्द्रतामेति पराशरोक्तिः ॥२४०॥

इति तडागादिप्रतिष्ठाविधिवर्णनम् ।

॥ अथ लक्ष-होमविधिवर्णनम् ॥

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि द्विजेन्द्राः श्रूयतामितः ।  
 लक्षहोमविधिं पुण्यं कोटिहोमविधिं ततः ॥२४१॥  
 स्वयंभूर्यगुनाच्च प्रागस्मत्ततं पितृमहः ।  
 तमिमं सम्प्रवक्ष्यामि श्रूयतां पापनाशनम् ॥२४२॥  
 ये वेदं ब्राह्मणाः कार्या भूमिर्वा यत्र मण्डपम् ।  
 समिधो याश्च ये मन्त्रा अन्यच्च तत्र यद्भवेत् ॥२४३॥  
 लक्षहोममिमं विप्रा कथ्यमानं नियोधत ।  
 युग्माश्च ऋत्यजः कार्या ब्राह्मणा ये विपश्चितः ॥२४४॥  
 नियमश्रुतसंपन्ना सहिताः पार्थिवेन तु ।  
 नित्यं जपरता ये च नियोज्यास्तादृशा द्विजाः ॥२४५॥  
 यत्तद्-मूल-फलाहारा दधि-क्षीराशिनोऽपि च ।  
 प्रागुदीच्यां समे देशे स्थण्डिलं यत्र कारयेत् ॥२४६॥  
 तत्र वेदी ऽकुर्वीत पञ्चहस्तप्रमाणिकाम् ।  
 दक्षिणोत्तर आयामे त्रिशत्तु पूर्वपश्चिमे ॥२४७॥

कुण्डानि खनितव्यानि अङ्गुलान्येकविंशतिः ।  
 निवापयेद्विरण्यं च रत्नानि विविधानि च ॥२४८  
 सिमत्तोपरि दातव्या तत्राप्यग्निं समिन्धयेत् ।  
 प्रदाश्रय सनक्षत्रान् दिशि प्रच्यां समर्चयेत् ॥२४९  
 अवदनविधानेन स्थालीपाकं समर्पयेत् ।  
 आज्यभागाहुतीहुत्वा नवाहुत्या च होमयेत् ॥२५०  
 अग्निं सोमं तथा सूर्यं विष्णुं चैव प्रजापतिम् ।  
 विश्वेदेवान् महैन्द्रं च मित्रं स्थिष्टवृत्तं तथा ॥२५१  
 दधि-मधु-घृताक्तानां समिधां चैव यासिकाः ।  
 होमयेत् सहस्रं तु मंत्रेश्चैव यथाग्रमम् ॥२५२  
 चतुर्विंशति गायत्र्या मानस्तोकेति पदं तथा ।  
 त्रिशन् महादिमन्त्रैश्च चत्वारश्चैव यैः णवैः ॥२५३  
 पूज्याण्डैर्जुहुयात्पञ्च विकिरेद्धाथ षोडश ।  
 जुहुयाद्दशमहग्राणि जातयेदम् इत्युच्यते ॥२५४  
 तथा पञ्चसहस्राणि जुहुयादिन्द्रदेवसेः ।  
 हुते शनसङ्ग्रे तु अभिषेकं विधापयेत् ॥२५५  
 पुण्याभिषेके यद्वेगं तत्प्रदाय शुभं भवेत् ।  
 अथ षोडशभिः पुष्पैः सहिरण्यैः समङ्गलैः ॥२५६  
 मर्षोपधिममायुर्नानास्त्वयिभूषितः ।  
 अभिषेकं कृत् पुन्यात्स्नानमन्त्रैर्यथोचितैः ॥२५७  
 ममाद्ये तु तत्तस्मिन् प्रधाना दक्षिणाः स्मृताः ।  
 गजा-अरथ-न्यानानि भूमि-यज्ञपुगानि च ॥२५८



अन्नं च गोशतं हेम ऋत्विजां चैव दक्षिणा ।  
 वृषेणैकादशेनाथ दातव्या दश घेनवः ॥२५६  
 स्वशक्त्यातः प्रदातव्यं वित्तशाठ्यं न कारयेत् ।  
 एवं कृते तु यत्किञ्चित् ग्रहपांडासमुद्भवम् ॥२६०  
 भौममाकाशगं वापि अरिष्टं यच्च जायते ।  
 तत्सर्वं लक्षहोमेन प्रशमं याति निश्चितम् ॥२६१  
 शान्तिर्भवति पुष्टिश्च यत्नं तेजः प्रवर्द्धते ।  
 वृष्टिर्भवति राष्ट्रे च सर्वोपद्रवसंश्रयः ॥२६२

इति लक्षहोमविधिवर्णनम् ।

॥ अथ कोटिहोमविधिवर्णनम् ॥

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि कोटिहोमविधिं द्विजाः ।  
 भूयतामानुरेणैषः सर्वकामफलप्रदः ॥२६३  
 सानुष्ठाना द्विजाः प्रोक्ता ऋत्विजो यागकर्मणि ।  
 विधिज्ञाश्चैव मन्त्रज्ञाः स्वदारनिरताश्च ये ॥२६४  
 घरणीया विशेषेण ग्रहयागक्रियाविदः ।  
 एकाङ्गविकलो विप्रो धन-धान्यापहारकः ॥२६५  
 सर्वाङ्गविकलो यस्तु यजमानं हिनस्ति सः ।  
 तस्मात्सर्वप्रयत्नेन वेदाङ्गविधिकोविदाः ॥२६६  
 प्रवर्तव्या विरोपेण ग्रहयज्ञविदो द्विजाः । . .  
 कार्यश्चैव प्रयत्नेन ग्रहयज्ञश्च वै द्विजैः ॥२६७

अध्येता चैव मन्त्राणां ऋचामष्टोत्तरंशतम् ।  
 स एव ऋत्विग् विज्ञेयः सर्वकामफलप्रदः ॥२६८  
 आवाहनीयो यत्नेन प्रणिपत्य मुहुर्मुहुः ।  
 प्रहाः फल्गुनागाश्च सुराश्चैव नरेश्वराः ॥२६९  
 एवं कृते तु यत्किञ्चित् प्रहपीडासमुद्भवम् ।  
 तत्सर्वं नाशयेद्दुःखं कृतघ्नसौहृदं यथा ॥२७०  
 अस्मान्छतगुणः प्रोक्तः कोटिहोमः स्वयम्भुवा ।  
 आहुतीभिः प्रयत्नेन दक्षिणाभिः फलेन च ॥२७१  
 पूर्ववद् प्रहदेयानां आवाहन-विसर्जने ।  
 होममन्त्रास्त एवोक्ताः स्नानं दानं तथैव च ॥२७२  
 मण्डपस्य च पेद्याश्च विशेषं च निबोधत ।  
 कोटिहोमे चतुर्हस्तं चतुर्हस्तायतं पुनः ॥२७३  
 योनिष्वन्नद्वयोपेतं तदप्याहुस्त्रिमेखलम् ।  
 द्वयहुत्त्रेनोन्मिश्रता कार्या प्रथमा मेखला बुधैः ॥२७४  
 त्र्यहुत्त्रेनोन्मिश्रता तद्वद्वितीया मेखला स्थूता ।  
 चत्वार्ये मेखला या तु तृतीया चतुरहुला ॥२७५  
 द्वांगुलस्तत्र विस्तारः पूर्वयोरेव शस्यते ।  
 विनक्षिमात्रा योनिः स्यात्पद्-सप्ताहुलविस्तृता ॥२७६  
 त्र्यङ्गुलौन्मिश्रता मध्ये पार्श्वतश्चांगुलोन्मिश्रता ।  
 गजोष्ठमदरा तद्वदायामद्विद्वसंयुता ॥२७७  
 एतत्तमरेषु बुण्डेषु योनिर्लक्षणमीरिमम् ।  
 मेखलोपरि सर्वत्र अस्त्यपन्नसन्निभा ॥२७८

वेदी च कोटिहोमे स्यात् वितस्तीनां चतुष्टयम् ।  
 चतुरस्रा समा तद्वत्त्रिभिर्विप्रैः समावृता ॥२७६  
 विप्रप्रमाणं पूर्वोक्तं वेदिकायास्तथोच्छ्रयः ।  
 ततः षोडशहस्तः स्यान्मण्डपश्च चतुर्मुखः ॥२८०  
 पूर्वद्वारेऽपि संस्थाप्य बह्वृचं वेदपारगम् ।  
 यजुर्वेदं तथा याम्ये पश्चिमे सामवेदिनम् ॥२८१  
 अथर्ववेदिनं तद्वदुत्तरे स्थापयेद्बुधः ।  
 अष्टौ तु होमकाः कार्या वेद-वेदाङ्गवेदिनः ॥२८२  
 एषं द्वादश विप्राणां यस्त्रमाह्वयानुलेपनैः ।  
 पूर्ववत्पूजनं कृत्वा सर्वाभरणभूषणैः ॥२८३  
 रात्रिसूक्तं च सौरं च पावमानं तु मङ्गलम् ।  
 पूर्वतो बह्वृचः शान्तिं पावमानमुदह्मुखम् ॥२८४  
 सूक्तं रौद्रं च सौम्यञ्च कूष्माण्डं शान्तिमेव च ।  
 पाठयेद्दक्षिणे द्वारे यजुर्वेदिनमुत्तमम् ॥२८५  
 सौपर्णमथ वैराजमाग्नेयी रुद्रसंहिताम् ।  
 पथ्यभिः सप्तभिर्वाध होमः कार्यश्च पूर्ववत् ॥२८६  
 स्नाने दाने च ये मन्त्रास्त एव द्विजमत्तमाः ।  
 ज्येष्ठसाम तथा शान्तिं छन्दोगः पश्चिमे जपेत् ॥२८७  
 रथविधानं तथा शान्तिमथर्वोत्तरतो जपेत् ।  
 वसोर्धाराविधानं तु लक्षहोमवदिष्यते ।  
 अनेन विधिना यश्च ग्रहपूजां समाचरेत् ॥२८८

सर्वान् कामानवाप्नोति ततो विष्णुपुरं व्रजेत् ।

यः पठेन् शृणुयाद्वापि ग्रहयागमिमं नरः ॥२८६

सर्वपापविनिर्मुक्तः स गच्छेद्वैष्णवं पदम् ।

अश्वमेधसहस्रं च दश चाष्टौ च धर्मवित् ॥२८७

कृत्वा यत्फलमाप्नोति कोटिहोमात्तदश्नुते ।

ब्रह्महत्यासहस्राणि भ्रूणहत्यावृन्दानि च ।

नश्यन्ति कोटिहोमेन स्वयम्भुवचनं यथा ॥२८८

प्रपेदिरे येऽस्य पितामहाद्याः श्वभ्राणि पापेन गरीयसा तान् ।

उद्धृत्य नाकं स नयेद्भिः सर्वान् यः कोटिहोमं नृपति करोति ॥२८९

राष्ट्रं मनोयान्बिद्धतृष्टियुक्तं धान्यैश्च रत्नैः पशुभिः समेतम् ।

निर्द्वन्द्वनीरोगमदस्य तस्य यो लक्षकोटीहवनं विदध्यात् ॥२९०

यो लक्षकोटिं विदधाति भूभृत् तद्वन्नरो लक्षशतं जुहोति ।

प्रत्यब्दमाप्नोति स दीर्घमायुर्भुङ्क्ते सपत्न्यान्विजयी धरित्रीम् ॥२९१

यो ब्रह्मघाती गुरुदारगामी ग्रामादिदाहात् धूषपापयुक्तः ।

पापैरशेषैः पुरुषो निमुक्तः स कोटि होमाद्विबुधत्वमेति ॥२९२

तस्मात्तदा भूपतयो विदधुर्वृष्टिं प्रजासौख्यलस्य पुण्ड्र्यै ।

आयुः प्रवृद्धैश्च विजयाय कीर्त्यै लक्षादिहोमं ग्रहयागमेतम् ॥२९३

इति कोटिहोमविधिवर्णनम् ।

॥ अथ पुराणं पुष्पसूक्तविधानवर्णनम् ॥

अथान्यत्सम्प्रवक्ष्यामि विधिं पावनमुत्तमम् ।

अस्मत्तातप्रतितोऽयं रघुपौत्रस्य धीमतः ॥२९४

अनपत्यस्य पुत्रार्थमकरोद्वैभाण्डिकः स्वयम् ।  
 सहस्रशीर्षसूक्तस्य विधानं चरुपाककृत् ॥२६८  
 यैर्यनृपैः कृतं पूर्वमन्यरपि द्विजोत्तमैः ।  
 उपासितानि सद्भक्त्या श्रोत्रियैः श्रुतिपारगैः ॥२६९  
 आत्मविद्विर्निराहारैः श्रौतिभिर्मन्त्रविद्वत्तमैः ।  
 सिध्यन्ति सर्वमन्त्राणि विधिविद्विर्द्विजोत्तमैः ॥३००  
 क्रियमाणाः क्रियाः सर्वाः सिध्यन्ति प्रतचारिभिः ।  
 न पाठान्न धनात् स्नानाद्वात्मनः प्रतिपादनात् ॥३०१  
 प्राक्तनात्कर्मणः पुंसां सर्वाः सिध्यन्ति सिद्धयः ।  
 शुद्धपक्षे शुभे वारे शुभनक्षत्रगोचरे ॥३०२  
 द्वादश्यां पुत्रकामो यश्चक्रं कुर्वीत वैष्णवम् ।  
 दम्पत्योरुपवासः स्यादेकादश्यां सुरालये ॥३०३  
 ऋग्भिः षोडशभिः सन्ध्यगर्भयित्वा जनार्दनम् ।  
 चक्रं पुरुषसूक्तेन श्रपयेत्पुत्रकाम्यया ॥३०४  
 प्राप्नुयाद् वैष्णवं पुत्रं चिरायुं सन्ततिक्षमम् ॥३०५  
 द्वादश्यां द्वादश चरुन् विधिवन्निर्वपेद्द्विजः ।  
 यः करोति महायागं विद्गुलोकं स गच्छति ॥३०६  
 हुत्वाऽऽज्यं विधिवत्पूर्वं ऋग्भिः षोडशभिस्तथा ।  
 समिधोऽश्वत्थवृक्षस्य हुत्वाज्यं जुहुयात्पुनः ॥३०७  
 उपस्थानं ततः कुर्याद्दध्यात्वा तु मधुसूदनम् ।  
 हविर्होमं ततः कृत्वा दद्यात्पञ्च घृताहुतीः ॥३०८

कामप्रदं नमस्कृत्य नारी नारायणं पतिम् ।

सम्प्राश्य च हवि शेषं चसेह्यवाशनी गृहे ॥३०६

ततः कृत्वा इदं कर्म कर्त्तव्यं द्विजतर्पणम् ।

रजः स्त्रीषु निवर्तेत याचद्रुमं न विन्दति ॥३१०

असूता मृतपुत्रा वा या च कन्याः प्रभूयते ।

क्षिप्रं सा जनयेत्पुत्रं पराशरयचो यथा ॥३११

होमान्ते दक्षिणां दद्यात् गृहं वासस्तथा तिलान् ।

भूमिं हिरण्यं रत्नानि यथा सम्भवमेव वा ॥३१२

यः सिद्धमन्त्र. सततं द्विजेन्द्रः सम्पूज्य विष्णुं विधिवत्सुतार्थी ।

इमं विधानं विदधाति सम्यक् स पुत्रमाप्नोति हरेः प्रसादात् ॥३१३

इति पुत्रार्थं पुरुषसूक्तविधानवर्णनम् ।

॥ अथ शान्तिविधिवर्णनम् ॥

अथातः सन्प्रवक्ष्यामि ब्रह्ममन्त्राधिदैवतम् ।

आपं छन्दश्च यज्ज्ञानात्कर्म स्यात्सफलं कृतम् ॥३१४

आकृष्णेनेति मन्त्रोऽस्मिन्दैवत्यं सविता महत् ।

भृषिर्हिरण्यस्तृपाख्यसिष्टृप् छन्दः प्रकीर्तितम् ॥३१५

आप्यायस्विति सोमाऽत्र दैवतं गौतमो मुनिः ।

गायत्री छन्द उद्दिष्टं विजियोगो यथेप्सितम् ॥३१६

अग्निर्मूर्धेति मन्त्रोऽत्र दैवतं भौम उच्यते ।

विरूपाक्षो मुनिर्धोमान् छन्दो गायत्रमिष्यते ॥३१७

उद्वुध्यस्तेति मन्त्रस्य बुधश्चैव तु दैवतम् ।  
 मुनिर्बुधश्च मन्तव्यस्त्रिष्टुप् छन्दः प्रकीर्तितम् ॥३१८  
 बृहस्पते अतीत्यत्र देवतापि बृहस्पतिः ।  
 आपं गृत्स्मदोऽस्येति छन्दस्त्रिष्टुप् प्रकीर्तितम् ॥३१९  
 शुक्रःशुशुक्वेति द्वीत्यत्र शुक्र इत्यधिदैवतम् ।  
 शुक्रस्यापि तथापं च विराट् छन्दः प्रकीर्तितम् ॥३२०  
 शन्नो देवीति चेत्यत्र शनिर्दैवतमुच्यते ।  
 सिन्धुर्नाम ऋषिर्विद्वान् छन्दो गायत्रमुच्यते ॥३२१  
 काण्डात् काण्डादिति राहुर्दैवतं हि तदुच्यते ।  
 ऋषिः प्रजापतिः प्रोक्तोऽनुष्टुप् छन्दः प्रकीर्तितः ॥३२२  
 फेत्तुं कृण्वन्निति प्रोक्तं दैवतं येतुरेष हि ।  
 मधुर्छन्दस आपं च गायत्रं छन्द एव हि ॥३२३  
 स्योनापृथिवीति मन्त्रस्य स्कन्दश्च देवतास्मृता ।  
 आपं मेधातिथिश्चात्र म्वयम्भूदैवतं परम् ॥३२४  
 भर्गान्यश्च मुनिश्चात्र बृहती छन्द उच्यते ।  
 इन्द्रकुत्सेति दैवत्यं इन्द्र एव स्मृतो बुधैः ॥३२५  
 आपं कुत्सस्य चामुत्र त्रिष्टुप् छन्दः प्रकीर्तितम् ।  
 यस्मिपृक्षंति बाह्यत्र यमो वै देवता परा ॥३२६  
 ऋषिस्तु कुण्डलोमा च त्रिष्टुप् छन्दः स्मरेद्बुधः ।  
 ब्रह्मजज्ञानमित्यत्र कालो वै दैवतं महत् ॥३२७  
 मुनिर्धर्मतनुर्नाम त्रिष्टुप् छन्दोऽभिधीयते ।  
 आयातमिति च ह्यस्यां चित्रगुप्तस्तु दैवतम् ॥३२८

आपं ॥ धामदेवोऽस्य त्रिष्टुप् छन्दो युधैर्मनम् ।  
 अग्निं दूतमिति हस्यां मग्निर्वै देवता स्मृता ॥३२६  
 आपं मेधातिथिर्नाम छन्दो गायत्रमेव हि ।  
 अप्सुमे सोम इत्यत्र सोमं वै दैवतं स्मरेत् ॥३२७  
 मेधातिथिरिहाप्यार्पमनुष्टुप् छन्द उच्यते ।  
 पुरुषसूक्तस्य दैवत्यं पुरुष एव मतं युधैः ॥३२८  
 भूमिपृथिव्यन्तरिक्षमित्यत्र दैवतं श्रितिः ।  
 ऋषिः शाक्तातपो ह्यत्र छन्दश्चानुष्टुबुच्यते ॥३२९  
 आपं नारायणस्येह छन्दश्चानुष्टुबित्यपि ।  
 इन्द्रायेंदो मरुत्पते मरुत्यान्दैवतं महत् ॥३३०  
 आपं तु काश्यपस्येह गायत्रं च छन्द एव हि ।  
 मरुत्वंतमिति ह्यत्र सुरेन्द्रो देवता मता ॥३३१  
 अत्रापि कश्यपस्यापं गायत्रं छन्द एव हि ।  
 उत्तानपर्ण इत्यत्र इन्द्रो दैवतमुच्यते ॥३३२  
 आपं साहज्यस्य चात्रोक्तं मनुष्टुप् छन्द इत्यपि ।  
 प्रजापते इति ह्यत्र देवता च प्रजापतिः ॥३३३  
 हिरण्यगर्भस्यापं तु त्रिष्टुप् छन्दो मतं युधैः ।  
 आयं गौरिति चैवात्र देवता फणिनो मता ॥३३४  
 सर्पराजो मुनिस्तत्र गायत्रं छन्द उच्यते ।  
 एष ब्रह्मा ऋत्विज इति ब्रह्मदेवोऽधिदैवतम् ।  
 ऋषिर्वै धामदेवोऽत्र गायत्रं छन्द इष्यते ॥३३५



आतून इन्द्रध्वजं सुरेन्द्रः मगणेश्वरः ।  
 तथापि कामदेवस्य गायत्रं छन्द इत्यपि ॥३३६  
 जातवेदस इत्यत्र जातवेदास्तु देवतम् ।  
 काश्यपस्यार्पमग्रापि छन्दोऽनुष्टुप् प्रकीर्तितम् ॥३४०  
 अनोनियुद्धिरित्यास्मिन्वायुर्देवतमुच्यते ।  
 आर्पमत्र घसिष्ठस्य अनुष्टुप् छन्द उच्यते ॥३४१  
 नमः प्रकाशदेवस्य मुनिप्रोक्तं प्रजापतिः ।  
 छन्दो गायत्रमित्युक्तं विनियोगो यथेप्सितम् ॥३४२  
 एषो उपेति चाप्यत्र अश्विनौ देवते स्मरेत् ।  
 प्ररक्ष्यध्वार्पमग्रापि गायत्रं च्छन्द उत्तमम् ॥३४३  
 मरुतो यस्य हि क्षये मरुदेवतमुच्यते ।  
 गौतमं च मुनिं विद्धि छन्दश्च प्रथमं मुने ॥३४४  
 छन्दस्तथापि सहदेवतेन ज्ञात्वा द्विजो यः कुन्ते विधानम् ।  
 वेदोत्तमर्थं प्रददाति सम्यक् सर्वं फलं कर्तुरिहाप्यमुत्र ॥३४५  
 यो लक्षहोमं यदि कोटिहोमं राजा विदध्यात्मनिवर्षमेकम् ।  
 राष्ट्रेऽनुष्टुप्त्रिजयः सुभक्ष्यमारोग्यता स्यात्सुकृतस्य वृद्धिः ॥३४६  
 भवन्ति पुत्राः शुभयशश्चैव दीर्घायुषो राजहिता धरिष्याम् ।  
 सुकीर्तिमन्तो जयिनोऽपि राज्ये प्रतापवन्तो रवि-चन्द्रतुल्याः ॥

इति श्रीबृहत्पाराशरीये धर्मशास्त्रे शान्तिविधिर्नाम

एकादशोऽध्यायः ।

## द्वादशोऽध्यायः ।

## अथ राजधर्मवर्णनम् ।

अधातो नृपतेर्धमं वक्ष्यामि हितकाम्यया ।  
 पराशरात् श्रुतं विप्रा वक्ष्यमाणं निबोधत ॥१  
 भूभृद्भूमौ परो देवः पूज्योऽसौ परदेववत् ।  
 स विधातापि सर्वस्य रक्षिता शासिता च सः ॥२  
 इन्द्रा-ऽग्नि-यम-वित्तेशा-ऽनलेश-मातरिश्चनः ।  
 शीतांशुस्तीव्रभासश्च ब्रह्मादयोऽसृजन्मृपम् ॥३  
 नृपो वेधा नृपः शम्भुर्तृपोर्को विष्टरध्रवाः ।  
 दाता हर्ता नृपः कर्ता नृणा कर्मानुसारतः ॥४  
 नासृक्षद्यदि राजानं नापि दण्डं व्यधास्यत ।  
 नार्मस्यतो यदा चैषा का भयिष्यज्जगत्स्थितिः ! ॥५  
 नाम्रहीष्यन् पुरोडाशान् मनुष्य-पितृ-देवताः ।  
 नाभविष्यत् श्व-काकानां भागधेयं हुतं हविः ॥६  
 निर्गुणोऽपि यथा स्त्रीणां सदा पूज्यः पतिर्भवेत् ।  
 तथा राजापि लोकानां पूज्यः स्याद्विगुणोऽपिसन् ॥७  
 स्वकर्मस्थान् नृपो लोकान् पिता पुत्रानिबौरसान् ।  
 शिक्षयेत् धर्मविद्वण्डैरधर्मकारिणो जनान् ॥८  
 नरान् दण्डधृतः कुर्यात् धर्मज्ञानार्थसाधकान् ।  
 समर्थानश्चपत्यादीन्शूरान् स्वामिहितोद्यतान् ॥९

शुचीन् प्राज्ञान् स्वधर्मज्ञान् विप्रान् मुद्राकरान् हिताम् ।

लेखकानपि कायस्थान् लेख्यकृत्यविचक्षणान् ॥१०

अमात्यान् मन्त्रिणो दूतान् यथोदितपुरोहितान् ।

प्राद्विद्याकान् समस्तान् वा हितांश्च रक्षकानपि ॥११

शूरानथ शुचीन् प्राज्ञान् परविश्वासकारिणः ।

सर्वस्थानेषु चाप्यङ्गान् सत्कृत्य वेदिनो परे ॥१२

महायज्ञः कुमारणामन्तःपुरस्य रक्षणे ।

वृद्धान् कञ्चुकिनो विप्रान् शुचीनादद्यांश्च वीरकान् ॥१३

यथोदितानि दुर्गाणि कुर्यात्तेष्वपि रक्षणम् ।

वद्धाहमुदितं स्त्रीणां यौनसम्यग्व्यकारणात् ॥१४

मुगुप्रकृत्यविज्ञानमात्मरक्षा प्रयत्नतः ।

प्रातः सन्ध्यार्चनादूर्ध्वं गृहपुंश्चयनश्रुतिः ॥१५

यथोत्तकार्ये राज्ये च नित्यं कुर्यात्परीक्षणम् ।

फोरोभाप्रयरथाहीना हेतीना वर्मणामपि ॥१६

कुर्यादालोरुनं नित्यमनालस्यो महीपतिः ।

अमात्य मन्त्रि-योद्धृणां सम्मानं नित्यरोऽपि च ॥१७

देवार्चनं सदा होमः शान्तिश्च वृद्धसेवनम् ।

यज्ञो दानं तथोत्पातसमये शान्तयोऽपि च ॥१८

वर्जनं विषयासक्तैर्ममिदानं सशासनम् ।

प्राणियर्जितदेशे च नीतिज्ञो मन्त्ररुद्धवेन् ॥१९

नित्यमुत्साहयुक्तश्च विजिगीषुरुदायुधः ।

सदालङ्कारयुक्तश्च सदयः प्रियभाषकः ॥२०

सदा प्रियदिते युक्तः पूज्यो भाकेऽयसौ नृपः ।  
 सदा साधुषु सन्मानं विपरीतेषु घातनम् ॥२१  
 दण्डं दम्भेषु कुर्याणो राजा यज्ञफलं लभेत् ।  
 वृद्धान् साधून् द्विजान् मौलान् यो न सन्मानयेन्नृपः ॥२२  
 पीडां करोति चामीषां राजा शीघ्रं क्षयं व्रजेत् ।  
 यस्तु सन्मानयेदेतान् देवान् विप्रांश्च पूजयेत् ॥२३  
 पराजयेत्सोऽप्यरीस्तान् दीर्घायुरपि जायते ।  
 पीड्यमानो प्रजां रक्षेत्कायस्थेश्वोरत्तत्करैः ॥२४  
 धान्येक्षुतृणतोयैश्च सम्यग्रं परमण्डलम् ।  
 हीनबाह्वनपुंस्तथं तु मत्त्वैतत्प्रविशेन्नृपः ॥२५  
 मासे सहसि यात्रार्थी कृतपुण्याद्घोषयान् ।  
 विधिवधानकं कुर्याद्यद्व्यह्नैरक्षयन् बलम् ॥२६  
 यत्राचलसरोरक्षा वृक्षरक्षा तु यत्र च ।  
 वासं तत्रविधायैव रात्रौ रक्षेत्तत्रकं बलम् ॥२७  
 चतुर्दिक्षु च सैन्यस्य निशि शूरान् धनुर्धरान् ।  
 स्वयं राजा नियुञ्जीत समीक्ष्य भूवलाबलम् ॥२८  
 राज्यस्य षड्गुणान् मत्वा सन्धिविमहयानकान् ।  
 आसनं संशयं द्वैधं सम्यक् ज्ञात्वा समाचरेत् ॥२९  
 निर्भेदं स्वबलं कुर्यान्निहत्याद्विभ्रचेतनम् ।  
 दासीकर्मकरान् दासान् भिन्दतो रक्षयेन्नृपः ॥३०  
 निकटश्चायिनो नित्यं जानन्ति चेष्टितं प्रभोः ।  
 तस्मात्ते यत्नतो रक्ष्या भेदमूलं यतस्त्वमी ॥३१

एते परस्य यत्नेन भेदनीयास्ततोऽपरे ।  
 यथा परो न जानाति तथा भेदं समाचरेत् ॥३२॥  
 परामात्य-प्रधानानां व्यलीकदूतशब्दितम् ।  
 उत्थापयेत्स्यसेनायाः स्याद्यथा चित्तभेदना ॥३३॥  
 परसैन्ये बहु गतान्निविधान् कुहकानपि ।  
 कारयेत् गरदानादि वह्निपाताननेकशः ॥३४॥  
 स्वसैन्ये गरदानादि नृपो यत्नेन रक्षयेत् ।  
 नियुज्य विज्ञः पुरुषानुक्तं सर्वं निशामयेत् ॥३५॥  
 अन्तर्भीहन् घहिः शूरान् साग्निकान् ब्राह्मणोत्तमान् ।  
 मर्मज्ञान् फुल्लसम्पन्नान् विश्रुयादात्मसन्निधौ ॥३६॥  
 प्रविशन् परदेशे च प्रजां स्वीकृत्य संविशेत् ।  
 उत्सार्य मार्गतो लोकान् दूरीकृत्य ब्रजेन्नृपः ॥३७॥  
 शस्यादि दाहयेत्सर्वं यवसानि धनानि च ।  
 भिन्ध्यात्सर्वनिपानानि प्राकारान्परिखास्तथा ॥३८॥  
 अपसृत्य समादाय भूमिं साधारणा नृपः ।  
 गमयेत् यार्षिकान्मासानासाद्य स्वधरा नृपः ॥३९॥  
 न युद्धमाश्रयेत्प्राज्ञा न कुर्यात्स्वबलक्षयम् ।  
 साम्रा भेदेन दाजेन त्रिभिरेव वशं नयेत् ॥४०॥  
 वदन्ति सर्वे नीतिज्ञा दण्डस्याऽऽगतिका गतिः ।  
 तद्वज्रं वशमायानि तथा शत्रुस्तथा चरेत् ॥४१॥  
 आक्रान्ता दर्मपूज्योऽपि भिद्युर्मृद्वयोऽपि भूतलम् ।  
 नातो यतेत युद्धाय युद्धसिद्धिरसिद्धिरत् ॥४२॥

गृहीयात्सर्वदा राजा करानपीडयन्त्रजाः ।

स्तोके स्तोकान् पृथक् साम्ना स मुहक्ते सुचिरं धराम् ॥६५

सदा चोद्यमिना भाव्यं नृपेण विजिपीषुणा ।

विजिगीषुर्नृपो नान्यैः कदाचिदभिभूयते ॥६६

तद्वैद्यं हृदि सन्धाय धृतोत्साहो नृपो भवेत् ।

दैव पौरुषसंयोगो सथाः सिध्यन्ति सिद्धयः ॥६७

मैकेन चक्रेण रथः प्रयाति नचैकपक्षो दिवि याति पश्री ।

एवं हि दैवेन न केवलेन पुंसोऽर्थसिद्धिर्नरकारतो वा ॥६८

केचिद्धि दैवस्य तु केवलस्य प्राधान्यमिच्छन्ति मतिप्रवीणाः ।

पुंस्कारयुक्तस्य नरस्य केचिदप्यत्र इष्टा पुरुषार्थसिद्धिः ॥६९

अस्युद्यमी क्रियत एव च यः श्रमी च

शौर्यान्निरतश्च गुणवाञ्छ सुधीश्च विद्वान् ।

प्राप्नोति नैव विधिना स परादुमुखेन

स्वीयोदरस्य परिपूरणमन्नमात्रम् ॥७०

शुभ्राणि हर्म्याणि चराङ्गनाश्च नानाप्रकारो विभवो नरस्य ।

उर्योपतिस्त्वं (च) नृपकारता (नृकारता) च सर्वं हि

मंक्षु (मञ्जु) क्षयमेति दैवात् ॥७१

केपां(एपा)हि पुंसा महतो हि दैवात्स्थानस्थितानामपि चार्थसिद्धिः ।

केपां प्रभुत्वं बहुजीवितं च एको हि देवो बलवान्तोऽत्र ॥७२

पुं-स्त्रीप्रयोगादथशुक्र शोणितात् को देहमध्ये विदधाति गर्भं ।

स्त्रीणां तु तद्विप्र न चापि पुसां सर्वाणि चैपा(मनुजेभ्यः)ननु देवचेष्टा ॥

कासा तु गर्भस्य न सम्भवोऽस्ति केपां च शुक्रं ननु वीर्यहीनम् ।

दधाति गर्भं ननु चापि दैवान् काश्चित्तु गर्भ न दधाति दैवात् ॥७४

धाता विधाता निज कर्मयोगात् त्रिमेस्त्वभीष्टं त्वनुभावभाव्यम् ।  
 देवासुगणां सह दैत्यकानां स ह्येव कर्ता च मनूद्भवानाम् ॥७५  
 देवात् मघोनोऽपि सद्यमदर्णा देवाद्धिमांशोः क्षयरोगिताऽभूत् ।  
 देवात्पयोधेर्लज्जोदकत्वं देवाद्भवेच्चित्रतरा च वृष्टिः ॥७६  
 यदप्यमुष्मान्न परोस्ति देवात् कुर्यात्तयापीह नरो नृकारम् ।  
 उदीपयेत्कर्मकरो नृकारादुदीपितं कर्म करोति लक्ष्मीः ॥७७  
 दैवेन केचित्प्रसभेन केचित्केचिन्नृकारेण नरस्य चार्थाः ।  
 सिद्ध्यन्ति यत्नेन विधीयमानास्तेषां प्रधानं नरकारमाहुः ॥७८  
 श्यामिः प्रधानं नय-दुर्ग-कोशान् दण्डं च मित्राणि च नीतिविज्ञाः ।  
 अङ्गानि राज्यस्य यदन्ति मत्त सप्ताङ्गपूर्णे नृपतिर्नराभुक् ॥७९  
 दुष्ट-सद्वृत्तनरेषु दण्डं राजा विधत्ते निपुणोऽर्थसिधौ ।  
 दण्डस्य मरुर्जितचित्तसत्त्वं पुंसोऽर्थहीनस्य दमं तु हीनम् ॥८०  
 अन्यायतो ये तु जनं नरेशाः सम्पीड्य वित्तानि हरन्ति लोभात् ।  
 तत्क्रोधवह्नौ परिदग्धदेहा गतायुपस्ते तु भवन्ति भूपाः ॥८१  
 दण्डो महान् मध्यमक्रोधमस्तु मानं तु तेषां प्रसरेणुःकादि ।  
 सौशीतिसाहस्रपणो महान् स्यादर्धाद्विक्रो तस्य तदर्धको वा ॥८२  
 सवार्थपादश्च हरश्च दण्डो पात्यौ नृपेणेति यदन्ति सन्तः ।  
 पाण्यादिपच्छेदन-मारणं च निर्वासनं राष्ट्रं एव सद्यः ॥८३  
 हात्वापरार्थं मनुजस्य म्यस्तु देशं च कालं च वपुवयश्च ।  
 दंडेणपु दण्डं विदधाति भूयन् साम्यं स वध्नाति पुण्ड्रस्य ॥८४  
 यः शास्त्रदृष्टेन पथा नरेशो दण्डं विदध्याद्विधिवत्कराश्च ।  
 सोऽतीव कर्ति वितनोति गुर्वीमायुश्च दीर्घं दिवि देवमोगान् ८५

यस्युक्तमार्गाणि कुलानि राजा श्रेणीश्च जातीश्च गणाश्च लोकान् ।  
आनीय मार्गे विदधाति धर्म्यं नक्केऽपि गीर्वाणगणैः प्रशस्यते ॥८६॥

।। यः स्वधर्मे स्थितो राजा प्रजाधर्मेण पालयेत् ।

सर्वकामसमृद्धात्मा विष्णुलोकमवाप्नुयात् ॥८७॥

हर्यश्व-वह्नि-यम-वित्तनाथ-शीतांशुरूपाणि हि विभ्रतीह ।

सर्वेऽपि भूपास्त्विह पञ्चरूपास्तं कथ्यमानं गृणुत द्विजेन्द्राः ॥८८॥

यदा जिगीषुर्धृतशस्त्रपाणिस्त्विपुं समालम्ब्य स विद्वसैन्यः ।

सर्वान् सपन्नानिह जेतुकामस्तदा स हर्यश्व इवेह भाति ॥८९॥

अकारणात्कारणतोऽपि चैष प्रजां दहेत्कोपसमिद्धरोचिः ।

यदा तदेनं नृपनीतिविहास्तनूनपातं प्रवदन्ति भूपम् ॥९०॥

धर्मासनस्थः श्रुतिशास्त्रदृष्ट्या शुभाशुभाचारविचारकृत्यात् ।

धर्म्येषु दाने तत्रपकृष्टु दण्डं तदाऽवनीशस्त्विह धर्मराजः ॥९१॥

यदाऽश्मात्य-द्विज-याचकादीन् प्रहृष्टचित्तस्तु यथोचितेन ।

धनप्रदानेन करोति हृष्टान् भूभृत्तदाऽसौ द्रविणेशवत्तयात् ॥९२॥

समस्तशीतांशुगुणप्रयुक्तो यदा प्रजामेष शुभाय पश्येत् ।

प्रसन्नमूर्तिर्गतमत्सरः सन् तदोच्यते सोम इति क्षितीशः ॥९३॥

आज्ञां नृपाणां परमं हि तेजो यस्मात् न मन्येत स शस्त्रवधः ।

म्रूयाच्च कुर्याच्च वदेच्च भूभृत्कार्यं तदैवं भुवि सर्वलोकैः ॥९४॥

दुर्धर्पतिर्मांशुसमानदीप्तेर्ब्रूयान् मनुष्यः परुषं नृपस्य ।

यस्तस्य तेजोऽप्ययमन्यमानः सद्यः स पंचत्वमुपैति पापात् ॥९५॥

योऽज्ञाय सर्वं विदधाति पश्येत् गृणोति जानाति चकास्ति शास्ति ।

करतस्य चाज्ञां न विभर्ति राज्ञः समस्तदेवांशुभवो हि यस्मात् ॥९६॥

इति राजधर्मवर्णनम् ।



॥ अथ वानप्रस्थभिश्चुधर्मवर्णनम् ॥

अथ विप्रो वनं गच्छेद्विना वा सहभार्यया ।  
 जितेन्द्रियो धसेतत्र नित्यं श्रौताभिर्कर्मकृत् ॥६६  
 धन्यैर्मुन्यशनैर्मध्येः श्यामा-नीवार-कङ्कुभिः ।  
 कन्द-मूल-फलैः शार्कै र्हेदैश्च फलसम्भवैः ॥६७  
 सायं-प्रातश्च जुहुयात्त्रिकालं स्नानमाचरेत् ।  
 चर्मशीघरवासाः स्यात् शमश्रु-लोम-जटाधरः ॥६८  
 पितृंश्च तर्पयेन्नित्यं देवांश्चाजस्रमर्चयेत् ।  
 अर्चयेदतिथीन्नित्यं तथा भृत्याश्च पोषयेत् ॥६९  
 न किञ्चित्प्रतिगृह्णीयात्स्वाध्यायं नित्यमाचरेत् ।  
 सर्वसत्यहितो दान्तः शान्तश्चाध्यात्मचिन्तकः ॥१००  
 सन्तुष्टस्वान्तको नित्यं दानशीलः सदा द्विजः ।  
 कश्चिद्भेदं समास्थाय सुवृत्त्या वर्तयेत्सदा ॥१०१  
 एकादिकं तु कुर्वीत मासिकं वाथ सञ्चयम् ।  
 पाण्मासिकं चाब्दिकं वा यज्ञार्थं च वने वसन् ॥१०२  
 त्यक्त्वा तदाश्विने मासि स्नानमन्यस्ममाश्रयेत् ।  
 यथावदभिहोत्रं तु समिदाज्यैस्तु पालयेत् ॥१०३  
 चान्द्र-कृच्छ्र-पराकायैः पक्ष-मासोपवासकैः ।  
 त्रिरात्रैरेकरात्रैश्च आश्रमस्थः क्षिपेद्बुधः ॥१०४  
 तिष्ठेन्नित्यतिकस्तत्र स्वप्यादधस्तथा निशि ।  
 अतन्द्रितो भवेन्नित्यं वासरं प्रपन्नैर्नयेत् ॥१०५

योगाभ्यासरतो नित्यं स्थानाऽऽसन-विहारवान् ।  
 हेमन्त-ग्रीष्म-वर्षासु जलान्याकाशमाश्रयेत् ॥१०६  
 दन्तोलूखलिको वापि कालपक्वभुगेव वा ।  
 स्याद्वाश्मकुट्टको विप्रः फलस्नेहैश्च कर्मकृत् ॥१०७  
 शत्रौ मित्रे समस्यान्तस्तथैव सुस-दुःखयोः ।  
 समदृष्टिश्च सर्वेषु न विशेषनगद्वरम् १०८  
 म्लेच्छव्याप्तानि सर्वाणि वनानि स्युः कलौ युगे ।  
 न भूपाः शासितारश्च ग्रामोपान्ते वसेदतः ॥१०९  
 ग्रामाश्च नगरादेशास्तथारण्य-वनानि च ।  
 क्षितीशरक्षितान्येव सर्वेषां फलदानि हि ॥११०  
 प्रथमं भूपतेस्तस्मात्कृत्यं रांसेद्द्विजाप्रजाः ।  
 योगं चाऽरण्यवासं वा कुर्यात् तदनुज्ञया ॥१११  
 सुत्रामा-ऽनलथायूनां यमस्येन्दोर्विवस्वतः ।  
 ईश-वित्तेशयोर्मह्यमात्राभ्यो निर्मितो नृपः ॥११२  
 पारत्रिकं ॥ यत्किञ्चिद्यत्किञ्चिदैहिकं तथा ।  
 नृपाज्ञया द्विजातीनां तत्सर्वं सिष्यति ध्रुवम् ॥११३  
 नृपतेः प्रथमं तस्मात् साधोर्यज्ञादिकं द्विजः ।  
 रक्षार्थं कथयित्वा तु यथा कार्यं समापयेत् ॥११४  
 धेनुः पूर्वं वसिष्ठस्य ह्यासीदुदुर्वाससोऽपि च ।  
 वनवासाश्रमस्थस्य वद्विकार्याय चां श्रयेत् ॥११५  
 फलस्नेहा यदा न स्युः कालवैगुण्यतो द्विजाः ।  
 तदा गोदुग्ध-सर्पिभ्यामग्निकार्यं समापयेत् ॥११६

तथा सर्वेषु कालेषु तथा सर्वाश्रमेषु च ।

गोदुग्धादि पवित्रं स्यात्सर्वकार्येषु सप्तमाः ॥११७

वनवासिषु सर्वेषु भिक्षां कुर्याद्विनाश्रमो ।

तदा सर्वं प्रकुर्वीत पितृदेवार्चनादिकम् ॥११८

अष्टौ भुञ्जीत वा प्रासान् मामादाहृत्य यन्नरान् ।

यासनासंश्रयं गच्छेदनिलाशं प्रागुदीचिकः ११९

विधाय विमो वनवासधर्मान् सर्वानिमानुकविधिवमेष ।

स शौभ्य पापानि वपुर्विशोभ्य ब्रह्माधिगच्छेत्परमं द्विजेन्द्राः ॥१२०

आश्रमत्रयधर्मान्वा चरित्वा प्राक् द्विजास्ततः ।

द्वयस्य वा ततः पश्चाद्यनुयायधर्माचरेत् ॥१२०

द्विजाप्रजो यदा पश्येत् बलीपलितमात्मनः ।

उपरामस्तथाक्षणां क्षैण्यं कामस्य सद्द्विजाः ॥१२१

समीक्ष्य पुत्रं पौत्रं वा दृष्ट्वा वा दुहितुः सुतम् ।

अथोत्थ विधिवद्वेदान् कृत्वा यज्ञान्निधानतः ॥१२२

निश्चयं मनसः कृत्वा चतुर्थाश्रममाविशेत् ।

प्राज्ञापत्यां विधायेष्टिं वनाद्वा सन्नोऽपि वा ॥१२३

समस्तदक्षिणायुक्तान् सर्ववेदास्ततश्च तान् ।

अग्नीनात्मनि चारोप्य दण्डान् विधिवदादरेत् ॥१२४

किञ्चिद्भेदं समास्थाय तद्धर्मेण च वर्तयेत् ।

याह्-मनः-कायदण्डाश्च तथा सत्त्वादयो गुणाः ॥१२५

त्रयोऽपि नियता यस्य स त्रिदण्डीति कथ्यते ।

कमण्डल्यक्षमाला च भिक्षापात्रमथापरम् ॥१२६

कापायवामः कौपीनं कार्यार्थं वस्त्रमेव वा ।  
 शिरसा यज्ञोपवीतं च दण्डानां त्रितयं तथा ॥१२७  
 द्विकालं विधिवत्स्नानं भिक्षया चैकभोजनम्  
 शुद्धैकवृत्तिविप्रेषु सत्कर्मनिरतेषु च ॥१२८  
 भिक्षार्चयान् यतेः प्रोक्ता व्रतचर्या तथैव च ।  
 असम्भाषश्च शूद्रेण तथा च शिल्पि-कारुभिः ॥१२९  
 अवपुत्रत्वं तथा स्त्रीभिः कृत्यमेतद्यतेः स्मृतम् ।  
 न कदम्बकसंरोधो नित्यमेकान्तशीलता ॥१३०  
 सदैव प्राणसंरोधः सदैवाध्यात्मचिन्तनम् ।  
 सृष्टेणुर्दार्ढ्यलाघ्यश्चमयं पात्रं यते स्मृतम् ॥१३१  
 शुद्धिरद्विरमीषां तु गोवालैश्चावर्षणम् ।  
 न दण्डैर्न च दण्डेन विना वा तेन वा तथा ॥१३२  
 मोक्षायाप्तिर्भवेत्पुंसां किंत्वस्याध्यात्मचिन्तनात् ।  
 समत्वं सुप्त-दुःस्वेषु तथा विद्वेष-रागयोः ॥१३३  
 आत्मान्ययोः समानत्वमजस्रं चात्मचिन्तनम् ॥१३४  
 यतिभिस्त्रिभिरेकत्र द्वाभ्यां पञ्चभिरेव वा ।  
 न स्थातव्यं कदाचित्स्यात्तिष्ठन्तो नाशमाप्नुयुः ॥१३५  
 बहुत्वं यत्र भिक्षुणा वार्तास्तत्र विचित्रकाः ।  
 र्हेद-पैशून्य-मात्सर्यं भिक्षुणां नृपतेरपि ॥१३६  
 तस्मादेकान्तशीलेन भवितव्यं तपोर्थिना ।  
 आत्माध्यासरतश्चैव ब्रह्मप्राप्त्यभिलाषुकः ॥१३७

त्रिदण्डप्रहणादेव यत्तित्वं नैव जायते ।  
 अध्यात्मयोगयुक्तस्य ब्रह्मावाप्तिर्मवेद्यत ।  
 जितेन्द्रियो हि दण्डार्हो युना न स्यात्तथा सरुक् ॥१३८  
 युवा नीरुक् तथा भिक्षुरात्मवृद्धिप्रदूपक ।  
 भिक्षुर्गोहे वसन्त्यत्र कामार्तोऽन्योऽभिगच्छति ॥१३९  
 तत्सन्ननाथं वृद्धान्वै सह तेनैव पातयेत् ।  
 एकरात्रं तु निवसेद्भिषुर्यस्य गृहाङ्गणे ॥१४०  
 तस्य वै तारयेत्पूजान् पिशति पितृमावृत ।  
 भिक्षुर्यस्याभिक्षुर्ब्रह्मयोगाभ्यासरतो भवेत् ॥१४१  
 परिणामश्च योगेन कृतकृत्यो गृही भवेत् ।  
 निर्ममो निरहङ्कारः सर्वसह प्रसन्नधी ॥१४२  
 ब्रह्मण्यात्मनि गोमायौ मुनौ स्तेच्छे च तुल्यदृक् ।

चिह्नानि धात्रा कथितानि धत्ते धर्तेत यो वै विहितेन भिक्षु ।  
 योऽध्यात्मवेदी सततं जिताक्षः स ब्रह्मकाये गमनं करोति ॥१४३

वनस्थ-भिक्षुधर्मान्वै यानुवाच पराशर ।  
 यथायदभिधायैतान् यक्षाम्याश्रमभेदकान् ॥१४४

इति वानप्रस्थभिक्षुधर्मवर्णनम् ।

॥ अथ चतुर्णामाश्रमाणाभेदवर्णनम् ॥

अथात सम्प्रवक्ष्यामि भेदमाश्रमसम्भवम् ।  
 ब्रह्मचर्यादिकानां तु यायातथ्य निबोधत ॥१४५

चतुर्णामाश्रमाणां तु भेदो दृष्टो मनीषिभिः ।  
 प्रत्येकशो वदाम्येनं शृणुष्वं द्विजसत्तमाः ॥१४६  
 ब्रह्मचारी गृहस्थश्च चानप्रस्थो यतिस्तथा ।  
 एतद्भेदान् प्रवक्ष्यामि शृणुष्वं पापनाशनम् ॥१४७  
 चतुर्धा ब्रह्मचारी स्याद्गायत्रौ वैधसस्तथा ।  
 प्राजापत्यो वृहत्तेति लक्षणानि पृथक् पृथक् ॥१४८  
 अक्षारलवणारी स्यात् गायत्र्यभ्यासतत्परः ।  
 वर्तते भिक्षया नित्यं गायत्रौऽयं प्रकीर्तितः ॥१४९  
 चतुर्धा द्वादशाब्दानि योज्जीयानश्चतु श्रुतीः ।  
 भिक्षया ब्रह्मचर्येण तिष्ठेत् ब्राह्मः स उच्यते ॥१५०  
 गुरोर्वा गुरुपुत्रस्य तत्परन्या वापि सन्निधौ ।  
 यो वसेद्भ्यसन् ज्ञानं ब्रह्मचारी स नैष्ठिकः ॥१५१  
 ऋतुकालाभिगामी सन् परस्त्रीं पर्व वर्जयेन् ।  
 वेदानभ्येति भिक्षाभुक् प्राजापत्योऽयमुच्यते ॥१५२  
 गृहस्थस्तु चतुर्भेदो वार्ता-शालीनवृत्तिकौ ।  
 यायावरस्तथा वात्यो घोरस्तन्यासिकस्तथा ॥१५३  
 कृषि-गोरक्ष-वाणिज्यैः कुर्वन् सर्वाः क्रिया द्विजः ।  
 विहतेरात्मविद्यैश्च वार्तावृत्तिः स उच्यते ॥१५४  
 ददात्यध्येति यजते याजयेन्न च पाठयेत् ।  
 कुर्यात्कर्माप्रतिप्राही शालीनो ध्यानकृद्द्विजः ॥१५५  
 उक्तं मन् कारयेदन्यांक्रियां कुर्यात्प्रतिग्रहम् ।  
 पाठयेच्च सधात्मानं यायावरः स उच्यते ॥१५६

तिष्ठेद्यश्च शिलोज्ज्वाभ्यामुद्धृताग्निश्च उच्यते ।  
 आत्मविच क्रिया कुर्यात् घोरसंन्यासिकः स्मृतः ॥१५७  
 ध्यानप्रस्थश्चतुर्भेदो वैद्यानस उदुम्बर ।  
 बालदिल्यो वनेवासी तलक्षणमधोच्यते ॥१५८  
 फलैर्मूलैरकृष्टाग्नैरग्निम यने वसन् ।  
 कुर्यात्पञ्चमहायज्ञान् स वैद्यानस आत्मवित् ॥१५९  
 प्रातर्हृष्टदिगानीतैर्फलकृष्टाशनेन्धनैः ।  
 उदुम्बरो मत्तो ज्ञानी पञ्चयज्ञाग्निकर्मदृष्ट् ॥१६०  
 चतुरो न्यासकृद्ग्निकार्यं कुर्वन्वने वसन् ।  
 फलस्नेहैर्वनाग्नैश्च बहुभि श्रुतिचोदितैः ॥१६१  
 उद्धृत्य परिपूताग्निस्तथाऽप्याचितवृत्तिकः ।  
 फलैर्वन्यैर्वनाग्नैश्च फेनपः पञ्चयज्ञकृत् ॥१६२  
 घनस्थो बालदिल्यो यो धत्ते बल्कलचीयरम् ।  
 अग्निकार्यकृदात्मन उर्जान्ते संचितं त्यजन् ॥१६३  
 चतुर्भेद परिग्राह स्यात् कुटीचक-बहूदको ।  
 हंसा परमहंसाश्च वक्ष्यन्ते ते पृथक् पृथक् ॥१६४  
 पुत्रस्य भ्रातृपुत्रस्य भ्रातृ-दौहित्रयोरपि ।  
 तदुपात्तकुटीस्थो यः स भैक्ष्यवृत्तिभुक् द्विजः ॥१६५  
 प्रतिचर्याकृत सोऽपि यो वास पूतगारिणः ।  
 तथा त्रिदण्डभृन् शान्त आत्मज्ञः स कुटीचकः ॥१६६  
 होयो बहूदको नाम यः परित्रितपादुकः ।  
 शिखासनोपवीतानि धातुकापायवस्त्रभृत् ॥१६७

आरम्भकाणि यान्येव तेषु यान्ति तदंशकाः । ॥११८॥  
 आत्मा चान्यदवाप्नोति यातनीयं पुनर्वपुः ॥११९॥  
 यः पश्येत् शृणुयाज्जिघ्रेत् स्वदेद्विद्यस्मरेद्धदेत् ।  
 स्वप्याच्च जागृत्याद्रच्छेद्विन्द्यात् गायेत् जपेत् पठेत् ॥१२०॥  
 गृहीयादर्पयेद्वाज्जायेत जनयेदपि ।  
 सोऽस्ति कश्चित्परो देहाद्यो देवीति निगद्यते ॥१२१॥  
 नैकश्चेत्स्यान्न देहेऽस्मिन् प्रत्यभिज्ञा कथं भवेत् ।  
 एकदृक्-दृष्टिरूपस्य पुनरन्येन पश्यतः ॥१२२॥  
 अद्राक्षं यदहं यस्तु तदेवैतत्स्पृशाम्यथ ।  
 यथाऽऽप्राक्षं च पश्यामि प्रतीतिर्यस्य जायते ॥१२३॥  
 दर्शन-स्पर्शानाभ्यां च ग्रहणादेकवस्तुनः ।  
 अस्ति ह्यात्मा परो देहात्तथा देहास्ति कश्चन ॥१२४॥  
 गृही च गृहमध्यस्थो भग्नं किञ्चित्समाचरेत् ।  
 देहे क्षतादिसंरोहान्ता देहास्ति कश्चन ॥१२५॥  
 हानयोगफलेनायं कर्मयोगफलेन च ।  
 स एव भुज्यते कुर्वन् उदेरौ तस्य ताविति ॥१२६॥  
 तार्यते कर्मणा चायं बध्यते कर्मणापि च ।  
 उभयथापि नैवात्र प्रत्यक्षं दृश्यते द्विजाः ॥१२७॥  
 मायाविस्वं च मूकमतिरिक्ता गता क्रमान् ।  
 अवाक्त्वं धान्यहृतृणां पैशून्ये पूतिनासिता ॥१२८॥  
 भरतो वर्णकैश्चित्रैः स्वदेहं चित्रयेद्यथा ।  
 शुर्वभानाविधं कर्म तथात्मा कर्मजास्तनूः ॥१२९॥



जरायुजाण्डजादीनि वपूषि योऽग्रहीभिर्जैः ।  
 कर्मभिर्वर्णभेदैश्च चित्तदौर्गत्यरुग्युतः ॥२०१  
 बधिर-ह्रीव-नि-स्वा-ऽन्धा जायन्ते पुरुषाधमाः ।  
 निरेनसः पुनर्भूता विद्वद्विप्रकुलेषु च ॥२०२  
 महाकुलेषु चान्येषु जायन्ते लक्षणान्विताः ।  
 धनवन्तः प्रजावन्तो विद्यावन्तो यशस्विनः ॥२०३  
 रूप-सौभाग्यसंयुक्ताः सर्वेषामुपकारकाः ।  
 ब्रह्माभ्यासरताः शान्ताः पट्कर्मनिरतास्तथा ॥२०४  
 पञ्चयज्ञकृतो नित्यमग्निष्टोमादिषु स्थिताः ।  
 द्विजोपास्तिकरा नित्यं गुवांचार्याविपूजकाः ॥२०५  
 चतुराश्रमधर्माणां सेविनः समदर्शिनः ।  
 गुणैः सवः समायुक्तास्तेजस्विनो जनप्रियाः ॥२०६  
 एवंभूताश्च ये विप्रस्तेषां विष्णु सदान्तिके ।  
 विष्णुश्च सर्वदैवत्यस्तस्माद्विष्णुमना भवेत् ॥२०७  
 देवतार्चाकृतां नित्यं गुरुपास्तिकृतां तथा ।  
 ब्रह्मैवाभ्यसतां सत्यकृ ब्रह्मसन्निध्यमिष्यते ॥२०८  
 उपार्त्यं तत्सदा ब्रह्म यावत्साधकतां वहेत् ।  
 यद्वायासाद्विदित्वा यत्संसरेन्नेह मानवः ॥२०९  
 यदन्ति ब्रह्मवेत्तारो ब्रह्माभ्यासमनेकराः ।  
 ब्रह्मापि द्विविधं धीमन्नपरं परमेव ॥२१०  
 समत्वं परमं ब्रह्म शब्दब्रह्मेति कीर्तितम् ।  
 प्रणवाख्यं त्रिरूपं तत्प्रागेव हि निरोपत ॥२११

प्राणायामैस्तदभ्यस्य पूरकाद्यैश्च वायुभिः । ॥२१०॥  
 पूरक-कुम्भकौ वायू रेचकस्तु तृतीयकः ॥२११॥  
 येन व्यावर्तते वायुर्नोसाग्राग्निःसरेद्वहिः ।  
 पूरयेत् श्वासयोगेन पूरकं तद्विदो विदुः ॥२१३॥  
 आपूर्य निश्चलीकृत्य यः कश्चिद्धारयतेऽनिलः ।  
 श्वासयोगं वदन्त्येनं कवयः कुम्भकं त्विति ॥२१४॥  
 ब्रह्मध्यानसमायुक्तं वायुं यो न वहिर्नयेत् ।  
 कुम्भकः पवनः स स्याद्यो वहिर्नैव मुच्यते ॥२१५॥  
 रेचकं तद्विदुरतज्ज्ञा रेच्यते यः शनैः शनैः ।  
 न वेगाद्वेचयेद्वायुं सर्वथा विघ्नभाग् भवेत् ॥२१६॥  
 मोचयेन्मन्दमन्दं तु वहिः स्यात्कुम्भितो यथा ।  
 नास्माप्रस्थितपाणिस्तु सशिरश्चालनक्षमम् ॥२१७॥  
 अनिलं रेचयेद्योगी न मन्दं नातिवेगतः ।  
 न ह्यायतेऽनिलो यस्य निःसरम् नासिकाप्रतः ॥२१८॥  
 यस्यास्ते कुम्भितोऽजस्रं प्राणयोगी स ब्रूयते ।  
 दीर्घायुस्त्वं परं ज्ञानं समस्ता योगसिद्धयः ॥२१९॥  
 देहे तस्याऽवतिष्ठन्ति प्राणो येन वशीकृतः ।  
 यत्र तिष्ठति जीवःस्याग्निःसृतेमृत उच्यते ॥२२०॥  
 स किञ्च धारयते प्राणो ब्रह्माग्निः सति यत्र तु ।  
 प्राण एवायमात्मागते प्राणो देहस्य वाहकः ॥२२१॥  
 शरीराग्निःसृते प्राणे नात्मा विग्रहवाहकः ।

देहं त्यक्त्वा यदा जीवो बहिराकाशमास्थितः ॥२२२

तदा निर्विषयो वायुर्मवेदत्र न संशयः ।

तदा स सर्वदेहेषु नासाग्रमास्थितः शिखः ॥२२३

प्रत्यक्षः सर्वभूतानां तिष्ठते न च लक्ष्यते ।

यदा न श्वसते वायुस्तदा निष्फलमुच्यते ॥२२४

नाभिसंस्थं तु विज्ञाय जन्मबन्धाद्विमुच्यते ।

देहस्थः सर्व सत्त्वानां स जीयति शृणोति च ॥२२५

धर्माधर्मैरपृच्छ्यो देहे देहे व्यवस्थितः ।

स हृत्पंकजसंस्थस्तु अध उर्ध्वं प्रधावन्ति ॥२२६

धर्माधर्मैर्महापाशैर्गृहीतः स च प्रवर्तते ।

उर्ध्वमुच्छ्वसते यावत्प्राणाख्यस्तु समीरणः ॥२२७

तावत्प्राणस्तु विज्ञेयो यावन्नासाग्रमास्थितः ।

अत्रस्थं निष्कलं ब्रह्म यावन्न श्वसिति द्विज ॥२२८

श्वासेन हि समायोगादांकाशात्पुनरागतः ।

नासारन्त्रसमालीनस्तदा निष्फलमुच्यते ॥२२९

स जीय इति विख्यातः स विष्णुः स महेश्वरः ।

ध्यातव्या देवतास्तत्र क्रमेण पूरकादिषु ॥२३०

विष्णु-ब्रह्मेश्वरास्तेषु स्थानेषु स्थानविद्विजैः ।

नीलपङ्कजवत् श्याममासीनं नाभिमध्यतः ॥२३१

महात्मानं चतुर्बाहुं पूरके तु हरिं स्मरेत् ।

हृत्पद्मे कुम्भके ध्यायेत् ब्रह्माणं पङ्कजासनम् ॥२३२

रक्तेन्द्रीवरवर्णाभं चतुर्वक्त्रं पितामहम् ॥

रेचके शङ्करं ध्यायेत्प्लुटस्थं त्रिशूलिनम् ॥२३३  
 शुद्धस्कटिकसङ्काशं संसारार्णवतारकम् ।  
 एवं श्वसनसंरोधाद्देवतात्रयचिन्तनात् ॥२३४  
 अग्नि वाय्वंभसंयोगादन्तरं शुध्यते त्रिभिः ।  
 निरोधादभवद्वायुस्तस्मादग्निस्ततो जलम् ॥२३५  
 इति त्रिदेवतायोगात् शुद्धयन्तेऽन्तः पुनर्द्विजाः ।  
 व्याहृतिप्रणवोपेताः प्राणाद्यामास्तु षोडश ॥२३६  
 अपि भ्रूणहनं मासात्पुनन्त्यहरहः कृताः ।  
 प्रातरह्नि च सायं च पूर्णं ब्रह्मणोऽन्तिकम् ॥२३७  
 रेचकेन तृतीयेन प्राप्तुयात्परमं पदम् ।  
 न प्राणेनाप्यपानेन धातुं वेगेन रेचयेत् ॥२३८  
 प्रागुक्तेन प्रयोगेण मोचयेत्प्राणसंयमी ।  
 शरीरं च शिरोम्रीवा विद्वान् प्राणी च पदद्वयम् ॥२३९  
 सर्वाङ्गं निश्चलं धार्यमापूर्यसर्वनाडिका ।  
 संवृत्याङ्गानि सर्वाणि कूर्मवद्धानकृद् द्विजः ॥२४०  
 घट्टासतोऽचलाङ्गस्तु कुर्यादसुनिरोधनम् ।  
 कृत्वा सुसंयमं विद्वान्यधिवत्समुपस्पृशेत् ॥२४१  
 अन्तरं शुध्यते यस्यात्तस्मादाचमनं स्मृतम् ।  
 इत्युक्तः प्राणसंरोधो देवतात्रयसंयुतः ॥२४२  
 त्रिमात्र प्रणवस्तत्र ध्यातव्यः सवेयोगिभिः ।  
 स्मर्यमाणस्य यानस्य विश्रान्ति स्यादमातुके ॥२४३  
 तत्परं निष्फलं ज्ञानं तद्विदुर्गद्वचिन्तकाः ।

मृदुमध्यान्तसत्त्वाच्च स्थूलसूक्ष्मानुभावत्तः ॥२४४

त्रिविधं प्राणसंरोधं विदुस्तत्त्ववेदिनः ।

क्रियमाणो विशेषेण प्रत्याहारोऽयमुच्यते ॥२४५

सर्वं प्रागुक्तमेवास्य विशेषं च निबोधत ।

बाह्यं वायुं यथोत्थाय आकृष्य यच्छूनैः शूनैः ॥२४६

निरुन्ध्याद्विधिवद्योगी प्रत्याहारः स उच्यते ।

व्याहृत्याऽभिमुखीकृत्य रानि यत्र निरुध्य च ॥२४७

चिन्तयेन्निश्चलीकृत्य प्रत्याहारः स उच्यते ।

प्राणाद्या पायवः स्थूलाः सङ्कल्पाद्यास्तथाऽणवः ॥२४८

निरोद्धव्या दशाप्येते प्राणसंयमकारिभिः ।

वायुरेकोऽपि देहस्थः क्रियाभेदेन भिद्यते ॥२४९

प्रकर्षेणासमन्ताच्च नयनादिक्रियाः स्मृताः ।

भविष्या-ऽतीतकालेभ्यः कर्मभ्यश्चाशुसंयमी ॥२५०

सर्पानिलास्तथा रानि निरुन्ध्यैकत्र धारयेन् ।

स धीमान्प्रेदविद्विद्वान् स योगी ब्रह्मवित्तमः ॥२५१

स्थानं द्विजन्मा विधिषत्त्वजन्मभ्यस्य संयाति विघेः परस्य ।

पराशरोत्तैर्बहुभिः प्रकारैरुक्तो विधिः प्राणनिरोधनस्य ॥२५२

प्रत्याहारो विशेषस्तु प्रोक्तस्तथैव वित्तमाः ।

यदभ्यस्याप्नुयाद्ब्रह्म सर्वदानंदमव्ययम् ॥२५३

एतंस्तु पुनरावृत्तिः कदाचिद्विद्वद्विद्यते ।

संतुतिं नाप्नुयाद्येन शक्तिमूनुस्तदब्रवीन् ॥२५४

उक्तस्तु संयमः पूर्वं त्रिविधो मलनाशनः ।  
 निबोधत चतुर्थं तु ध्यानं प्रणववेधसः ॥२५५  
 विधिवत्प्रणवध्यानमेकचित्तम्तु योऽभ्यसेत् ।  
 ब्रह्माभ्येति स मुक्तात्मा स योगी योगिनां वरः ॥२५६  
 तद्ध्यानमसुसंरोधस्तु यं सम्यगिहोच्यते ।  
 तदन्यथानपेक्षं च चित्तक्षेपविचर्जितम् ॥२५७  
 चतुर्णामाश्रमाणां तु भेदमुक्त्वा पराशरः ।  
 अथाब्रवीद्द्विजा योगं शृणुष्वं पापनाशनम् ॥२५८  
 तच्छान्तं निर्मलं शुद्धं ध्यातव्यं हृत्सरोरुहै ।  
 तद्धेतयं तद्वरेण्यं च बीजं मुक्तैस्तदुच्यते ॥२५९  
 सच्चित्त्य व्याहृतीः सप्त प्रणवाद्यास्तदन्तकाः ।  
 सम्यगुक्तमिदं ध्यात्वा परब्रह्मणि योजयेत् ॥२६०  
 हुतमुक् पवनो जीवन्मयोऽप्येते हृदि स्थिताः ।  
 एतत्सर्वं तु चैकत्र संमरेत् ध्यानकृद्द्विजः ॥२६१  
 ईंकारवर्त्मनालेन उद्धृत्योपरि योजयेत् ।  
 योजयेत्सर्वमप्येतत्सिद्धयोगी स उच्यते ॥२६२  
 शून्यभूतस्तु यत्प्राणः श्वासं जीवेति संक्षितम् ।  
 यस्मादुत्पद्यते श्वासः पुनस्तत्र निवेशयेत् ॥२६३  
 आद्यं तं प्रणवं विद्वान् घटाकाशवदभ्यसेत् ।  
 स पश्येन्निर्मलं शुद्धं पुरुषं तमसंशयम् ॥२६४  
 अन्तर्बको बहिः (सम्यक्) सर्पन् सर्पवत्कुण्डलाकृतिः ।

ध्यातव्यः प्रणस्तत्र मध्यगं धाम संस्मरेत् ॥२६५  
 स मात्रा स च बिन्दुश्च तदेव परमं पदम् ।  
 तदभ्यस्यं हि तज्ज्ञात्वा स तस्मिन्नेव लीयते ॥२६६  
 प्रथमं प्रणवोऽज्यक्त स्यक्षरः परमाक्षरः ।  
 सर्वज्ञत्रयवाप्नोति प्राप्नोति परमं पदम् ॥२६७  
 पञ्चमं तु पदं विद्वान् तत्तार्थमयतिष्ठते ।  
 नादबिन्दुसमभ्यासात् प्राप्नुयात्परमं पदम् ॥२६८  
 पदं प्राप्य निवर्तन्ते धाम स्वं स्थान्तमेव च ।  
 सर्वेऽप्यमातृका वर्णाः पुनस्तत्र विशन्ति च ॥२६९  
 वर्णांरमा सन्नवर्णस्तु समस्तवर्णजीवनम् ।  
 न दीर्घं नापि ह्रस्वं च न घोषं नाप्यघोषवत् ॥२७०  
 न विसर्गं न तद्धीनं नानुस्वारविपर्ययः ।  
 ह्रद्याकाशनिविष्टं यदचलत्वं प्रयाति चेत् ॥२७१  
 ज्ञानयोगे त्रिषष्टिर्वै विभ्रतीत्यक्षराणि तु ।  
 तत्पदं योगिभिर्धेयं व्योम यस्य तु मध्यगम् ॥२७२  
 व्योमान्तं सततं ध्येयमनन्ताकाशमव्ययम् ।  
 चिन्तयामो ययं यद्वै धियो यो नः प्रचोदयात् ॥२७३  
 एतद्ब्रह्मा त्रयीरूपमेतद्ब्रह्मर्षयोमयम् ।  
 एषा सा परमा मुक्तिर्गत्वा यां न निवर्तते ॥२७४

आदाय चार्धं प्रणवं च वाणं सन्ध्याय चात्मानमोक्ष्य लक्ष्यम् ।  
 स तद्विधिं तत्र निवेश्य योगी प्राप्नोति नित्यं स तु मुक्तिरामः ॥२७५

उद्देशतः किञ्चिदवादि विद्वन् ध्यानं विधेयत्वनिपूर्वकस्य ।

सर्वं विधानं विधियञ्च सम्यक् वक्तुं समर्थो विधिरैव चास्य ॥२७६

इति प्रणवध्यानविविधवर्णनम् ।

अथ ध्यानयोगवर्णनम् ।

अथान्यत्सम्बक्ष्यामि विधानं ध्यानकर्मणाम् ।

नानामतोदितं कार्यं परब्रह्माभिकारकम् ॥२७७

कर्मात्मकस्त्विह प्रोक्तः कः परात्मा परं च किम् ।

वक्ष्यमाणमिदं विप्राः ध्रुणुष्वं भक्तितत्पराः ॥२७८

स्वीयेन कर्मणा येषां शरीरग्रहणं भवेत् ।

कर्मात्मानस्त उच्यन्ते निर्गता परमात्मनः ॥२७९

यं न स्पृशन्ति दुःखाद्यास्तथा सत्त्वादयो गुणाः ।

कादाचित्कं न कर्मास्ति परमात्मा ततः परम् ॥२८०

निष्ठा-नाशौ न विद्येते गुणा यं न स्पृशन्ति हि ।

अज.सन् कथमेतस्मिंलोके जातोऽभिधीयते ॥२८१

स्यात्मानमेव चात्मानं वेष्टयेत्कोशकारवन् ।

कर्मणैव प्रजातस्तु बाह्यस्वार्थविमोहितः ॥२८२

तस्माद्विजयेत्कर्म स्वर्गादिरपि साधकम् ।

संसरेत्तवर्गतः कर्मक्षये स तु पुनर्यतः ॥२८३

सीमैषा परमा विद्वन् ब्रह्मणः पात-मोक्षयोः ।

कर्मस्थानमियं धात्री कृतमत्रोपमुज्यते ॥२८४



वैदिकः कर्मयोगश्च दिवोऽप्यावर्तकः स तु ।  
 योनेहावृत्तिकृत्तं च ज्ञानयोगमतोऽभ्यसेन् ॥२८५  
 हृदि निःसृतनाडीना सहस्राणा द्विसप्ततिः ।  
 तन्मध्यावस्थितं तेजः शशिप्रभं विभाति यत् ॥२८६  
 तन्मध्यमगुले ह्यास्मा त्रिधूमाचलदीपवत् ।  
 स ज्ञातव्यो त्रिदित्या तं संसरेन्न पुनर्यतः ॥२८७  
 पुत्रीभूतमधोरक्त्रं तद्दधृत्पद्मं व्यवस्थितम् ।  
 नाभ्युत्थोदानवातेन कृत्रोर्ध्वास्यं विकासयेत् ॥२८८  
 विकाम्य तस्य मध्यस्थमचलं दीपशितेव तत् ।  
 तद्दूर्ध्वं निःसरन्लुध्रं सूक्ष्मं तत्तु विचिन्तयेत् ॥२८९  
 ललनाद्वारनिर्गच्छन्योगी मूर्ध्नि तु चिन्तयेत् ।  
 तावत्तु चिन्तयेद्याध्निरालम्ब्य तमृच्छति ॥२९०  
 निरालम्बं यदा ध्यानं कुर्याणो निश्चलो भवेत् ।  
 तदा तदुच्यते ब्रह्म स योगी ब्रह्मविस्तमः ॥२९१  
 तत्पदं च पदातीतं तत्प्राप्तौ मुक्त उच्यते ।  
 इति ध्यानं विधातव्यं मुक्तिकृत्सद्द्विजैर्द्विजाः ॥२९२  
 भूतानामात्मभूतस्य तानि सम्यक् प्रपश्यतः ।  
 विमुहान्यमरा मार्गं पदं किमपदस्य तु ॥२९३  
 यो न तिष्ठति नो याति न किञ्चित्सर्व एव यः ।  
 अवाग्यो घाह्मयो यश्च सकलश्रुतिरश्रुतिः ॥२९४  
 योऽप्यन्तिके दवीयाश्च योऽस्ति नास्ति स्वरूपकः ।  
 यस्य तत्त्वस्य संप्रित्तिः स तस्मिन्नेव लीयते ॥२९५

यस्तु सर्वाणि भूतानि पश्यत्यात्मगतानि तु ।  
 आत्मानं तेषु सर्वेषु ततो यो न विरज्यते ॥२६६  
 सर्वभूतात्मभूतात्मा यत्र पश्यति धीमतिः ।  
 शोक-मोहौ च किं तस्य ह्येकत्वमनुपश्यतः ॥२६७  
 समाप्तावुत्तमादिर्यत्मन्त्र-ब्राह्मणयोर्द्विजाः ।  
 ॐ ह्यं ब्रह्मेति चान्नायो दर्शकस्त्रेप वेधसः ॥२६८  
 आत्मज्ञाने बहुपाया उक्तास्तद्धि मनीषिभिः ।  
 तैस्तैः सर्वैः स मन्तव्यो ज्ञातव्यश्चोपदेशतः ॥२६९  
 न वेदैर्ज्ञेयता तस्य न शास्त्रैर्वहुभिः श्रुतैः ।  
 न यज्ञैर्न जपैर्होमैः शौचैर्वाग्नितायापि च ॥३००  
 गुरूपदेशतो भक्त्या सम्यगभ्यासतस्तथा ।  
 ज्ञातव्यः परमात्मेवं भक्तिश्रुतत्परेण च ॥३०१  
 ध्यानज्ञानस्य तद्भक्तैर्यत्र विभ्रमते मनः ।  
 तदेवोपादिशेत्तस्य वस्तु ज्ञानोपदेशकम् ॥३०२  
 मनो यस्य निपण्णं तु जायते यत्र वस्तुनि ।  
 स तु ध्यायेत्तदैवति यावत्स्यात्ध्यानसन्ततिः ॥३०३  
 तत्र ध्याने तु संलग्ने हरावात्मानि वा पुनः ।  
 ध्यानं योजयते योगी तं निरालम्बतां नयेन् ॥३०४  
 योगशास्त्रेषु यत्प्रोक्तं रहस्यारण्यकेषु च ।  
 तत्तथोपदिशेद्ध्यानं ध्यायेदपि तथैव च ॥३०५  
 प्रवदन्त्यन्यथा केचित् शुभादिभेदतस्तत्रतः ।  
 त्रैविध्यं विदुषो विद्वन् सिद्धिर्दं च परापरम् ॥३०६

चित्तजं श्रुतिजं भावं भावनाभवमेव च ।  
 अविद्यमात्मना सिध्येद्योगाभ्यासफलप्रदम् ॥३०७  
 आत्मशक्तिः शिवश्चेति चैतन्यमिति संज्ञितम् ।  
 उत्तरोत्तरवैशिष्ट्याद्योगाभ्यासः प्रवर्तते ॥३०८  
 स एको निश्चलीभूतकर्मात्मा यमुपार्जितः ।  
 न विभेति स एकाकी परेषा जायते भयम् ॥३०९  
 तदेवं गतिभिर्ब्रह्माभ्यानं यस्यास्ति योगिनः ।  
 स विरोत्तमजं शान्तं कदाचिरसंसरेन्न तु ॥३१०  
 श्वम्बफश्च चतुर्वक्त्रश्चतुर्बाहुः परेश्वरः ।  
 एक एव मरेशो वै तज्ज्ञैस्त्रिषेति कीर्त्यते ॥३११  
 नाभिमध्यस्थितं विद्धि यस्तु विद्वन् सुनिर्मलम् ।  
 रविवद् भ्राजमानं तु काशद्रश्मिगणैर्द्विज ॥३१२  
 चिन्तयेन् हृदि मध्यस्थं दीप्तिमत्सूर्यमण्डलम् ।  
 तस्य मध्यगतः सोमो घट्टिध्वन्प्रशिखो महान् ॥३१३  
 तन्मध्ये तु परं सूक्ष्मं तद्व्यायेद्योगमात्मनः ।  
 तन्मध्ये चिन्तयेदेतद्वक्ष्यमाणक्रमेण तु ॥३१४  
 विन्दुमध्यगतो नादो नादमध्यगतो ध्वनिः ।  
 ध्वनिमध्यगतस्तारस्तारमध्यगतोऽशुमान् ॥३१५  
 तस्यमध्यगतं ब्रह्म शान्तं तस्य तु मध्यगम् ।  
 परं पदं तु यच्चान्तं सम्यग्ब्रह्म योजयेत् ॥३१६  
 जीवात्मा कायमध्यस्थस्तत्रापि देहवर्जितः ।  
 वक्त्र-नासापुटस्थस्तु भुञ्जीत विषयान् प्रभु ॥३१७

इत्येतद्ध्यानमार्गं तु चदन्ति क्वयो द्विजाः ।

केचिदन्येऽन्यथा ब्रूयु रूपं ब्रह्मविदो विधेः ॥३१८

न नामापि हि दुःखस्य शर्म यत्र निरन्तरम् ।

ब्रह्मणो रूपमानन्दं तन्मुक्ताबुपलभ्यते ॥३१९

सर्वव्यापी य एवस्तु यत्रानन्तश्च भाबुरुः ।

स मन्तव्योऽनरो ह्यात्मा सर्वं व्याप्य च यः स्थितः ॥३२०

एकं व्योम यथानैकं गृहाद्यैरुपलक्ष्यते ।

एको ह्यात्मा तथानैको जलागारेषु सूर्ययत् ॥३२१

विश्वरूपो मणिर्यद्वत् वर्णान् गृहात्यनेकशः ।

उपाधितस्तथात्मैको नानादेहेषु कर्मतः ॥३२२

कलाकाष्ठादिरूपेण बतमानादिभेदकृत् ।

एकः कालो यथा नाना तथात्मैकोऽप्यनेकधा ॥३२३

देहमध्यस्थितं देवं यो न ध्यायति मूढधीः ।

सोऽङ्गुलव्यं मधु त्यक्त्वा क्लेशायाशो गिरिं व्रजेत् ॥३२४

यस्तीर्थयानं जप-यज्ञ-होमान् कुर्याद्विपुष्पान् न च वेत्ति विष्णुम् ।

स मांसपिण्डं परिहृत्य दूरादहं प्रधावेदधिरहं पृष्ठम् ॥३२५

सम्भ्राम्यते विधिवशात्करणोपचक्रे

पापेन कुम्भ इव धातृखरेण नूतम् ।

आरोप्य स्वार्थघृतदण्डमुत्प्रेन पूर्णं

ऋत्पद्मसंस्मृतिवत्त्वमतिप्रहीण ॥३२६

द्वौ मार्गावात्मनो द्वेयौ ब्राह्मणब्रह्मचिन्तकौ ।

अभियाति विदित्वा यौ सायुज्यं परवेधसः ॥३२७

विद्वान् धूमादिरेको वै द्वितीयम्वर्चिरादिकः ।  
 प्रत्येतव्यौ प्रयत्नेन यत्प्रवीतिर्न जायते ॥३२८  
 धूपः क्षपाऽसितः पक्षो दक्षिणायनमेव च ।  
 लोकः पित्र्यश्च सोमश्च मातरिश्चानुर्कर्मणम् ॥३२९  
 यथा धातृक्रमादेते सम्भवन्ति समाश्रिताः ।  
 अर्चिर्दिनं सितः पञ्चस्तथाचैवोत्तरायणम् ॥३३०  
 देवलोकस्तथा सूर्यो विद्युतश्च क्रमादिमान् ।  
 मानसाः पुरुषा यान्ति जानन्तो ब्रह्मलोकताम् ॥३३१  
 यत्र याताः पुनर्नेह संसरन्ति द्विजाः कचित् ।  
 मार्गद्वयमिदं धीमन्मन्तव्यं सततं द्विजैः ॥३३२  
 ज्ञानेन येन विज्ञातुं शान्-मोक्षौ च सिध्यत ।  
 गृह्णारण्यस्य-मिश्रूणां त्रयाणामपि धीमताम् ॥३३३  
 ज्ञानमभ्यस्यमानं तु तथा दहति संसृतिम् ।  
 शानं समानमेतद्व इति ब्रह्मविदो विदुः ॥३३४  
 यथा दहति चैधासि समिद्धश्चागुशुभ्रणिः ।  
 तस्मान्मार्गाद्वेनापि आत्मा ज्ञेयो द्विजोत्तमैः ॥३३५  
 ये न जानन्ति ते यान्ति दम्भशूकादियोगिषु ।  
 यत्र भट्टा कुमित्रं वा कीटत्वमथ वाऽऽनुयुः ॥३३६  
 ण्ताभ्योऽप्यधमास्तेव जायन्ते ते कुयोनिषु ।  
 विद्याविद्ये च मन्तव्ये ते हेतू र्गर्ग-मोक्षयोः ॥३३७  
 विद्या मोक्षप्रदा च स्यादविद्या मृत्युजन्मकृत् ।  
 ज्ञानयोगस्तथा कर्म विद्याविद्ये स्मृते बुधैः ॥३३८

अपवर्गाय द्वे चापि कर्म कृत्वा निवेदयेत् ।  
 कर्मापि क्रियमाण वै निरपेक्ष तु मोक्षकृन् ॥३३६  
 विष्णवे गुरवे वापि कर्म कृत्वा निवेदयेत् ।  
 आत्मन फलमिच्छस्तु यत्कर्म कुर्वते नर ॥३४०  
 तेनैव चाद्भुतप्राप्तिस्तेनान्यद्वीपजायते ।  
 हरिर्वा नित्यमभ्यस्य सर्वभावन सद्द्विजै ॥३४१  
 तदभ्यासादवाप्नोति मृत्यो हृष्टे हरिस्मृतिम् ।  
 एक एव हि स ध्येयो यत्पर नास्ति हि ज्वन ॥३४२  
 विराट् सम्प्राट् महानेप सदा ध्येयो जितेन्द्रियै ।  
 महान्त पुरुष देवं रविरूप तम परम् ॥३४३  
 ब्रह्मचित्सोऽतिमृत्यु वै प्रयात्येवानिवर्तकम् ।  
 एष एव नृणां पन्था ब्रह्मा वै यमुपासते ॥३४४  
 ये ये जन्मस्वनेषु विधिवच्चैकचेतस ।  
 न भक्त्या नापि योगेन नाभ्यासैर्न जन्मना ॥३४५  
 ब्रह्माप्तिर्जायते पुसा किन्तु स्याद्भूरिजन्मभि ।  
 यद्देवा सन्तताभ्यासाभ ब्रह्म प्रतिपेदिरे ॥३४६  
 तन्मनुष्यै कथं प्राप्यमेवेनैव च जन्मना ।  
 ज्ञानाभ्यासैर्न तद्ब्रह्म कृतैर्दमस्वरूपकै ॥३४७  
 न प्राप्यते पर ब्रह्म न वाप्यात्मनमुद्रया ।  
 बहुभि किमुपायैस्तु प्रोक्तैर्वा ग्रन्थविस्तरै ॥३४८  
 एकमेवाभ्यसेत्तत्त्वं येन चित्तं वसेद्भरि ।

एकैव भावशुद्धिस्तु यथा स्यात्क्रियते तथा ॥३४६  
 अन्यत्कुर्यान्मनस्वन्यद्विरुद्धमिति सर्वथा ।  
 भाव स्थगाय मोक्षाय नरकायापि स स्मृत ॥३४७  
 तस्मात्त शोभयेद्यन्नच्छुचि स्याद्भावशुद्धित् ।  
 एकस्या पुन भक्तारौ हृदयोपरि योपित ॥३४८  
 भिन्नभावौ भवेता तौ भावमेव विशोभयेत् ।  
 परिष्वक्तो नरो नाया द्वाद्मेति यथा युता ॥३४९  
 तत्पक्षोऽपि सक्रामो तां भावहीनो न कामयेत् ।  
 एको भावो हरौ कार्यो यथाऽसौ निश्चलो भवेत् ॥३५०  
 तद्बुद्ध्या पञ्चता गच्छन् स्वर्गं मोक्षमनाप्नुयात् ।  
 त्यक्त्वापि विनिधान् भोगान् तपस्तप्त्वातिदुष्करम् ॥३५१  
 मृत्युकाले मतिर्या स्यात्तां गतिं याति मानव ॥

योगप्रयोग कथित समासाख्यानस्य मार्गो बहुधाऽभ्यधायि ।

योऽभ्यस्यमानस्तु भवेद्विधानात् प्रज्ञाप्तिकृद्यश्च तथा द्विजानाम् ॥३५२

प्रत्याहरथ योगश्च ध्यानं विस्तरतस्तथा ।

उक्त द्विजहितार्थाय प्रज्ञावाप्तिकरं तथा ॥३५३

अद्भुत्यद्भुतयोर्नादं क्षणं स्यात्तद्बुद्धयं शुद्धिं ।

द्वाभ्यां चैव सवस्ताभ्यां निमेषोऽपि लब्धयम् ॥३५४

तै पञ्चदशभिः काष्ठा साश्च त्रिंशत्कला स्मृता ।

द्वाविंशतिप्रमाणस्तु घटिकेति प्रकीर्तित ॥३५५

तद्बुद्धयं च मुहूर्तं स्यात्तत्त्रिंशत् क्षणा दिनम् ।

तत्पञ्चदशकं पक्षस्तद्बुद्धयं मास उच्यते ॥३५६

तद्द्वयं श्रुतुरित्युक्तं तद्वयं काल उच्यते ।  
 तत्सार्धमयनं प्रोक्तं तद्द्वयं चत्सरस्तथा ॥३६०  
 पञ्चभिस्तेयुगं प्रोक्तं तद्द्वादशकपष्टिकम् ।  
 पष्टिकःपष्टिगुणितो चास्फतेयुगमुच्यते ॥३६१  
 तद्द्वयं तु कलिःप्रोक्तस्तद्द्वयं द्वापरौ भवेत् ।  
 कलित्रयेण त्रेता स्यात्कलिकलिचतुष्टयम् ॥३६२  
 पष्टिघ्न सोऽपि कालज्ञैःप्रजानाथयुगः स्मृतः ॥३६३  
 कलिभिर्दशभिर्ब्रह्मन् ! चतुर्युगमिति स्मृतम् ।  
 चतुर्युगसहस्रेण ब्रह्माहःकल्प उच्यते ॥३६४  
 अष्टयुगा भवेत्सन्ध्या सायंसन्ध्या च तावती ।  
 तदेकमस्ततिगुणं मन्वन्तरमिति स्मृतम् ॥३६५  
 मन्वन्तरद्वयेनेह शक्रयातः प्रकीर्तितः ।  
 एतन्मानेन वर्षाणां शतं ब्रह्मक्षयः स्मृतः ॥३६६  
 ब्रह्मक्षयशतेनापि विष्णोरेकमहर्भवेत् ।  
 एतद्वयसमानेन शतवर्षेण तत्क्षयः ॥३६७  
 तत्क्षयस्त्रिगुणोष्टाभी रुद्रस्य त्रुटिरुच्यते ।  
 एवमाब्दिप्रमाणेन प्रयातोऽब्दशते द्विजाः ।  
 रुद्रश्चात्मनि लीयेत निष्कलंकं निरामयम् ॥३६८  
 निष्प्रकर्षं जगन् व्योम व्योमासीतं परं पदम् ।  
 तन्निदिध्याससंग्रह्या स तत्रैव विलीयते ॥३६९  
 परम्पराणां परमं विचिन्त्य परात्परं दिष्टपदादतीतम् ।  
 क्षणादिकालं क्रमशोऽब्दमेव प्रयाति तं तत्पदमव्ययं च ॥३७०



तमात्मरूपं परमव्ययं च त्रिश्वंश्वरं चित्तभरं प्रपद्ये ।  
 शान्तिं च गत्वा विधिना च योगी प्रयाति तद्वै पदमव्ययं च ॥३७१  
 कालज्ञानेन योगोऽयं योगिभिर्ध्यानकारिभिः ।  
 मुमुक्षुभिः सदा ह्येयं निरालम्ब्य परं पदम् ॥३७२  
 पराशरोदितं शास्त्रं चतुर्वर्णाग्रमाय च ।  
 वेदितव्यं प्रयत्नेन सदा ध्येयं द्विजातिभिः ॥३७३  
 दश द्वादश चाष्टौ वा सप्त पट् पंच वा त्रयः ।  
 दैविके पैतृके धापि श्लोकाः श्राव्या द्विजातिभिः ॥३७४  
 श्रावयिष्यति यः श्राद्धे ब्राह्मणान्भक्तितत्परः ।  
 प्राश्यन्ति पितरस्तस्य तृप्तिं वै शाश्वतीं द्विजाः ॥३७५  
 य इदं शृणुयाद्वापि श्रावयेत्पाठयेदपि ।  
 स प्रथ्वस्ततमस्तोमो ब्रह्मलोकमवाप्नुयात् ॥३७६  
 त्रिभिः श्लोकसहस्रैस्तु त्रिभिर्वृत्तशतैरपि ।  
 पराशरोदितं धर्मशास्त्रं प्रोवाच सुव्रतः ॥३७७  
 नमोऽस्तु याज्ञवल्क्याय मनवे विष्णवे नमः ।  
 गौतमाय वसिष्ठाय नमः पाराशराय च ॥३७८  
 इति श्री बृहत्पाराशरे धर्मशास्त्रे सुव्रतप्रोक्तायां स्मृत्या  
 योगनिरूपणो नाम द्वादशोऽध्यायः ।

॥ इति बृहत्पाराशरस्मृतिः समाप्ता ॥

ॐ तत्सत्



॥ अथ ॥

# -॥ लघुहारीतस्मृतिः ॥-

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

अथ वर्णाश्रमधर्मवर्णनम् ।

ये वर्णाश्रमधर्मस्थास्ते भक्ताः केशवं प्रति ।  
इतिपर्वं त्वया प्रोक्तं भूर्भुवःस्वर्द्धिजोत्तमाः ॥१  
वर्णानामाश्रमाणाञ्च धर्मान्नो ब्रूहि सत्तम ! ।  
येन सन्तुष्यते देवो नारसिंहः सनातनः ॥२  
अत्राहं कथयिष्यामि पुरानृत्तमनुत्तमम् ।  
ऋषिभिः सह संवादं हारीतस्य महात्मनः ॥३  
हारीतं सर्वधर्मज्ञमासीनमिव पावकम् ।  
प्रणिपत्याब्रुवन् सर्वे मुनयो धर्मकाङ्क्षिणः ॥४  
भगवन् ! सर्वधर्मज्ञ ! सर्वधर्मेप्रवर्त्तक ! ।  
वर्णानामाश्रमाणाञ्च धर्मान्नो ब्रूहि भार्गव ! ॥५  
समासाद्योगशास्त्रञ्च विष्णुभक्तिकरं परम् ।  
एतच्चान्यच्च भगवन् ! ब्रूहि नः परमो गुरुः ॥६

हारीतस्तानुवाचाय तैरेवं चोदितो मुनिः ।  
 शृण्वन्तु मुनयः ! सर्वे ! धर्मान् वक्ष्यामि शाश्वतान् ॥७  
 वर्णानामाश्रमाणाञ्च योगशास्त्रञ्च सत्तमाः ! ।  
 सन्धार्य्य मुच्यते मर्त्यो जन्मसंसारबन्धनात् ॥८  
 पुरा देवो जगत्सृष्टा परमात्मा जलोपरि ।  
 सुप्वाप भोगिपर्यङ्के शयने तु श्रिया सह ॥९  
 तस्य सुप्तस्य नाभौ तु महत् पद्ममभूत् किल ।  
 पद्ममध्येऽभवद् ब्रह्मा वेदवेदाङ्गभूषणः ॥१०  
 स चोक्तो देवदेवेन जगत्सृज पुनः पुनः ।  
 सोऽपि सृष्ट्वा जगत् सर्वं सदेवामुरमानुषम् ॥११  
 यज्ञसिद्धयर्थमनघान् ब्राह्मणान्मुखतोऽसृजत् ।  
 असृजत् क्षत्रियान् धाक्षो वैश्यान्प्युरुदेशतः ॥१२  
 शूद्राश्च पादयोः सृष्ट्वा तेपञ्चैवानुपूर्वशः ।  
 यथा प्रोवाच भगवान् ब्रह्मयोनिं पितामहः ॥१३  
 तद्वचः संप्रवक्ष्यामि शृणुत द्विजसत्तमाः ! ।  
 धन्यं यशस्यमायुष्यं स्वर्ग्यं मोक्षफलप्रदम् ॥१४  
 ब्राह्मण्यां ब्राह्मणेनैवमुत्पन्नो ब्राह्मणः स्मृतः ।  
 तस्य धर्मं प्रवक्ष्यामि तत्सौम्यं दंशमेव च ॥१५  
 कृष्णसारो मृगो यत्र स्वभावेन प्रवर्तते ।  
 तस्मिन्देशे वसेद्धर्मः सिद्ध्यति द्विजसत्तमाः ! ॥१६  
 पट् कर्माणि निजान्याहुर्ब्राह्मणस्य महात्मनः ।  
 तैरेव सततं यस्तु वर्तयेत् सुखमेधते ॥१७

अध्यापनं चाध्ययनं याजनं यजनं तथा ।  
 दानं प्रतिग्रहश्चेति षट् कर्माणीति चोच्यते ॥१८  
 अध्यापनञ्च त्रिविधं धर्मार्थमृष्यकारणात् ।  
 शुश्रूपाकरणञ्चेति त्रिविधं परिकीर्तितम् ॥१९  
 एषामन्यतमाभावं वृषाचारो भवेद्द्विजः ।  
 सत्रं विद्या न दातव्या पुरुषेण हितैषिणा ॥२०  
 योग्यानध्यापयेन्छिष्यानयोग्यानपि वर्जयेन् ।  
 विदिताम् प्रतिगृहीयाद्गृहे धर्मप्रसिद्धये ॥२१  
 वेदञ्चैवाभ्यसेन्नित्यं शुचौ देशे समाहितः ।  
 धर्मशास्त्रं तथा पाठ्यं ब्राह्मणैः शुद्धमानसैः ॥२२  
 वेदवित्पठितव्यं च श्रोतव्यञ्च दिवा निशि ।  
 स्मृतिहीनाय विप्राय श्रुतिहीने तथैव च ।  
 दानं भोजनमन्यञ्च दत्तं कुलविनाशनम् ॥२३  
 तस्मात् सर्वप्रयत्नेन धर्मशास्त्रं पठेद्द्विजः ।  
 श्रुतिस्मृती च विप्राणां चक्षुषी देवनिर्मिते ।  
 फाणस्तत्रैकया हीनो द्वाभ्यामन्यः प्रकीर्तितः ॥२४  
 गुरुश्रुश्रूषणञ्चैव यथान्यायमतन्द्रितः ।  
 सार्यं प्रातरुपासीत विवाहार्मि द्विजोत्तमः ! ॥२५  
 सुस्नातस्तु प्रउर्वीत वैश्वदेवं दिने दिने ।  
 अतिथीनागताञ्छक्त्या पूजयेदविचारतः ॥२६  
 अन्यानभ्यागतान् विप्राः ! पूजयेच्छक्तितो गृही ।  
 स्वद्वारनिरतो नित्यं परद्वारविवर्जितः ॥२७

कृतहोमस्तु भुञ्जीत सायं प्रातरुदारधीः ।

सत्यवादी जितक्रोधो नाधर्मं वर्त्तयेन्मतिम् ॥२८

स्यकर्मणि च संप्राप्ते प्रमादान्न निवर्त्तते ।

सत्यां हिता वदेद्वाचं परलोकहितैपिणीम् ॥२९

एष धर्मः समुद्दिष्टो ब्राह्मणस्य समासत ।

धर्ममेव हि यः कुर्यात् स याति ब्रह्मणः पदम् ॥३०

इत्येष धर्मः कथितो मयायं पृष्ठो भवद्भिस्त्वखिलाघहारी ।

वदामि राज्ञामपि चैव धर्मान् पृथक् पृथग्बोधत विप्रवर्ण्याः ॥३१

इति हारीते धर्मशास्त्रे प्रथमोऽध्यायः ।

— ❀ ❀ —

द्वितीयोऽध्यायः ।

अथ चतुर्वर्णानां धर्मवर्णनम् ।

क्षत्रादीनां प्रयक्ष्यामि यथावदनुपूर्वशः ।

येषु प्रवृत्ता विधिना सर्वे यान्ति परां गतिम् ॥१

राज्यस्यः क्षत्रियश्चापि प्रजाधर्मेण पालयन् ।

कुर्यादप्ययनं सम्यग्यज्ञेयज्ञान् यथाविधि ॥२

दद्यादानं द्विजातिभ्यो धर्मबुद्धिसमन्वितः ।

स्वभाष्यान्निरतो नित्यं षड्भागार्हः सदा नृपः ॥३

नीतिशास्त्रार्थकुशलः सन्धिविग्रहतत्त्ववित् ।

देवब्राह्मणभक्तश्च पितृकार्यपरस्तथा ॥४

धर्मेण यजनं कार्यमधर्मपरिवर्जनम् ।  
 उत्तमां गतिमाप्नोति क्षत्रियोऽप्येवमाचरन् ॥५॥  
 गोरक्षां कृषिवाणिज्यं कुर्याद्वैश्यो यथाविधि ।  
 दानं देयं यथाशक्त्या ब्राह्मणानाञ्च भोजनम् ॥६॥  
 दध्ममोहयिनिर्मुक्तस्तथा वागनसूयकः ।  
 स्वदारनिरतो दान्तः परदारविवर्जितः ॥७॥  
 धनैर्विप्रान् भोजयित्वा यज्ञकाले तु याजकान् ।  
 अग्रभुज्यञ्च यत्नेन धमेष्वादेहपातनान् ॥८॥  
 यज्ञाध्ययनदानानि कुर्यान्नित्यमतन्द्रितः ।  
 पितृकार्यपरश्चैव नरसिंहार्धनापरः ॥९॥  
 एतद्वैश्यस्य धर्मोऽयं स्वधर्ममनुतिष्ठति ।  
 एतदाचरते योहि स स्वर्गां नात्र संशयः ॥१०॥  
 वर्णग्रयस्य श्रुश्रूषा कुर्याच्छूद्रः प्रयत्नतः ।  
 दासवद्ब्राह्मणानाञ्च विशेषेण समाचरेत् ॥११॥  
 अयाचितप्रदाता च कष्टं घृत्यर्थमाचरेत् ।  
 पाकयज्ञविधानेन यजेद्देवमतन्द्रितः ॥१२॥  
 शूद्राणामधिकं कुर्यादर्शनं न्यायवर्तिनाम् ।  
 धारणं जीर्णवस्त्रस्य विप्रस्योच्छिष्टभोजनम् ।  
 स्वदारेषु रतिश्चैव परदारविवर्जनम् ॥१३॥  
 इत्थं कुर्यात् सदा शूद्रो मनोवाक्पायकर्मभिः ।  
 स्थानमैन्द्रमवाप्नोति नष्टपापः सुपुण्यकृत् ॥१४॥

वर्णेषु धर्मा विविधा मयोक्ता यथातथा ब्रह्ममुपेरिताः पुरा ।

शृणुध्वमत्राश्रमधर्ममाद्यं मयोच्यमानं क्रमशो मुनीन्द्राः ॥१६

इति हारीते धर्मशास्त्रे द्वितीयोऽध्यायः ।

-०००-

तृतीयोऽध्यायः ।

अथ ब्रह्मचर्याश्रमधर्मवर्णनम् ।

उपनीतो मानवको यसेद्गुरुकुलेषु च ।

गुरोः कुले प्रियं कुर्यान् कर्मणा मनसा गिरा ॥१-

ब्रह्मचर्यमध्यास्या तथा बह्वे रूपासना ।

उदकुम्भान् गुरोर्दद्याद्रोप्रासश्च धनानि च ।

कुर्यादध्ययनञ्चैव ब्रह्मचारी यथा विधि ।

विधिं त्यक्त्वा प्रकुर्व्वाणो न स्वाध्यायफलं लभेत् ॥२-

यः कश्चित् कुस्ते धर्मं विधिं हित्वा दुरात्मवान् ।

न तत्फलमवाप्नोति कुर्व्वाणोऽपि विधिभ्युतः ॥३-

तस्मद्वेदव्रतानीह चरेत् स्वाध्यायसिद्धये ।

शौचाचारमशेषं तु शिक्षयेद् गुरुसन्निधौ ॥४-

अजिनं दण्डकाष्ठञ्च मेललाञ्छोपवीतकम् ।

धारयेदप्रमत्तञ्च ब्रह्मचारी समाहितः ॥५-

सायं प्रातश्चरेद्भैक्षं भोज्याय संयतेन्द्रियः ।

आचम्य प्रयतो नित्यं न कुर्यादन्तर्धावनम् ।

छत्रञ्चोपानहञ्चैव गन्धमाल्यादि वर्जयेत् ।

नृत्यगीतमथालापं मैथुनञ्च विवर्जयेत् ॥६

हस्त्यभारोहणञ्चैव संत्यजेत् संत्यतेन्द्रियः ।

साध्योपास्ति प्रकुर्वीत ब्रह्मचारी व्रतस्थितः ॥७

अभिवाद्य गुरोः पादौ सन्ध्याकर्मावसानतः ।

तथा योगं प्रकुर्वीत मातापित्रोश्च भक्तितः ॥८

एतेषु त्रिषु नष्टेषु नष्टाः स्युः सर्वदेवताः ।

एतेषां शासने तिष्ठेद्ब्रह्मचारी विमत्सरः ॥९

अधीत्य च गुरोर्भेदान् वेदौ वा वेदमेव वा ।

गुरुवे दक्षिणां दद्यात् संयमी ग्राममावसेत् ॥१०

यस्यैतानि सुगुमानि जिह्वोपस्थोदरं करः ।

संन्याससमयं कृत्वा ब्राह्मणो ब्रह्मचर्य्यया ॥११

तस्मिन्नेव नयेत् कालमाचार्य्यं यावदायुषम् ।

तदभावे च तत्पुत्रे तच्छिष्ये वाधवा कुलैः ॥१२

न विवाहो न संन्यासो नैष्टिकस्य विधीयते ॥१३

इमं योविधिमास्थाय त्यजेद्देहमतन्त्रितः ।

नेह भूयोऽपि जायेत ब्रह्मचारी बृहन्नतः ॥१४

यो ब्रह्मचारी विधिना समाहितश्चरेत् पृथिव्यां गुरुसेवने रतः ।

संप्राप्य विद्यामतिदुर्लभां शिवां फलञ्च तस्याः सुखं नु विन्दति ॥१५

॥ इति हारीते धर्मशास्त्रे तृतीयोऽध्यायः ॥



चतुर्थोऽध्यायः ।

अथ गृहस्थाश्रमधर्मवर्णनम् ।

गृहीतवेदाभ्ययनः श्रुतशास्त्रार्थतत्त्ववित् ।  
 असमानार्पणोत्रा हि कन्यां सभ्रातृकां शुभाम् ॥१  
 सवर्णाययवसंपूर्णां सुपुत्तामुद्वेष्टरः ।  
 ब्राह्मेण विधिना कुर्व्यात् प्रशस्तेन द्विजोत्तमः ॥२  
 तथान्ये बह्व्यः प्रोक्ता विवाहा यर्णधर्मतः ।  
 औपासनश्च विधिवदाहत्य द्विजपुद्गवाः ! ॥३  
 सायं प्रातश्च जुहुयात् सर्वक्रात्मतन्द्रितः ।  
 स्नानं काप्यं ततो नित्यं दन्तधावनपूर्वकम् ॥४  
 उपकाले समुत्थाय कृतरौचो यथाविधि ।  
 मुरे पर्युषिते नित्यं भवत्यप्रयतो नरः ॥५  
 तस्माच्छुष्कमयात्रं वा भक्षयेदन्तराष्ट्रकम् ।  
 फरञ्जं पादिरं वापि फदम्यं कुरवं तथा ॥६  
 सप्तपर्णपृश्निपर्णीजम्बुनिम्बं तथैव च ।  
 अपामार्गश्च विल्वश्चार्कश्चोद्भस्वरमेव च ॥७  
 एते प्रशस्ताः कथिता दन्तधावनकर्मणि ।  
 दन्तकाष्ठस्य भक्षश्च समासेन प्रकीर्तितः ॥८  
 सर्वे कण्टकिनः पुण्याः क्षीरिणश्च यशस्थिनः ।  
 अष्टाङ्गुलेन मानेन दन्तकाष्ठमिदोच्यते ।  
 प्रादेशमात्रमदन्तान्थवा तेन विशोधयेत् ॥९

प्रतिपत्यर्धपट्टीषु नवम्याञ्चैव सत्तमाः ॥  
 दन्तानां काष्ठसंयोगाद्दहत्यामत्तमं कुलम् ॥१०  
 अभावं दन्तकाष्ठानां प्रतिपिद्वदिनेषु च ।  
 अपां द्वादशगण्डूपैर्मुलशुद्धिं समाचरेत् ॥११  
 स्नात्वा मन्त्रवदाचम्य पुनराचमनं चरेत् ।  
 मन्त्रवत् प्रोक्ष्य चात्मानं प्रक्षिपेदुदकाञ्जलिम् ॥१२  
 आदित्येन सह प्रातर्मन्देहा नाम राक्षसाः ।  
 युद्धयन्ति वरदानेन ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः ॥१३  
 उदकाञ्जलिनि क्षेपा गायत्र्या चाभिमन्त्रिताः ।  
 निघ्नन्ति राक्षसान् सर्वान् मन्देहार्यान् द्विजेरिताः ॥१४  
 ततः प्रयाति सविता ब्राह्मणैरभिरक्षितः ।  
 मरीच्याद्यैर्महाभागैः सनकाद्यैश्च योगिभिः ॥१५  
 तस्मान्न लङ्घयेन् सन्ध्यां सायं प्रातः समाहितः ।  
 उल्लङ्घयति यो मोहान् स याति नरकं ध्रुवम् ॥१६  
 सायं मन्त्रवदाचम्य प्रोक्ष्य सूर्यस्य चाञ्जलिम् ।  
 दक्ष्या प्रदक्षिणं कुर्प्याञ्जलं स्पृष्ट्वा विशुद्ध्यति ॥१७  
 पूज्यां सन्ध्यां सनश्चत्रामुपासीत यथाविधि ।  
 गायत्रीमभ्यसेत्तावद् यावदादित्यदर्शनम् ॥१८  
 उपाम्य पश्चिमां सन्ध्यां सादित्याश्च यथाविधि ।  
 गायत्रीमभ्यसेत्तावद्यावच्चारान् न पश्यति ॥१९  
 ततश्चावसथं प्राप्य कृत्वा होमं स्वयं बुधः ।  
 सञ्चिन्त्य पौष्पवर्गाय भरणार्थं विचक्षणः ॥२०

ततः शिष्यद्वितार्थाय स्वाध्यायं किञ्चिदाचरेत् ।  
 ईश्वरञ्चैव कार्यार्थमभिगच्छेद्भिजोत्तमः ॥२१॥  
 कुशपुष्पेन्धनादीनि गत्वा दूरं समाहरेत् ।  
 ततो माध्याह्निकं कुर्याच्छुचौ देशे मनोरमे ॥२२॥  
 विधिं तस्य प्रवक्ष्यामि समासात् पापनाशनम् ।  
 स्नात्वा येन विधानेन मुच्यते सर्वकलिययात् ॥२३॥  
 स्नानार्थं मृदमानीय शुद्धाश्रततिलैः सह ।  
 सुमनाश्च तनो गच्छेन्नदीं शुद्धजलाधिकाम् ॥२४॥  
 नद्यां तु विद्यमानायां न स्नायादन्यवारिणि ।  
 न स्नायादल्पतोयेषु विद्यमाने क्लृप्तके ॥२५॥  
 सरिद्धरं नदीस्नानं प्रतिग्रीतः स्थितश्चरेत् ।  
 तडागादिषु तोयेषु स्नायाच्च तद्भावतः ॥२६॥  
 शुचिदेशं समभ्युदयं स्थापयेत् सकलाम्बरम् ।  
 मृतोयेन स्वर्कं देहं लिम्पेत् प्रक्षाल्य यत्नतः ॥२७॥  
 स्नानादिकञ्च संप्राप्य कुर्यादाचमनं बुधः ।  
 सोऽन्तर्जलं प्रविश्याथ धाम्यतो नियमेन हि ।  
 हरिं संस्मृत्य मनसा मज्जयेद्योरुमज्जले ॥२८॥  
 ततस्तीरं समासाद्य आचम्यापः समन्त्रतः ।  
 प्रोक्षयेद्धारुगैर्मन्त्रैः पावमानीभिरेव च ॥२९॥  
 कुशामृतरुततोयेन प्रोक्ष्यात्मानं प्रयत्नतः ।  
 स्योनाष्टयिषीति मृदात्रे इदं विष्णुरिति द्विजाः ! ॥३०॥

ततो नारायणं देवं संस्मरेत् प्रतिमञ्जनम् ।  
 निमज्ज्यान्वर्जले सम्यक् क्रियते चाघमर्पणम् ॥३१॥  
 स्नात्वा क्षततिलैस्तद्वेवर्षिपितृभिः सह ।  
 तर्पयित्वा जलं तस्मान्निष्पीड्य च समाहितः ॥३२॥  
 जलतीरं समासाद्य तत्र शुक्ले च वाससी ।  
 परिधायोत्तरीयञ्च कुट्यान् केशान्न धूनयेत् ॥३३॥  
 न रक्तमुल्यणं वासो न नीलञ्च प्रशस्यते ।  
 मलाक्तं गन्धहीनञ्च वर्जयेदम्बरं धुधः ॥३४॥  
 ततः प्रक्षालयेत् पादौ मृत्तोयेन विचक्षण ।  
 दक्षिणन्तु करं कृत्वा गोकर्णाकृतिवत् पुनः ॥३५॥  
 त्रिः पिवेदीक्षितं तोयमास्यं द्विःपरिमार्जयेत् ।  
 पादौ शिरस्ततोऽभ्युक्ष्य त्रिभिरास्यमुपस्पृशेत् ॥३६॥  
 अङ्गुष्ठानामिकाभ्याञ्च चक्षुषी समुपस्पृशेत् ।  
 तथैव पञ्चभिर्मूर्द्ध्नि स्पृशेदेवं समाहितः ॥३७॥  
 अनेन विधिनाचम्य ब्राह्मणः शुद्धमानसः ।  
 कुर्वीत दर्भपाणिस्तूदङ्गुयः प्राङ्मुखोऽपि वा ॥३८॥  
 प्राणायामत्रयं धीमान् यथान्यायमतन्द्भितः ।  
 जपयज्ञं ततः कुर्व्याद्वायत्री वेदमातरम् ॥३९॥  
 त्रिधियो जपयज्ञः स्यात्तस्य तत्त्वं निबोधत ।  
 वाचिकश्च उपाशुश्च मानसश्च त्रिधाकृतिः ॥४०॥  
 प्रयाणामपि यज्ञानां श्रेष्ठः स्यादुत्तरोत्तरः ॥४१॥

यदुचनीचोच्चरितैः शब्दैः स्पष्टपदाक्षरैः ।  
 मन्त्रमुच्चारयन् वाचा जपयद्भस्तु वाचिकः ॥४२  
 शनैरुच्चारयन्मन्त्रं किञ्चिदोष्ठौ प्रचालयेत् ।  
 किञ्चिन्मूयणयोग्यः स्यात् स उपाशुर्जपः स्मृतः ॥४३  
 धिया पदाक्षरश्रेण्या अवर्णमपदाक्षरम् ।  
 शब्दार्थचिन्तनाभ्यान्तु तदुक्तं मानसं स्मृतम् ॥४४  
 जपेन देवता नित्यं स्तूयमाना प्रसीदति ।  
 प्रसन्ने विपुलान् गोत्रान् प्राप्नुवन्ति मनीषिणः ॥४५  
 राक्षसाश्च पिशाचाश्च महासर्पाश्च भीषणाः ।  
 जपितान्नोपसर्पन्ति दूरादेव प्रयान्ति ते ॥  
 छन्दः ऋष्यादि विज्ञाय जपेन्मन्त्रमतन्द्रितः ।  
 जपेदहरहर्शत्या गायत्रीं मनसा द्विजः ॥४७  
 सहस्रपरमां देवीं शतमध्या दशावराम् ।  
 गायत्रीं यो जपेन्नित्यं स न पापेन लिप्यते ॥४८  
 अथ पुष्पाञ्जलिं कृत्वा भानवे चोर्द्ध्वाहुकः ।  
 उदुस्यश्च जपेत् सूक्तं तद्यक्षुरिति चापरम् ॥४९  
 प्रदक्षिणमुपापृत्य नमस्तुभ्यांहिवाकरम् ।  
 ततस्तीर्थेन देवादीनङ्गिः सन्तर्पयेद्द्विजः ॥५०  
 स्नानयस्नन्तु निष्पीड्य पुनराचमनं चरेत् ।  
 तद्वद्भक्तजनस्येह स्नानं दानं प्रकीर्तितम् ॥५१  
 दर्भासीनो दर्भपाणिर्गृह्यज्ञविधानतः ।  
 प्राङ्मुखो गृह्यज्ञः ॥ धुर्याञ्छ्राद्धसमन्वितः ॥५२

ततोऽयं भानये दद्यात्तिलपुष्पाक्षतान्वितम् ।

उत्थाय मूर्द्धपर्यन्तं हंसः शुचिवदित्युच्यते ॥५३

ततो देवं नमस्कृत्य गृहं गच्छेत्ततः पुनः ।

विधिना पुरुषमूतस्य गत्वा विष्णुं समर्चयेत् ॥५४

वैश्वदेवं ततः कुर्याद्वलिकर्मविधानतः ।

गोदोहमात्रमाकाङ्क्षेदितिथिं प्रति वै गृही ॥५५

अष्टपूर्वमहानमस्तिथिं प्राप्तमर्चयेत् ।

स्वागतासनदानेन प्रत्युत्थानेन चान्नुना ॥५६

स्वागतेनाग्नयस्तुष्टा भवन्ति गृहमेधिनाः ।

आसनेन तु दत्तेन प्रीतो भवति देवराट् ॥५७

पादशौचेन पितरः प्रीतिमायान्ति दुर्लभाम् ।

अन्नदानेन युक्तेन कृष्यते हि प्रजापतिः ॥५८

तस्मादतिथये कार्यं पूजनं गृहमेधिना ।

भक्त्या च शक्तितो नित्यं विष्णोरर्चादनन्तरम् ॥५९

भिक्षाञ्च भिक्षवे दद्यात् परिव्राड्ब्रह्मचारिणे ।

अकल्पिताभ्रादुद्धृत्य सव्यञ्जनसमन्विताम् ॥६०

अकृते वैश्वदेवेऽपि भिक्षौ च गृहमागते ।

उद्धृत्य वैश्वदेवार्थं भिक्षां दत्वा विसर्जयेत् ॥६१

वैश्वदेवाकृतान् दोषान्छक्तो भिक्षुर्व्यपोहितुम् ।

नहि भिक्षुकृतान् दोषान् वैश्वदेवो व्यपोहति ॥६२

तस्मात् प्राप्ताय यतये भिक्षां दद्यात् समाहितः ।

विष्णुरेव यतिञ्छायइति निश्चित्य भावयेत् ॥६३

सुवासिनीं कुमारीञ्च भोजयित्वा नरानपि ।  
वाळरुद्धास्तत्र शेषं स्वयं भुञ्जीत वा गृही ॥६४  
प्राङ्मुखोदङ्मुखो वापि मौनी च मितभाषकः ।  
अन्नमादौ नमस्कृत्य ग्रहप्रेनान्तरात्मना ॥६५  
एष प्राणाहुतिं सूर्यान्मन्त्रेण च पृथक् पृथक् ।

• ततः स्वादुकरान् च भुञ्जीत सुसमाहितः ॥६६ ।  
आचम्य देवतामिष्टां सस्मरन्नुदरं पुरातः ।  
इतिष्टासपुराणान्यां पश्चित् काळं नयेद्बुधः ॥६७  
ततः सन्ध्यामुपासीत बहिर्गत्या विधानतः ।  
कृतहोमास्तु भुञ्जीत राज्ञौ चातिथिभोजनम् ॥६८  
सायं प्रातर्द्विजानीनामशनं श्रुतिचोदितम् ।  
नान्तराभोजनं कुर्यान्निहोत्रममो विधिः ॥६९  
शिष्यान् अध्यापयेच्चापि अनध्याये विसर्जयेत् ।  
स्मृत्युक्तान्खिलांश्चापि पुराणोक्तानपि द्विजः ॥७०  
महानग्रम्या द्वादश्यां भरण्यामपि पर्वसु ।  
तथाक्षयतृतीयायां शिष्यान्नाध्यापयेद्द्विजः ॥७१  
माघमासे तु सप्तम्या रथ्यायाया तु वर्जयेत् ।  
अध्यापनं समन्वयञ्च द्वात्रिंशत्काले च वर्जयेत् ॥७२  
नायमानं शयनं नृणां महीरथं वा द्विजोत्तमाः ।  
न पठेद्बुद्धिं श्रुत्या सन्ध्याया तु द्विजोत्तमाः ॥७३ ।  
दानानि च प्रदेयानि गृहस्थेन द्विजोत्तमाः ।  
हिरण्यदानं गोदानं प्रथिवीदानमेव च ॥७४ ।

तथा चतुर्थकाले तु भुञ्जीयादष्टमेऽथवा ।  
 पठे च कालेऽप्यथवा वायुभक्षोऽथवा भवेत् ॥६॥  
 घर्मे पश्चाग्निमभ्यस्यस्तथा वर्षे निराश्रयः ।  
 हेमन्ते च जले स्थित्वा नयेत् कालं तपश्चरन् ॥७॥  
 एवञ्च कुर्वता येन कृतबुद्धिर्यथाक्रमम् ।  
 अग्निं स्वात्मनि कृत्वा तु प्रश्नजेदुत्तरां दिशम् ॥८॥  
 आदेहपातं धनगो मौनमास्थाय तापसः ।  
 स्मरन्नतीन्द्रियं ब्रह्म ब्रह्मलोके महीयते ॥९॥

तपो हि यः सेवति बन्धवासः समाधियुक्तः प्रयतान्तरात्मा ।  
 विमुक्तपापो विमलः प्रशान्तः स याति दिव्यं पुरुषं पुराणम् ॥१०॥  
 इति हारीते धर्मशास्त्रे पञ्चमोऽध्यायः ।

॥ षष्ठोऽध्यायः ॥

अथ सन्न्यासाश्रमधर्मवर्णनम् ।

अतः परं प्रवक्ष्यामि चतुर्थाश्रममुत्तमम् ।  
 ब्रह्मया तदनुष्ठाय तिष्ठन्मुच्येत बन्धनात् ॥१॥  
 एवं वनाश्रमे तिष्ठन् पातयंश्चैव किल्बिषम् ।  
 चतुर्यमाश्रमं गच्छेत् संन्यासविधिना द्विजः ॥२॥  
 दत्त्वा पितृभ्यो देवेभ्यो मानुषेभ्यश्च यन्नतः ।  
 दत्त्वा ब्राह्मं पितृभ्यश्च मानुषेभ्य स्तथात्मनः ॥३॥



सर्वव्यञ्जनसंयुतं पृथक् पात्रे नियोजयेत् ।

सूर्यादिभूतदेवेभ्यो दत्त्वा संग्रोह्य चारिणा ॥१५

भुञ्जीत पात्रपुटके पात्रे चावभ्यतो यतिः ।

षट्कारवत्थपणेषु कुम्भीतैन्दुकपात्रके ॥१६

कोविदारफदम्बेषु न भुञ्जीयात् कदाचन ।

मलाक्ताः सर्व उच्यन्ते यत्तयः कांस्यभोजिनः ॥१७

कांस्यभाण्डेषु यत् पाको गृहस्थस्य तथैव च ।

कांस्ये भोजयतः सर्वं किल्बिषं प्राप्नुयात्तयोः ॥१८

भुत्वा पात्रे यतिर्नित्यं क्षालयेन्मन्त्रपूर्वकम् ।

न दूष्यते च तत्पात्रं यज्ञेषु चममा इव ॥१९

अथाचम्य निदिभ्यास्य उपतिष्ठेत् भास्करम् ।

जपप्यानेतिहासैश्च दिनशेषं नयेद्बुधः ॥२०

कृतसन्ध्यस्ततो रात्रिं नयेद्देवगृहादिषु ।

हस्तपुण्डरीकनिलये ध्यायेदात्मानमव्ययम् ॥२१

यदि धर्मरतिः शान्तः सर्वभूतसमो यशः ।

प्राप्नोति परमं स्थानं यत्प्राप्य न निवर्तते ॥२२

त्रिदण्डभूयोहि पृथक् समाचरेच्छनैः शनैर्यस्तु बहिर्मुखाधः ।

समुच्य संसारसमस्तबन्धनात् स याति विष्णोरमृतात्मनः पदम् ॥२३

इति हारीते धर्मशास्त्रे पष्ठोऽध्यायः ।

यथान्नं मधुसंयुक्तम् मधुवात्रेन संयुतम् ।  
 उभाभ्यामपि पक्षाभ्यां यथा खे पक्षिणां गतिः ॥१०  
 तथैव ज्ञानकमेभ्यां प्राप्यते ब्रह्म शाश्वतम् ।  
 विद्यातपोभ्यां संपन्नो ब्राह्मणो योगतत्परः ॥११  
 देहद्वयं विहायास्तु मुक्तो भवति बन्धनात् ।  
 न तथा क्षीणदेहस्य विनाशो विद्यते क्वचित् ॥१२  
 मया ते कथितः सर्वो वर्णाश्रमविभागशः ।  
 संक्षेपेण द्विजश्रेष्ठा ! धर्मस्तेषां सनातनः ॥१३  
 श्रुत्वैवं मुनयो धर्मं स्वर्गमोक्षफलप्रदम् ।  
 प्रणम्य तमृषिं जग्मुर्मदिताः स्वं स्वमाश्रमम् ॥१४  
 धर्मशास्त्रमिदं सर्वं हारीतमुखनिःसृतम् ।  
 अधीत्य धुरुते धर्मं स याति परमां गतिम् ॥१५  
 ब्राह्मणस्य तु यत् धर्मं कथितं बाहुजस्य च ।  
 ऊरुजस्यापि यत् कर्म कथितं पादजस्य च ।  
 अन्यथा वर्तमानस्तु सद्यः पतति जातितः ॥१६  
 यो यस्याभिहितो धर्मः स तु तस्य तथैव च ।  
 तस्मात् स्वधर्मं कुर्वीत द्विजो नित्यमनापदि ॥१७  
 वर्णाश्रमपारो राजेन्द्र ! चत्वारश्चापि चाश्रमाः ।  
 स्वधर्मं ये तु तिष्ठन्ति ते यान्ति परमां गतिम् ॥१८  
 स्वधर्मं यथा नृणां नारसिंहः प्रसीदति ।  
 न तुप्यति तथान्येन कर्मणा मधुमूदनः ॥१९

ब्रूहि वर्णाश्रमाणान्तु नित्यनैमित्तिकक्रियाः ।  
 कर्तव्या मुनिशाद्दूढ ! नारीणाञ्च नृणस्य च ॥४  
 स्वरूपं जीवपरयोः कथं मौञ्चपथस्य च ।  
 तत्प्राप्ते साधनं ब्रह्मण ! वक्तुमर्हसि सुव्रत ! ॥५  
 एवमुत्तस्तु विप्रर्षिस्तेन राजर्षिणा तदा ।  
 उवाच परमप्रीत्या नमस्कृत्य जनार्दनम् ॥६

हारीत उवाच ।

शृणु राजन् ! प्रयक्ष्यामि सत्यं वेदोपटुंहितम् ।  
 यदुक्तं ब्रह्मणा पूर्वं धृच्छतो मम भूपते ! ॥७  
 तद्व्यसीमि परं धर्मं शृणुष्वैकाममानसः ।  
 सर्वेपामेय देवानां मनादिः पुरुषोत्तमः ॥८  
 ईश्वरस्तु स एवान्ये जगतो विभुरव्ययः ।  
 नारायणो वासुदेवो विष्णुर्नृणात्मनो हरिः ॥९  
 ऋषा घाता विधाता च स एव परमेश्वरः ।  
 हिरण्यगर्भः सविता गुणधृक् निर्गुणोऽव्ययः ॥१०  
 परमात्मा परं ब्रह्म परं ज्योतिः परात्परः ।  
 इन्द्रः प्रजापतिः सूर्यः शिवो बह्विः सनातनः ॥११  
 सव्यात्मकः सर्वमुद्भूत सर्वभूतभावनः ।  
 यमी च भगवान् कृष्णो मुकुन्दोऽनन्त एव च ॥१२  
 यज्ञो यक्षपतिर्यज्ञा ब्रह्मण्यो ब्रह्मणः पतिः ।  
 स एव पुण्डरीकाक्षः श्रीशो नाथोऽधिपो महान् ॥१३  
 सहस्रमूर्द्धा विश्वात्मा सहस्रकरपादवान् ।  
 यद्रत्ना न विवर्तन्ते सद्गम परमं हरेः ॥१४

॥ मन्तमोऽध्यायः ॥

अथ योगवर्णनम् ।

घर्णानामाश्रमाणाश्च कथितं धर्मलक्षणम् ।  
 येन स्वर्गापवर्गाश्च प्राप्नुवन्ति द्विजातयः ॥१॥  
 योगशास्त्रं प्रवक्ष्यामि सहस्रेषात् सारमुत्तमम् ।  
 यस्य च श्रवणाद्यान्ति मोक्षञ्चैव मुमुक्षवः ॥२॥  
 योगाभ्यासवलेनैव नश्येयुः पातकानि तु ।  
 तस्माद्योगपरो भूत्वा ध्यायेन्नित्यं क्रियापरः ॥३॥  
 प्राणायामेन वचनं प्रत्याहारेण चेन्द्रियम् ।  
 धारणाभिर्वशे कृत्वा पूर्वं दुर्धर्षणं मनः ॥४॥  
 एकाकारमना मन्दं बुधैरुपमलामयम् ।  
 सूक्ष्मात् सूक्ष्मतरं ध्यायेत् जगदाधारमुच्यते ॥५॥  
 आत्मानं बहिरन्ताथं शुद्धचामीकरप्रभम् ।  
 रहस्येकान्तमासीनो ध्यायेदामरणान्तिकम् ॥६॥  
 यत्सर्वप्राणि हृदयं सर्वेषाञ्च हृदिस्थितम् ।  
 यच्च सर्वजनर्तयं सोऽश्मसीति चिन्तयेत् ॥७॥  
 आत्मलाभसुरं यावत्तपोध्यानमुदीरितम् ।  
 श्रुतिस्मृत्यादिकं धर्मं तद्विरुद्धं न चाचरेत् ॥८॥  
 यथा रथोऽश्वहीनस्तु यथाश्वो रथिहीनकः ।  
 एवमपि विद्या च संयुतं भैषजं भवेत् ॥९॥

यथाश्रमं मधुसंयुक्तम् मधुवाज्रेण संयुतम् ।  
 उभाभ्यामपि पक्षाभ्यां यथा स्ते पक्षिणो गतिः ॥१०  
 तथैव ज्ञानवर्मेभ्यां प्राप्यते ब्रह्म शाश्वतम् ।  
 विद्यातपोभ्यां संपन्नो ब्राह्मणो योगतत्परः ॥११  
 देहद्वयं विहायाशु मुक्तो भवति बन्धनात् ।  
 न तथा क्षीणदेहस्य विनारो विद्यते कश्चित् ॥१२  
 मया ते कथितः सर्वो यणाश्रमविभागराः ।  
 संक्षेपेण द्विजश्रेष्ठा ! धर्मस्तेषां सनातनः ॥१३  
 श्रुत्वैवं मुनयो धर्मं स्वर्गमोक्षफलप्रदम् ।  
 प्रणम्य तमृषिं जग्मुर्मदिताः स्वं स्वमाश्रमम् ॥१४  
 धर्मशास्त्रमिदं सर्वं हारीतमुत्तमि-स्तुतम् ।  
 अधीत्य कुरुते धर्मं स याति परमां गतिम् ॥१५  
 ब्राह्मणस्य तु यत् कर्म कथितं याहुजस्य च ।  
 ऊरुजस्यापि यत् कर्म कथितं पादजस्य च ।  
 अन्यथा वर्तमानस्तु सद्यः पतति जातितः ॥१६  
 यो यस्याभिहितो धर्मः स तु तस्य तथैव च ।  
 तस्मात् स्वधर्मं कुर्यात् द्विजो नित्यमनापदि ॥१७  
 यणाश्च नारो राजेन्द्र ! चत्वारश्चापि चाश्रमाः ।  
 स्वधर्मं ये तु तिष्ठन्ति ते यान्ति परमां गतिम् ॥१८  
 स्वधर्मेण यथा नृणां नारसिंहः प्रसीदति ।  
 न तुप्यति तथान्येन धर्मणा मधुसूदनः ॥१९

## ॥ सप्तमोऽध्यायः ॥

अथ योगवर्णनम् ।

वर्णानामाश्रमाणाञ्च कथितं धर्मलक्षणम् ।  
 येन स्वर्गापवर्गञ्च प्राप्नुवन्ति द्विजातयः ॥१॥  
 योगशास्त्रं प्रवक्ष्यामि सङ्क्षेपात् सारमुत्तमम् ।  
 यस्य च श्रवणाद्यान्ति मोक्षञ्चैव मुमुक्षवः ॥२॥  
 योगाभ्यासवलेनैव नश्येयु पातकानि तु ।  
 तस्माद्योगपरो भूत्वा व्यायेन्नित्यं क्रियापरः ॥३॥  
 प्राणायामेन वचनं प्रत्याहारेण चेन्द्रियम् ।  
 धारणाभिर्वशे कृत्वा पूरं दुर्धपण मनः ॥४॥  
 एकाकारमना मन्दं बुधैरुपमलामयम् ।  
 सूक्ष्मात् सूक्ष्मतरं ध्यायेत् अगदाधारमुच्यते ॥५॥  
 आत्मानं बहिरुत्तर्य शुद्धचामीकरप्रभम् ।  
 रहस्येकान्तमासीनो ध्यायेदामरणान्तिरुम् ॥६॥  
 यत्सर्वप्राणि हृदयं सर्वेषाञ्च हृदिस्थितम् ।  
 यच्च सर्वजनर्त्तयं सोऽश्मसीति चिन्तयेत् ॥७॥  
 छात्मलाभसुखं यावत्तपोध्यानमुदीरितम् ।  
 श्रुतिस्मृत्यादिकं धर्मं तद्विरुद्धं न चाचरेत् ॥८॥  
 यथा रथोऽश्वहीनस्तु यथाश्वो रथिहीनकः ।  
 एवं तपश्च विद्या च संयुतं भैषजं भवेत् ॥९॥

यथान्नं मधुसंयुक्तम् मधुवान्नेन संयुतम् ।  
 उभाभ्यामपि पक्षाभ्या यथा रणे पक्षिणां गतिः ॥१०  
 तथैव ज्ञानकर्मभ्यां प्राप्यते ब्रह्म शाश्वतम् ।  
 विद्यातपोभ्यां संपन्नो ब्राह्मणो योगतत्परः ॥११  
 देहद्वयं विद्यायास्तु मुक्तो भवति बन्धनात् ।  
 न तथा क्षीणदेहस्य विनाशो विद्यते कश्चित् ॥१२  
 मया ते कथितः सव्यो वर्णाश्रमविभागशः ।  
 संक्षेपेण द्विजश्रेष्ठा ! धर्मस्तेषां सनातनः ॥१३  
 श्रुत्वैवं मुनयो धर्मं स्वर्गमोक्षफलप्रदम् ।  
 प्रणम्य तमृषिं जग्मुर्मुदिताः स्वं स्वमाश्रमम् ॥१४  
 धर्मशास्त्रमिदं सर्वं हारीतमुत्तमि-सूतम् ।  
 अधीत्य बुरुने धर्मं स याति परमां गतिम् ॥१५  
 ब्राह्मणस्य तु यत् कर्म कथितं बाहुजस्य च ।  
 ऊरुजस्यापि यत् कर्म कथितं पादजस्य च ।  
 अन्यथा वर्तमानस्तु सद्यः पतति जातितः ॥१६  
 यो यस्याभिहितो धर्मः स तु तस्य तथैव च ।  
 तस्मात् स्वधर्मं कुर्वीत द्विजो नित्यमनापदि ॥१७  
 वर्णाश्रमपारो राजेन्द्र ! चत्वारश्चापि चाश्रमाः ।  
 स्वधर्मं ये तु तिष्ठन्ति ते यान्ति परमां गतिम् ॥१८  
 स्वधर्मेण यथा नृणां नारसिंहः प्रसीदति ।  
 न तुप्यति तथान्येन कर्मणा मधुसूदनः ॥१९

अतः कुर्वन्निजं कर्म यथाकालमतन्द्रितः ।

सहस्रानीकदेवेशं नारसिद्धं सालयम् ॥२०

उत्पन्नवैराग्यबलेन योगी ध्यायेत्परं ब्रह्म सदा क्रियावान् ।

सत्यं सुखं रूपमनन्तमाद्यं विहाय देहं पदमेति विष्णोः ॥२१

इति लघुहारीते धर्मशास्त्रे सप्तमोऽध्यायः ।

इति लघुहारीतस्मृतिः समाप्ता ।

ॐ तत्सत् ।

॥ अथ ॥

वृद्धहारीतस्मृतिः ।

श्रीगणेशायनमः ।

॥ प्रथमोऽध्यायः ॥

अथ पञ्चसंस्कारप्रतिपादनवर्णनम् ।

अम्बरीपस्तु तं गत्वा हारीतस्याश्रमं नृपः ।

ववन्दे तं महात्मानं बालार्कसदृशप्रभम् ॥१

संपृष्टः कुशलस्तेन पूजितः परमासने ।

उपविष्ट स्ततो विप्रमुखाच्च नृपनन्दनः ॥२

भगवन् ! सर्वधर्मज्ञ ! तत्त्ववेदविदाम्बर ! ।

पृच्छामि त्वां महाभाग । परमं धर्ममव्ययम् ॥३



ब्रूहि वर्णाश्रमाणान्तु नित्यनैमित्तिकक्रिया ।  
 वर्तव्या मुनिशाद्दूळ । नारीणाञ्च नृपस्य च ॥४  
 स्वरूपं जीवपरयो कथ मोक्षपथस्य च ।  
 तत्प्राप्ते साधन ब्रह्मन् । वक्तुमर्हसि सुनत ॥५  
 एवमुक्तन्तु विप्रर्षिस्तेन राजर्षिणा तदा ।  
 उवाच परमप्रीत्या नमस्कृत्य जनार्दनम् ॥६

हारीत उवाच ।

शृणु राजन् । प्रयक्ष्यामि सर्वं वेदोपवृ हितम् ।  
 यदुक्तं ब्रह्मणा पूर्वं पृच्छतो मम भूपते ॥७  
 तद्ब्रवीमि परं धर्मं शृणुष्वैकाममानसः ।  
 सर्वेषामेव देवानां मनादि पुरुषोत्तम ॥८  
 ईश्वरास्तु स एवान्ये जगतो विभुरव्यय ।  
 नारायणो वासुदेवो विष्णुर्ब्रह्मात्मनो हरिः ॥९  
 स्रष्टा धाता विधाता च स एव परमेश्वर ।  
 हिरण्यगर्भं सविता गुणवृद्धं निर्गुणोऽव्यय ॥१०  
 परमात्मा परं ब्रह्म परं ज्योति पसीत्पर ।  
 इन्द्र प्रजापति सूर्य शिवो बह्वि सनातन ॥११  
 सर्वार्त्तक सर्वसुहृत् सर्वमृदुभूतभावन ।  
 यमी च मर्गजान् कृष्णो मुकुन्दोऽनन्त एव च ॥१२  
 यज्ञो यज्ञपतिर्यज्वा ब्रह्मण्यो ब्रह्मण पति ।  
 स एव पुण्डरीकाक्ष श्रीशो नाथोऽधिपो महान् ॥१३  
 सहस्रमूर्धा विश्वात्मा सहस्रकरपादवान् ।  
 यद्गत्वा न विवर्तन्ते तद्गाम परमं हरे ॥१४

चतुर्भिः शोभनोपायैः साध्योऽयं सुमहात्मनः ।  
 तुरीयपदयोर्भक्त्या मुसिद्धोऽय मुदाहृतः ॥१५  
 त स्वीकुर्वन्ति विद्वांसः स्वस्वरूपतया सदा ।  
 नैसर्गिकं हि सवपां दास्यमेव हरेः सदा ॥१६  
 स्वाम्यं परस्वरूपं स्यादास्यं जीवस्य सर्वदा ।  
 प्रकृत्या स्वात्मनो रूपं स्वाम्यं दास्यमिति स्थितिः ॥१७  
 दास्यमेव परं धर्मं दास्यमेव परं हितम् ।  
 दास्येनैव भवेन्मुक्तिरन्यथा निरयं भवेत् ॥१८  
 विष्णोर्दास्यं परा भक्तिर्नृपां तु न भवेत् क्वचित् ।  
 तेषामेव हि संसृष्टं निरयं ब्रह्मणा नृप ! ॥१९  
 नारायणस्य दास्यं ये न भवन्ति नराधमाः ।  
 जीवन्त एव चाण्डाला भविष्यन्ति न संशयः ॥२०  
 तस्मादास्यं परां भक्तिमालम्ब्य नृपसत्तम ! ।  
 नित्यं नैमित्तिकं सर्वं कुर्यात्प्रीत्यै हरेः सदा ॥२१  
 तस्य स्वरूपं रूपञ्च गुणाश्चापि विभूतयः ।  
 ज्ञात्वा समर्चयेद्विष्णु यावज्जीव मतन्द्रित, ॥२२  
 तमेव मनसा ध्यायेद्वाचा सङ्कीर्तयेत्प्रभुम् ।  
 जपेच्च जुहुयाद्रक्तो तद्दानेकविलक्षणः ॥२३  
 शङ्खचक्रोर्ध्वं पुण्ड्रादिधारणं दास्यलक्षणम् ।  
 तन्नामकरणञ्चैव वैष्णवन्तदिहोच्यते ॥२४  
 अदंष्ट्राश्च ये विप्रा हपेदास्ते नराधमाः ।  
 तेषां तु नरके यासः कल्पकोटिशतैरपि ॥२५

तदादि वर्षसञ्चारी मन्त्ररत्नार्थतत्त्ववित् ।  
 वैष्णवः ॥ जगत्पूज्यो याति विष्णोः परं पदम् ॥२५  
 अचक्रधारी यो विप्रो बहुवेदश्रुतोऽपि वा ।  
 स जीवन्नेव चण्डालो मृतो निरयमाप्नुयात् ॥२६  
 तस्मात्ते हरिसंस्काराः कर्त्तव्या धर्मकाङ्क्षिणाम् ।  
 अयमेव परं धर्मं प्रधानं सर्वकर्मणाम् ॥२७  
 इति वृद्धहारीतस्मृत्यां विशिष्टधम्मशास्त्रे पञ्चसंस्कार-  
 प्रतिपादनं नाम प्रथमोऽध्यायः ।

॥ द्वितीयोऽध्यायः ॥

अथ पुण्ड्रसंस्कारवर्णनम् ।

अम्बरीष उवाच ।

भगवन् ! वैष्णावाः पञ्च संस्काराः सर्वकर्मणाम् ।  
 प्रधानमिति यच्चोक्तं सर्वे रेव महर्षिभिः ॥१  
 तद्विधानं ममाचक्ष्व विस्तरेणैव मुदत ! ।

हारीत उवाच ।

शृणु राजन् ! प्रवक्ष्यामि निर्मला वैष्णवाः क्रियाः ॥२  
 यदुक्तं ब्रह्मणा पूर्वं वसिष्ठाद्यैश्च वैष्णवैः ।

संस्काराणां तु सर्वेषां माद्यं चक्रादिधारणम् ॥३  
 तन् कर्तव्यं हि सर्वेषां विधीनां वै द्विजन्मनाम् ।  
 आचार्यं संश्रयेत् पूर्वमनघं वैष्णवं द्विजम् ॥४  
 शुद्धसत्वगुणोपेतं नवेज्याकर्मकारणम् ।  
 सत्सम्प्रदायसंयुक्तं मन्त्ररत्नार्थकोविदम् ॥५  
 ज्ञानवैराग्यसपन्नं वेदवेदाङ्गपारगम् ।  
 शासितारं सदाचार्यैः सर्वधर्मविदांवरम् ॥६  
 महाभागवतं विप्रं सदाचारनिपेयणम् ।  
 आलोक्य सर्वशाल्माणि पुराणानि च वैष्णवाः ॥७  
 तदर्थमाचरेद्यस्तु स आचार्य उदाहृतः ।  
 आस्तीव्यमानसं सद्गिरुपेतं धर्मवत्सलम् ॥८  
 धनधानं सदाचारं गुरुशुश्रूषतत्परम् ।  
 सम्बत्सरं प्ररीक्ष्यार्थं तं शिष्यं शासयेद्गुरुः ॥ ९  
 तस्याऽऽदौ पञ्च संस्कारान् कुर्यात् सम्यग्विधानतः ।  
 प्रातः स्नात्वा शुचौ देशे पूजयित्वा जनार्दनम् ॥१०  
 द्वातं शिष्यं समानीय तेनैव सह देशिकः ।  
 स्नाप्य पञ्चामृतैर्व्यैश्चक्रादीनर्जयेत्ततः ॥११  
 पुष्पैर्पुष्पैश्च दीपैश्च नैवेद्यैर्विविधैरपि ।  
 तत्तत्प्रकाशकैर्मन्त्रैर्ऋषयेत् पुरतो हरेः ॥१२  
 अमौहोमं प्रकुर्वीत इष्माधानादिपूर्वकम् ।  
 योरुणे ॥ सूतेन पायसं घृतमिश्रितम् ॥१३

ध्याज्येन मूलमन्त्रेण हुत्वा चाष्टोत्तरं शतम् ।  
 वैष्णव्या चैव गायत्र्या जुहुयात् प्रयतो गुरुः ॥१४  
 पश्चादग्नौ विनिक्रिय चक्राद्यायुधपञ्चकम् ।  
 पूजयित्वा सहस्रारं ध्यात्वा तद्वह्निमण्डले ॥१५  
 पृष्ठभरेण जुहुयादाज्यं त्रिशतिसंस्तया ।  
 सर्वैश्च हेतिमन्त्रैश्च एकैकाङ्ग्याहुतिं क्रमात् ॥१६  
 ततः प्रदक्षिणं कृत्वा स शिष्यो वह्निमात्मवान् ।  
 नमस्कृत्वा ततो विष्णुं जप्त्वा मन्त्रवरं शुभम् ॥१७  
 प्राङ्मुखं तु समासीनं शिष्यमेकामचेतसम् ।  
 प्रतपेष्टकशङ्खौ द्वौ हेतिभिर्मन्त्रमुपरन् ॥१८  
 दक्षिणे तु भुजे चक्रं वामांशे शङ्खमेव च ।  
 गदा च भालमण्ये तु हृदये नन्दकं मदा ॥१९  
 मस्तके तु तथा शङ्खं मध्येद्विमलं तदा ।  
 पश्चात् प्रक्षाल्य तीयेन पुनः पूजां समाचरेत् ॥२०  
 होमशेषं समाप्याथ वैष्णवान् भोजयेत्ततः ।  
 एवं तापः क्रियाः कार्याः वैष्णव्यः कल्मषापहाः ॥२१  
 प्रधानं वैष्णवं तेषां तापसंस्कारमुत्तमम् ।  
 तापसंस्कारमात्रेण परां सिद्धिमवाप्नुयात् ॥२२  
 केचित्तु चक्रशङ्खौ द्वौ प्रतप्तौ बाहुमूलयोः ।  
 धारयन्ति महात्मानश्चक्रमेकं तु चापरे ॥२३  
 वैष्णवानां तु हेतीनां प्रयानं चक्रमुच्यते ।  
 तेनैव बाहुमूले तु प्रतप्तेनाङ्कयेद्बुधः ॥२४

जात पुत्रे पिता स्नात्वा होमं कृत्वा विधानतः ।  
 तेनाग्निनैव सन्तप्तचक्रेण भुजमूलयोः ॥२५  
 अङ्कयित्वा शिशोः पश्चान्नाम कुर्याच्च वैष्णवम् ।  
 पश्चात्सर्वाणि कर्माणि कुर्वीतास्य विधानतः ॥२६  
 अङ्कयित्वा स (न) चक्रेण यत्किञ्चित्कर्म सञ्चरेत् ।  
 तत्सर्वं याति वैरुक्ष्यमिष्टापूर्तादिकं नृप ! ॥२७  
 कारयेन्मन्त्रदीक्षायां चक्राद्याः पञ्च हेतयः ।  
 चक्रं वै कर्मसिद्ध्यर्थं जातकर्मणि धारयेत् ॥२८  
 अचक्रधारी विप्रस्तु सर्वकर्मसु गर्हितः ।  
 अवैष्णवः समापन्नो नरकं चाधिगच्छति ॥२९  
 चक्रादिचिहरहितं प्राकृतं कल्पयान्वितम् ।  
 अवैष्णवस्तु तं दूरात् श्वपाकमिव सन्त्यजेत् ॥३०  
 अवैष्णवस्तु यो विप्रः श्वपाकादधमः स्मृतः ।  
 अश्राद्धे यो ह्यपाहृत्तेयो रौरवं नरकं व्रजेत् ॥३१  
 अवैष्णवस्तु यो विप्रः सर्वधर्मयुतोऽपि वा ।  
 गवां (स पापण्डेति) पण्डति विश्लेषः सर्वकर्मसु नार्हति ॥३२  
 तस्माच्चक्रं विधानेन तप्तं वै धारयेद्द्विजः ।  
 सर्वाश्रमेषु यसतां स्त्रीणां च श्रुतिचोदनात् ॥३३  
 अनायुधासो असुरा अदेवा इति वै श्रुतिः ।  
 चक्रेण तामपवप इत्येवा समुदाहृतम् ॥३४  
 अपेत्यमङ्कमित्युक्तं वपेति श्रवणं तदा ।  
 तस्माद्वै तप्तचक्रस्य चाङ्कनं मुनिभिः श्रुतम् ।  
 पवित्रं विततं ब्राह्मं प्रभोगात्रे तु धारितम् ॥३५

श्रुत्यैव चाङ्गयेद्गात्रे तद्ब्रह्मसमवाप्तये ।  
 यत्ते पवित्रमर्चिष्यमग्ने रीततमन्तरा ॥३६  
 ब्रह्मेति निहितत्रैव ब्रह्मणो श्रुतिवृंहितम् ।  
 पवित्रमिति चैवाग्निरग्निं चक्रमुच्यते ॥३७  
 अग्निरेव सहस्रारः सहस्रा नेमिरुच्यते ।  
 नेमितप्ततनुः सूर्यो ब्रह्मणा समस्तां प्रजन् ॥३८  
 यत्ते पवित्रमर्चिष्यमग्नेस्तु न मुनिहितः ।  
 दक्षिणे तु भुजे विप्रो विभृयाद्वै सुदर्शनम् ॥३९  
 सव्ये तु शङ्खं विभृयादिति ब्रह्मविदो विदुः ।  
 इत्यादिश्रुतिभिः प्रोक्तं विष्णोश्चक्रस्य धारणम् ॥४०  
 पुराणेष्वितिहासेषु सात्विकेषु स्मृतिष्वपि ।  
 शङ्खचक्रोर्द्धपुण्डादिरदितं ब्राह्मणं नृप ! ॥४१  
 यः श्राद्धे भोजयेद्विप्रः पितॄणां तस्य दुर्गतिः ।  
 शङ्खचक्रोर्ध्वं पुण्डादिचिह्नैः प्रियतमैर्हरेः ॥४२  
 रहितः सर्वधर्मेभ्यश्च्युतो नरकमाप्नुयात् ।  
 रुद्रार्चनं त्रिपुण्ड्रस्य धारणं यत्र दृश्यते ॥४३  
 तच्छूद्राणां विधिः प्रोक्तो न द्विजानां कदाचन ।  
 प्रतिलोमानुलोमानां दुर्गागमभूषणाः ॥४४  
 पूजनीया यथार्हं विद्वज्चन्दनवारिणम् ।  
 यक्षराक्षसभूतानि विद्याधरगणस्तदा ॥४५  
 चण्डालानामर्चनीया मद्यमांसनिषेवणाम् ।  
 स्ववर्णविहितं धर्ममेवं ज्ञात्वा समाचरेत् ॥४६

रुद्रार्चनाद्वाह्यणस्तु शूद्रेण समतां धजेत् ।  
 यक्षभूतार्चनात् सयश्चण्डालत्वमवाप्नुयात् ॥४७  
 न भस्म धारयेद्विप्रः परमापद्गतोऽपि वा ।  
 मोहाद्वै विश्रयाद्यस्तु ससुरापो भवेद्भ्रुवम् ॥४८  
 तिर्यक् पुण्ड्रधरं विप्रं पट्टाम्बरधरं तथा ।  
 श्वपाक इव वीक्षेत न सम्भाषेत कुत्रचित् ।  
 तस्माद्विजातिभिर्धार्प्यं मूर्द्धं पुण्ड्रं विधानतः ॥४९  
 मृदा शुभ्रेण सततं सान्तरालं मनोहरम् ।  
 स्नात्वा शुद्धेऽपि पुरांहे विष्णुमभ्यर्च्य देशिकः ॥५०  
 स्नातं शिष्यं समाहूय होमं कुर्वीत पूर्ववत् ।  
 परोमात्रेति सूक्तं पायसं मधुमिश्रितम् ॥५१  
 ह्रस्वोऽधमूलमन्त्रेण शतमष्टोत्तरं धृतम् ।  
 स्थण्डिले ॥ ततः पश्चान्मण्डलानि यदा क्रमान् ॥५२  
 दीक्षयष्टमध्ये चत्वारि विन्यसेन् पुरतो हरेः ।  
 विलिखेत्तत्र पुण्डादि विस्तारायामभेदतः ॥५३  
 तेष्वर्चयेत्ततो धोमान् केशवादीननुक्रमात् ।  
 तत्र तत्र च तन्मूर्तिं ध्यात्वा मन्त्रैः समर्चयेत् ॥५४  
 गन्धपुष्पादि सकलं मन्त्रैर्नैवार्चयेद्गुरुम् ।  
 प्रदक्षिण अनुव्रज्य स शिष्यः प्रणमेत्तथा ॥५५  
 तद्वाहौ निक्षिपेच्छिष्यः केशवादीननुक्रमात् ।  
 हृदि विन्यस्य पुण्ड्राणि गुरुक्तानि स वैष्णवः ॥५६



शुभ्रेणैव मृदा पश्चाद्विभृयान् सुसमाहिनः ।  
 त्रिसन्ध्यासु मृदा त्रिप्रो यागकाले विशेषतः ॥६७  
 श्राद्धे दाने तथा होमे स्याध्याये पितृतर्पणे ।  
 श्रद्धालुर्हृद्पुण्ड्राणि विभृयाद्द्विजसत्तमः ॥६८  
 श्राद्धो होमस्तथा दानं स्वाध्यायः पितृतर्पणम् ।  
 भस्मीभवति तत्सर्वमूर्ध्वपुण्ड्रस्विना कृतम् ॥६९  
 ऊर्ध्वपुण्ड्रं विना यस्तु श्राद्धं कुर्वीत स द्विजः ।  
 सद्य तद्वाक्षसैर्नीतं नरकं चाधिगच्छति ॥७०  
 ऊर्ध्वपुण्ड्रविहीनस्तु यः श्राद्धे भोजयेद्द्विजम् ।  
 अरनन्ति पितरस्तस्य विष्मृतं नात्र संशयः ॥७१  
 तस्मात्तु सततं धार्यमूर्ध्वपुण्ड्रं द्विजन्मना ।  
 धारयेन्न तिर्यक् पुण्ड्रमापद्यपि कदाचन ॥७२  
 तिर्यक्पुण्ड्रधरं विप्रं चण्डालमिव सन्त्यजेत् ।  
 सोऽनर्हः सर्वश्रूतेषु सर्वलोकेषु गर्हितः ॥७३  
 ऊर्ध्वपुण्ड्रविहीनः सन् सन्ध्याकर्म समाचरेत् ।  
 सर्वं तद्वाक्षसैर्नीतं नरकश्च स गच्छति ॥७४  
 यदि स्यात्तु मनुष्याणां मूर्ध्वपुण्ड्रविवर्जितम् ।  
 द्रष्टव्यन्नय तस्मिन् श्मशानमिव तद्भवेत् ॥७५  
 ऊर्ध्वपुण्ड्रं मृदा शुभ्रं ललाटे यस्य दृश्यते ।  
 चण्डालोऽपि हि शुद्धात्मा विष्णुलोके महीयते ॥७६  
 ऊर्ध्वपुण्ड्रस्य मध्ये तु ललाटे सुमनोहरे ।  
 लक्ष्म्या सह समासीनो रमते नत्र वै हरिः ॥७७

निरन्तरालं यः कुर्याद्दूर्ध्वपुण्ड्रं द्विजाधमः ।  
 स हि तत्र स्थितं विष्णुं श्रियञ्चैव व्यपोदति ॥६८  
 अथेदमूर्ध्वपुण्ड्रन्तु यः करोति द्विजाधमः ।  
 कलरकोटिसहस्राणि रौरवं नरकं व्रजेत् ॥६९  
 तस्माद्रागान्वितं पुण्ड्रन्धरेद्विष्णुपदाकृति ।  
 ललाटादिषु चाङ्गेषु सर्व्वकर्ममु चैष्णवः ॥७०  
 नासिकामूलमारभ्य ललाटान्तेषु विन्यसेत् ।  
 अङ्गुलद्वयमात्रन्तु मध्यच्छिद्रं प्रकल्पयेत् ॥७१  
 पार्श्वे चाङ्गुलमात्रन्तु विन्यसेद्द्विजसत्तमः ।  
 पुण्ड्राणामन्तराले तु हारिद्रां धारयेच्छ्रियम् ॥७२  
 ललाटे पृष्ठयोः कण्ठे भुजयोरुभयोरपि ।  
 चतुरङ्गुलमात्रन्तु विभृयादायकं द्विजः ॥७३  
 वरस्यष्टाङ्गुलं धार्य भुजयोरायतं तदा ।  
 उदरे पार्श्वयोर्नित्यमायतन्तु दशाङ्गुलम् ॥७४  
 केशवादि नमोऽन्तैश्च प्रणवाद्यैरनुक्रमात् ।  
 ललाटे केशवं रूपं कुक्षौ नारायणं न्यसेत् ॥७५  
 यक्ष स्थले माधवश्च गोविन्दं कण्ठदेशतः ।  
 विष्णुश्च दक्षिणे पार्श्वे बाह्वोश्च मधुसूदनम् ॥७६  
 त्रिविक्रमन्तु वामांसे वामनं वामपार्श्वतः ।  
 श्रीधरं वामबाहौ तु हृषीकेशं तदा भुजे ॥७७  
 शृष्टे च पद्मनाभन्तु ग्रीवे दामोदरं तदा ।  
 तत्पक्षालनतोयेन चामुदेवेति मूर्धनि ॥७८

केशवस्तु सुवर्णाभः शङ्खचक्रगदाधरः ।  
 शुक्लाम्बरधरः सौम्यो मुक्ताभरणभूषितः ॥७६  
 नारायणो घनश्यामः शङ्खचक्रगदासिभृत् ।  
 पीतवासा भणिमयैर्भूषणैरुपशोभितः ॥७७  
 माधवश्चोत्पलप्रदयश्चक्रशार्ङ्गगदासिभृत् ।  
 चित्रमाल्याम्बरधरः पुण्डरीकनिभेक्षणः ॥७८  
 गोविन्दः शशिचर्णः स्यात्पद्मशङ्खगदासिभृत्  
 रक्तारविन्दपादाब्जस्तप्तकाञ्चनभूषणः ॥७९  
 गौरवर्णो भवेद्विष्णुश्चक्रशङ्खदलसिभृत् ।  
 क्षौमाम्बरधरः स्रग्वी केयूराङ्गदभूषितः ॥८०  
 जराविन्दानिभः श्रीमान् भद्राजित्कमलानाक्षभः ।  
 चक्रं शार्ङ्गं च मुसलं पद्मं दोर्भिर्विभर्त्यसौ ॥८१  
 त्रिविक्रमो रत्तपर्गः शङ्खचक्रगदासिभृत् ।  
 किरीटहारकेयूरपुण्ड्रैश्च विराजितः ॥८२  
 घामनः कुन्दयर्ण स्यात् पुण्डरीकायतेक्षणः ।  
 दोर्भिवेशं गदां चक्रं पद्मं द्विभर्त्यसौ ॥८३  
 श्रीधरः पुण्डरीकाख्यश्चक्रशार्ङ्गश्च पद्मधृक् ।  
 रक्तारविन्दनयनो मुक्तादामविभूषितः ॥८४  
 विद्युद्गणां हृषीकेशश्चक्रशार्ङ्गदलसिभृत् ।  
 रक्तमाल्याम्बरधरः पुण्डरीकावतंसकः ॥८५  
 इन्दनीलनिभश्चक्रशङ्खपद्मगदाधरः ।  
 पद्मनाभः पीतवासा चित्रमाल्यानुलेपनः ।  
 दामोदरः सावभौमः पद्मशार्ङ्गसिशङ्खभृत् ॥८६ -

पीतवासा विशालाक्षो नानारत्नविभूषितः ।  
 एवं पुण्ड्राणि सततं धारयेद्वैष्णवोत्तमः ॥६०  
 पुण्ड्रसंस्कार इत्येवं शिष्येणापि च कारयेत् ।  
 मन्त्ररोपं समाध्याय वैष्णवान् भोजयेत्ततः ॥६१

इति पुण्ड्रसंस्कारो द्वितीयः ।

अथ वैष्णवानां नामसंस्कारवर्णनम् ।

पृथीयं नाम संस्कारं कुर्वीत शुभवासरे ॥६२  
 स्नात्वा संपूज्य देवेशं गन्धपुष्पादिभिर्गुरुम् ।  
 नामाधिदैवतं पश्चात् पूजयेत् प्रयतात्मवान् ॥६३  
 द्वादशैव तु मासास्तु पेशाद्याद्यैरधिष्ठिताः ।  
 आरभ्य मार्गशीर्षं तु यदा संप्र्या द्विजोत्तमः ॥६४  
 यस्मिन्मासि भवेदीक्षा तन्मूर्तेर्नाम चोदितम् ।  
 नृसिंहरामकृष्णाख्यं दासनाम प्रवर्त्ययेत् ॥६५  
 राक्षसा दशावताराणां यजयेन्नाम वैष्णवः ।  
 नामदद्यात्प्रयत्नेन वैष्णवं पापनाशनम् ॥६६  
 यस्य वै वैष्णवं नाम नास्ति चेत्तु द्विजन्मनः ।  
 अनामिकः स विज्ञेयः सर्वकर्मसु गर्हितः ॥६७  
 चमस्य धारणं यस्य जातकर्मणि सम्भवेत् ।  
 तत्र वै मासनामापि दद्याद्विप्रो विधानतः ।  
 घ्यात्रा समर्पयेन्नाममूर्तिं मन्त्रेण देशिकः ॥६८

धूपं दीपञ्च नैवेद्यं ताम्बूलञ्च समर्पयेत् ।  
 प्रदक्षिण मनुव्रज्य भक्त्या सम्यक् प्रणम्य च ॥१६६  
 तन्मंत्रं मूलमन्त्रं वा जपेत्साहस्रसङ्ख्यया ।  
 पश्चाद्धोमं प्रकुर्वीत शतमष्टोत्तरं हविः ॥१००  
 वैष्णवैरनुघाफैश्च जुहुयात् सर्पिषा तदा ।  
 नाम दद्यात् ततः शिष्यं मन्त्रतोये समाज्जुतम् ॥१०१  
 ततः पुष्पाञ्जलिं दत्त्वा होमशेषं समापयेत् ।  
 वैष्णवान् भोजयेत्पश्चादक्षिणाद्यैश्च तोषयेत् ॥१०२  
 एवं हि नामसंस्कारं कुर्यात् द्विजसत्तमः ।  
 गुणयोगेन चान्यानि विष्णोर्नामानि लौकिके ॥१०३  
 विशिष्टं वैष्णवं नाम सर्वकर्मसु चोदितम् ।  
 हरेः परं पितुर्नाम यो ददात्यपरं सुतम् ॥१०४  
 अतितोचनकं दिव्यं तृतीयं श्रुतिचोदितम् ।  
 तस्माद्भगवतो नाम सर्वेषां मुनिभिः स्मृतम् ॥१०५

इति नामसंस्कार स्तुतीयः ।

अथ वैष्णवानामन्त्रसंस्कारवर्णनम् ।

एवं तृतीयसंस्कारं कृत्वा वै वैदिकोत्तमः ।  
 चतुर्थमन्त्रसंस्कारं कुर्यात् द्विजसत्तमः ॥१०६  
 ततः (प्रातः) स्नात्वा विधानेन पूजयेत् जगता पतिम् ।  
 अष्टोत्तरसहस्रं तु मन्त्ररत्नं जपेद्गुरुः ॥१०७

स्नातं शिष्यं समाहूय सुवेपं समलङ्कृतम् । ४  
 आदाय कलशं रम्यं पवित्रोदकपूरितम् ॥१०८  
 पञ्चत्वरूपद्वययुतं पञ्चरत्नसमन्वितम् ।  
 मङ्गलद्रव्यसंयुक्तं मन्त्रेणैवाभिमन्त्रयेत् ॥१०९  
 सम्मार्जयेत् ततः शिष्यं तज्जनेन कुरौः शुभैः ।  
 सूक्तैश्च विष्णुदेवतैः पावमानैस्तदैव च ॥११०  
 अष्टोत्तरशतं पञ्चान्मन्त्ररत्नेन मार्जयेत् ।  
 अभिषिञ्च्य ततो मूर्ध्नि शुक्लरत्नधरं शुचिम् ॥१११  
 स्वलङ्कृतं समाधान्त मूर्ध्वपुण्ड्रवरं तदा ।  
 पवित्रहस्तं पद्माक्षमालया समलङ्कृतम् ॥११२  
 निवेश्य दक्षिणे रसस्य आसने कुशनिर्मिते ।  
 रसगृहोक्तविधानेन पुरतोऽग्निं प्ररुलपयेत् ॥११३  
 पौर्ण्येण तु सूक्तेन श्रीसूक्तेन तथैव च ।  
 मध्याह्नमिश्रितं रम्यं पायसं जुहुयाद्गुरुः ॥११४  
 अष्टोत्तरशतं पञ्चादाज्यं मन्त्रद्वयेन च ।  
 मूलमन्त्रेण जुहुयाद्गुरुं घृतमिमिश्रितम् ॥११५  
 केशवादीन् समुद्दिश्य नित्यान् मुक्तास्तथैव च ।  
 एकैरमाहुतिं हुत्वा होमशेषं समापयेत् ॥११६  
 ततः प्रदक्षिणं कृत्वा नमस्कृत्वा जनार्दनम् ।  
 आचार्यः स्वगुरुं नत्वा जपेद्गुरुरम्पराम् ॥११७  
 मातरं सर्वजगतां प्रपद्येत प्रियं ततः ।  
 त्वं माता सर्वलोकानां सर्वलोकेश्वरप्रिये ! ॥११८

अपराधशतैर्जुष्टं नमस्तेन मम ऋतम् ।  
 एवं : पण्डितैर्मतां श्रियं रुद्रगुरुभादत ॥११६  
 नित्ययुक्तं तया देव्या वात्सल्यादिगुणान्वितम् ।  
 शरण्यं सर्वलोकानां प्रपद्ये तं सनातनम् ।  
 नारायण ! दयासिन्धो ! वात्सल्यगुणसागर ! ॥१२०  
 एनं रक्ष जगन्नाथ ! बहुजन्मापराधिनम् ।  
 इत्याचार्येण सन्दिष्टं प्रपद्येत जनार्दनम् ॥१२१  
 प्रपद्येत ततः शिष्यो गुरुमेव दयानिधिम् ।  
 गुरो ! त्वमेव मे देव स्वमेव परमागतिः ॥१२२  
 त्वमेव परमो धर्मस्त्यमेव परमं तपः ।  
 इति प्रपन्नमाचार्यो निवेदय पुरतो हरेः ॥१२३  
 प्रागप्रेषु समासीनं दर्भेषु सुसमादितः ।  
 एवाचार्यं पुरतो ध्यात्वा नमस्कृत्याथ भक्तिमत् ॥१२४  
 गुरोः परम्परां जप्त्वा हृदि ध्यात्वा जनार्दनम् ।  
 कृत्या बोधितं शिष्यं दक्षिणं ह्यानदक्षिणम् ॥१२५  
 निश्चिप्य दहतं शिरसि धामं हृदि च विन्यसेत् ।  
 पादौ गृहेत्या शिष्यस्तु गुरोः प्रयतमानसः ॥१२६  
 भो ! गुरो ! ब्रूहि मन्त्रं मे प्रयादिति दयानिधे ! ।  
 अध्यापयेत्तत्तत्त मे मन्त्ररत्नं शुभाह्वयम् । १२७  
 सन्न्यासश्च समुद्रश्च सर्पिपण्डोऽधिदैवतम् ।  
 सायंमध्यापयेच्छिष्यं प्रयतं शरणागतम् ॥१२८  
 ६४

अष्टाक्षरं द्वादशाक्षं पञ्चदशी वैष्णवी तदा ।  
 रामकृष्णनृसिंहाख्यान् मन्त्रान् तस्मै निःश्रेयेत् ॥१२६  
 न्यासे चाध्यर्चने वापि मन्त्रमेकान्वितं श्रेयेत् ।  
 अवैष्णवोपदिष्टेन मन्त्रेण नरकं व्रजेत् ॥१२७  
 अवैष्णवाद्गुरोर्मन्त्रं यः पठेद्वैष्णवो द्विज ।  
 कल्पकोटिसहस्राणि पश्यते नरकात्मना ॥१२८  
 अचक्रधारिणस्तु मन्त्रमभ्यापयेद्गुरु ।  
 रौरवं नरकं प्राप्य चाण्डाली योनिमाप्नुयात् ॥१२९  
 तस्मादीक्षाविधानेन शिष्य भक्तिसमन्वितम् ।  
 मन्त्रमभ्यापयेद्विद्वान् वैष्णव पापनाशनम् ॥१३०  
 अनधीत्य द्वयं मन्त्रं योज्यवैष्णवमुत्तमम् ।  
 अधीत्यमन्त्रसंसिद्धिं न प्राप्नोति न सराय ॥१३१  
 जातय मणिं वा चोले तदा मौञ्जीनवन्धने ।  
 चक्रस्य धारणं यत्र भजेत्तस्य तु तत्र वै ॥१३२  
 उपनीय गुरु शिष्यं गृहोक्तविधिना ततः ।  
 अध्यापयेच्च सावित्रं तपोमन्त्रं द्वयं शुभम् ॥१३३  
 प्राप्तिमन्त्रं स्तुत शिष्य पूजयेद्भूद्वया गुरुम् ।  
 गोमूद्विरण्यरत्नानि चामोभिर्भूषणैरपि ॥१३४  
 सदृक्ता शासयेच्छिष्यमाचार्य संशितव्रत ।  
 स्वरूपं साधनं माध्यं मन्त्रेणैव निःश्रेयेत् ॥१३५  
 द्वयेन वृत्तियाथात्म्यं सम्यगस्मै निःश्रेयेत् ।  
 आचार्याधीनवृत्तिस्तु सयतस्तु यसेत् सदा ॥१३६



कर्मणा मनसा वाचा हरिमेव मजेत् सुधीः ।  
यावच्च तीरपातन्तु द्वयमावर्त्तयेत्सदा ॥१४०  
एवं हि विधिना सम्यङ्मन्त्रसंस्कारसंस्कृतः ॥१४१

इति मन्त्रसंस्कारधृत्यर्थः ।

• ॥

अथ पञ्चसंस्कारविधिर्नामवर्णनम् ।

मन्त्रार्थतत्त्वविदुषं यागतन्त्रे नियोजयेत् ।  
पूर्वाह्णे पूजयेद्देवं तस्य प्रियतरं ह्युभः ॥१४२  
मन्त्ररत्नविधानेन गन्धपुष्पादिभिर्गुरुः ।  
अर्चयित्वाऽश्रुतं भक्त्या होमं पूर्ववदाचरेत् ॥१४३  
सर्वैश्च वैष्णवैः सूक्तैः पायसं घृतमिश्रितम् ।  
आज्यं मन्त्रेण होतव्यं शतमष्टोत्तरं तदा ॥१४४  
शम्भुयां च वैष्णवैर्मन्त्रैः सर्वैर्होमं समाचरेत् ।  
एकैकमाहुतिं हुत्वा सर्वावरणदेवता ॥१४५  
घणवादिचतुर्ध्वन्तै स्तेषां वै नामभिर्यजेत् ।  
होमशेषं समाप्याथ वैष्णवान् भोजयेत्तदा ॥१४६  
मन्त्ररत्नेन तद्विम्बं पुष्पाञ्जलिशतं यजेत् ।  
घणम्य भक्त्या देवेश जप्त्वा मन्त्रमनुत्तमम् ॥१४७  
आदूय घणतं शिष्यं तद्विम्बं दशयेद्गुरुः ।  
कृपयाथ ततस्तमै दद्याद्विम्बं हरेर्गुरुः ! ॥१४८

एनं रक्ष जगन्नाथ ! केवलं कृत्या तव ।  
 अर्चनं यत्कृतं तेन विभो ! स्मोकर्तुं मर्हसि ॥१४६  
 एवं लब्ध्वा गुरोर्विष्णुं पूजयेत्तं प्रयत्नतः ।  
 हिरण्यस्रामरणयानशय्यासनादिभिः ॥१४७  
 ततः प्रभृति देवेशमघेयेद्विधिना सदा ।  
 श्रौतस्मार्त्तांगमोक्तानां ज्ञात्वान्यत्तममनुत्तमम् ॥१४८  
 इति वृद्धहारीतस्मृत्यां त्रिसिद्धधर्मशास्त्रे पञ्चसंस्कार-  
 विधानं नाम द्वितीयोऽध्यायः ।

### ॥ तृतीयोऽध्यायः ॥

अथ भगवन्मन्त्रविधानवर्णनम् ।

अभ्यरीप उवाच ।

भगवन् ! सर्वमन्त्राणां विधानं मम मुञ्चत ! ।  
 मूढि सर्वमरोपेण प्रयोगं सार्धसंस्कृतम् ॥१

हारीत उवाच ।

शृणु राजन् ! प्रवक्ष्यामि मन्त्रयोगमनुत्तमम् ।  
 यथोक्तं विष्णुना पूर्वं ब्रह्मणा परमात्मना ॥२  
 राघवामेव मन्त्राणां प्रथमं गुह्यमुत्तमम् ।  
 मन्त्ररत्नं नृपश्रेष्ठ ! सद्यो गुप्तिफल्प्रदम् ॥३

सर्वेश्वर्यप्रदं पञ्च सर्वपां सर्वकामदम् ।  
 यस्योद्योगमात्रेण परितुष्टो भवेद्भरिः ॥४  
 देशकालादिनियममरिमित्रादिशोधनम् ।  
 स्वरवर्णादिदोषश्च पौरश्चरणकं न तु ॥५  
 ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः स्त्रियः शूद्रास्तथैतराः ।  
 तस्याधिकारिणः सर्वे सत्त्वशीलगुणा यदि ॥६  
 पञ्चसंस्कारसम्पन्नाः श्रद्धावन्तोऽनसूयकाः ।  
 भक्त्या परमयाविष्टा युक्तास्तस्याधिकारिणः ॥७  
 पञ्चविंशत्युक्तो मन्त्रः पदेः पट्वभिः समन्वितः ।  
 घाषयद्भयं परं क्षयं मन्त्ररत्नमनुत्तमम् ॥८  
 यदाश्रयति विद्यादिः संस्मितां जगतां पतिम् ।  
 तया विद्याऽनपायिन्या संगुतः परमः पुमान् ॥९  
 नारायणोऽच्युतः श्रीमान् यात्सल्यगुणसगरः ।  
 नाथः सुशीलः सुलभः सर्वज्ञः शक्तिमान् परः ॥१०  
 आपद्बन्धुः सदा मित्रं परिपूर्णमनोरथः ।  
 दयासुधाढ्यः सविता वीर्यवान् द्युतिमान् विगुः ॥११  
 प्रपद्ये चरणौ तस्य शरणं श्रेयसे मम ।  
 श्रीमते विष्णवे नित्यं सर्वावस्थासु सर्वदा ॥१२  
 निर्ममो निरहङ्कारः वैश्वर्यं करवाण्यहम् ।  
 एवमयं विदित्वैव पञ्चान्मन्त्रं प्रयोजयेत् ॥१३  
 नारायणो महाशब्दो गायत्री च परा शुभा ।  
 स्वयं नारायणः श्रीमान् देवता समुदाहृतः ॥१४

हरयो स्थलयोराद्य मक्षरं विन्यसेद्विजः ।  
 शेषाक्षराणि देयानि चतुर्विंशतिपर्वसु ॥१५  
 पद्मपदैश्चुलिन्यास मङ्गेषु च यथाक्रमम् ।  
 पद्मं पद्मपदे कृत्वा मन्त्रार्थश्च यथाक्रमम् ॥१६  
 मूर्ध्नि भाले नेत्रनासाश्रवणेषु तथाऽङ्गने ।  
 मुनयोर्हस्तदेशोच स्तनयोर्नाभिमण्डले ॥१७  
 पृष्ठे च जघने कट्योरुर्वोर्जान्वोश्च पादयोः ।  
 पञ्चविंशाक्षराण्यस्य क्रमेणाङ्गेषु विन्यसेत् ॥१८  
 एवं न्यासविधिं कृत्वा पश्चाद्धानं समाचरेत् ।  
 हृदीवरदलश्यामं कोटिसूर्याग्निरर्चसम् ॥१९  
 चतुर्भुजं सुन्दराङ्गं सर्वाभरणभूषितम् ।  
 पद्मागमस्थं देवेशं पुण्डरीकनिभेक्षणम् ॥२०  
 रत्नारविन्दमट्टरादिव्यहस्तपदाश्रितम् ।  
 माणिक्यमुकुटोपेतं नीलकुन्तलशीर्षजम् ॥२१  
 शीतलसर्पैश्चुभोरहं वनमालाविराजितम् ।  
 दिव्यचन्द्रलिङ्गाङ्गं दिव्यपुष्पावतंसवम् ॥२२  
 हारकुण्डलनैयूरनूपुरादि निराजितम् ।  
 पट्टनैश्चुरीयैश्च पीतवस्त्रेण शोभितम् ॥२३  
 शङ्खचक्रगदाचक्रपाणिनं पुरोत्तमम् ।  
 वामाङ्गे चिन्तयेत्तस्य देवीं कमलशेखराम् ॥२४  
 दक्षिणीं मुकुमाराम् मयलक्ष्णरोमिताम् ।  
 दुर्गायाम् संयुक्तां सर्वाभरणभूषिताम् ॥२५

तप्रकाश्वनमङ्गाशां पीनोन्नतपयोधराम् ।  
 रत्नपण्डितसंयुक्तां नीलदन्तलक्ष्मीपद्मां ॥२६॥  
 दिग्बचन्दनलिताङ्गी दिग्बपुष्पावतंभरां ।  
 मानुलिङ्गं च रत्नाढ्यं दर्शनं वरदं तथा ॥२७॥  
 देयी च विश्रुती क्षोभिः श्रैन्तयेद्विष्टां सदा ।  
 एवं ध्यात्वा परं निरुपमर्चयेदच्युतं द्विजः ॥२८॥  
 यथात्मनि तथा देवे ज्ञानकर्म समाचरेत् ।  
 अर्चयेदुपचारैश्च मनसा वा जनाङ्गनम् ॥२९॥  
 आपाहनासने पाशमण्येमाचमनीयकम् ।  
 स्नानं यत्नोपरीते च भूषणं गन्धमेव च ॥३०॥  
 पुष्पं धूपं तथा दोषं नैवेद्यं च प्रदक्षिणम् ।  
 नमस्कारश्च ताम्बूलं पुष्पमालां निवेदयेत् ॥३१॥  
 नमःपूजया गुह्यं पञ्चाङ्गपेन्मत्रं समाहितः ।  
 अष्टोत्तरसद्व्यन्तु रात्रमाष्टोत्तरं तथा ॥३२॥  
 ध्यायन्धै मनसा देवं जपेदेकाग्रमानसः ।  
 प्रादुमुद्योदन्मुद्यो वापि समाप्तीनः कुशासने ॥३३॥  
 त्रिसन्ध्यासु जपेद्देवं सर्वसिद्धिमवाप्नुयात् ।  
 आदावन्ते जपस्यास्य प्राणायामान समाचरेत् ॥३४॥  
 पूरकः कुम्भको रेच्य प्राणायामश्चिलक्षणः ।  
 धामेन पूरयेद्वायुं वाह्यं नासा जपन्मनुम् ॥३५॥  
 उमाभ्यां धारण वायोः कुम्भकं समुदाहृतम् ।  
 तद्रेचनं दक्षिणेन रेचनं समुदाहृतम् ॥३६॥

पर्याहृत्या पुनश्चैवं प्राणायामत्रयं क्रमान् ।  
 पूरके कुम्भके चैव रेचके च विशेषतः ॥३७  
 अष्टाश्विनितारं तु जपेन् मन्त्रं समाहितः ।  
 उत्तमं मुनिभिः प्रोक्तं प्राणायमं नृपोत्तम ! ॥३८  
 जन्द्वादशवारं तु उत्तमं तत्प्रकीर्तिनाम् ।  
 पञ्चवारं तु कनोय, स्यात्त्रिवारं मध्यमं स्मृतम् ॥३९  
 मनसराष्ट्रपेद्वं पश्चादथ विचिन्तयेन् ।  
 प्राणायामत्रयं कृत्वा पञ्च न्द्रासं समाचरेन् ॥४०  
 स्नात्वा शुक्लम्बरधरः कृत्वा सन्ध्यादुर्गमं च ।  
 धृतोद्धुङ्गूदेहश्च पवित्रकर एव च ॥४१  
 धृत्या पद्माक्षमालां च सन्निधा वासने स्थितः ।  
 भूतशुद्धिप्रधानश्च कृत्वा मन्त्रं प्रयोजयेत् ॥४२  
 अष्टाक्षरस्य मन्त्रस्य गुरुर्नारायण स्मृतः ।  
 छन्दश्च देवी गायत्री परमात्मा च देवता ।  
 जपश्चाष्टाक्षरो मन्त्रः सर्वपापप्रणाशनः ॥४३  
 सर्वदुःखहरः श्रीमान् सर्वकामफलप्रदः ।  
 सर्वदेवात्मनो मन्त्रः स्तुतो मोक्षप्रदो नृणाम् ॥४४  
 शृणो यन्नूपि सामानि तथैवायवंगानि च ।  
 सरनशुभ्ररान्तस्थं तथान्यदपि चाढ्यायम् ॥४५  
 सर्वार्थो वेदनर्मथ वेदाश्चाष्टाक्षरे स्थिताः ।  
 अष्टाक्षरस्तु प्रणवे अकारे प्रणवः स्थितः ॥४६

इह लौकिकमैश्वर्यं स्वर्गाग्रं पारलौकिकम् ।  
 कैवल्यं भगवत्स्व मन्त्रोऽयं साधयिष्यति ॥४७॥  
 सकृदुत्तारणान्तर्णां त्रुवर्गफलदम् ।  
 स्वरूपं साधनं प्राप्यं ददाति हि समञ्जसा ॥४८॥  
 महापापं चातिपापं विद्यते वोषपापरम् ।  
 जपादस्य मनोराशु प्रणश्यन्ति न संशयाः ॥४९॥  
 अभ्रमेधसहस्राणि राजसूयशतानि च ।  
 सकृदग्राक्षरं जप्त्वा लभते नात्र संशयः ॥५०॥  
 गव मयुतदानस्य पृथिव्या मण्डलस्य च ।  
 कन्याशतसहस्रस्य गजाश्वानां तथैव च ॥५१॥  
 दानस्य यत्फलं नृणां सत्पात्रे नृपनन्दन ! ।  
 शतवारं मनुं जप्त्वा तत्फलं सर्वमानुष्यान् ॥५२॥  
 सायं समुद्रं सन्त्यासं सर्पिच्छन्दोऽग्निदेवतम् ।  
 अष्टाक्षरमनुजित्वा विष्णुमायुज्यमानुष्यान् ॥५३॥  
 पद्मत्रयात्मकं मन्त्रं चतु र्यां सहस्रं तदा ।  
 स्वरूपसाधनोपेयमिति मत्वा जपेद्भुवः ॥५४॥  
 प्रणयेन स्वरूपं स्यात् साधनं मनसा तथा ।  
 संविभक्त्या चतुर्व्यात्र पुण्यार्थो भवेन्मनोः ॥५५॥  
 अकारश्चाप्युकारश्च मकारश्चेति तत्त्वतः ।  
 तान्येकधा समभवत्तदोमित्येतदुच्यते ॥५६॥  
 तस्मादोमिति प्रणवो विज्ञेयः साक्षरात्मकः ।  
 वेदत्रयात्मकं क्षेत्रं भूर्भुवःस्वरितीति वै ॥५७॥

अकारस्तु भवेद्विष्णु स्तद्व्येद वदाहवः ।  
 उकारस्तु भवेद्वक्ष्मीर्यजुर्वेदात्मको महान् ॥५८  
 मकारस्तु भवेज्जीव स्तयोर्दास उदाहृत ।  
 पञ्चविंशाक्षरः साक्षात् सामयेदस्वरूपवान् ॥५९  
 पञ्चविंशोज्यं पुण्यः पञ्चविंश आत्मेति श्रुतेः ।  
 आत्मा पञ्चविंशः स्यादिति मम त्मानं संस्मरेत् ॥६०  
 इत्यौपनिषदं ह्यर्थं विदित्वा त्वं निवेदयेत् ।  
 अवधारणमन्ये तु मध्यमाणं वदन्ति हि ॥६१  
 तदेवाग्निं स्तदायुः स्तत्सूर्यं स्तदपि चन्द्रमाः ।  
 इत्येवं धारणश्रुतेरेवमेवोपवृंहितम् ॥६२  
 ऊ(ओं) कारेणैव श्रीराब्दः प्रोच्यते मुनिसत्तमः ।  
 न्यायेन गुणसिद्धिस्तु तत्स्थैव श्रीपतेर्वरौ ॥६३  
 श्रीरस्येशाना जगतो विष्णुर्ज्ञोति वै श्रुतिः ।  
 कल्याणगुणसिद्धिस्तु लक्ष्मीभर्तुश्च नेतरा ॥६४  
 मामानाधिकरण्यत्वात्कारणत्वं तदोच्यते ।  
 अकार एव सर्वेषामक्षराणां हि कारणम् ॥६५  
 अकारो वै सर्वां पागित्यादि श्रुतिवच्च स्तथा ।  
 स्पर्शोष्मभिर्व्यज्यमानो नानावद्विबोऽभवन् ॥६६  
 कारणत्वं तथैवास्य विष्णोर्वै जगतां पतेः ।  
 तस्मान् नम्रा च दाता च विधाता जगतां हरिः ॥६७  
 रक्षिता जीवलोभस्य गुणवानेव सर्वगः ।  
 अनन्या विष्णुना लक्ष्मी भास्करेण प्रमा यथा ॥६८



लक्ष्मीमनुपगामिनीमिति श्रुतिश्चो महत् ।  
 तस्मादकारो वै विष्णुः श्रीश एव जगत्पतिः ॥६६  
 लक्ष्मीपतित्वं तस्यैव नान्यस्येति मुनिश्चितम् ।  
 नित्यैवैषा जगन्माता हरेः श्रीरनपायिनी ॥७०  
 यथा सर्वगतो विष्णुस्तनैवैषा जगन्मयी ।  
 तस्मादकारो वै विष्णुर्लक्ष्मीमत्ता जगत्पतिः ॥७१  
 तस्मिंश्चतुर्थीयुक्तत्वात् त्रिपदस्य च संपदः ।  
 अकार प्रथमा तस्माच्चतुर्थ्यां संपदं न तु ॥७२  
 तच्च श्रुतिविरोधत्वात् युक्तमिति चोदितम् ।  
 महसे प्रद्वगे त्वा वै ओमित्यात्मानं युञ्जीत ॥७३  
 परस्य चात्मनां तस्माद्देव स्तत्र मुनिश्चितः ॥७४  
 त्वमस्माकं तपस्यैव श्रुत्युक्तमपि पार्थिव ! ।  
 तौ शाश्वतौ त्रिपञ्चिता वियन्ताविति वै तथा ॥७५  
 गृभिष्य दद्या प्रागेव आत्मा न विश्वभृत् ।  
 असौ यमर्त्यो मर्त्येन नयेनेत्येव योनिता ॥७६  
 इत्यादि श्रुतयो भेदं घदन्ति परजीवयोः ।  
 दाक्ष्यमेवात्मना विष्णोः स्वरूपं परमात्मनः ॥७७  
 साम्यं लक्ष्मीचरप्रोक्तं देवादीनां तथात्मनाम् ।  
 अनन्यशेषरूपा वै जीवास्तस्य जगत्पतेः ॥७८  
 दाक्ष्यं स्वरूपं सर्वेषामात्मनां सतपं हरेः ।  
 भगवच्छेषमात्मानमन्यथा यः प्रपद्यते ॥७९

अस्यातन्वयात्तु जीवानामधीनं परमात्मनः ।  
 नमसा प्रोच्यते तस्मान्नदन्ताममतोऽपितम् ॥६०  
 स्वरूपादित्रिगत्स्य संसिद्धिर्न तु सैव हि ।  
 नमसा रहितं सर्वं विफलं सम्प्रयीक्षितम् ॥६१  
 नमसैव हि संसिद्धिर्मोदय न संशयः ।  
 पुरतः पृष्ठमध्ये पार्श्वतश्च यरोपत ॥६२  
 समसंश्रुते राजन् ! त्रिगः सर्वदेहिनाम् ।  
 मकारेण ह्यतः त्रः स्यन्नस्तं निविशति ॥६३  
 एस्माद्य नम इत्यत्र ह्यतन्व्यमपनोदति ।  
 द्व्यक्षरस्तु भजेन्मृत्युखं यक्षरस्तु हि शाश्वतम् ॥६४  
 ममेति द्व्यक्षरं मृच्युर्न ममेति तु शाश्वतम् ।  
 न ममेति च सवत्र ह्यतन्व्यददितः यै ॥६५  
 युज्यते मुनिभिः सम्यक् सर्वकर्मषु पार्थिव ! ।  
 एस्मात् नमसा युक्ता मन्त्राः सर्वं च पार्थिव ! ॥६६  
 सर्वसिद्धिप्रदा नृणां भवन्त्यत्र न संशयः ।  
 नमसा रहिता ये तु न तु मुक्तिप्रदा नृणाम् ॥६७  
 एस्मात् नमसैरेव पारतन्व्यदयमोशितुः ।  
 पारतन्व्याल्लभेत् सिद्धिं ह्यतन्व्यन्नाशमेत्यति ॥६८  
 दास्यमेव हि जीवानां प्रोच्यते नमसैव तु ।  
 समसा रहितं लोके किञ्चिदत्र न विद्यते ॥६९  
 नमो देवेभ्यो नम इति येषामोरो तथा मनः ।  
 ह्यतश्चिदेनो नमसा आविवाह्येति वै श्रुतिः ॥१००

क्षयैरकारः सम्प्रोक्तो नकारस्तं निषिध्यति ।  
 तस्मात्तु नर इत्यत्र नित्यमेनोच्यते जनः ॥१०१॥  
 नारा इति समूहत्वे बाहुल्यत्वाज्जनस्य च ।  
 तेषामयनमात्रासस्तेन नारायणः स्मृतः ॥१०२॥  
 महामूढान्यहङ्कारो मदद्वयतमेव च ।  
 अण्डं तदन्तर्गता ये लोकाः सर्वे चतुर्दश ॥१०३॥  
 चतुर्विधशरीराणि कालं कर्मतिष्ठजगत् ।  
 प्रवादरूपेणैवैषां नारद्रेनोच्यते कुपे ॥१०४॥  
 तेषामपि निवासत्वाज्जारायण इतीरितः ।  
 अन्तर्बहिष्व जगतो धाता सच सनातनः ॥१०५॥  
 स्रष्टा नियन्ता शरणं विधाता भूतभावनः ।  
 माता पिता सत्ता भ्राता निवासश्च मुह्यद्गतिः ॥१०६॥  
 योनौ श्रियः श्री परमस्तेन नारायण स्मृतः ।  
 नराणां सर्वजगतामयनं शरणं हरिः ॥१०७॥  
 तस्मान्नारायण इति मुनिभिः सम्प्रकीर्त्यते ।  
 सर्वेषु देशकालेषु सर्वावस्थासु सवदा ॥१०८॥  
 तस्यैव त्रिकूरोऽस्मीति चतुर्धा परमात्मन ।  
 भगवत्परिचर्येव जीवानां फलमुच्यते ॥१०९॥  
 तद्विना किं शरीरेण यातनास्य जनस्य तु ।  
 यस्मिन् शरीरे जीवानां न दास्यं परमात्मनः ॥११०॥  
 तदेव निरयं प्रोक्तं सर्वदुःखफलं भवेत् ।  
 दास्यमेव फलं विष्णोर्दास्यमेव परं सुखम् ॥१११॥

दास्यमेव हरेर्मोक्षं दास्यमेव परं तपः ।  
 ब्रह्माद्याः सकला देवा वशिष्ठाद्या महर्षयः ।  
 काङ्क्षन्तः परमं दास्यं विष्णोरेव यजन्ति तम् ॥११२  
 तस्माच्चतुर्थ्या मन्त्रस्य प्रधानं दास्यमुच्यते ।  
 न दास्यवृत्तिर्जीवानां नाशहेतुः परस्य हि ॥११३  
 इत्थं सञ्चिन्त्य मन्त्राय जपेन्मन्त्रमतन्द्रितः ।  
 अविदित्वा मनोरथं जपेत् प्रयत्नमानसः ॥११४  
 न संसिद्धिमवानोति स्वरूढ न विन्दति ।  
 संसारश्च समुद्रश्च सर्पिचण्डोऽधि दैवतम् ॥११५  
 साद्धं स यज्ञं सद्गन्धानं मन्त्रमेव प्रपूजयेत् ।  
 नारायणापं गायत्रीं दैवीं चन्द्रोऽधिदेवता ॥११६  
 परमात्मा च लक्ष्मीशो विष्णुरेवाच्युतो हरिः ।  
 प्रणवस्तु भयेद्वीजं चतुर्थीं शक्तिरुच्यते ॥११७  
 मृद्धोल्लकाय महोल्लकाय विष्णूल्लकाय तथैव च ।  
 जाल्लकाय सहस्रोल्लकाय पञ्चाङ्गो न्यास उच्यते ॥११८  
 हृन्मूर्ध्नाश्च शिरसायाश्च कवचो नेत्रयोर्न्यसेत् ।  
 पञ्चाङ्गन्यासमित्युक्तं सर्वमन्त्रेषु वैष्णवैः ॥११९  
 यदा त्रयेण कुर्यात् पण्डितं तु यथाक्रमम् ।  
 मूर्ध्न्यान्ने च हृदये सु त्रयोर्जघने तथा ॥१२०  
 पृष्ठे च जान्वो पदयोर्मन्त्रार्णानि यदा न्यसेत् ।  
 अष्टाक्षराण्यष्टदिक्षु क्रमेण तदनन्तरम् ॥१२१

दूयामिजुहुयात्तद्वदभेदमिमभीप्सितम् ।  
 राज्यकामो जपेन्नित्यं षडञ्जं ऽययुतं तथा ॥१४४  
 सहस्रं जुहुयान् नित्यं पायसं घृतमिश्रितम् ।  
 चक्रवर्ती भवेत् सद्यः पद्माभक्तुः प्रसादतः ॥१४५  
 द्वादशाब्दं जपेद्देवं सत्ततं विजितेन्द्रियः ।  
 आत्महोमो तु यो नित्यमिन्द्रत्वं लभते न र ॥१४६  
 लक्षजपेद्यो नित्यं त्रिंशद्वपै जितेन्द्रियः ।  
 ब्रह्मत्वं वा शिवत्वं वा समाप्नोति न संशयः ॥१४७  
 यावज्जीवं तु यो नित्यमयुतं सुसमाहितः ।  
 सहस्रं वा शतं वापि होतव्यं बहिमण्डले ॥१४८  
 आङ्घ्रेन चरुणा वापि तिलैर्वा शर्करान्वितैः ।  
 पद्मे वा विल्वपत्रैर्वा समिद्धिः पिप्पलस्य वा ।  
 कीमलैस्तुलसीपत्रैरर्चयित्वा सनातनम् ॥१४९  
 अनन्तविहगेशाना क्षिप्रमन्यतमो भवेत् ।  
 किमत्र बहुनोक्तेन सर्वसिद्धिप्रदो नृणाम् ॥१५०  
 श्रीमदष्टाक्षरो मन्त्रो नित्यप्रियतमो हरेः ।  
 आसीनो वा शयानो वा तिष्ठन्वा यत्र कुत्रचित् ॥१५१  
 जपेदष्टाक्षरं मन्त्रं तस्य विष्णुः प्रसीदति ।  
 संज्ञातः सर्वतीर्थेषु सर्वयज्ञेषु दीक्षितः ॥१५२  
 अभितः सूर्यदेवानां यो जपेत्सत्ततं मनुम् ।  
 ब्रह्मणो वा कृतज्ञो वा महापापयुतोऽपि वा ॥१५३

अष्टाक्षरस्य जप्तारं दृष्ट्वा पापैः प्रमुच्यते ।  
 अष्टाक्षरस्य जप्तारो यथा भागवतोत्तमाः ॥१५४  
 पुनन्ति सकलं लोकं सदेवासुरमानुषम् ।  
 अष्टाक्षरस्य जप्तारं प्रणमेद्यस्तु भक्तिः ॥१५५  
 सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोके महीयते ।  
 अचिन्त्यमेतन्माहात्म्यं मनोरस्य जगत्पतेः ॥१५६  
 न हि वक्तुं मया शक्यं ब्रह्मादित्रिदशैरपि ।  
 अथ यक्ष्यामि माहाम्यं द्वादशाक्षरस्य पार्थिव । ॥१५७  
 यत्प्रोच्चारणमात्रेण द्वादशाब्दफलं लभेत् ।  
 नमो भगवते नित्यं वासुदेवाय शार्ङ्गिणे ॥१५८  
 प्रणवेन समाधुतं द्वादशाक्षरं ननु जपेत् ।  
 पूर्वप्रणवस्याथ नमसश्च महामनो ॥१५९  
 ऐश्वर्यं च तथा वीर्यं तेजः शक्तिरनुत्तमा ।  
 ज्ञानं धनं यदेतेषां यन्मा भगवदीरितः ॥१६०  
 एभिर्गुणैः पूर्ववाक्यः स एव भगवान् हरिः ।  
 नित्या च या भगवती प्रोच्यते मुनिसत्तमैः ॥१६१  
 ऐश्वर्यरूपा सा देवी सुभगा कमलालया ।  
 ईश्वरी सर्वजगतां विष्णुपत्नी सनातनी ॥१६२  
 तस्याः पतित्या धीशस्य भगवानिति चोच्यते ।  
 तस्मात्तु भगवान् श्रीमानेकार्यो मुनिभिः स्मृतः ॥१६३  
 भगवानिति शब्दोऽयं तथा पुरुषइत्यपि ।  
 निरुपाधौ च वर्तेत वासुदेवेऽखिलात्मनि ॥१६४

वक्ष्यन्ति केचिद्भगवान् ज्ञानवानिति सत्तमाः ।  
 तद्वामुदेवेनोक्तं स्यात्सामान्यत्वात्ततोऽन्यथा ॥१६५  
 तस्मात्प्रत्याणगुणवान् श्रीमान् योजसौ जगत्पतिः ।  
 स एव भगवान् विष्णुर्गामुदेवः सनातनः ॥१६६  
 भगवते श्रीमते चेत्येकार्थं हि प्रोच्यते युषैः ।  
 गुणवान् भगवानेव सृष्टिस्थिति विनाशश्च ॥१६७  
 द्वौ द्वौ गुणावधिष्ठाय सर्वायमः परोत्तमः ।  
 प्रद्युम्नश्चानिरुद्धश्च सङ्कर्षण इतीरितः ॥१६८  
 भगवान् वामुदेवोऽपौ सृष्ट्यायमकरोन् स्वयम् ।  
 ऐश्वर्यवीरवान् सर्गे प्रद्युम्न पयंपद्यत ॥१६९  
 तेज शक्तिं समाविश्य अनिरुद्धो ह्यगलयत् ।  
 बलक्षाने तथा द्वे तु सङ्कर्षणो ह्यधिष्ठितः ॥१७०  
 अकरोद्भगवानेव संसारं जगतः पुनः ।  
 एवं पद्मगुणगुणत्वात् पतित्वात्तपि च श्रियः ॥१७१  
 सर्गादेः कारणत्वाच्च भगवानिति चोच्यते ।  
 सर्वत्रासौ समत्वं च वसत्यग्रेति वै यतः ॥१७२  
 ततः स वामुदेवेति विद्वद्भिः परिपद्यते ।  
 चतुर्थी पूर्वमिद्विद्यात् कैङ्कर्यायं महात्मनः ॥१७३  
 एवं ज्ञाया मनोरथं द्वादशार्णस्य चक्रिणः ।  
 संसिद्धिं परमाप्नोति सम्यगावर्त्य चेतसा ॥१७४  
 गत्वा गत्या निवर्तन्ते सर्वकतुफलैरपि ।  
 तद्गत्या न निवर्तन्ते द्वादशाक्षरचिन्तकाः ॥१७५

द्वादशाणं सकृज्जप्त्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते ।  
 ब्रह्महत्यादिपापानि तत्संसर्गकृतानि च ॥१७६॥  
 द्वादशाणं मनोर्जप्तुं ब्रह्ममिरिवेन्धनम् ।  
 सवेत्सौभाग्यमुखदं पुत्रपौत्राभिवर्द्धनम् ॥१७७॥  
 सर्वकामप्रदं नृणामायुरारोग्यवर्द्धनम् ।  
 दैवत्वममरेशत्वं शिपग्रहद्वयमेव च ॥१७८॥  
 द्वादशाणं मनुं जप्त्वा समाप्नोति न संशयः ।  
 दुराचारोऽपि सर्वाशी कृण्वन् नो नास्ति शोऽपि वा ॥१७९॥  
 द्वादशाणंमनुं जप्त्वा विष्णुसायुज्यमाप्नुयात् ।  
 प्रजापतिः वश्यपश्च मनुः स्याद्यन्मुदस्तथा ॥१८०॥  
 सप्तर्षयो भ्रवश्चैते ऋषयस्तस्य कीर्तिताः ।  
 यशिश्रः वश्यपोऽग्निश्च विश्वामित्रश्च गौतमः ॥१८१॥  
 जमदग्निर्मरिचाजस्त्येते सप्तमहर्षयः ।  
 भगवान् धामुदेवो वै देवतास्य प्रकीर्तितः ॥१८२॥  
 छन्दश्च परमा देवी गायत्री समुदाहृता ।  
 साधकानां सदा राजन् कामुदेनुरितिरितिः ॥१८३॥  
 दशाङ्गुलीषु त्रयोर्द्वादशाणांनि विन्यसेत् ।  
 पदैश्चतुर्भिरङ्गेषु विन्यसेत्तदनन्तरम् ॥१८४॥  
 चतुरङ्गेषु विन्यस्य मन्त्रेणोत्तरयोर्द्वायोः ।  
 मूर्धन्यास्यनेत्रयोर्नासाकर्णयोर्मुञ्जयो स्तथा ।  
 हृदि कृत्वा तथा गुह्ये ऊर्ध्वोर्जांश्च पादयोः ॥१८५॥



मन्त्राणांनि तु विन्यस्य क्रमेणैव नृपोत्तम ।  
 अचक्राय विचक्राय मुचक्राय तथैव च ॥१८६  
 तथा त्रैलोक्यचक्राय महाचक्राय वै तथा ।  
 असुरान्तचक्राय स्वदान्तं प्रणवादिकम् ॥१८७  
 हृदयादिपटङ्गेषु यथाशास्त्रं प्रयोजयेत् ।  
 क्षीरान्धौ शेषपर्यङ्के समासीनं श्रिया सह ॥१८८  
 नीलजीमूतसङ्घातं तप्तकाञ्चनभूषणम् ।  
 पीताम्बरधरं देवं रक्ताब्जदललोचनम् ॥१८९  
 दीर्घैश्चतुर्भिर्दोर्भिश्च सर्वाभरणभूषितैः ।  
 शङ्खचक्रगदाशाङ्गान् विभ्राण परमेश्वरम् ॥१९०  
 नानाकुसुमसम्यङ्गनीलकुन्तलश्रीपञ्चम् ।  
 ध्रीयत्सकौस्तुभोरस्कं धनमालाविभूषितम् ॥१९१  
 समाश्लिष्टं श्रिया दिव्या पद्मया पद्महस्तया ।  
 स्तूयमानं विमानस्थैर्देवगन्धर्वकिन्नरैः ॥१९२  
 मुनिभिः सनकाद्यैश्च सेवितश्च सुरर्षिभिः ।  
 एवं ध्यात्वा हरिं नित्यं जपेन्मन्त्रं समाहितः ॥१९३  
 अर्घयित्वा तृपीकेशं सुगन्धकुसुमैः सदा ।  
 शालग्रामादिकस्थाप्यर्चमानं जपेद् धुधः ॥१९४  
 जपित्वा दशसाहस्रं यावज्जीवं समाहितः ।  
 वप्णवं पदमाप्नोति पुनरावृत्तिवर्जितम् ॥१९५  
 आयुष्कामी जपेन्नित्यं वत्सरं विजितेन्द्रियः ।  
 संख्या द्वादशसाहस्रं होमं तिलसहस्रकम् ॥१९६

लभेतांऽऽयुः शतसमा दुःखरोगविवर्जितम् ।  
 विवाहकामी पश्मासं जपेन्नित्वं जितेन्द्रियः ॥१६७  
 आज्यहोमी सहग्रन्तु लभेत्कन्यां सुलक्षणाम् ।  
 सम्पत्कामो जपेन्नित्यं वत्सरन्तु सहस्रराः ॥१६८  
 साज्यैश्च ग्रीहिभिर्होमी सहस्रं शिवमानुयात् ।  
 राज्यमिन्द्रपदं चापि शिवत्यं प्रहतामपि ॥१६९  
 बहुकालं वित्यपत्रैः कमलैर्वा जपेन्मनुम् ।  
 जुहुयाद्य जपेन्नित्यं तत्तत्प्राप्नोत्यसंशयम् ॥१७०  
 यं यं कामयते चित्ते तत्र तत्र नृपोत्तमः ।  
 जुहुयान्मालतीपुष्पैरयुतं विजितेन्द्रियः ॥१७१  
 तां तां सिद्धिमवाप्नोति पर्वं चाप्नोति वंष्णवम् ।  
 द्वादशार्णेन मनुना पक्षे पक्षे द्विजोत्तमः ॥१७२  
 द्वादशया पूजयेद्विष्णुं कोमलैः स्तुलसीदलैः ।  
 विष्णुस्तुत्य वपुः श्रीमान् ! मोदते परमे पदे ॥१७३  
 द्वादशार्णमनोरेवंविधानं प्रोच्यते नृपः ।  
 अथ ते सम्प्रवक्ष्यामि पट्टक्षरमनोरिदम् ॥१७४  
 विधानं सर्वफलदं जन्ममृत्युविकृन्तनम् ।  
 ओं नमो विष्णवे चेति पट्टक्षर मुदाहृतम् ॥१७५  
 पूर्ववत्प्रणवस्यार्थं नमःशब्द उदाहृतः ।  
 व्याप्तत्वाद्युच्चापनत्वाद्य विष्णुरित्यभिधीयते ॥१७६  
 सदैकरूपरूपत्वात् सर्वात्मत्वाद्विमुक्ततः ।

स्यादोम्बीजं नमः शक्तिर्मनोरस्य प्रकीर्तितम् ।  
 त्रिभिः पदैः षडङ्गेषु यथासंख्यं सुविन्यसेत् ॥२१८  
 अङ्गुलीष्वपि चाङ्गेषु मन्त्राणांनि यथाक्रमात् ।  
 मूर्धन्यास्थे हृदये वाह्योः पृष्ठे गुह्ये यथाक्रमम् ॥२१९  
 विन्यस्य चमन्यासं च पश्चाद्धानेषु तमयम् ।  
 शृणोतेनोन्मुखीकृत्य हृत्पङ्कजमधोमुखम् ॥२२०  
 विक्रासयेद्य मन्त्रेण विमलं तस्य केशरम् ।  
 तस्योपरि च षष्ठ्यर्कसोमविभ्यानि चिन्तयेत् ॥२२१  
 तत्र रत्नमयं पीठं तन्मध्येऽष्टदलाम्बुजम् ।  
 तस्मिन् कोटिशशाङ्काभं सर्वलक्षणलक्षितम् ॥२२२  
 चतुर्भुजं मुन्दराङ्गं युवानं पद्मलोचनम् ।  
 कोटिकन्दर्पलावण्यं नीलधूलतिकालकम् ॥२२३  
 शङ्खनासं रक्तगण्डं विम्बितोज्ज्वलबुण्डलम् ।  
 शङ्खचक्रगदापद्मधारणं दोभिरुज्ज्वलैः ॥२२४  
 केयूराङ्गदहाराद्यैर्भूषणैश्चन्दनैरपि ।  
 अलङ्कृतं गन्धधूपै रक्तद्वस्तु इन्निपङ्कजम् ॥२२५  
 मुक्ताफलाभङ्गतालं घनमालाविभूषितम् ।  
 श्रीवत्सकौस्तुभोरस्कं दिव्यधीताम्बरं हरिम् ॥२२६  
 तातकाश्वनवर्णमं पद्मया पद्महस्तया ।  
 समाशिष्टममुं देवं ध्यात्वा विष्णुमयो भवेत् ॥२२७  
 मनसोपचाराणि कृत्वा मन्त्रं जपेत्ततः ।  
 त्रिसन्ध्यासु जपेन्नित्यं सहस्रं साष्टकं द्विजः ॥२२८

विष्णोर्लोकेनयाप्नोति पुनरावृत्तिर्षितम् ।  
 पूर्वयशसहोमाज्यं कृत्वा सिद्धिं नरो लभेत् ॥२२६  
 भगवन्मन्त्रिषो वापि तुल्योपासनेऽपि वा ।  
 समाहिममना जप्त्वा पट्ठं नियतेन्द्रियः ॥२२७  
 मिलहोमायुतं कृत्वा सर्वमिदमयानुयात ।  
 एवं विष्णुमनोः प्रोक्तं विधानं नृपमत्तमम् ॥२२८  
 विधानैर्युनाऽमुष्य मन्त्रस्यापि प्रयीमि तं ।  
 पञ्चश्रं दशश्रेस्तावद्व्यस्य फल्यते ॥२२९  
 सर्वैश्वर्यप्रदं नृणां सर्वकामफलप्रदम् ।  
 एतमेव परं मन्त्रं ब्रह्मन्नादिदेयता ॥२३०  
 श्रुपयन्न महात्मानो मुक्त्वा जप्त्वा भगवन्मुखी ।  
 एतन्मन्त्रमगस्त्यन्तु जप्त्वा रुद्रत्वमानुयात ॥२३१  
 ब्रह्मत्वं कारयषौ जप्त्वा कौशिरस्यमरेश्वराम् ।  
 फातिरेयो मनुत्रश्च इन्द्राकीं गिरिनारदौ ॥२३२  
 बालप्रित्यादिमुनयो देवतात्वं प्रपेदिरे ।  
 एष वै सर्वलीकानामैश्वर्यस्यैव कारणम् ॥२३३  
 इममेव जपेन्मन्त्रं रुद्रस्त्रिपुरधातकः ।  
 ब्रह्महत्यादि निर्मुक्तः पूज्यमानोऽभनन् सुरैः ॥२३४  
 अद्यापि कारयो रुद्रस्तु सर्वेषां त्यक्तजीरेणाम् ।  
 दिशत्येतन्महामन्त्रं तारकब्रह्मनामकम् ॥२३५  
 तस्य श्रवणमात्रेण सर्व एव दिवं गताः ।  
 श्रीरामाय नमो ह्येष तारकब्रह्मनामकः ॥२३६

नाम्नो विष्णोः सहस्राणां तुल्य एव महामनुः ।  
 अनन्तो भगवन्मन्त्रो नानेव तु समाः कृताः ।  
 श्रियो रमणसामर्थ्यात्सौकर्यगुणगौरवात् ॥२४०  
 श्रीराम इति नामेदं तस्य विष्णोः प्रकीर्तितम् ।  
 रमया नित्ययुक्तत्याद्राम इत्यभिधीयते ॥२४१  
 रकारमैश्वर्यधीजं मकारस्तेन संयुतः ।  
 अवधारणयोगेन रामेत्यस्मान्मनोः स्मृतः ॥२४२  
 शक्तिः श्री रक्ष्यते राजन् ! सर्व्वाभीष्टफलप्रदा ।  
 श्रियो मनोरमो योऽसौ स राम इति विभ्रुतः ॥२४३  
 चतुर्थ्यां नमसश्चैव सोऽर्थः पूर्ववदेव हि ।  
 ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च अगस्त्याद्या महर्षयः ॥२४४  
 छन्दश्च परमा देवी गायत्री ममुदाहृता ।  
 श्रीरामो देवता प्रोक्तः सर्वैश्वर्यप्रदो हरिः ॥२४५  
 अङ्गुलीष्वपि चाङ्गेषु न्यासकर्माद्यधीजतः ।  
 मूर्ध्न्यास्ये हृदये वृष्टे गुह्ये चरणयो स्तथा ॥२४६  
 बैजयाद्य गुरोः पञ्चसंस्कारविधिपूर्वकम् ।  
 अधीत्य मन्त्रं विधिना पञ्चाहेवं जपेद्बुधः ॥२४७  
 ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः स्त्रियः शूद्रास्तथेतराः ।  
 मन्त्राधिकारिणः सर्वे ह्यनन्यशरणा यदि ॥२४८  
 स्नानादिकृतकृत्यः सन्नूर्ध्वपुण्ड्रः पवित्रघृत् ।  
 कृष्णाजिने समासीनः प्राणायामी च न्यासकृत् ॥२४९

ध्यायेत्तमलपत्राक्षं जानकीसहितं हरिम् ।  
 नैव ध्यानं प्रकुर्वीत विप्रहे सति शार्ङ्गिणः ॥२५०  
 चन्दनागुरुकर्पूरवासिते रुद्रमण्डपे ।  
 विताने युग्ममालायै धूपैर्दिव्यैर्विराजिते ॥२५१  
 तन्मध्ये कल्पवृक्षस्य छायायां परमासने ।  
 नानारत्नमये दिव्ये सौवर्णे सुमनोहरे ॥२५२  
 तस्मिन् बालार्क सङ्कारो पङ्कजेऽद्भले शुभे ।  
 वीरासने समासीनं वामाङ्काश्रितसीतया ॥२५३  
 सुस्निग्धशालिलश्यामं कोटिदैश्वानरप्रभम् ।  
 युवानं पद्मपत्राक्षं कनकाम्बरशोभितम् ॥२५४  
 सिंहस्कन्धानुरुगं कम्बुगोवं महाहनुम् ।  
 पीनवृत्तायतस्निग्धमहाबाहुचतुष्टयम् ॥२५५  
 विशालरक्षसं रक्तहस्तगदतलं शुभम् ।  
 घन्धूकस्मितमुक्ताभदन्तौष्ठद्वयशोभितम् ॥२५६  
 पूर्णचन्द्राननं स्निग्धं भ्रूयुगं घननासिकम् ।  
 रम्भोरुद्वयमानीलकुन्तलं स्मितचन्दनम् ॥२५७  
 तरुणादित्यसङ्काशकुण्डलाभ्यां विराजितम् ।  
 हारकेयूरफटकैरङ्गुलीयैश्च भूषणैः ॥२५८  
 श्रीमत्सकौस्तुभाभ्याश्च वैजयन्त्या विभूषितम् ।  
 हरिचन्दनलिप्ताङ्गं वस्तुरीतिलकाञ्चितम् ॥२५९  
 शङ्खचक्रधनुर्बाणान् विभ्राणं दोभिरायतैः ।  
 वामाङ्गे सुस्थितां देवीं तप्तकाञ्चनसन्निभाम् ॥२६०

पद्माक्षीं पद्मपदनां नीलकुन्तलशीर्षजाम् ।  
 आरुह्यौमनां नित्यां पीनोन्नतपयोधराम् ॥२६१  
 दुकूलवस्त्रसम्बितां भूपणैरुपशोभिताम् ।  
 भजतां कामदां पद्महस्तां सोतां विचिन्तयेत् ॥२६२  
 लक्ष्मणं पश्चिमे भागे धृतच्छत्रं महाबलम् ।  
 पार्श्वे भरतराजुन्नो बालञ्जयनपाणिनी ॥२६३  
 अग्रतस्तु हनूमन्तं यद्वाञ्जलिपुटं तथा ।  
 सुमीषं जाम्बवन्तश्च सुपेणश्च विभीषणम् ॥२६४  
 नीलं नलञ्चाङ्गदश्च शृपभं दिक्षु पूजयेत् ।  
 यरिष्ठो धामदेवश्च लाघालिरथ वश्यपः ॥२६५  
 मार्कण्डेयश्च मौद्गल्यस्तथा पर्वतनारदौ ।  
 द्वितीयावरणं श्रोक्तं रामस्य परमात्मनः ॥२६६  
 घृष्टिर्जयतो विजयः सुराष्ट्रो राष्ट्रवर्धनः ।  
 अलको धर्मपालश्च सुमन्तुश्चाष्टमन्त्रिणः ॥२६७  
 तृतीयावरणं तस्य तत्र चन्द्रादिदेवताः ।  
 कुमुदाद्याश्च चण्डाद्या विमाने चान्तरीयकाः ॥२६८  
 एवं ध्यात्वा जगन्नाथं पूजयेन्मनसाऽपि वा ।  
 षट्सहस्रं जपेन्मन्त्रं जुहुयाच्च सहस्रकम् ॥२६९  
 जुहुयाच्चरुगा वापि शतं पुष्पाञ्जलिं न्यसेत् ।  
 एवं संपूज्य देवेशं यावज्जीवमतन्द्रितः ॥२७०  
 तदेहपतने तस्य सारूप्यं परमे पदे ।  
 विद्या स्त्री राज्यवित्ताद्यं यं यं कामयते हृदि ॥२७१

सकृद् (कृपि) भूयाचकः शब्दो णश्च निवृत्तिवाचकः ।

चभयो सङ्गतिर्यत्र चङ्गल्लेख्यभिधीयते ॥२६४

णकारश्च पकारश्च बलप्राणा युभौ स्मृतौ ।

आत्मन्वेतौ समायुक्तौ जगत्तोऽस्यापि कृणवः ॥२६५

सत्मात् कृ णेति मन्त्रोऽयं वाचकः परमात्मनः ।

कृ णेति परमो मन्त्रः सर्वभेदाधिकः स्मृतः ॥२६६

प्रिय सतः प्राणपदात् श्रीरृष्ण इति वै स्मृतः ।

एवमर्थं विदित्वैव पञ्चान्मन्त्रं जपेद्बुधः ॥२६७

सर्वकामप्रदत्नाच्च धीमं कान्दर्पमुच्यते ।

नित्यानपाया श्रीशक्तिर्मणोरस्य प्रयुज्यते ॥२६८

देवर्षि नारदस्तस्य गायत्री छन्द उच्यते ।

देवता रुक्मिणी भर्ता बृहगः सर्वफलप्रदः ॥२६९

पूर्ववद्विधिना मन्त्रं गृहीत्वा वैष्णवाद्गुरोः ।

ज्ञानयन्त्रादिभिः शुद्धं कृत्यं कुर्यात्पुण्ड्रधृत् ॥३००

तुलसीकानने रम्ये देशे वा प्राङ्मुखः शुभे ।

कुरो कृष्णाजिने वापि पुष्पे वा शुभवासरे ॥३०१

समासीनस्तु कुर्वीत प्राणायामांश्च पूर्ववत् ।

आदिग्रीजेन हृत्तेत पङ्क्तेषु यथाक्रमम् ॥३०२

अङ्गु ग्रीष्मपि तेनैव न्यासकर्म समाचरेत् ।

मुखं बाह्वोश्च हृदये ध्यजे जान्वोश्च पादयोः ॥३०३

चिन्त्यस्य मन्त्रार्णानि चक्रं न्यासं ततः कृतम् ।

पूर्व(जन्ममयादीनि)यन्मन्त्रपादीनि

रमरे(दाभरणानि)च्छाभरणानि च ॥३०४



विचित्रशुभपर्यङ्के दिव्यकल्पतरोरधः ।  
 मुगन्धपुष्पसङ्कीर्णं सर्वतः सुविचित्रिते ॥३०५  
 तस्मिन् देवशा ममासीनं रुक्मिण्या रुक्मवर्णया ।  
 नीलोत्पलामं कन्दर्पलावण्यं पद्मलोचनम् ॥३०६  
 चन्द्राननं जपापुष्परक्तहस्तपदाम्बुजम् ।  
 नीलकुञ्चितफेरां च मुकपोलं सुनामिकम् ॥३०७  
 सुध्रूयुगं सुविम्वोष्टं सुदन्तालिविराजितम् ।  
 उन्नतामं दीर्घबाहुं योनयक्षसमन्वयम् ॥३०८  
 निरङ्गचन्द्रनगरं सर्वलक्षणलक्षितम् ।  
 श्रीवत्सकौस्तुभोद्भासं धनमालामहोत्सम् ॥३०९  
 पीताम्बरं भूषणाढ्यं बालार्काभं मुकुण्डलम् ।  
 हारकेयूरफटकैरङ्गुलीयैश्च शोभितम् ॥३१०  
 मौक्तिकान्वितनासाग्रं कस्तूरीतिलकाञ्चितम् ।  
 हरिचन्दनलिप्ताङ्गं सदैवाऽऽरुह्यौवनम् ॥३११  
 मन्दारपारिजातादिकुमुमैः कवरीरुतम् ।  
 अनर्घ्यमुक्ताहारैश्च तुलसी धनमालया ॥३१२  
 चक्रशङ्खसमेताभ्यामुद्वाहभ्या विराजितम् ।  
 इतराभ्यां तथा देवीं समाश्रितं निरन्तरम् ॥३१३  
 अलङ्कृताभिः सत्यादिमहिषीभिः समावृतम् ।  
 कालिन्दी सत्यभामा च मित्रविन्दा च सत्यवित् ॥३१४  
 सुनन्दा च मुशीला च जाम्बवती सुलक्षणा ।  
 एता महिष्यः संप्रोक्ताः कृष्णस्य परमात्मनः ॥३१५

ताभिश्च राजकन्यानां सहस्रं परितेवितम् ।  
 तारकापृत्तराजेव शोभितं निधिभिर्दृतम् ॥३१६  
 एवं ध्यात्वा हरिं नित्यमर्चयित्वा जपेन्मनुम् ।  
 शालग्रामे च तुलसीवने वा स्थण्डिले हृदि ॥३१७  
 स्मृत्या जपेत् त्रिसन्ध्यासु षट्सहस्रं मनुं द्विजः ।  
 त्रिणुतुल्यधनुः श्रीमान्विष्णुलोकमवाप्नुयात् ॥३१८  
 सर्वसिद्धिमवाप्नोति इह लोके परत्र च ।  
 त्रिधार्थी वेणुगायन्तं जपेत् ध्यायन् ऋतुत्रयम् ॥३१९  
 जुहुयात् कुसुमैः शुभ्रं त्रिधासिद्धिमवाप्नुयात् ।  
 आयुष्कामी तु पूर्वाह्ने षत्सरान् ह्ययुतं जपेत् ॥३२०  
 ध्यायेच्छिशुवतुं कृष्णं तिलैर्दुत्पाऽऽयुराप्नुयात् ।  
 वन्यार्थी तु जपेत्सायं षोडशं त्र्ययुतं हरिम् ॥३२१  
 ध्यात्वा सहस्रं जुहुयाद्वाजैर्मधुविमिश्रितः ।  
 स्त्रियं लभेत् स्याभिमतौ रूपौदार्यवती सतीम् ॥३२२  
 सम्पत्कामी जपेन्नित्यं मध्याह्ने तु ऋतुत्रयम् ।  
 द्वारकाया सुधर्माया रत्नसिंहासने स्थितम् ॥३२३  
 शङ्खादिनिधिभी राजकुलैरपि सुसेवितम् ।  
 हारादिभूषणैर्युक्तं शङ्खाद्यायुधधारिणम् ॥३२४  
 ध्यात्वा संपूज्य होमं च जपश्चायुतं संख्यया ।  
 अज्जवित्त्वदलैर्वाऽपि होमं मधुविमिश्रितम् ॥३२५  
 शाश्वतीं श्रियमाप्नोति कुबेरसदृशो भवेत् ।  
 रूपलावण्यकामी तु रा(स)ममण्डलमध्यगम् ॥३२६

ध्यायन्स्त्रिमासमयुतं जप्त्वा लावण्यवान् भवेत् ।  
 एवं कृष्णमनोरस्य माहात्म्यं परिकीर्तितम् ॥३२७  
 अनन्तान् भगवन्मन्त्रान् वक्तुं शक्यं न ते मया ।  
 धाराहं नारसिंहश्च वामनं तुरगाननम् ॥३२८  
 क्रमेणैव तु वक्ष्यामि यथावच्छृणु पार्थिव ! ।  
 हुङ्कारं प्रथमं बीजमार्घं धाराहमुच्यते ॥३२९  
 पश्चात्तु धरणीबीजं लक्ष्मीबीजं ततः परम् ।  
 ग्रीन् बीजानादितः कृत्वा पश्चान्मन्त्रप्रयोजनम् ॥३३०  
 ओं नमो भगवते पश्चाद्द्वाराहरूपाय भूर्भुवः ।  
 स्वः पतयेति भूपत्तित्वं मे देहीति तदाप्यायस्वेति ॥३३१  
 अङ्गुलीषु यथाऽङ्गेषु बीजेनाऽऽद्येन वै क्रमात् ।  
 यथा सन्न्यासयद्भूत्या पश्चाद्ध्यानं समाचरेत् ॥३३२  
 वृहत्तनुं वृहद्भीषं वृहदंघ्रं सुशोभनम् ।  
 समस्तभेदेदेवाङ्गसाङ्गोपाङ्गयुतं हरिम् ॥३३३  
 रजताद्रिसमप्रत्ययं शतगार्हुं शतेश्वरम् ।  
 उद्धृत्य दंष्ट्रया भूमिं समालिङ्ग्य भुजैर्मुदा ॥३३४  
 प्रक्षादित्रिदशैः सर्वैः सनकाद्यैर्मुनीश्वरः ।  
 स्तूयमानं समन्ताच्च गीयमानञ्च किन्नरैः ॥३३५  
 एवं ध्यात्वा हरिं नित्यं प्रातरष्टोत्तरं शतम् ।  
 जप्त्वा लभेच्च भूपत्वं ततो विष्णुपुरं व्रजेत् ॥३३६  
 नमो यज्ञवराहाय इत्यष्टाक्षरको मनुः ।  
 वक्तुं बीजत्रयं पूर्वं कृत्वा मन्त्रं जपेद्बुधः ॥३३७

मूलमन्त्रमिदं प्राहुर्नाराहं मुनिपुङ्गवा ।  
 एतमेव परं मन्त्रं जप्त्वा भूमिपतिर्भवेत् ॥३३८  
 नित्यमष्टसहस्रं तु जपेद्विष्णुं विचिन्तयन् ।  
 कमलैर्विलसपत्रैर्गा जह्याद्य दशाराकम् ॥३३९  
 एव सप्तसरं जप्त्वा सार्वभौमो भवेद्भुवम् ।  
 राज्यं कृत्वा च धर्मेण पश्चाद्विष्णुपदं व्रजेत् ॥३४०  
 विधानं नारसिंहस्य मनोर्नयामि सुमत ।  
 उग्रं धीरं महानिष्णुं ज्वलन्तं सर्वतोमुखम् ॥३४१  
 नृसिंहं भीषणं मद्रं मृत्योर्मृत्युं नमाम्यहम् ।  
 आपं व्रक्षाऽनुष्टुप्छन्दो देवता च नृकेसरी ॥३४२  
 चतुश्चतुश्च पदं पदं च पदं चतुश्च यथाक्रमान् ।  
 शिरो ललाटेनेत्रेषु मुखबाह्वङ्घ्रिसन्धिषु ॥३४३  
 सामेषु पुच्छौ हृदये गले पार्श्वद्वयेऽपि च ।  
 अपराङ्गे कटुद्वये(दि) च न्यसेद्वर्णान्यनुक्रमान् ॥३४४  
 चायोर्दशाक्षरं यत्तु ऋद्धिकारं जपेत् सप्तत् ।  
 त्रिन्दुना सहितं यत्तु नृसिंहं योजमुच्यते ॥३४५  
 अङ्गुलीषु तथाङ्गेषु न्यासन्तेनैव चोदितम् ।  
 तद्वीजमादित कृत्वा मन्त्रं पश्चात्प्रयोजयेत् ॥३४६

ओ नमो भगवते वासुदेवाय नमो नरसिंहाय ज्वालामालिने  
 दीर्घदंष्ट्रायाम्बिनेत्राय सर्गरक्षोन्नाय सर्वभूतविनाशाय दह दह  
 पच पच रक्ष रक्ष हु फट् स्वाहा इति ज्वालामालिपातालनृसिंहाय  
 नमः ॥ वीजेनैव न्यासः । आ ह्रीं क्षौं क्रौं हुं फट् ॥

अस्य मन्त्रस्य ब्रह्मश्रुपिः पङ्क्तिश्छन्दो नृसिंहो देवता  
नृसिंहास्त्रमिदं बीजेनैव न्यासः ।

श्रीकारपूर्वो नृसिंहो द्विर्जयादुपरि स्थितः ।

त्रिःसत्तृत्वो जप्त्वा स्यान्महाभयनिवारणम् ॥३४७

अस्य ब्रह्मा च रुद्रश्च ब्रह्मादश्च महर्षयः ।

तथैव जगति च्छन्दो देवता च नृकेसरी ।

न्यासं बीजेन कुर्यात् ततो ध्यानं नृपोत्तम ! ॥३४८

माणिक्याद्रिसमप्रभं निजरुचा सन्त्रन्तरक्षोगणम् ।

जानुन्यस्तकराम्बुजं त्रिनयनं रत्नोद्भसद्भूषणम् ॥

षाड्भुजा धृतशङ्खचक्रमनिशं दंष्ट्रोद्भसत्स्वाननम् ।

ज्वालाजिह्वमुदमकेशनिचयं घन्वे नृसिंहं प्रभुम् ॥३४९

उग्रकोटिरविप्रभं नरहरिं कोटिक्षपेशोज्ज्वलम्

दंष्ट्राभिः सुमुखोज्ज्वलं नरमुखैर्दीर्घैरनेकैर्मुञ्जैः ॥

निर्भिन्नासुरनायकन्तु शशश्रृत्सूर्याग्निनेत्रयम

विद्युद्जितसटाकलापभयदं वह्निं वहन्तं भजे ॥३५०

कोपादालोलजिह्वं विधृतनिजमुखं सोमसूर्याग्निनेत्रं-

पादादानाभिरक्तं प्रसभमुपरि संभिन्नदैत्येन्द्रगात्रम् ॥

चक्रं शङ्खं सपाशाङ्कुशमुसलगदाशार्ङ्गं बाणान्वहन्तम्

भीमं तीक्ष्णाम्रदंष्ट्रं मणिमयविविधाकल्पमीडे नृसिंहम् ॥३५१

महाभयेष्विदं ध्यानं सौम्यमभ्युदयेषु च ।

सौवर्णं मण्डपान्तस्थं पद्मं ध्यायेत्सकेसरम् ॥३५२

पञ्चास्यवदनं भीमं सोमसूर्याग्निलोचनम् ।

तदगादित्यदित्यसङ्काशं कुण्डलाभ्यां विराजितम् ॥३५३

उपेयन्यासं सुमुखं तीक्ष्णदंष्ट्रविराजितम् ।

व्यात्तास्य मरणोष्ठश्च भीषणैर्नयनैर्युतम् ॥३५४

सिंहस्कन्धानुरूपासं वृत्तायचतुर्भुजम् ।

जपासमाद्ग्रिहस्ताब्जं पद्मासनसुसंस्थितम् ॥३५५

श्रीवत्सकौस्तुभोरत्नं वनमालाविराजितम् ।

पेयूराङ्गदहाराढ्यं नूपुराभ्यां विराजितम् ॥३५६

चम्राङ्गाभयवरचतुर्हस्तं विभुं स्मरेत् ।

वामाङ्गे संस्थितां लक्ष्मीं सुन्दरीं भूषणान्विताम् ॥३५७

दिव्यचन्द्रनलिप्राङ्गी दिव्यपुष्पोपशोभिताम् ।

गृहीतपद्मयुगलमातुलिङ्गपरां चलाम् ॥३५८

एव देवीं नृसिंहस्य वामाङ्गोपरिगंस्थिताम् ।

ध्यात्वा जपेज्जपं नित्यं पूजयेच्च यथाविधि ॥३५९

ओं ह्रीं श्रीं श्रीं नृसिंहाय नमः ॥

इमं लक्ष्मीनृसिंहस्य जपेत् सव्यार्थदं यनुम् ।

अष्टोत्तारमहम्रं वा जपेत् सन्ध्यासु वाग्यतः ॥३६०

अग्रण्टविलम्बपत्रैश्च जुहुयादाज्यमिश्रितैः ।

सर्वमिदमिवाप्नोति पण्मासं प्रयतो भवेत् ॥३६१

देवप्रममरेशन्त्रं गन्धर्वन्त्रं तथा नृपः ।

प्राप्नुयन्ति नरा सर्वे स्वयं मोक्षश्च दुर्लभम् ॥३६२

यं यं वामयते चित्ते तं नमेवाऽऽनुयाद्ध्युयम् ।

महर्षी तत्र गायत्री नरसिंहश्च देवता ॥३६३

तदेव बीजं शक्तिः श्रीमनोरस्य विधीयते । -  
न्यासमध्येन बीजेन चाचनं तुलसीदलैः ॥३६४  
पूर्वोक्तविधिना पीठे पूजयित्वा समाहितः ।  
परितः पूजयेद्दिक्षु गरुडं शङ्करं तथा ॥३६५  
शेषञ्च पद्मयोनिञ्च श्रियं मायां धृतिं तथा ।  
पुष्टिं समर्घद्दिक्षु ततो लोकेश्वरान् यजेत् ॥३६६  
सहाभागवतं देव्यनाशकं देवमग्रतः । -  
एवं सम्पूज्य देवेशं नारसिंहं सनातनम् ॥३६७  
तत्पदं समवाप्नोति मुदितः सजनैः सह ।  
कर्पूरधवलं देवं दिव्यकुण्डलभूषितम् ॥३६८  
किरीटकेयूरधरं पीताम्बरधरं प्रभुम् ।  
पुष्पासनस्थं देवेशं चन्द्रमण्डलमभ्यगम् ॥३६९  
सूर्यकोटिप्रतीकाशं पूर्णचन्द्रनिभाननम् ।  
मेघलजिनदण्डादिधारणं वदरूपिणम् ॥३७०  
कलधौतमयं पात्रं दधानं वसुपूजितम् ।  
पीयूषकलशं वामे दधानं द्विभुजं हरिम् ॥३७१  
सनकाद्यैः स्तूयमानं सर्वदेवैरुपासितम् ।  
एवं ध्यात्वा जयेन्नित्यं स्वासने च समाहितः ॥३७२  
विष्णवे वामनायेति प्रणवादिनमोऽन्तरुः ।  
इन्द्रार्पञ्च विराट्छन्दो देवता वामनः स्तवम् ॥३७३  
सुधाबीजं सुदीर्घन्तु बीजमाचन्तु वामनम् ।  
तेनैव तु पङ्कजाय न्यासं कुर्वीत वैष्णवः ॥३७४

एवं ध्यात्वा जपेन्मन्त्रं सन्ध्यासु विजितेन्द्रियः ।

सर्ववेदार्थतत्त्वज्ञो भवेदत्र न संशयः ॥३८३

, अष्टोत्तरसहस्रं वा शतमष्टोत्तरन्तु वा ।

जपेद्य जुहुयाद्यैवं साज्यैः शुभ्रैः सत्पण्डुलैः ॥३८४

विद्यासिद्धिमवाप्नोति पण्मासं द्विजसत्तमः ।

अष्टादशानां विद्यानां घृहस्पतिसमो भवेत् ॥३८५

सहस्रारं तु फडित्येवं मूलं सौंदर्यं मनुम् ।

अहिर्बुध्न्योऽनुभूतस्य देवता च सुदर्शनम् ॥३८६

अचक्राय विचक्राय सुचक्राय तथैव च ।

विचक्राय सुचक्राय कालाचक्राय चैकमात्रं ५१५८७

पङ्क्त्येषु च विन्यस्य पश्चाद्ध्यानं समाचरेत् ।

नमश्चक्राय स्वाहेति दशदिक्षु यथाक्रमम् ॥३८८

चक्रेण सह बध्नामीत्युक्त्या प्रतिदिशेत्ततः ।

गैलोक्यं रक्ष रक्ष तुं फट् स्वाहा इति वै क्रमात् ॥३८९

अग्निप्रकारमन्त्रोऽयं सर्वरक्षाकरः परः ।

ओं मूर्ध्नि स भ्रूमध्ये हं मुग्धे स्वाहमधीत्यतः ॥३९०

रं गुह्ये हं तु जान्वोश्च फट् पदद्वयसन्धिषु ।

कल्पान्तार्कप्रकाशं त्रिभुवनमखिलं तेजसा पूरयन्तम्

रक्ताक्षं पिङ्गकेशं त्रिपुकुलभयदम्भीमदंष्ट्राजहासम् ।

शङ्खं चक्रं गदावजं पृथुतरमुशलं चापपाशाङ्कुशाङ्गम्

विभ्राणन्दोर्भिराद्यं मनसि मुररियुं भावयेच्चक्रसंक्षम् ॥३९१



बहुजन्मबहुश्लेशगर्भवासादि दुःसिते ।  
 यस्यामि सर्वदोषाणामालये दुःशुभाजने ॥७  
 अस्माद्विमोक्षणायैव चिन्तयिष्यामि केशवम् ।  
 वैकुण्ठे परमव्योम्नि दुग्धाब्धौ वैष्णवे पदे ॥८  
 अनन्तभोगिपर्यङ्के समासीनं त्रिया सह ।  
 इन्द्रनीलनिभं श्यामं चक्रशङ्खगदाधरम् ॥९  
 पीताम्बरधरं देवं पद्मपत्रायतेक्षणम् ।  
 श्रीवत्सकौस्तुभोररुं सर्वाभरणभूषितम् ॥१०  
 चिन्तयित्वा नमस्कृत्वा कीर्तयेद्दिव्यनामभिः ।  
 सङ्कीर्षे नामसाहस्रं नमस्कृत्या गुरुनपि ॥११  
 तुलसीं काञ्चनं गाञ्च संस्पृश्याथ समाहितः ।  
 दूरादूवर्हिर्विनिष्क्रम्य शुचौ देशे च निर्जने ॥१२  
 फणस्य प्रक्षसूत्रस्तु शिरः प्रावृत्य वाससा ।  
 कुर्यान्मूत्रपुरीषे च घ्रीवनोच्छ्वासवर्जितः ॥१३  
 अहन्युदङ्मुखो रात्रौ दक्षिणाभिमुखस्तथा ।  
 समाहितमनः मीनी विष्मूत्रे विसृजेत्ततः ॥१४  
 उरथायातन्द्रितः शौचं कुर्यादभ्युद्धृतैर्जलैः ।  
 गन्धप्रेषक्षयकरं यथासङ्ख्या मृदा शुचिः ॥१५  
 अर्द्धं प्रसृतिमात्रा तु मृदं दद्याद्यथोक्तवत् ।  
 पडपाने त्रिलिङ्गे तु सव्यहस्ते तथा दश ॥१६  
 उभयोः सप्त दद्याच्च तिम्रस्तिग्धस्तु पादयोः ।  
 आजह्वाण्मणिबन्धात्तु प्रक्षाल्य शुभवारिणा ॥१७

उपविष्टः शुचौ देशे अन्तर्जानुकरस्तथा ।  
 पवित्रपाणिराचामेत् प्रसृतिस्थः स वारिणा ॥१८  
 त्रिः प्राश्याद्दुष्टमूलेन द्विधोन्मृज्य कपोलकौ ।  
 मध्यमाङ्गुलिभिः पश्चाद्द्विरोष्ठौ मृजयेत्तथा ॥१९  
 नासिकौष्ठान्तरं पश्चात् सर्वाङ्गुलिभिरेव च ।  
 पादौ हस्तौ शिरश्चैव जलैः संमार्जयेत्ततः ॥२०  
 अङ्गुष्ठतर्जनीभ्यां तु स्पृशेत् द्वौ नासिकापुटौ ।  
 अङ्गुष्ठानामिकाभ्यां तु चक्षुःश्रोत्रे जलैः स्पृशेत् ॥२१  
 कनिष्ठाङ्गुष्ठनाभिश्च तलेन हृदयन्ततः ।  
 सर्वाङ्गुलिभिः शिरसि धातुमूले तथैव च ।  
 नामभिः केशावाचंश्च यथासद्गन्धमुपस्पृशेत् ॥२२  
 द्विराचामेत्तु सर्वत्र विष्णुमूर्तोत्सर्जने त्रयम् ।  
 सामान्यमेतत् सर्वेषां शौचं तु द्विगुणोदितम् ॥२३  
 आचम्यात् परं मौनी दन्तान् काष्ठेन शोधयेत् ।  
 प्राङ्मुखोदङ्मुखो वापि कपायं तिक्तकण्टकम् ॥२४  
 कनिष्ठाग्रमितरथूलं द्वादशाङ्गुलमायतम् ।  
 पर्याधः कृतकूर्चैर्न तेन दन्ताग्निकर्षयेत् ॥२५  
 अपां द्वादशागण्डूयैः चक्षुः संशोधयेद्द्विजः ।  
 मुग्नं संमार्जयित्वाऽथ पश्चादाचमनं चरेत् ।  
 पवित्रपाणिराचम्य पश्चात् स्नानं समाचरेत् ॥२६  
 नद्यां नडागे स्नाते वा तथा प्रस्त्रवणे जले ।  
 तुलसीगृत्तिकां धात्रीमुपलिप्य कलेबरे ॥२७

अभिमन्त्र्य जलं पश्चान्मूलमन्त्रेण वैष्णवः ।  
 निमज्ज्य तुलसीमिश्रं जलं सम्प्राशयेत्ततः ॥२८  
 आचम्य मार्जनं कुर्यात् कुशैः सतुलसीदलैः ।  
 पौरुषेण तु सूक्तेन आपो हि सादिभिस्तथा ॥२९  
 निमज्ज्याप्सु जले पश्चात्त्रिवारमघमर्पणम् ।  
 कथाय पुनराचम्य पश्चादप्सु निमज्ज्य वै ॥३०  
 मन्त्ररत्नं त्रिवारं तु जपन्ध्यावन् सनातनम् ।  
 पिवेदुत्थाय तेनैव त्रिवारमभिमन्त्रितम् ॥३१  
 आचम्य तर्पयेद्देवाम् पितॄनपि विधानतः ।  
 निष्पीड्य कूले वस्त्रं तु पुनराचमनं चरेत् ॥३२  
 धौतशस्त्रं सोत्तरीयं सक्तीपीनं धरेत्स्थितम् ।  
 निवद्धशिलरुच्छस्तु द्विराचम्य यथाविधि ॥३३  
 धारयेद्दूर्ध्वपुण्ड्राणि मृदा शुभ्राणि वैष्णवः ।  
 श्रीकृष्णतुलसीमूलमृदा वाऽपि प्रयत्नतः ॥३४  
 मन्त्रोग्रैवाभिमन्त्रयाथ लालाटादिषु धारयेत् ।  
 नासिकामूलमादभ्य विभ्रूयाच्छीपदाकृति ॥३५  
 सान्तरालं भवेत् पुण्ड्रं दण्डाकारं तु वा तथा ।  
 लालाटादि तथा पश्चादमीवान्तं केशावादिभिः ॥३६  
 नाग्नौ द्वादशभिर्मूर्ध्नि वामुदेवं तलाम्बुना ।  
 पवित्रपाणिः शुद्धात्मा सन्ध्या कुर्यात् समाहितः ॥३७  
 प्रादेशमाग्नौ कौशेयौ सामौ मूलयुतौ वया ।  
 अन्तर्गर्भां मुष्मिलौ पवित्र कारयेद्द्विजः ॥३८

देवार्चने जपे होमे कुर्याद्ब्राह्मणं पवित्रकम् ।  
 इतरे वर्तुलप्रन्थिरेव धर्मो विधीयते ॥३६  
 पथि दर्भाश्रिता दर्भा ये दर्भा यज्ञभूमिषु ।  
 स्तरणासनपिण्डेषु ब्रह्मयज्ञे च तर्पणे ॥३७  
 पाने भोजनकाले च घृतान् दर्भान् विसर्जयेत् ।  
 सपवित्रकरेणैव आचामेत्प्रयतो द्विजः ॥३८  
 आचान्तस्य शुचिः पाणिर्यथापाणि स्तथा कुशः ।  
 सन्ध्याचमनकाले तु घृतं न परिवर्जयेत् ॥३९  
 अप्रसूता स्मृता दर्भा समिधस्तु (प्रसूतास्तु) कुशा स्मृता ।  
 समूलास्तु कुशा ज्ञेया शिल्पिन्नाप्राप्तृणसंज्ञिताः ॥४०  
 कुशोदकेन यत्कण्ठं नित्यं सरोधयेद्द्विजः ।  
 न पर्युपन्ति पापानि ब्रह्मकृचं दिने दिने ॥४१  
 कुशासनं सदापूत जपहोमार्चनादिषु ।  
 फेरोनैव कृत कर्म सर्वमानन्यमश्नुते ॥४२  
 तस्मात् कुशपवित्रेण स ध्या कुर्यान् यथाविधि ।  
 स्वगृहोक्तविधानेन सन्धयोपास्ति समाचरेत् ॥४३  
 ध्यात्वा नारायणं देवं रविमण्डलमध्यगम् ।  
 गायत्र्याऽथ्यं प्रदद्याच्च जपं कुर्वीत भक्तिमान् ॥४४  
 सूर्यस्याभिमुखो जप्त्वा सारित्रीं नियतात्मवान् ।  
 उपस्थानं ततः कृत्वा नमस्तुत्यात्ततो हरिम् ॥४५  
 नमो ब्रह्मण इत्यादि जपित्वाऽथ विसर्जयेत् ।  
 ततः सन्तर्पयेद्विष्णु मन्त्ररत्नेन मन्त्रवित् ॥४६

शतवारं सहस्रं वा तुलसीमिश्रितैर्जलैः ।  
 वैकुण्ठपार्षदं पश्चात्तर्पयेच्च यथाविधि ॥५०॥  
 अनन्तदीपारेखादिदेवतानामनुक्रमात् ।  
 एकैकमञ्जलिं दत्त्वा पश्चादाचमनं चरेत् ।  
 श्रीशस्याऽऽराधनार्थं वै कुर्यात् पुष्पस्य सन्धयम् ॥५१॥  
 तुलसीविल्वपत्राणि दूर्वां कौशेयमेव च ।  
 विष्णुक्रान्तं मरुवरुं केशाम्बुददलं तथा ॥५२॥  
 वशीरं जातिकुसुमं कुन्दञ्चैव कुरण्टकम् ।  
 शमीश्वम्पाङ्कदम्वञ्च चूतपुष्पं च माधवीम् ॥५३॥  
 पिप्पलस्य प्रबालानि जाम्बवं पाटलं तथा ।  
 आस्फोटं कुटजं लोध्रं कर्णिकारञ्च किंशुकम् ॥५४॥  
 नीपाजुनि शिशपञ्च श्वेतकिंशुकनामकम् ।  
 जम्बीरं मातुलिङ्गं च गृधिकारचयं तथा ॥५५॥  
 पुन्नागं वकुलं नागकेशराशोकमल्लिकाः ।  
 शतपत्रं च हारिद्रं करवीरं प्रियङ्गु च ॥५६॥  
 नीलोत्पलं तूत्पलञ्च नन्द्यावर्तञ्च कैतरुम् ।  
 पटजं स्थलपद्मं च सर्वाणि जलदानि च ॥५७॥  
 तत्कालसम्भवं पुष्पं गृहीत्वाऽथ गृहं विशेत् ।  
 वितानादियुते दिव्यघूपदीपैर्विराजिते ॥५८॥  
 चन्दनागरुकस्तूरी कर्पूरामोदवासिते ।  
 विचित्ररङ्गवल्याङ्ग्ये मण्डपे रत्नपीठके ॥५९॥

विस्तीर्णपुष्पपर्यङ्के देव्या सहितमच्युतम् ।  
 सन्निधा वासने स्थित्वा कुशे पद्मासने स्थितः ॥६०  
 प्राणायामविधानेन भूतशुद्धिं विधाय च ।  
 प्राणायामत्रयं कृत्वा पश्चादध्यानं यथोक्तयत् ॥६१  
 परव्योम्नि स्थितं देवं लक्ष्मीनारायणं विभुम् ।  
 पराभिः शक्तिभिर्युक्तं भूलीलाविमलादिभिः ॥६२  
 अनन्तविहंगाभीरासैन्याद्यैः सुरसत्तमैः ।  
 षण्ढाद्यैः कुमुदाद्यैश्च लोकपालैश्च सेवितम् ॥६३  
 पतुर्भुजं मुन्दराङ्गं नानातन्त्रविभूषणम् ।  
 वामाङ्गुल्यधिया युक्तं शङ्खचक्रगदाधरम् ॥६४  
 मन्त्ररत्नविधानेन न्यासमुद्रादिकर्मकृत् ।  
 पञ्चोपनिषदं न्यासं कुर्यात् सर्वत्र कर्मसु ॥६५  
 ओ मीशाय नमः परायेति परमेष्ठ्यात्मने नमः ।  
 ओं वा नमः परायेति सतः पुण्यात्मने नमः ॥६६  
 ओं रा नमः परायेति सतो विश्वात्मने नमः ।  
 ओं धा नमः परायेति रवनिवृत्त्यात्मने नमः ॥६७  
 ओं ली नमः परायेति सतः मर्यादात्मने नमः ।  
 शिरोनामाग्रहृदयगुह्यपादेषु चिन्त्यसेत् ॥६८  
 यथाक्रमेण तन्मन्त्रान् पश्चाद्गेषु ब्रह्मान्यसेत् ।  
 तन्मुद्रया तदाऽऽराध्या दशादासनमेव च ॥६९  
 पादाभ्यां च मनस्त्रानपात्राणि स्थाप्य पूजयेत् ।  
 प्रायित्रा शुभजलं पात्रेषु कुमुदं च ॥७०

द्रव्याणि निक्षिपेत् तेषु मङ्गलानि यथाक्रमात् ।  
 उशीरं चन्दनं कुष्ठं पाद्यपात्रे विनिक्षिपेत् ॥७१  
 विष्णुक्रान्तञ्च दूर्वाञ्च कौशेयान् तिलसर्पपान् ।  
 अक्षताञ्च फलं पुष्पमर्घ्यपात्रे विनिक्षिपेत् ॥७२  
 जातीफलञ्च कर्पूरं मेलाञ्चाचमनीयके ।  
 मकरन्दं प्रवालञ्च रत्नं सौवर्णमेव च ॥७३  
 तानि दद्यात् स्नानपात्रे धात्री सुरतरुं तथा ।  
 द्रव्याणामप्यलाभे तु तुलसीपत्रमेव च ॥७४  
 चन्दनं वा सुव्रणं वा कौशेयं वा विनिक्षिपेत् ।  
 दर्शयेत् सुरभेर्मुद्रां पूजयेत् कुसुमव्रजैः ॥७५  
 अग्निसन्ध्यं च सन्धौ पृथ्वीर्पैर्निवेदयेत् ।  
 अनन्तं चोद्धरण्या च दद्यात्पाद्यादिकं तथा ॥७६  
 तत्पात्रक्षालनं कृत्वा तथा पुष्पाञ्जलिं न्यसेत् ।  
 सौवर्णानि च रौप्याणि ताम्रकास्यानि योजयेत् ॥७७  
 पात्राणामप्यलाभे तु शङ्खमेकं विशिष्यते ।  
 शङ्खोदकं सदा पूतमतिप्रियतरं हरेः ॥७८  
 षड्वरिण्या जलं दद्यान्नाप्सु शङ्खं निमज्जयेत् ।  
 अष्टाक्षरेण मनुना मन्त्ररत्नेन वा यजेत् ॥७९  
 पाद्यार्घ्याचमनं दत्त्वा मधुपर्कं निवेदयेत् ।  
 पुनराचमनं दत्त्वा पादपोठं निवेदयेत् ॥८०  
 दन्तधावनगण्डूपदर्पणालोचनं तथा ।  
 निवेद्याभ्यञ्जनं तैलेनोर्ध्वं केशरञ्जनम् ॥८१

वेदा वेदयती धात्री महालक्ष्मीः सुखालया ।  
 भाग्येयी च तदा सीता रेवती रुक्मिणी प्रभा ॥६२  
 मत्स्यकूर्मादिमूर्तीनां शक्तयः सम्प्रकीर्तिताः ।  
 एवं तशक्तयः पूज्याः केशवाद्याः सुरेश्वराः ॥६३  
 पश्चात्सशक्तयः पूज्याः श्चक्रशङ्खादिहेतयः ।  
 शङ्खं चक्रं गदां पद्मं शार्ङ्गञ्च मुसलं हलम् ॥६४  
 बाणञ्च खड्गखेटं च छुरिका दिव्यहेतयः ।  
 भद्रा सौम्या तथा माया जया च विजया शिवा ॥६५  
 सुमङ्गला मुनन्दा च हिता रम्या सुरक्षिणी ।  
 शक्तयो दिव्यहेतीनां पूजनीयाः सनातनाः ॥६६  
 चर्हिर्लोकेश्वराः पूज्याः साध्याश्च समरद्वगणाः ।  
 एवमावरणं सर्वमर्षयेत्परमात्मनः ।  
 पुनरध्यादिकं दत्त्वा धूपदीपैर्निवेदयेत् ॥६७  
 प्रागुदीच्याश्च सदृशं नागराजं तथापरे ।  
 पुरतो वैनतेयश्च पूजयेच्छक्तिभिः सह ॥६८  
 सेनापतेः सूत्रवती नागराजस्य वारुणीम् ।  
 भद्राश्चलां तथा यस्य पूजयेद्वैष्णवोत्तमः ॥६९  
 गुग्गुलुं महिषाक्षीञ्च सालनिर्यासमेव च ।  
 अगुरुं देवदारुञ्च उशीरं श्रीफलं तथा ॥१००  
 ह्रीवैरं चन्दनं गुस्ता दशाङ्गं धूपमुष्यते ।  
 गवाज्येन च संयोज्यं दद्याद्घूपं सुवासितम् ॥१०१



अश्वत्थं पुश्रनीपश्च वटमारग्वधं तथा ।  
 कलन्त्रिका च निर्गुण्डिमुण्डिवार्त्ताक्रमेव च ॥११३  
 कपरं लग्नञ्चैव श्वेतश्च बृहतीफलम् ।  
 नव्यचर्मातकञ्चैव चिच्चिलञ्चेति यत्नतः ॥११४  
 निक्षेयानि च भक्ष्याणि वर्जयेद्यज्ञकर्मणि ।  
 श्लेष्मातकश्च विड्जानि प्रत्यक्षलवणं तथा ॥११५  
 अनिर्दशाहगोक्षीरमवत्साया स्तथाऽऽविकम् ।  
 ओषूमेकशफञ्चैव पशूनां विड्भुजामपि ॥११६  
 अतिदीणं तथा तक्रं करनिर्मन्थितन्दधि ।  
 ताम्रेण संयुतं गन्धं क्षीरश्च लवणान्वितम् ॥११७  
 घृतं लघणसंयुक्तं प्रयत्नेन विवर्जयेत् ।  
 सूषान्श्च गुडाञ्श्च शर्करामधुसंयुतम् ॥११८  
 मरीचिमिश्रं दध्यन्नं पायसान्नं फलैः सह ।  
 तुलसीदलसम्मिश्रं जलैः सम्प्रोक्ष्य याग्यतः ॥११९  
 अष्टाविंशतिवारन्तु मूलमन्त्राभिमन्त्रितम् ।  
 मुद्राश्च सौरभेयीन्ता दर्शयेन्मन्त्रमुधरन् ॥१२०  
 सुधाब्धिममृतं धीर्जं चिन्तयन् परमात्मनः ।  
 दद्यात् पुष्पाञ्जलिं पश्चादशवारं समाहितः ॥१२१  
 पेपणत्रियया (आपोशानक्रिया)पूर्वमन्नमस्मै निवेदयेत् ।  
 शतवारं जपेन्मन्त्रं घण्टाशब्दं निनादयन् ॥१२२  
 जपेत्पीयूषदैवत्यान्मन्त्रानेकाग्रचेतसा ।  
 हरेर्भुक्तवतः पश्चादद्याद्धारि सुवासितम् ॥१२३

तिलैर्वा कुसुमै र्वाऽपि यवैर्मिश्रमिरेव वा ।  
 यज्ञरूपं हरिं ध्यात्वा सर्ववेदमयं त्रिभुम् ॥१३५  
 दिव्याभरणसम्पन्नं शङ्खचक्रगदाधरम् ।  
 यरदं पुण्डरीकाक्षं वामाङ्गस्थत्रियं हरिम् ॥१३६  
 यज्ञस्वरूपिणं बह्वी ध्यायन् मन्त्रद्वयेन च ।  
 सर्वेभ्य वैष्णवैर्मन्त्रैरेकैकेनाऽऽहुतिं तथा ॥१३७  
 नामभिः केशराद्यैश्च सूक्तैर्विष्णुप्रकाशकैः ।  
 यकुण्ठपार्षदं सर्वं हुत्वा चैव ततो बलिम् ॥१३८  
 क्षिपेद्यतुर्विधान् भूतानुद्दिश्य च ततो भुवि ।  
 आचम्य पूजयेत्पश्चात्तदीयान् सुसमाहित ॥१३९  
 तेभ्यः प्रणम्य भक्त्याऽथ सन्तर्प्य पितृदेवता ।  
 वेदमध्यापयेच्छतया धर्मशास्त्रश्च संहिता ॥१४०  
 सात्विकानि पुराणानि सेतिहासानि वैष्णव ।  
 सव्योपनिषदामयं सद्भिः सह विचिन्तयेत् ॥१४१  
 योगक्षेमार्थं बुद्धिश्च कुर्व्यान्लक्ष्म्या यथार्हत ।  
 ब्राह्मणा क्षत्रिया वैश्या शूद्रा वर्णा यथाक्रमम् ॥१४२  
 आद्यास्त्रयो द्विजा प्रोक्ता स्तेषा वै मन्त्रसंक्रिया ।  
 सवर्णेभ्यः सवर्णासु जायन्ते हि सजातय ॥१४३  
 तेषां सङ्करयोगाश्च प्रतिलोमानुलोमजा ।  
 विप्रान्भूषामिपित्तस्तु क्षत्रियायामजायत ॥१४४  
 वैश्यायान्तु तथाऽऽम्यष्टो निषाद शूद्रया तथा ।  
 राजन्याद्वैश्यशूद्रान्तु माहिष्योमौ तु तौ स्मृतौ ॥१४५

अध्यायः ] प्राप्तकालभगवत्समाराधनविधौ कृपिवर्णनम् । १०६५

पुष्पाणि फलमूलाद्यं सद्द्रव्यं मुनिभिः स्मृतम् ।  
सर्वत्र परिगृहीयाद् भूमिं धान्यं फलादिकम् ॥१५७  
भूमिं यस्तु प्रगृह्णाति भूमिं यस्तु प्रयच्छति ।  
तावुभौ पुण्यकर्माणौ नियतौ स्वर्गगामिनौ ॥१५८  
धान्यं करोति दातारं प्रगृहीतारमेव च ।  
धान्यं नृपवरश्रेष्ठ ! इहलोके परत्र च ॥१५९  
तस्माद्धान्यं धरित्रीञ्च प्रतिगृहीत सर्वतः ।  
क्षुम्भधान्य एव स्यात् क्षुम्भधान्यवान् नृप ! ॥१६०  
शीलोऽब्धेनापि वा जीवेच्छेद्यानेषा परो वरः ।  
जीवेद्यायावरेणैव विप्रः सर्वत्र सर्वदा ॥१६१  
वर्जयित्वैव पापण्डान् पतिसाध्वान्यदविकान् !  
कृपिणा याऽपि जीवेत् सनां चानुमतेन वा ॥१६२  
न याहयेदनडुहं क्षुधातं श्रान्तमेव च ।  
तस्य पुंस्त्वमहित्वैव याहयेद् द्विजपुङ्गवः ॥१६३  
कर्मलोप मकुर्वन्वै कृपिं कुर्वति वै द्विजः ।  
हरेः पूजा यथाकालं कृपिलोपे समाचरेत् ॥१६४  
न ब्राह्मणं सन्त्यजेद् विप्रं स्तथा यज्ञादिकर्म च ।  
आपरापि न कुर्वीत सेवां वाणिज्यमेव च ॥१६५  
असत्प्रतिग्रहं स्तेयं तथा धर्मस्य विक्रयम् ।  
अन्यायोपार्जितं द्रव्यमापद्यपि विवर्जयेत् ॥१६६  
भृतकाण्यापनं चैव सदासत्कर्मभावनम् ।  
प्रीतये वासुदेवस्य यद्वत्तमसतामपि ॥१६७

शूरां वैश्यान् तु करणस्त्रिरैर्वा तेऽनुलोमजाः ।  
 विप्राया क्षत्रियात् सूतः षड्याद्वैदेहिकस्तथा ॥१४६  
 चण्डालस्तु तथा शूद्रास्तर्वकर्मसु गर्हितः ।  
 मागधः क्षत्रियायां वै वैश्याक्षत्र्यान् तु शूद्रतः ॥१४७  
 शूद्रादयोगत्वं वैश्या जनयामास वै सुतम् ।  
 रथकारः करणान्तु माहिष्येण प्रजायते ॥१४८  
 असत्सन्ततपो क्षेयाः प्रतिलोमानुलोमजाः ।  
 प्रतिलोमासु च जाता गर्हिताः सार्यकर्मणाम् ॥१४९  
 एतेषां ब्राह्मणाद्याश्च पट्कर्मसु नियोजिताः ।  
 त्रिकर्मसु क्षत्रविशानेकस्मिन् शूद्रयोनिजः ॥१५०  
 प्रतिग्रहश्च वृत्त्यर्थं ब्राह्मणस्तु समाचरेत् ।  
 असदेयासतां प्रोक्तं निषिद्धं तद्विवर्जयेत् ॥१५१  
 पापण्डाः पतिनाः पापान्तथैव प्रतिलोमजाः ।  
 पुलटाश्च विकर्मन्था असतः परिकीर्तिताः ॥१५२  
 लग्ने तिलकापांसं चर्म च प्रपुमीस्तवम् ।  
 आयसं मधु मांसञ्च विषमग्नं पृतं गजम् ॥१५३  
 विल्वपं गजगुल्मं सर्पपं जलमेव च ।  
 हृणं वायुञ्च वृध्माण्डं शिरापाञ्च विवर्जयेत् ॥१५४  
 मर्दिपीं गर्दभञ्चैव वाजिनञ्च तथाऽऽविकम् ।  
 दाम्भीमज्जा यानवृक्षा न पथ्यान्हुतन्तुलाम् ॥१५५  
 एवमाद्य ममदूदृत्यं प्रयत्नेन विवर्जयेत् ।  
 धान्यं घामांसि भूमिश्च मुशणं रत्नमेव च ॥१५६

पुण्याणि फलमूलाद्यं सदद्रव्यं मुनिभिः स्मृतम् ।  
 सर्वत्र परिगृहीयाद् भूमिं धान्यं फलादिकम् ॥१५७  
 भूमिं यस्तु प्रगृह्णाति भूमिं यस्तु प्रयच्छति ।  
 ताद्युभौ पुण्यकर्माणौ नियतौ स्वर्गगामिनौ ॥१५८  
 धान्यं करोति दातारं प्रगृहीतारमेव च ।  
 धान्यं नृपवरश्रेष्ठ ! इहलोके परत्र च ॥१५९  
 तस्माद्धान्यं धरित्रीञ्च प्रतिगृहीत सर्वतः ।  
 कुसुम्भधान्य एव स्यात् कुसुम्भधान्ययान् नृप ! ॥१६०  
 शीलोऽङ्गेनापि वा जीवेच्छे यानेषां परो वरः ।  
 जीवेद्यायावरेणैव विप्रः सर्वत्र सर्वदा ॥१६१  
 वर्जयित्वैव पापण्डान् पतितोऽश्वान्यदविकान् !  
 कृपिणा वाऽपि जीवेत सतां चानुमतेन वा ॥१६२  
 न याहयेदनङ्गुहं क्षुधातं श्रान्तमेव च ।  
 तस्य पुंस्त्वमहित्वैव याहयेद् द्विजपुङ्गवः ॥१६३  
 कर्मलोप मकुर्वन्वै कृपिं कुर्वीत वै द्विजः ।  
 हरेः पूजां यथाकालं कृपिलोपे समाचरेत् ॥१६४  
 न ग्राह्यं सन्त्यजेद् विप्रः स्तथा यज्ञादिकर्म च ।  
 आपद्यपि न कुर्वीत सेवां वाणिज्यमेव च ॥१६५  
 असत्प्रतिग्रहं स्तेयं तथा धर्मस्य विक्रयम् ।  
 अन्यायोपार्जितं द्रव्यमापद्यपि विवर्जयेत् ॥१६६  
 मृतकाभ्यापनं चैव सदासत्कर्मभावनम् ।  
 प्रीतये वासुदेवस्य यदत्तमसतामपि ॥१६७

महाभागवतस्पर्शात्तत्सदित्युच्यते बुधैः ।

तापादीन् पञ्च स्कारा स्तथाकारै स्त्रिभिर्युतः ॥१६८

हरेरनन्यशरणो महाभागवतः स्मृतः ।

यक्षराक्षसभूतानां तामसानां दिवौकसाम् ॥१६९

तेषां यत्प्रीतये दत्तं तथा यद्यपि धर्जयेत् ।

बुद्धरुद्रौ तथा वायुर्दुर्गांगणसुभैरवाः ॥१७०

यम रुद्रन्दो नैर्ऋतश्च तामसा देवताः स्मृताः ।

एवं विशुद्धिं द्रव्यस्य ज्ञात्वा गृहीत सत्तमः ॥१७१

कृपिस्तु सर्ववर्णानां सामान्यो धर्म उच्यते ।

प्रतिग्रहस्तु विप्राणां राज्ञा क्षमापालनं तथा ॥१७२

बुसीद्वचैव वाणिज्यं विशामेव प्रकीर्तितम् ।

सेवावृत्तिस्तु शूद्राणां कृपिर्वा सम्प्रकीर्तिता ॥१७३

अशक्तस्तु भवेद्राजा पृथिव्याः परिपालने ।

जीवेद्वाऽपि विशा वृत्त्या शूद्राणां वा यथामुत्तमम् ॥१७४

कृपिर्भृतिः पाशुपाल्यं सर्वेषां न निषिध्यते ।

स्तेर्यं परस्त्रीहरणं हिंसा कुहककौशिके ॥१७५

स्त्रीमद्यमासलणविक्रयं पतितं स्मृतम् ।

अपट्टनिरुष्टानां जीवितं शिल्पकर्मभिः ॥१७६

हीनन्तु प्रतिलोमानामहीन मनुलोमिनाम् ।

चर्मत्रैणववस्त्राणां हिंसाकर्म च नेजनम् ॥१७७

गाणिक्यं (माणिक्यं) उपनामिञ्च (यवनाश्च) मद्यमांसक्रिया तथा ।

सारथ्यं वाहकानाञ्च रथानां भूयतामपि ॥१७८

ऽध्यायः ] प्राप्तकालमगवत्समाराधनविधौ राजधर्मवर्णनम् । १०६७

पद्ममादि निषिद्धं यत्प्रातिलोम्यं यदुच्यते ।  
यत्सौम्यशिल्पं लोकेऽस्मिन् सौम्यं तदनुलोमकम् ॥१७६  
सुदारुणैल्लोहानां शिल्पं सौम्यमिदोच्यते ।  
न्यायेन पालयेद्राजा पृथिवीं शास्त्रमार्गतः ॥१८०  
स्वराष्ट्रकृतधर्मस्य सदा पद्मभागसिद्धये ।  
राज्ञो राष्ट्रकृतं पापमिति धर्मविदो विदुः ॥१८१  
तस्मादपापसंयुक्तां यथा संरभ्येद्भुवम् ।  
अग्निदङ्गतरदञ्चोरं हिंस्रं दुर्वृत्तमेव च ॥१८२  
घूर्तं पतितमित्यादीन् हन्यादेवाविचारयन् ।  
अङ्कयित्वा श्वपादेन गर्दभे चाधिरोह वै ॥१८३  
प्रवासयेत् स्वराष्ट्रात्तु ब्राह्मणं पतितं नृपः ।  
कुलटां कामचारेण गर्भघ्नीं भर्तृहिंसकाम् ॥१८४  
निकृत्तकर्णनासोष्ठीं कुन्वा नारीं प्रवासयेत् ।  
न्यायेन दण्डनं राज्ञः शर्माकीर्तिविवर्धनम् ॥१८५  
अदण्डघान् दण्डयन् राजा तथा दण्डघानदण्डयन् ।  
अयशो महदाप्नोति नरकं चाधिगच्छति ॥१८६  
दिग्दण्डस्त्वथ घातदण्डो धनदण्डो वधस्तथा ।  
ज्ञात्वाऽपराधं देशं च जनं कालमदोऽपि वा ॥१८७  
ययः कर्म च वित्तश्च दण्डं न्यायेन पातयेत् ।  
निश्चित्य शास्त्रमार्गेण विद्वभिः सह पार्थिवः ॥१८८  
शुरूणां तु शुक्तं दण्डं पापानां च लघोर्लघुम् ।  
व्यवहारान् स्वयं पश्यन् कुर्यात् सभ्यैर्ततोऽन्वहम् ॥१८९

मिथ्यापवादशुद्धयश्च पञ्च दिव्यानि कल्पयेत् ।  
 ज्ञात्वा शुद्धेषु दिव्येषु शुद्धान्तै मानयेत्तथा ॥१६०  
 तन्मिथ्याशंसिनं दुष्टं जिह्वाच्छेदेन दण्डयेत् ।  
 परद्रव्यादिहरणं परदाराभिमर्शनम् ॥१६१  
 यः कुर्यात् तु बलात् तस्य हस्तच्छेदः प्रकीर्तितः ।  
 यो गच्छेत् परदारास्तु घलात्कामाच्च धा नरः ॥१६२  
 सर्वस्वहरणं कृत्वा लिङ्गच्छेदश्च दापयेत् ।  
 वहेत्कटाग्रिना देहं गुरुस्त्रीगामिनं तदा ॥१६३  
 ब्रह्मघ्नं च सुरापं वा गोस्त्रीघालनिपूदनम् ।  
 देवविप्रस्यहर्तारं शूलमारोपयेन्नरम् ॥१६४  
 दैवतं ब्राह्मणं गाञ्च पितृमातृगुरुंस्तथा ।  
 पादेन ताडयेद्यस्तु तस्य तच्छेदनं स्मृतम् ॥१६५  
 तेषामुपरि हस्तं तु दोष्णो श्लेदन्तु कामतः ।  
 प्रत्येकं दण्डनं कुर्याद्दुष्टं तस्य परस्त्रियाम् ॥१६६  
 चुम्बने तालुविच्छेदो द्वौ हस्तौ परिरम्भणे ।  
 हस्तस्याङ्गुलिविच्छेदः केशादिमहणे स्त्रियः ॥१६७  
 दाहयेत्तप्ततैलेन हस्तमुष्ट्या च ताडनम् ।  
 सुरतं याचमानस्य जिह्वाच्छेदं च कामतः ॥१६८  
 कामेङ्गितेषु सर्वत्र ताल्योश्च दहनं स्मृतम् ।  
 दृष्ट्वा मुहुः प्रेरणे तु नेत्रयोः स्फोटनं चरेत् ॥१६९  
 मानवृत्तं तुलाकृत् कृत्साक्ष्यकृता नृणाम् ।  
 सहस्रं दापयेदण्डं धृत्वा स्वस्यापनायने ॥१७०



अध्यायः ] प्राप्तकालभगवत्समाराधनविधौ राजधर्मवर्णनम् । १०६६

येषु केषु च पापेषु शरीरे दण्डनं स्मृतम् ।  
तेषु तेष्वङ्कनेनैव अक्षतो ब्राह्मणो व्रजेत् ॥२०१  
पापानेवाङ्कयित्वाऽस्य मुण्डयित्वा शिरोरुहान् ।  
सवस्वहरणं कृत्वा राष्ट्रान् सम्यक् प्रवासयेत् ॥२०२  
अवैष्णवं विक्रमेस्थं हरिदासरभोजनम् ।  
ब्राह्मणं गार्दभं यानमारोप्यैव विवासयेत् ॥२०३  
न्यायेन पालयेद्वाजा धर्मान् पट्भाग माहरेत् ।  
त्रिभागमाहरेद्धान्याद्धनात् पट्भागमेव च ॥२०४  
गोभूहिरण्यघासोभिर्धान्यरत्नविभूषणैः ।  
पूजयेद्ब्राह्मणान् भक्त्या पोषयेच्च विशेषतः ॥२०५  
विम्बानि स्नापयेद्विष्णोर्ग्रामेषु नगरेषु च ।  
चैत्यान्यायतनान्यस्य रम्याण्येव तु कारयेत् ॥२०६  
वसुपुष्पोपहारौघं भूधेन्यादि ममर्पयेत् ।  
इतरेषां सुराणां च वैदिकानां जनेश्वरः ॥२०७  
धर्मतः कारयेद्यश्च चैत्यान्यायतनानि तु ।  
घापी कूपतडागादि फलपुष्पवनानि च ॥२०८  
कुर्वीत सुविशालानि पूर्वकान्यपि पालयेत् ।  
फलितं पुष्पितं वाऽपि वनं भ्रिन्धात्तु यो नरः ॥२०९  
तद्वागसेतुं यो भिन्धात् तं शूलेनानुरोहयेत् ।  
अग्निदं गरुदं गोघ्नं बालघ्नीगुरुघातिनम् ॥२१०  
भगिनीं मातरं पुत्रीं गुरुदारान् स्तुषामपि ।  
साध्वीं तेषस्विनीं वाऽपि गच्छन्तमतिपापिनम् ॥२११

हिंस्रयन्त्रप्रयोक्तारं दाहयेद् वै कटाग्रिना ।  
 अदण्डयित्वा दुर्वृत्तान् तत्पापं पृथिवीपतिः ॥२१२  
 सम्प्राप्य निरयं गच्छेत्तस्मात्तान् दण्डयेत्तथा ।  
 यः स्ववर्णाश्रमं हित्वा स्वच्छन्देन तु वर्तयेत् ॥२१३  
 तं दण्डयेद्वर्षशतं नाशयेत्तद्विदेशतः ।  
 सर्वेप्सेतेषु पापेषु धनदण्डं प्रयोजयेत् ॥२१४  
 पितेव पालयेद्भृत्यान् प्रजाश्च पृथिवीपतिः ।  
 प्रजासंरक्षणार्थाय संग्रामं कारयेन्नृपः ॥२१५  
 तस्मिन् मृत्युर्भवेच्छ्रेयो राज्ञः संग्राममूर्द्धनि ।  
 मृतेन लभ्यते स्वर्गं जितेन पृथिवी त्वियम् ॥२१६  
 यशः कीर्तिविपुष्यर्थं धर्मसंग्राममाचरेत् ।  
 मुक्तशीपं मुक्तखं त्यक्तेति पलायितम् ॥२१७  
 न हन्याद्वन्दिनं राजा युद्धे प्रेक्षणकृञ्जनम् ।  
 भग्ने स्वसन्यपुङ्गे च संग्रामे विनिवर्तिनः ॥२१८  
 पदे पदे समग्रस्य यज्ञस्य फलमश्नुते ।  
 नातः परतरो धर्मो नृपाणां नरशालिनाम् ॥२१९  
 युद्धलब्धा महीशस्य दीयते नृपसंग्रमैः ।  
 जित्वा शत्रून्महीं लब्ध्वा लब्धा यत्नेन पालयेत् ॥२२०  
 पालितां वर्धयेन्नित्यं वृद्धां पात्रे विनिक्षिपेत् ।  
 पात्रमित्युच्यते विप्रस्तपोविद्यासमन्वितः ॥२२१  
 न विद्यया केवलया तपसा वाऽपि पात्रता ।  
 श्रुतमभ्ययनं शीलं तप इत्युच्यते बुधैः ॥२२२

ऽध्यायः ] प्राप्तकालभगवत्समाराधनविधौ राजधर्मवर्णनम् । १०७१

ईश्वरस्याऽऽत्मनश्चापि ज्ञानं विशेति चोच्यते ।  
तथाविधेषु पात्रेषु दत्त्वा भूमिं धनं नृपः ॥२२३  
शासनं कारयेत्सम्यक् स्पर्शस्तलिपितादिभिः ।  
उपजीव्योपसर्पेद्य रम्ये देशे नृपोत्तमः ॥२२४  
दुर्गाणि तत्र कुर्वीत जनकस्यात्मगुण्ये ।  
तत्र कर्मसु निष्णातान् कुरालान् धर्मनिष्ठितान् ॥२२५  
सत्यशौचयुतान् शुद्धानग्यक्षान् स्थापयेत् नृपः ।  
अशीतिभागो वृद्धिः स्यान्मासि मासि सवन्धके ॥२२६  
अधन्धके स्याद्द्विगुणं यथा तत्कालमात्रकम् ।  
लेशयेत्तदणं सम्यक् समामासादिकल्पनैः ॥२२७  
देयं सद्ब्रह्माधविके(धनिने) पुरुषैस्त्रिभिरेव तत् ।  
निर्धनस्तु शनैर्दद्यात्तथाकालं यथोदयम् ॥२२८  
औद्धत्याद्वा यलाद्वा तु न दद्याद्दनिने शृणम् ।  
दण्डयित्वैव तं राजा धनिने दापयेदणम् ॥२२९  
द्विप्ने दग्धेऽथवा पत्रे साक्षिभिः परिकल्पयेत् ।  
यत्प्रधान्यहिरण्यानां चतुस्त्रिद्विगुणादिभिः ॥२३०  
न सन्ति साक्षिणस्तत्र देशकालान्तरादिभिः ।  
शोधयित्वा तु दिव्येन दापयेद्दनिने ऋणम् ॥२३१  
मध्यस्थस्यापिसं द्रव्यं वर्धते न ततः परम् ।  
कृते प्रतिमहे चाऽऽधौ पूर्वो वै बलवत्तरः ॥२३२  
अवधिर्द्विविधं प्रोक्तं भोग्यं गोप्यं तथैव च ।  
क्षेत्रारामादिकं भोग्यं गोप्यं द्रव्यमुपस्करम् ॥२३३

गोप्याधिभोग्ये नो वृद्धिः सोपस्कारे तथापि ते ।  
 तर्प्यं देयं विनष्टञ्च द्रव्यं राजकृतादृते ॥२३४  
 उपस्थितस्य भोक्तव्यं माधितेनोऽन्यथा भवेत् ।  
 प्रयोजने सति धनं कुलेन्यस्याधिमानुयान् ॥२३५  
 तत्कालकृतमूल्ये वा तत्र तिष्ठेद्वृद्धिकम् ।  
 विना धारणकाद्वापि विक्रीणीतमसाक्षिकम् ॥२३६  
 तं वनस्त्वमनारुयाय धान्यमस्य न दीयते ।  
 तदा यदधिकं द्रव्यं प्रतिदेयं तथैव च ॥२३७  
 न दाप्योऽपहृतन्त्यक्तराजदैयिकतत्करैः ।  
 न प्रदद्यात्तु तन्मोहात्स दण्ड्य श्रौरयत्तदा ॥२३८  
 वदीत स्वेच्छया दण्डं दापयेद्वापि सोदरम् ।  
 याचितान्प्राहितन्यायाग्निक्षेपादिष्वयं विधिः ॥२३९  
 सुराकामयूतकृतं वृथा दानं तथैव च ।  
 दण्डशुल्कानुशिष्टञ्च पुत्रो दद्यान्न पैतृकम् ॥२४०  
 पितरि प्रोपिते प्रेते व्यसनाभिप्लुतेऽपि वा ।  
 पुत्रपौत्रैर्ऋणं देयं निह्नुते साक्षिचोदितम् ॥२४१  
 रिष्यथाही ऋणं दद्यान्प्रोपिद्ग्राहस्तथैव च ।  
 पुत्रो न रगश्रितद्रव्यः पुत्रहीनस्तु रिक्थिनः ॥२४२  
 प्रातिभाण्य मृणं माक्ष्यं देयं तस्मै यथोचितम् ।  
 दीयते स्यात्प्रतिभुवा धनिने तु ऋणं यथा ॥२४३  
 द्विगुणं तत्प्रदातव्यं दण्डं राज्ञे च तत्समम् ।  
 पुत्रादिभिर्न दातव्यं प्रविभाण्य मृण स्त्रियाम् ॥२४४

अध्यायः ] प्राप्तकालभगवत्समाराधनविधौ राजधर्मवर्णनम् । १०७३

प्रतिपन्नं स्त्रिया देयं पत्या चैव हि यत् कृतम् ।  
स्वयं कृतं तु यद्वर्णं नान्यस्त्री दातुमर्हति ॥२४५  
पत्यै स्वकं धनं पुत्रा विभजेयु सुनिर्णितम् ।  
मातृकञ्चेद् दुहितरस्तदभावं तु तत्सुत ॥२४६  
भगिन्यश्च प्रमुदिताः पैतृकादाहरेद्दनात् ।  
न स्त्रीधनं तु दद्यादा विभजेयुरनापदि ॥२४७  
पितृमातृसुताभ्रातृपत्यपत्याद्युपागतम् ।  
आधिवेतनिकाद्यं च स्त्रीधनं परिकीर्तितम् ॥२४८  
अपुत्रा योपितश्चैव भर्तृन्या साधुवृत्तयः ।  
निर्वास्या व्यभिचारिण्य. प्रतिकूलान्तयैव च ॥२४९  
नैव भागं यनस्थानां यतीनां ब्रह्मचारिणाम् ।  
पापण्डुपतितानां च नचावदिककर्मणाम् ॥२५०  
विभक्तैष्वनुजो जात. सगर्णो यदि भागभाक् ।  
अविभक्तपितृकाणां पितृव्यात् भागकल्पना ॥२५१  
द्वै मातृणां मातृतश्च कल्पयेद्वा समोऽपि वा ।  
विभक्तस्यास्य पुत्रस्य पत्नी दुहितरस्तथा ॥२५२  
पितरौ भ्रातरश्चैव तत्सुताश्च सपिण्डिनः ।  
सम्यन्धियान्धवाश्चैव क्रमाद् वै रिक्तभागिनः ॥२५३  
सीमोऽपवादे क्षेत्रेषु सामन्ताः स्वविरादयः ।  
गोपा. सीमाकृपाणां च सर्वे भवनगोचराः ॥२५४  
नयेयु रेतो सीमानं स्थूणाङ्गारतुपद्रुमैः ।  
न तु वल्मीकनिम्नास्त्रिचैत्याद्यैरुपरोमिताः ॥२५५  
६८

औरसो वृत्तकश्चैव क्रीतः कृत्रिम एव च ।

क्षेत्रजः कानिकश्चैव दौहित्रः सत्तमः स्मृतः ॥२५६॥

पिण्डजश्च परश्चैषां पूर्वाभावे परः परः ।

पुत्रः पौत्रश्च तत्पुत्रः पुत्रिकापुत्र एव च ॥२५७॥

पुत्री च भ्रातरश्चैव पिण्डदाः स्युर्यथाक्रममात् ।

एवं धर्मेण नृपतिः शासयेत्सर्वदा प्रजाः ॥२५८॥

यदुक्तं मनुना धर्मं व्यवहारपदं प्रति ।

विलोक्य तच्च विद्वद्भिर्वीतरागैर्विमत्सरैः ॥२५९॥

विमृश्य धर्मविद्विष्य विमलैः पापभीरुभिः ।

धर्मेणैव सदा राजा शासयेत् पृथिवीं स्वकाम् ॥२६०॥

विपरीता दण्डयेद्वा यावदप्योपनाशनम् ।

सभ्या अपि च दण्ड्या वै शास्त्रमार्गविरोधिनः ॥२६१॥

राजधर्मोऽयमित्येवं प्रसङ्गात् कथितो मया ।

कात्यायनेन मनुना याज्ञवल्क्येन धीमता ॥२६२॥

नारदेन च सम्प्रोक्तं विस्तरादिदमेव हि ।

तस्मान्मया विस्तरेण नोक्तं मत्र नृपोत्तम ! ॥२६३॥

परं भागवतं धर्मं विस्तरेण श्रवीमि ते ।

विष्णोरभ्यर्चनं यत्तु नित्यं नैमित्तिकं नृप ! ॥२६४॥

यदाह भगवान् धातुस्तेन स्वायम्भुवस्य च ।

नारदस्य च मे सम्यक् तदद्य कथयामि ते ॥२६५॥

इति वृद्धहारीतस्मृतौ विशिष्टधर्मशास्त्रे प्राप्तकालभगवत्-

समाराधनविधिर्नाम चतुर्थोऽध्यायः ।

ऽध्यायः ] भगवन्नित्यनैमित्तिकसमाराधनविधिवर्णनम् । १८७६

॥ पञ्चमोऽध्यायः ॥

अथ भगवन्नित्यनैमित्तिकसमाराधनविधिवर्णनम् ।

अभ्यरीष उवाच ।

भगवन् ! ब्रह्मणा यत् तु सम्प्रोक्तं स्यान्मनोः पुरा ।

तत्सर्वं परमं धर्मं वक्तुमर्हसि मेऽनघ ! ॥१॥

हारीत उवाच ।

सर्गादौ लीकृताः सौ भगवान् पञ्चमम्भवः ।

गन्यादिप्रमुखात् विप्रान् ससृजे धर्मगुणये ॥२॥

मनु भृगु वशिष्ठश्च मरीचिर्दक्ष एव च ।

अङ्गिराः पुलहश्चैव पुलस्त्योऽत्रिर्मदातपाः ॥३॥

वेदान्तपारगास्ते च तं प्रणम्य जगद्वगुग्म ।

भगवन् ! परमं धर्मं भवयन्भाषनुत्तये ॥४॥

यद् सर्वमशेषेण श्रोतुमिच्छामहे वयम् ।

इत्युक्तः स द्विजैः सोऽपि ब्रह्मा नत्वा जनार्दनम् ॥५॥

वेदान्तगोचरं धर्मं तेषां वक्तुं प्रयत्नमे ।

सर्वेषामथलोकानां मष्टा धाता जनार्दनः ॥६॥

सर्ववेदान्ततत्त्वार्थसर्वयज्ञमयः प्रभुः ।

यशो वै विष्णुरित्यत्र प्रत्यक्षं श्रूयते श्रुतिः ॥७॥

इज्यते यत् समुद्दिश्य परमो धर्म उच्यते ।

भगवन्त मनुदिश्य ह्यसौ यत्र कुत्र वै ॥८॥

तत्र हि सापलं पापं भवेद्य विगर्हितम् ।

तस्मात् सबस्य यज्ञस्य भोक्तारं पुरुषं हरिम् ॥९॥

ध्यात्वैव जुहुयात्तस्मै हव्य दीप्ते हुताशने ।  
 मुखमग्निभगवतो विष्णो सर्वगतस्य वै ॥१०  
 तस्मिन्नेव यजत्रित्यमुत्तमं गुनिसत्तमा ॥  
 यजेद्विप्रमुखे शक्त्या जलमग्न फलादिवम् ॥११  
 प्रीतये वासुदेवस्य सर्वभूतनिवासिन ।  
 तमेव चार्चयेन्नित्यं नमस्कुयात्तमेव हि ॥१२  
 ध्यात्वा जपेत्तमेवेश तमेव ध्यापयेद्बृदि ।  
 तन्नामैव प्रगातव्यं वाचा यक्तव्यं मेव च ॥१३  
 प्रतोपघासनियमान् तमुद्दिश्यैव कारयेत् ।  
 तत्समर्पितभोग स्यादन्नपानादिभक्षणै ॥१४  
 मति स्नानार्थं सदारेषु नेतरत्र कदाचन ।  
 न हि स्यात्सर्वभूतानि यज्ञेषु विधिना विना ॥१५  
 सोऽहं दासो भगवतो भम स्नामी जनार्दन ।  
 एव वृत्तिर्भवेदस्मिन् स्नानधर्म परमो मत ॥१६  
 एष निष्कण्टक पन्था तस्य विष्णो पर पदम् ।  
 अन्यन्तु क्षुपथ ह्येव निरयप्राप्तिहेतुकम् ॥१७  
 भगवन्त मनुद्दिश्य य कर्म कुरुते नर ।  
 स पापण्डीति विज्ञेय सर्वलावेषु गर्हित ॥१८  
 यो हि विष्णु परित्यज्य सबलोकेभ्यः हरिम् ।  
 इतरानर्चते मोहात्स लोक्यतिक स्मृत ॥१९  
 उक्तधर्मं परित्यज्य यो ह्यवर्मे च वतते ।  
 पतित स तु विज्ञेय सर्वधर्मवहिष्कृत ॥२०



ऽध्यायः ] भगवन्नित्यनैमित्तिकसमाराधनविधिवर्णनम् । १०७७

यः कर्म कुरुते विप्रो विना विष्ण्वर्चनं क्वचित् ।  
प्राह्मग्याद् भ्रश्यते सद्यश्चण्डालत्वं स गच्छति ॥२१॥  
प्राह्मणो वैष्णवो विप्रो गुरुर्ग्यश्च वेदवित् ।  
पट्ययिणश्च विद्येत नामानि क्षमासुरस्य हि ॥२२॥  
तस्माद्वैष्णवत्वेन विप्रत्वाद् भ्रश्यते हि सः ।  
अर्चयित्वाऽपि गोविन्दमितरानर्चयेत् पृथक् ॥२३॥  
अवैष्णवत्वं तस्यापि मिश्रभक्त्या भवेद् ध्रुवम् ।  
भोक्तारं सर्वेयज्ञानां सर्वलोकेश्वरं हरिम् ॥२४॥  
ज्ञात्वा तत्प्रोतये सर्वान् जुहुयात्सततं हरिम् ।  
दानं तपश्च यज्ञश्च त्रिविधं कर्म कीर्तितम् ॥२५॥  
तत्सर्वं भगवत्प्रीत्यै कुर्वीत सुसमाहितः ।  
तस्मात्तु वैष्णवा विप्राः पूजनीया यथा हरिः ॥२६॥  
ये ॥ ये हेतुकं चाक्यमाश्रित्यैव स्वयागबलात् ।  
वैष्णवं प्रतिपिब्यन्ति ते लोकायतिकाः स्मृताः ॥२७॥  
यो यत्तु वैष्णवं लिङ्गं धृत्वा च तमसाऽऽवृतः ।  
त्यजेच्चैर्द्वैष्णवं धर्मं सोऽपि पापण्डितो ब्रजेत् ॥२८॥  
तस्मात्तु वैष्णवो भूत्वा वैदिकीं वृत्तिमाश्रितः ।  
कुर्वीत भगवत्प्रीत्यै कुर्याद्यज्ञादिकर्म यत् ॥२९॥  
तद्विशिष्टमिति शोक्तं सामान्यमितरं स्मृतम् ।  
फलहीना भवेत्सा तु सामान्या वैदिकक्रिया ॥३०॥  
तोयवर्जितवापोव निरर्थी भवति ध्रुवम् ।  
नैसर्गिकन्तु जीवानां दास्यं विष्णोः सनातनम् ॥३१॥

तद्विना वर्तते मोहादात्मचारः सनातनात् ।  
 तस्मात्तु भगवदास्यमात्मनां श्रुतिचोदितम् ॥३२  
 दास्यं विना कृतं यत्तु तदेव कलुषं भवेत् ।  
 विशिष्टं परमं धर्मं दास्यं भगवतो हरेः ॥३३

शृणुय ऊचुः ।

कथं दास्यं हि तद्वृत्तिः कथं नैसर्गिकं नृणाम् ।  
 सत्सर्वं ब्रूहि तत्त्वेन लोकानुमहकाम्यया ॥३४  
 ब्रह्मोवाच ।

सुदर्शनोर्ध्वं पुण्ड्रादिधारणं दास्यमुच्यते ।  
 तद्विधिर्वैदिकी या च सदाज्ञा चोदिता क्रिया ॥३५  
 तत्राप्याराधनत्वेन कृता पापस्य नाशिनी ।  
 निरूपणत्वाद्दास्यस्य धार्यं चक्रं महात्मनः ॥३६  
 अङ्गत्वात् सवेधर्माणां वैष्णवत्वाच्च धर्मतः ।  
 कर्म कुर्याद्भगवत्तत्तस्मै राज्ञा मनुस्मरन् ॥३७  
 विधिनैव प्रतप्तेन चक्रेणवाङ्मयेद्भुजे ।  
 तथैव विभृयाद्भाले पुण्ड्रं शुभ्रतरं मृदा ॥३८  
 विभृयादुपवीतन्तु सव्यस्कन्धे विधानतः ।  
 कण्ठे षट्माश्रमालाञ्च कौशेयं दक्षिणे करे ॥३९  
 उमे चिह्ने विना विप्रो न भवेद्भिः कथञ्चन ।  
 न लभेत्कर्मणां सिद्धिं वैदिकानां विशेषतः ॥४०  
 आश्रमाणां चतुर्णाञ्च स्त्रीणाञ्च श्रुतिचोदनात् ।  
 अङ्ग्येश्वरशङ्खाभ्यां प्रतप्ताभ्यां विधानतः ॥४१

एकैकमुपवीतन्तु यत्तीनां ब्रह्मचारिणाम् ।  
 गृहिणाञ्च वनस्थाना मुपवीतद्वयं स्मृतम् ॥४२  
 सोत्तरीयं त्रयं वाऽपि विभृयान्छुभतन्तुना ।  
 त्रयमूर्ध्वं द्वयं तन्तु तन्तुत्रय मधोगुणम् ॥४३  
 त्रिवृच्च ग्रन्थिनैकेन उपवीतमिहोच्यते ।  
 अर्धकापांसकौशेयक्षौमशोणसयानि च ॥४४  
 तन्तूनि चोपवीतानां योज्यानि मुनिसत्तमाः ।  
 सर्वेषामप्यलभे तु कुप्यात् कुशमयं द्विजः ॥४५  
 ऐणेयमुत्तरीयं स्याद्वनस्थब्रह्मचारिणाम् ।  
 शुक्लकापायवसने गृहस्थस्य यतेः क्रमात् ॥४६  
 उत्कालाभेषु सर्वेषाङ्कुराचीरं विशिष्यते ।  
 मौञ्जी वै मैत्रला दण्डं पालाशं ब्रह्मचारिणः ॥४७  
 त्रयस्तु वैष्णवा दण्डा यतेः कापाययाससी ।  
 कुशाचीरं यत्कलं वा वनस्थस्य विधीयते ॥४८  
 कटीमूत्रञ्च कौपीं मह्यं शुक्लवाससा !  
 कुण्डके चाङ्गुलीयानि गृहस्थस्य विधीयते ॥४९  
 मुण्डिनौ सूक्ष्मशिविनौ यत्यन्तेवासिनावुभौ ।  
 वानप्रस्थो यतिर्वा स्यात्सदा वै शमश्रुरामधृत् ॥५०  
 सुवेशी सुशिक्षो वा स्याद् गृहस्थः सौम्यवेषवान् ।  
 यतिश्च ब्रह्मचारी च समौ भिक्षाशनौ स्मृतौ ॥५१  
 शाकमूलफलाशी स्याद्वनस्थः सततं द्विजः ।  
 कुसूलकुम्भधान्यो वा ज्याह्निको वा भवेद्गृही ॥५२

प्रतिगृहेण सौम्येन जीवेद्यायावरेण वा । --  
 यस्त्येकं दण्डमालम्ब्य धर्मं ब्राह्मं परित्यजेत् ॥५३॥  
 विकर्मस्थो भवेद्विप्रः स याति नरकं ध्रुवम् !-  
 शिलायज्ञोपवीतादि ब्रह्मकर्म यतिस्त्यजेत् ॥५४॥  
 सजीवं न च चण्डालो मृतश्चानोऽभिजायते ।  
 स्वरूपेणैव धमेत्य त्यागो ह्यनिर्भवेद् ध्रुवम् ॥५५॥  
 कर्मणां फलसन्त्यागः सन्न्यासः स उदाहृतः ।  
 अनाश्रितः कर्मफलं कृत्यं कर्म समाचरेत् ॥५६॥  
 स सन्न्यासी च योगी च स मुनिः सात्त्विकः स्मृतः !  
 तुष्ट्यर्थं वामुदेवस्य धर्मं वै यः समाचरेत् ॥५७॥  
 स योगी परमेकान्तं हरेः प्रियतमो भवेत् ।  
 मोहादास्यं विना विष्णोः किञ्चित्कर्म समाचरेत् ॥५८॥  
 न तस्य फलमाप्नोति तामसीं गतिमश्नुते ।  
 हित्वा यज्ञोपवीतन्तु हित्वा चक्रस्य धारणम् ॥५९॥  
 हित्वा शिलोर्ध्वपुण्ड्रे च विप्रत्वाद् भ्रश्यते ध्रुवम् ।  
 पञ्चसंस्कारपूर्वेण मन्त्रमध्यापयेद् गुरुः ॥६०॥  
 संस्काराः पञ्च कर्तव्याः पारमैकान्त्यसिद्धये ।  
 प्रतिसम्बत्सरं कुर्यादुपाकमं ह्यनुत्तमम् ॥६१॥  
 सर्वपेदघ्नं कृत्वा तत्र सम्पूजयेद्भरिम् ।  
 दद्यादत्रोपवीतानि विष्णवे परमात्मने ॥६२॥  
 ब्राह्मणेभ्यश्च दत्त्वाऽथ विभृयात् स्वयमेव च ।  
 तदग्नौ पूज्य सन्तर्प्य चक्रञ्चैवाङ्कयेद् भुजे ॥६३॥

एवं प्रात्याह्निकं धार्यमुपवीतं मुद्रर्शनम् ।  
 पुण्ड्रास्तु प्रतिसन्ध्यन्तु नित्यमेव च धारयेत् ॥६४  
 द्वारयत्युद्धवं गोपी चन्दनं चन्द्रोद्धयम् ।  
 सान्तरालं प्रकुर्वीत पुण्ड्रं हरिपदाकृति ॥६५  
 श्राद्धकाले विशेषेण कर्ता भोक्ता च धारयेत् ।  
 अथ पञ्चकतत्वज्ञः पञ्चसंस्कारदीक्षितः ॥६६  
 महाभागपत्नी विप्रः सततं पूजयेद्भरिम् ।  
 नारायणः परं ब्रह्म विप्राणां दैवतं सदा ॥६७  
 तस्य भुक्तावशेषन्तु पावनं मुनिसत्तमाः ।  
 हरिभुक्तोऽपि तं दद्यात्पितृणाञ्च दिव्यौकसाम् ॥६८  
 तदेव जुहुयाद् बह्वी भुञ्जीयात्तु तदेव हि ।  
 हरेरनर्पितं यत्तु देवानामर्पितञ्च यत् ॥६९  
 मद्यमांससमं प्रोक्तं तद्रमुञ्जीयात्कदाचन !  
 हरेः पादजलं श्राप्यं नित्यं नान्यद्विद्यौकसाम् ॥७०  
 सुराणामितरेषां तु फलपुष्पजलादिकम् ।  
 निर्माल्यमशुभं प्रोक्तमस्पृश्यं हि कदाचन ॥७१  
 विधिर्होप द्विजातीनां नेतरेषां कदाचन ।  
 शिवार्चनं त्रिपुण्ड्रञ्च शूद्राणां तु विधीयते ॥७२  
 सद्भिधानां मिदं ये च विप्राः शिवपरायणाः ।  
 ते वै देवलका ज्ञेयाः सर्वकर्मवहिष्कृताः ॥७३  
 वैखानसास्तु ये विप्राः हरिपूजनतत्पराः ।  
 न ते देवलका ज्ञेया हरिपादाब्जसंश्रयान् ॥७४

नापहृत्य हरेर्द्रव्यं प्रामार्शनपरो भवेत् ।  
 भक्त्या संपूज्य देवेशं नासौ देवलकः स्मृतः ॥७५  
 भक्त्या योऽयचयेद्देवं प्रामार्थं हरिमन्ययम् ।  
 प्रसादतीर्थस्वीकाराभ्रासौ देवलकः स्मृतः ॥७६  
 शङ्खचक्रोर्ध्वपुण्ड्रादिधारणं त्मरणं हरेः ।  
 तन्नामकीर्तनरूपैव तत्पादान्मुनिपेवणम् ॥७७  
 तत्पादवन्दनञ्चैव तं निवेदितभोजनम् ।  
 एकादशयुपवासश्च तुलस्यैवार्चनं हरेः ॥७८  
 तदीयानामर्चनञ्च भक्तिर्नवविधास्मृता ।  
 एतैर्नवविधैर्युक्तो वृष्णयः प्रोच्यते युधैः ॥७९  
 एतैर्गुणैर्विहीनस्तु न तु विप्रो न वैष्णवः ।  
 कर्मणा मनसा वाचा न प्रमाद्येज्जनार्दनम् ॥८०  
 भक्तिः सा सात्विकी ज्ञेया भवेद्द्रव्यभिचारिणी ।  
 नान्यं देवं नमस्कृत्यान्नान्यं देवं प्रपूजयेत् ॥८१  
 नान्यप्रसादं भुञ्जीत नान्यदायतनं विशेत् ।  
 न त्रिपुण्ड्रं तथा कुट्यात्पट्टाकारं जगत्त्रयम् ॥८२  
 यतिर्यस्य गृहे भुङ्क्ते तस्य भुङ्क्ते हरिं स्वयम् ।  
 हरिर्यस्य गृहे भुङ्क्ते तस्य भुङ्क्ते जगत्त्रयम् ॥८३  
 महामागतो विप्रः सततं पूजयेद्धरिम् ।  
 पाञ्चकाल्य विधानेन निमित्तेषु विशेषतः ॥८४  
 अप्रमत्तो हृदये सूर्ये स्थण्डिले प्रतिमासु च ।  
 पटसु तेषु हरेः पूजा नित्यमेव विधीयते ॥८५

७थायः ] मगवन्नित्यनैमित्तिकसमाराधनविधिवर्णनम् । १०८३

स्नानकाले तु संप्राप्ते नद्यां पुण्यजले शुभे ।  
ध्यात्वा नारायणं देवं नागपर्यङ्कशायिनम् ॥८६॥  
द्वादशार्णेन मनुना सोऽर्चयित्वाऽश्वतादिभिः ।  
अष्टोत्तरशतं जप्त्वा ततः स्नानं समाचरेत् ॥८७॥  
एतदप्यर्चनं पौर्णं ब्राह्मणस्य जगत्पतेः ।  
होमकाले तु सततं परित्सीर्यान्तर्लं शुभम् ॥८८॥  
यज्ञरूपं महात्मानं चिन्तयेत् पुरुषोत्तमम् ।  
साङ्गत्रयीमयं शुभ्रदिव्याङ्गोपाङ्गशोभितम् ॥८९॥  
सर्वलक्षणसम्पन्नं शुद्धजाम्बूनदप्रभम् ।  
युवानं पुण्डरीकाक्षं शङ्खचक्रधनुर्धरम् ॥९०॥  
सर्वयक्ष्मयं ध्यायेद्दामाङ्काश्रितपद्मया ।  
सम्पूज्य चाश्रतैरेव पश्चाद्दोमं समाचरेत् ॥९१॥  
प्राणाग्निहोत्रसमये सम्यगाचम्य वारिणा ।  
कुरासने समासीनः प्राग्वा प्रत्यङ्मुगोऽपि वा ।  
पतिष्यासनमात्मानं प्राणायामं समाचरेत् ॥९२॥  
मन्त्रेणोद्बुध्य हृदयपङ्कजं केशरान्वितम् ।  
तस्मिन्बह्वर्ध्वातीतांशुविम्बान्यनु विचिन्तयेत् ॥९३॥  
सर्वाक्षरमयं दिव्यरन्तपीठं तदुत्तरे ।  
तन्मध्येऽष्टदलं पद्मं ध्यायेत्कल्पतरोरधः ॥९४॥  
वीरासने समासीनं तस्मिन्नीशं विचिन्तयेत् ।  
स्निग्धदूर्वादलश्यामं सुन्दरं भूपणैर्युतम् ॥९५॥

पीताम्बरं युवानं च चन्दनस्रग्विभूषितम् ।  
 शरत्पद्मासनं रत्नपद्माभाङ्गि करद्वयम् ॥६६  
 क्षिप्रवर्णं महाबाहुं विशालोरस्कमन्ययम् ।  
 चक्रराङ्गदावाणपाणिं रघुवरं हरिम् ॥६७  
 जानकोलक्ष्मणोपेतं मनसैवार्चयेद्विभुम् ।  
 मन्त्रद्वयेनार्चयित्वा जप्त्वा चैव पङ्कजरम् ॥६८  
 पश्चाद् वै जुहुयात् पञ्च प्राणानभ्यर्च्य तं पुनः ।  
 ध्यायन्चै मनसा विष्णुं सुखं भुञ्जीत वाग्यतः ॥६९  
 एवं हृद्यचनं विष्णोरुत्तमं मुनिसत्तमाः ! ।  
 अत्यन्ताभिमता विष्णो हृत्पूजा परमात्मनः ॥१००  
 सन्ध्याकाले तु सम्प्राप्ते रविमण्डलमध्यगम् ।  
 हिरण्यगर्भं पुरुषं हिरण्यवपुषं हरिम् ॥१०१  
 श्रीयत्सकौस्तुभोरस्कं वैजयन्तीविराजितम् ।  
 शङ्खचक्रादिभिर्युक्तं भूषितैर्दोर्भिरायतैः ॥१०२  
 शुक्लाम्बरधरं विष्णुं मुक्ताहारविभूषितम् ।  
 ध्यात्वा समर्चयेद्देवं कुसुमैरक्षतैरपि ॥१०३  
 प्रणवेण च सावित्र्या पश्चात् सूक्तं निवेदयेत् ।  
 ध्यायन्नेवं जपेद्विष्णुं गायत्री भक्तिसंयुतः ॥१०४  
 तथैवाभ्यञ्च गोविन्दं नमस्कृत्वा विसर्जयेत् ।  
 एवमभ्यर्चयेद्देवं त्रिसन्ध्यासु तथा हरिम् ॥१०५  
 वैश्वदेवावसाने तु पुरस्ताद् वै विभावसोः ।  
 उपलिप्य स्थण्डिले तु जुहुयाद्भक्तिकर्म तत् ॥१०६



ध्यात्वा सर्वगतं विष्णुं घनश्यामं सुलोचनम् ।  
 कौस्तुभोद्भासितोरस्कं तुलसीवनमालिनम् ॥१०७  
 पीताम्बरधरं देवं रत्नकुण्डलशोभितम् ।  
 हरिचन्दनलिप्राङ्गं पुण्डरीकायतेक्षणम् ॥१०८  
 मौक्तिकान्त्रितनासाग्रं जगन्मोहनविग्रहम् ।  
 गोपीजनैः परिकृतं वेणुं गायन्तमच्युतम् ॥१०९  
 ध्यात्वा कृष्णं जगन्नाथं पूजयित्वा यथाविधिः ।  
 जुहुयाद्धरिचक्रं तद्देवानुद्दिश्य सत्तमाः ॥११०  
 जप्त्वा कृष्णमनुं पञ्चादभ्यर्च्य मनसा हरिम् ।  
 आचम्य प्रयतो भूत्वा नमस्कृत्य विसर्जयेत् ॥१११  
 स्पण्डितेऽभ्यर्चनं विष्णोरेवं कुर्याद्विधानतः ।  
 त्रिसन्ध्यावचयेद् विष्णुं प्रतिमासु विशेषतः ॥११२  
 सुवर्णरजताद्यैर्वा शिलादायैर्दिनाऽपि वा ।  
 कृत्वा विम्बं हरेः सम्यक् सर्वावयवशोभितम् ॥११३  
 सवलक्षणसम्पन्नं सर्वायुध समन्वितम् ।  
 ततोऽधिवासनं कुर्यात्त्रिरात्रं शुद्धवारिषु ॥११४  
 तत्रार्चयेद्विधानेन जपहोमादिकर्मभिः ।  
 स्नाप्य पञ्चामृतैर्गन्धैस्तदा मन्त्रजलैरपि ॥११५  
 यज्जपेद्यां समारोप्य पूजयेत्तत्र दीक्षितः ।  
 मङ्गलद्रव्यसंयुक्तैः पूर्णकुम्भैः समन्वितः ॥११६  
 शरावैर्द्रव्यसम्पन्नैः पताकैस्तोरणादिभिः ।  
 कुम्भेषु वासुदेवादीन् सुरान् संपूजयेत् क्रमात् ॥११७

वासुदेवो ह्यग्नीवस्तथा सङ्कर्षणो विभुः ।  
 महावराहः शङ्खो नारसिंहस्तथैव च ॥११८  
 अनिरुद्धो वामनश्च पूजनीया यथाक्रमान् ।  
 तस्य पूर्णशरावेषु लोकेशानर्चयेत्ततः ॥११९  
 मध्ये तु वारुणं कुम्भं पञ्चरत्नसमन्वितम् ।  
 पूजयेद्गन्धपुष्पाद्यैर्घ्यात्वाऽस्मिन् जलशायिनम् ॥१२०  
 ततः संपूजयेद्देवं घान्योपरि निधाय च ॥१२१  
 व्याघ्रचर्मं समास्तीर्य तस्मिन् कौशेयवाससि ।  
 निवेद्य पूजयेद् विम्बं मूलमन्त्रेण वैष्णवः ॥१२२  
 तारणेषु चतुर्दिक्षु चण्डादीनर्चयेत् तदा ।  
 कुमुदादि सुरान् दिक्षु तथा धर्मादिदेवताः ॥१२३  
 संपूज्य विधिना तस्मिन् पञ्चाद्वोमं समाचरेत् ।  
 आग्नेयं कल्पयेत् पुण्ड्रं मेघलाघुपरोमितम् ॥१२४  
 अश्वत्थाद् वा शमीगर्भादाहत्याग्नौ विनिक्षिपेत् ।  
 वरुणवस्य गृहाद्वाऽपि समानीयानलं द्विजं ॥१२५  
 गृहोक्तविधिनेवात्र प्रतिष्ठाप्य हुताशनम् ।  
 इध्माधानादि मर्यन्तं कृत्वा द्वोमं समाचरेत् ॥१२६  
 पायसेन गवाज्येन तिलैर्त्रीहिभिरेव च ।  
 चतुर्भिर्वैष्णवैः सूक्तैः पायसं जुहुयाद्दधिः ॥१२७  
 हिरण्यगर्भसूक्तेन श्रीसूक्तेन तथैव च ।  
 अहं स्त्रैर्मिरिति च गयाज्यं जुहुयात्ततः ॥१२८

त्वमग्ने द्युभिरिति च सूक्तेन प्रत्यृचन्त्रिभिः ।  
 अस्य घामेति सूक्तेन प्रत्यृचं ब्रीहिभिस्तथा ॥१२६  
 अग्निं नरो दीधितिभिः सूक्तेन प्रत्यृचं तथा ।  
 समिद्धिः पिप्पलीरोद्रैर्दोतव्यं मुनिसत्तमाः ! ॥१२७  
 अष्टोत्तरं सहस्रं वा शतमष्टोत्तरं तु वा  
 होतव्यमाज्यं पश्चात्तु तथा मन्त्रः । त्वम् ॥१२८  
 वैकुण्ठपार्षदं होमं पायसेन घृतेन वा ।  
 समाप्य होमं हविषः शेषं तस्मै निवेदयेत् ।  
 चतुर्मन्त्राश्चतुर्वेदाश्चतुर्दिक्षु जपेत्ततः ॥१२९  
 तत्र आगारणं कुड्याद्गोतवादित्रनर्तकैः ।  
 रजन्यां तु व्यतीतायां स्नात्वा नद्यां विधानतः ॥१३०  
 वैकुण्ठतर्पणं कुड्याद्दत्विग्भिर्ब्राह्मणैः सहः ।  
 तर्पयित्वा पितॄन् देवान्वाग्यतो भयनं विशेत् ॥१३१  
 आचम्य पूर्ववत् पूजां कृत्वा होमं समाचरेत् ।  
 जुहुयाद्ब्रह्मणः स्तुत्यैः सूक्तैश्च घृतपायसम् ॥१३२  
 पौरुषेण तु सूक्तेन श्रीसूक्तेन तथैव च ।  
 वैकुण्ठपार्षदं हुत्वा कर्मशेषं समापयेत् ॥१३३  
 नयनोन्मीलनं कुड्यात् सुमुहूर्तेन वैष्णवः ।  
 महाभागवतः श्रेष्ठः सूक्ष्महेमशलाकया ॥१३४  
 द्वयेनैव प्रकुर्वीत नयनोन्मीलनं हरेः ।  
 निवेश्य अद्रपीठे तु स्नापयेत् सुसमाहितः ॥१३५

सवश्च वैष्णवैः सूक्तैश्च त्विजः कलशोदकैः ।  
 ततस्तन्मध्यमं कुम्भमादाय द्विजसत्तमः ॥१३६  
 स्नापयेन्मन्त्ररत्नेन शतवारं समाहितः ।  
 सौवर्णेन च ताम्रेण शङ्खेन रजतेन च ॥१४०  
 स्नाप्य पञ्चामृतैर्गन्धैरुद्धृत्य शुभचन्दनैः ।  
 मन्त्रेण स्नापयित्वा च तुलसीमिश्रितैर्जलैः ॥१४१  
 वासोभिर्भूषणैः सम्यगलङ्कृत्य च वैष्णवः ।  
 उपचारैः समभ्यर्च्य पञ्चाङ्गीराजयेत्तदा ॥१४२  
 अलङ्कृते शुभे गेहे पीठे संस्थापयेद्धरिम् ।  
 सूक्तेनोत्तानपादस्य दृढं स्थाप्य सुतासने ॥१४३  
 अष्टोत्तरशतं वारं शुभमन्त्रचतुष्टयात् ।  
 श्रुत्वा पुष्पाञ्जलिं दद्यान्महाभागवतोत्तमः ॥१४४  
 नत्वा गुरुन् परं धाम्नि स्थितं देवं सनातनम् ।  
 श्रुत्वा त्वैव मन्त्ररत्नेन तस्मिन् विम्वे निवेशयेत् ॥१४५  
 अर्चयित्वोपचारैस्तु मङ्गलानि निवेदयेत् ।  
 दर्पणं कपिलीं कन्यां शङ्खं दूर्वांक्षतान् पयः ॥१४६  
 सौवर्णभाज्यं लाजाञ्च मधुसर्पपमञ्जनम् ।  
 एवं त्रयोदशे मासि मङ्गलानि निवेदयेत् ॥१४७  
 तथैव दशमुद्राञ्च मन्त्रेणैव समीक्षयेत् ।  
 तद्विम्बमूर्तिं मन्त्रेण पञ्चादशशतानि तु ॥१४८  
 पुष्पाणि दद्याद्भक्त्या च जपेच्च सुसमाहितः ।  
 सतिलैः स्तण्डुलैः शुभ्रैः जुहुयाच्च द्विजोत्तमः ! ॥१४९

ऽध्यायः ] भगवन्नित्यनैमित्तिकसमाराधनविधिवर्णनम् । १०८६

आशिपो घ्राचनं कृत्वा दोषैर्निराजयेत्तदा ।  
भोजयित्वा तनो विप्रान् दक्षिणाभिश्च तोषयेत् ॥१५०  
आचार्यं मृत्विजश्चापि त्रिशोषेण समर्चयेत् ।  
सदयि संपहेन्नित्यं होमार्थं परमात्मन ॥१५१  
त्रिरात्रमु सवं तत्र कुप्याच्छ्रुत्या यत्तात्मवान् ।  
वैष्णवै पापमाप्नुश्च तत्र पुण्याञ्जलिं चरेत् ॥१५२  
आज्येन चरुणा वाऽपि होमं कुर्वीत वैष्णव ।  
प्रत्यहं भोजयेद्विप्रान् वैष्णवान् घृतशयसम् ॥१५३  
तन्मूर्तिप्रीतये शक्त्या दद्याद्वासासि दक्षिणाः ।  
कुप्यादवभृथेष्टिभ्य महाभागवतै सह ॥१५४  
सहस्रनामभिर्विष्णोः सूक्तेर्विष्णुप्रकाशकै ।  
नद्यामनभृथं कृत्वा सर्पयेत्पितृदेवताः ॥१५५  
अस्य वामेति सूक्तेन पायसं मधुसंयुतम् ।  
आज्येन मूलमन्त्रेण सहस्रं जुहुयात्तदा ॥१५६  
आशिपो घ्राचनं कृत्वा भोजयेद्द्विजसत्तमान् ।  
एवं संस्थापयेद्देवमर्चयेद्विधिना तदा ॥१५७  
गृहार्चायां स्थापने ॥ लघुतन्त्रं समाचरेन् ।  
आधिवासनव्यादि मन्त्रमत्र विवर्जयेत् ॥१५८  
एकत्र पञ्चगव्येषु त्रिनिक्षिप्य परेऽहनि ।  
पश्चात्पुनरै स्थापयित्वा पञ्चद्वर्तनादिकम् ॥१५९  
आदाय कलशं शुद्धं पवित्रोदकपूरितम् ।  
निक्षिप्य पञ्चरत्नानि सुवर्णतुलसीदलम् ॥१६०

चन्दनाक्षतदूर्वाश्च तिलान् घात्रीश्च सर्पपम् ।  
 अभिमन्त्र्य कुशैः पश्चान्मन्त्ररत्नेन वैष्णवः ॥१६१  
 शतवारं सहस्रं वा मन्त्रेणवाभिपेचयेत् ।  
 सवश्च वैष्णवैः सूक्तैर्गायत्र्या वैष्णवेन च ॥१६२  
 मामभिः केशराद्यैश्च सर्वैर्मन्त्रैश्च वैष्णवैः ।  
 स्नाप्य वस्त्रैर्भूषणैश्च शुभे धान्ये निवेशयेत् ॥१६३  
 स्थण्डिलेऽग्निं प्रतिष्ठाप्य इध्माधानादि पूर्ववत् ।  
 होमं कुट्याद् गराज्येन पायसान्नेन वैष्णवः ॥१६४  
 कर्तुरीपासनाग्नौ तु होममत्र (तन्त्रं) विशिष्यते ।  
 प्रत्यूषं वैशगवै स्तैजुं हुयाद् घृतपायसम् ॥१६५  
 अस्य वामेति सूक्तेन गराज्यं जुहुयात्ततः ।  
 मन्त्ररत्नेन जुहुयादष्टोत्तरसहस्रकम् ॥११६६  
 तद्विभ्रमूर्तिमन्त्रेण तिलहोमं तथैव च ।  
 अग्निज्ञातस्तु तन्मन्त्रं मूत्रमन्त्रेण वा यजेत् ॥१६७  
 यजेच्छी भ्रूकराशैश्च गायत्र्या विष्णुसंज्ञया ।  
 वैकुण्ठपार्षदं होमं कृत्वा होमं समापयेत् ॥१६८  
 मयनोन्मीलनं कृत्वा सौवर्णेन कुरेन वा ।  
 निवेशयाऽऽग्राहयेत्पीठे मन्त्ररत्नेन वैष्णवः ॥१६९  
 मन्त्रेणैवार्चनं कृत्वा पश्चान् पुष्पाञ्जलिं यजेत् ।  
 तस्मिन्निबन्धे तु तन्मूर्तिं ध्यात्वा नियतमानसः ॥१७०  
 अष्टोत्तरसहस्रान्तु दद्यात् पुष्पाञ्जलिं ततः ।  
 सर्वैश्च वैष्णवैः सूक्तैर्दद्यात् पुष्पाणि वैष्णवः ॥१७१

ऽध्यायः ] भगवन्नित्यनैमित्तिकसमाराधनविधिवर्णनम् । १०६१

ब्राह्मणान् भोजयेत्पश्चात्पायसान्नं घृतान्वितम् ।  
शक्त्या च दक्षिणा दत्त्वा विशेषेणार्चयेद् गुरुम् ॥ १७२  
सहस्रनामभिः स्तुत्या आशीर्भिरभिवादयेत् ।  
प्रदक्षिणानमस्कारान् कुर्वीताञ्च पुनः पुनः ॥ १७३  
प्रसीद मम नाथेति भक्त्या सम्प्रार्थयेद्विभुम् ।  
क्षीप्तैर्नीराजयेत्पश्चान्छक्त्या तेन समाहितः ॥ १७४  
हुतरोपं हविः प्राश्य जप्त्वा मन्त्रं मनुत्तमम् ।  
ध्यायन् कमलपत्राक्षं भूमौ स्वप्यात् कुरोत्तरम् ॥ १७५  
एवं गृहार्चा विम्बस्य विष्णुं संस्थाप्य वैष्णवः ।  
अर्चयेद्विधिना नित्यं यावद्देहनिपातनम् ॥ १७६  
शालग्रामशिलायान्तु पूजनं परमात्मनः ।  
कोटिकोटिगुणाधिक्यं भवेदत्र न संशयः ॥ १७७  
न जपो नाधिवासश्च न च संस्थापनक्रिया ।  
शालग्रामार्चने विष्णुस्तस्मिन् सन्निहितस्तथा ॥ १७८  
मूर्तीनान्तु हरे स्तस्य यस्यां ग्रीतिरनुत्तमा ।  
तस्यामेव तु तां ध्यात्वा पूजयेत् तद्विधानतः ॥ १७९  
मूर्त्यन्तरमयिमे तु न यष्टव्यं तदेव तत् ।  
शालग्रामशिलायान्तु यष्टव्या इष्टमूर्तयः ॥ १८०  
अर्चनं यन्दनं दानं प्रणामं दर्शनं नृणाम् ।  
शालग्रामशिलायान्तु सर्वं कोटिगुणं भवेत् ॥ १८१  
न (स)स्नातः सर्वतीर्थेषु सर्वयज्ञेषु दीक्षितः ।  
यो वहेच्छिरसा नित्यं शालग्रामशिलाजलम् ॥ १८२

असत्यमथनं हिंसामभक्ष्याणाञ्च भक्षणम् ।  
 शालग्रामजलं पीत्वा सर्वं दहति तत्क्षणात् ॥१८३  
 द्विजानामेव नान्येषा शालग्रामशिलार्चनम् ।  
 घालकृष्णवपुर्देवं पूजयेत्तद् द्विजः सदा ॥१८४  
 पठेद्वाऽप्यर्चयेद् विष्णु विशिष्टं शुद्धयोनिजः ।  
 स्पण्डिले हृदये वाऽपि पूजयेत्तद् द्विजः सदा ॥१८५  
 वाराहं नारसिंहञ्च हयग्रीवञ्च वामनम् ।  
 ब्राह्मणं पूजयेद्विष्णुं यज्ञमूर्तिञ्च रेवलयम् ॥१८६  
 क्षत्रियं पूजयेद्रामं केशवं मधुसूदनम् ।  
 नारायणं घासुदेवमनन्तञ्च जनार्दनम् ॥१८७  
 प्रद्युम्नं मनिरुद्धञ्च गोविन्दञ्चाच्युतं हरिम् ।  
 सङ्कर्षणं तथा कृष्णं वेश्यं सपूजयेत् ॥१८८  
 घालं गोपालत्रेपं वा पूजयेच्छुद्धयोनिजः ।  
 सर्वं ण्य हि संपूज्या विप्रेण मुनिसत्तमा ॥१८९  
 सर्वेऽपि भगवन्मया जप्तव्याः सर्वसिद्धिदाः ।  
 तस्माद्विजोत्तमं पूज्य सर्वपां भूतिमिच्छताम् ॥१९०  
 पञ्चसंस्कारसम्पन्नो मन्त्ररत्नाथेकोविदः ।  
 शालग्रामशिलायां तु पूजयेत् पुण्योत्तमम् ।  
 पूजितस्तुलसीपत्रैद्याद्वि सचलं हरिं ॥१९१  
 यः श्राद्धं कुरुते विप्रः शालग्रामशिलाग्रतः ।  
 पितॄणां तत्र वृष्टिः स्याद् गयाश्राद्धादनन्तरम् ॥१९२



जप्तं हुतं तथा दानं वन्दनं च ततः क्रिया ।  
शालग्रामसमीपे तु सर्वं कोटिगुणं भवेत् ॥१६३  
ध्यात्वा कमलपत्राक्षं शालग्रामशिलोपरि ।  
पौह्येण तु सूक्तेन पूजयेत् पुरुषोत्तमम् ॥१६४  
अनुष्टुभस्य सूक्तस्य त्रिष्टुबन्त्वाऽस्य देवता ।  
पुरुषो यो जगद्धीजमृषिर्नारायणः स्मृतः ॥१६५  
प्रथमां विन्यसेद्वामे द्वितीयां दक्षिणे करे ।  
तृतीयां वामपादे तु चतुर्थीं दक्षिणे तथा ॥१६६  
पञ्चमीं वामजानौ तु षष्ठीं चैव दक्षिणे तथा ।  
सप्तमीं वामकट्यां तु अष्टमीं दक्षिणेऽपि च ॥१६७  
नवमीं नाभिदेशे तु दशमीं हृदि विन्यसेत् ।  
एकादशीं कण्ठदेशे द्वादशीं वामबाहुके ॥१६८  
त्रयोदशीं दक्षिणे तु स्वास्यदेशे चतुर्दशीम् ।  
अक्षयोः पञ्चदशीं मूर्ध्नि षोडशीञ्चैव विन्यसेत् ॥१६९  
एवं न्यासविधिं कृत्वा पश्चाद् ध्यानं समाचरेत् ।  
सहस्रार्कप्रतीकाशकृन्दर्पायुतसन्निभम् ॥२००  
गुदानं पुण्डरीकाक्षं सर्वाभरणभूषितम् ।  
पीनवृत्तायतैर्दोर्भिश्चतुर्भिर्मूषणान्वितैः ॥२०१  
चक्रं पद्मं गदां शङ्खं विभ्राणं पीतवाससम् ।  
शुक्लपुष्पानुलेपञ्च रक्तहस्तपदाम्बुजम् ॥२०२  
मुस्तिग्धनीलकुटिलकुन्तलैरुपशोभितम् ।  
श्रिया भूम्या समाश्लिष्टपार्श्वं ध्यात्वा समर्चयेत् ॥२०३

यथाऽऽत्मनि तथा देवे न्यासकर्म समाचरेत् ।  
 आद्ययाऽऽद्याह्नं विष्णोरासनं च द्वितीयया ॥२०४  
 तृतीयया च तत्पार्श्वं चतुर्थ्याऽर्घ्यं निवेदयेत् ।  
 पञ्चम्याऽऽचमनीयं तु दातव्यं च ततः क्रमात् ॥२०५  
 षष्ठ्या स्नानन्तु सप्तम्या बस्त्रमप्युपवीतकम् ।  
 अष्टम्या चैव गन्धन्तु नवम्याथ सुपुत्रकम् ॥२०६  
 दशम्या घूपकञ्चैव मेकादश्या च दीपकम् ।  
 द्वादश्या च त्रयोदश्या चरुं दिव्यं निवेदयेत् ॥२०७  
 चतुर्दश्या नमस्कारं पञ्चदश्या प्रदक्षिणम् ।  
 षोडश्या शयनं दत्त्वा शेषकर्म समाचरेत् ॥२०८  
 ज्ञानवज्रोपवीतेषु चरौ चाऽचमनं चरेत् ।  
 हृत्या षोडशभिर्मन्त्रैः षोडशाऽऽज्याहुतौः क्रमात् ॥२०९  
 सप्तवाऽऽज्येन होतव्यं मृद्धिः पुष्पाञ्जलिं चरेत् ।  
 तथ सर्वं जपेत् सद्यः पौरुषं सूक्तमुत्तमम् ॥२१०  
 पृष्ट्वा माध्याह्निकस्नानं मूर्द्धं पुण्ड्रधरस्ततः ।  
 नित्यां सन्ध्यामुपास्याथ रविमण्डलमध्यगम् ॥२११  
 ह्रिं ध्यायन्नगदः स्यादेनसः शुचिरित्युच्यते ।  
 सावित्रीं च जपेत्तिष्ठन् प्राणानायम्य पूर्वतः ॥२१२  
 सौरेण चानुवाकेन उपस्थानजपं तथा ।  
 आत्मानं च परीक्ष्याथ दर्भान्तरपुटाञ्जलिम् ॥२१३  
 दक्षिणाङ्गे तु विन्यस्य जपयज्ञाप्तये युधः ।  
 सन्ध्याहृतिं सप्तगवां गायत्रीं तु जपेत्तदा ॥२१४

शक्त्या च चतुरो वेदान् पुराणं वैष्णवं जपेत् ।  
 चरितं रघुनाथस्य गीता भगवतो हरे ॥२१५  
 ध्यायन्तै पुण्डरीकाक्षं जप्त्वा वाऽप उपस्पृशेत् ।  
 पूर्ववत्तर्पयेद्देवं वैकुण्ठपार्षदं तथा ॥२१६  
 देवानृषीन्पितॄन्पुत्रान्पुत्र्यैव तर्पयित्वा तिलोदकैः ।  
 निष्पीड्य वस्त्रमाचम्य गृहमाविश्य पूर्ववत् ॥२१७  
 पूजयित्वाऽप्युतं भक्त्या पौरुषेण विधानतः ।  
 दैवं भूतं पितॄन् च मानुषं च विधानतः ॥२१८  
 ग्रीतये सर्वयक्षाय भोक्तुं विष्णो र्यजेत्ततः ।  
 षकुण्ठं वैष्णवं होमं पूर्ववज्जुहुयात्तदा ॥२१९  
 चतुर्विधेभ्यो भूतेभ्यो बलिं पश्चाद्विनिक्षिपेत् ।  
 द्वारि गोदोहमात्रन्तु तिष्ठेदतिथिवाङ्मया ॥२२०  
 भोजयेश्चाऽऽगतान् काले फलमूलौदनादिभिः ।  
 महाभागवतान् विप्रान् विशेषेणैव पूजयेत् ॥२२१  
 मधुपर्कप्रदानेन पाद्यार्घ्याचमनादिभिः ।  
 गन्धै पुष्पैश्च ताम्रमूले धूपै दीपै र्निवेदने ॥२२२  
 ब्रह्मासने निवेश्यैव पूजयेच्छ्रद्धयाऽन्वितः ।  
 सकृत्संपूजिते त्रिप्रे महाभागवतोत्तमे ॥२२३  
 पष्टिं वर्षसहस्राणि हरिः संपूजितो भवेत् ।  
 मोहादनर्चयेद्यस्तु महाभागवतोत्तमम् ॥२२४  
 फोटिजन्मार्जितात्पुण्याद् ध्रुव्यते नात्र संशयः ।  
 गृहे तस्य न चाशनाति शतवर्षाणि केशव ॥२२५

मुखं हि सर्वदेवानां महाभागवतोत्तमः ।  
 तस्मिन् सम्पूजिते विप्रे पूजितं स्याज्जगत्त्रयम् ॥२२६॥  
 अर्थपञ्चकृतत्वज्ञः पञ्चसंस्कारसंस्कृतः ।  
 नवभक्तिसमायुक्तो महाभागवतः स्मृतः ॥२२७॥  
 काले समागते तस्मिन् पूजिते मधुसूदनः ।  
 क्षणादेव प्रसन्नः स्यादीप्सितानि प्रयच्छति ॥२२८॥  
 महाभागवतानाञ्च पिबेत्पादौदकं तु यः ।  
 शिरसा वा श्रयेद्भुक्त्या सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥२२९॥  
 यस्मिन् कस्मिन् हि वसति महाभागवतोत्तमे ।  
 अप्येकरात्रमथवा तद्देशस्तोर्थसन्मितः ॥२३०॥  
 भोजयित्वा महाभागान् वैष्णवानतिथीनपि ।  
 ततो वालमुद्दद्वृद्धान् बान्धवाश्च समागतान् ॥२३१॥  
 भोजयित्वा यथा शक्त्या यथाकालं जितक्षुधः ।  
 भिक्षां दद्यात् प्रयत्नेन यतीनां ब्रह्मचारिणाम् ॥२३२॥  
 शूद्रो वा प्रतिलोमो वा पथि श्रान्तः क्षुधातुरः ।  
 भोजयेत्तं प्रयत्नेन गृहमभ्यागतो यदि ॥२३३॥  
 पापण्डः पतितो वाऽपि क्षुधातौ गृहमागतः ।  
 नैव दद्यात् स्वपकाश्रमाममेव प्रदापयेत् ॥२३४॥  
 स्वशक्त्या तर्पयित्वैवमतिथीनागतान् गृहे ।  
 सम्यङ्निवेदितं विष्णोः स्नयं भुञ्जीत वाग्यतः ॥२३५॥  
 प्रक्षाल्य पादौ हस्तौ च सम्यगाचम्य चारिणा ।  
 विष्णोरभिमुखं पीठे हेमदिग्धे कुशोत्तरे ॥२३६॥

प्राग्वा प्रत्यङ्मुखो वाऽपि ज्ञान्वोस्तु करः शुचिः ।  
 उदङ्मुखो वा पैत्र्ये तु समासीताभिपूजितः ॥२३७  
 वंशतालदिपत्रैस्तु कृतं वसनमस्म च ।  
 कपाल मिष्टकं वापि वणं कृष्णमयं तथा ॥२३८  
 चर्मोसनं शुष्ककाष्ठं रत्नं पर्यङ्कमेव च ।  
 निपिद्धधातु पीठं च दान्तमस्त्रिमयश्च यत् ॥२३९  
 दग्धं परावितं तालमायसश्च विवर्जयेत् ।  
 विभीतकन्तिन्दुकश्च करञ्जं व्याधिघातकम् ॥२४०  
 भस्मातकं कपित्थं च हिन्तालं शिग्रुमेव च ।  
 निपिद्धतरयो ह्येते सर्वकर्मसु गर्हिताः ॥२४१  
 शुद्धदारुमये पीठे समासीने कुर्यात्तरे ।  
 पीठे त्वलाभे सौम्ये स्यात् केवलं कुर्याद्विष्टरम् ॥२४२  
 चतुरस्रं त्रिकोणं वा वर्तुलश्चाद् चन्द्रकम् ।  
 वर्णानामानुपूर्वेण मण्डलानि यथाव्रमात् ॥२४३  
 खलङ्कृते मण्डलेऽस्मिन् विमलं भाजनं न्यसेत् ।  
 स्वर्णं रौप्यं च काश्यं वा पणं वा शास्त्रचोदितम् ॥२४४  
 चतुःषष्टिपलं काश्यं तदर्थं पादमेव वा ।  
 गृहिणामेव भोज्यं स्यात् ततो हीनन्तु वर्जयेत् ॥२४५  
 पलाशपद्मपत्रे तु गृही यत्नेन वर्जयेत् ।  
 यतीनाञ्च वनस्त्रानां पितृणाञ्च शुभप्रदम् ॥२४६  
 वटाश्वत्थार्कपर्णानि कुम्भीतिन्दुकयोस्तथा ।  
 एरण्डतालविलेपे कोविदारकरञ्जके ॥२४७

भस्मातकाश्वपर्णान्ता पर्णानि परिवर्जयेत् ।  
 मोचागर्भपलाशं च वर्जयेत्तत्तु सर्वदा ॥२४८  
 मधुकं कुटजं ब्राह्मजम्बूश्वमुदुम्बरम् ।  
 मातुल(त्रु)ङ्गं पनसं च मोचाचर्मदलानि च ॥२४९  
 पालाश्ववर्णं श्रीपर्णं शुभानीमानि भोजने ।  
 यथाकालोपपन्ने तु भोजने घृतसंस्कृते ॥२५०  
 पत्न्यादिभिर्दत्तवस्तु वास्तुदेवार्पिते शुभे ।  
 गायत्र्या मूलमन्त्रेण संप्रोक्ष्य शुभवारिणा ॥२५१  
 मृतसत्याभ्यामिति च मन्त्र्याभ्या परिपेचयेत् ।  
 अन्नरूपं विराजं संन्यात्वा मन्त्रं जपेद्बुधः ॥२५२  
 ध्यात्वा हृत्पङ्कजे विष्णुं सुधाशुसदृशद्युतिम् ।  
 शङ्खचक्रगदापद्मपाणिं वै दिव्यभूषणम् ॥२५३  
 मनसैवार्चयित्वाऽथ मूलमन्त्रेण वैष्णवः ।  
 पादोदकं हरेः पुष्पं तुलसीदलमिश्रितम् ॥२५४  
 अमृतोपस्तरणमसीति मन्त्रेण प्राशयेत् ।  
 उद्दिश्यैव हरिं प्राणान् जुहुयात् सघृतं हविः ॥२५५  
 अन्नलाभे तु होतव्यं शाकमूलफलादिभिः ।  
 पञ्चप्राणाद्या हुतयो मन्त्रैस्तेजुहुयाद्धरे ॥२५६  
 श्रद्धायां प्राणे(नि)विष्टेति मन्त्रेण च यथाक्रमात् ।  
 तर्जनीमध्यमाङ्गुष्ठैः प्राणायेति यजेद्वपि ॥२५७  
 मध्यमानामिकाङ्गुष्ठैरपानायेत्यनन्तरम् ।  
 कनिष्ठानामिकाङ्गुष्ठैर्व्यानायेत्याहुतिं ततः ॥२५८

ऽध्यायः ] भगवन्नित्यनैमित्तिकसमाराधनविधिवर्णनम् । १०६६

कनिष्ठतर्जान्यङ्गुलैरुदानायेति वै यजेत् ।

समानायेति जुहुयात्सवरङ्गुलिभिर्द्विजः ॥२५६

अयमग्निवैश्वानरिरित्यात्मानमनन्तरम् ।

शतमष्टोत्तरं मन्त्रं मनसैव जपेत्ततः ॥२६०

ध्यायन् नारायणं देवं भुञ्जीयात् तु यथामुत्तमम् ।

यक्त्रादपातयन् प्रासं चिन्तयन्मधुसूदनम् ॥२६१

नाऽऽसनारूढपादस्तु न वेष्टितशिरास्तथा ।

न स्कन्दयन् न च हसन वह्निर्नाप्यवलोकयन् ॥२६२

नाऽऽस्मीयान् प्रलपन् जल्पन् यद्भिर्जानुकरो न च ।

न पादकोपितनरः (पादारोपितकरः) पृथिव्यामपि वा न च ॥२६३

न प्रसारितपादश्च नोत्सङ्गकृतभाजनः ।

नाशनीयाद्धार्यया सार्धं न पुत्रैर्षापि विद्वलः ॥२६४

न शयानो नातिसङ्गो न विमुक्तशिरोरुहः ।

अन्नं पृथा न विकिरन् निष्ठीवन् नातिफाङ्गुया ॥२६५

नातिशब्देन भुञ्जीत न वस्त्रार्थोपवेष्टितः ।

प्रगृह्य पात्रं हस्तेन भुञ्जीयात् पैतृकं यदि ॥२६६

चपके पुटके वाऽपि पिवेत्तोयं द्विजोत्तमः ।

तर्कं वाऽप्यथ वा क्षीरं पानकं वाऽपि भोजने ॥२६७

यक्त्रेण सान्तर्धानेन दत्तमन्येन वा पिबेत् ।

प्रासरोपं न चाशनीयात्पीतरोपं पिवेन्न तु ॥२६८

शाकेमूलफलादीनि दन्तच्छिन्नं न स्वादयेत् ।

वद्धृत्य वामहस्तेन तोयं यक्त्रेण यः पिबेत् ॥२६९

स सुरा वै पिवेद् व्यक्तां सद्यः पतति रौरवे ।  
 शब्देनापोशने पीता शब्देन दधिपायसे ॥२७०  
 शब्देनाश्वरसं क्षीरं पीत्वेव पतितो भवेत् ।  
 प्रत्यक्षलवणं शुक्तं क्षीरं च लवणान्वितम् ॥२७१  
 दधि हस्तेन मयितं सुरापानममं स्मृतम् ।  
 आरनालरसं तद्वत्तद्वैवानापितं हरेः ॥२७२  
 आसनेन तु पात्रेण नैव दद्याद्घृतादिकम् ।  
 नोच्छिष्टं घृतमादद्यात् पैतृके भोजने विना ॥२७३  
 तथैव तु पुरोडाशं पृषदाज्यञ्च माक्षिकम् ।  
 पानीयं पायसं क्षीरं घृतं लवणमेव च ॥२७४  
 हस्तदत्तं न गृहीयात्तुल्यं गोमांसभक्षणम् ।  
 अपूपं पायसं मापं (मांसं) यावकं कृसरं मधु ॥२७५  
 केवलं यो वृथाऽज्जनाति तेन भुक्तं सुरासमम् ।  
 करञ्जं मूलकं शिम्बु लशुनं तिलपिष्टकम् ॥२७६  
 तलास्थि श्वेतवृन्ताकं सुरापानसमं स्मृतम् ।  
 अन्यच्च फल्मूलाद्यं भक्ष्यं पानादिकञ्च यत् ॥२७७  
 म्रकचन्दनादि साम्यूलं यो भुङ्क्ते हर्षनर्पितम् ।  
 कल्पकोटिसहस्राणि रेतोविण्मूत्रभाग् भवेत् ॥२७८  
 तस्मात्सर्वं सुविमलं हरिभुक्तं यथोक्तवत् ।  
 स पवित्रेण यो भाङ्क्ते सर्वयज्ञफलं लभेत् ॥२७९  
 ध्यायन् नारायणं देवं वाग्यतः प्रयत्नात्मवान् ।  
 भुक्त्वावनतितृप्त्यैव प्राशयेदम्बु निर्मलम् ॥२८०



ऽध्यायः ] भगवन्नित्यनैमित्तिकसमाराधनविधिवर्णनम् । ११०१

अमृतापिधानमसीतिमन्त्रेण कुशपाणिना ।  
किञ्चिदन्नमुपादाय पीतरोपेण चारिणा ॥२८१  
पैतृकेण तु तीर्थेन भूमौ दद्यात्तदर्थिनाम् ।  
रौरवे नरके घोरे वसतां क्षुत्पिपासया ॥२८२  
तेषामन्नं सीदकश्च अक्षय्यमुपतिष्ठतु ।  
इति दत्त्वोदकं तेषां तस्मिन्नेवाऽऽसने स्थितः ॥२८३  
प्रक्ष्यात्य हस्तौ पादौ च चरुं मंशोप्य चारिभिः ।  
द्विराचम्य विधानेन मन्त्रेण प्राशयेज्जलम् ॥२८४  
पीत्वा मन्त्रजलं पश्चादाचम्य हृदयाम्बुजे ।  
राममिन्दीवरश्यामं चक्रराष्ट्रधनुर्धरम् ॥२८५  
युवानं पुण्डरीकाक्षं ध्यात्वा मन्त्रं जपेच्चुधः ।  
समासीनः सुप्तासने वेदमध्यापयेत्ततः ।  
सच्चिद्व्यान् यास्तु शास्त्रं वा स्नेहाद्वा धर्मसंहिताम् ॥२८६  
इतिहासपुराणं वा कथयेच्छृणुयाच्च वा ।  
रवावस्तङ्गते सन्ध्यां बहिः कुर्वीत पूर्ववत् ॥२८७  
बहिः सन्ध्या शतगुणं गोष्ठे शतगुणं तथा ।  
गङ्गाजले सहस्रं स्यादनन्तं विष्णुसन्निधौ ॥२८८  
उपास्य पश्चिमां सन्ध्यां जप्त्वा जप्यं समाहितः ।  
पूर्ववत् पूजयेद्विष्णुं गन्धपुष्पाक्षतादिभिः ॥२८९  
अष्टाक्षरविधानेन निवेश्यैवं समाहितः ।  
सायमौपासनं हुत्वा वैष्णवं होममाचरेत् ॥२९०

स मुरा वै पिवेद् व्यक्तां सद्यः पतति रौरवे ।  
 शब्देनापोशने पीत्या शब्देन दधिपायसे ॥२७०  
 शब्देनान्नरसं क्षीरं पीत्वेन पतितो भवेत् ।  
 प्रत्यक्षलणं शुक्तं क्षीरं च लणान्वितम् ॥२७१  
 दधि हस्तेन मथितं सुरापानममं स्मृतम् ।  
 आरनालरसं तद्वत्तद्वैवानार्पितं हरेः ॥२७२  
 आसनेन तु पात्रेण नैव दद्याद्घृतादिकम् ।  
 नोच्छिष्टं घृतमादद्यात् पैतृके भोजने विना ॥२७३  
 तथैव तु पुरोहारं पृथ्वाज्यश्च माक्षिकम् ।  
 पानीयं पायसं क्षीरं घृतं लवणमेव च ॥२७४  
 हस्तदत्तं न गृहीयात्तुल्यं गोमांसमक्षणम् ।  
 अपूपं पायसं मापं (मांसं) यायकं कृसरं मधु ॥२७५  
 केवलं यो पृथाऽप्रनाति तेन भुक्तं सुरासमम् ।  
 फरञ्जं मूलकं शिम्बु लशुनं तिलपिष्टकम् ॥२७६  
 तलास्थि श्वेतघृन्ताकं सुरापानसमं स्मृतम् ।  
 अन्यथा फलमूलानां भक्ष्यं पानादिकथं यत् ॥२७७  
 मक्कन्दनादि ताम्बूलं यो भुङ्क्ते हर्षनर्पितम् ।  
 गल्पकोटिसहस्राणि रेतोविष्णुमूत्रभाग् भवेत् ॥२७८  
 तस्मात्सर्वं भुविमलं हरिभुक्तं यथोक्तवत् ।  
 स पवित्रेण यो भाङ्क्ते सर्वयज्ञफलं लभेत् ॥२७९  
 ध्यायन् नारायणं देवं वाग्यतः प्रयत्नात्मवान् ।  
 भुक्त्वावनतिपृथ्यैव प्राशयेदम्बु निर्मलम् ॥२८०

अध्यायः ] भगवन्नित्यनैमित्तिकसमाराधनविधिवर्णनम् । ११०१

अमृतापिधानमसीतिमन्त्रेण कुरापाणिना ।  
किञ्चिदन्नमुपादाय पीतशेषेण वारिणा ॥२८१  
पैतृकेण तु तीर्थेन भूमौ दद्यात्तदर्थिनाम् ।  
रौरवे नरके घोरे वसतां क्षुत्पिपासया ॥२८२  
तेषामन्नं सोदकञ्च अक्षय्यमुपतिष्ठतु ।  
इति दत्त्वोदकं तेषां तस्मिन्नेवाऽऽसने स्थित ॥२८३  
प्रक्षाल्य हस्तौ पादौ च यस्त्र मंशोभ्य वारिभिः ।  
द्विराचम्य विधानेन मन्त्रेण प्राशयेज्जलम् ॥२८४  
पीत्वा मन्त्रजलं पश्चादाचम्य हृदयाम्बुजे ।  
राममिन्दीवरस्यामं चक्राष्टप्रधनुर्धरम् ॥२८५  
युवानं पुण्डरीकाक्षं ध्यात्वा मन्त्रा जपेद्बुधः ।  
समासीनः सुप्तासने वेदमभ्यापयेत्ततः ।  
सञ्चिद्रूपान् वास्तु शास्त्रं वा स्नेहाद्वा धर्मसंहिताम् ॥२८६  
इतिहासपुराण वा कथयेच्छृणुयाच्च वा ।  
रवाग्रस्तङ्गते सन्ध्यां यदि कुर्वीत पूर्ववत् ॥२८७  
यदिः सन्ध्या शतगुणं गोष्ठे शतगुणं तथा ।  
गङ्गाजले सहस्रं स्यादनन्तं विष्णुसन्निधौ ॥२८८  
उपास्य पश्चिमा सन्ध्यां जप्त्वा जप्यं समाहितः ।  
पूर्ववत् पूजयेद्विष्णु गन्धपुष्पाक्षतादिभिः ॥२८९  
अष्टाक्षरविधानेन निवेदयेत्तं समाहितः ।  
सायमौपासनं कृत्वा वैष्णवं होममाचरेत् ॥२९०

ऽध्यायः ] भगवन्नित्यनैमित्तिकसमाराधनविधिवर्णनम् । ११०३

नाशुचिर्मलिनो वाऽपि न चैव मलिनां तथा ।  
न क्रुद्धां न च क्रुद्धः सन् न रोगी नच रोगिणीम् ॥३०२  
न गच्छेत् क्रूरदिवसे मधामूलद्वयोरपि ।  
ब्राह्मेति मुहूर्ते उत्थाय आचामेत्प्रयत्नात्मवान् ॥३०३  
यती च ब्रह्मचारी च वनस्थो विधवा तथा ।  
अजिने कम्बले वाऽपि भूमौ स्वप्याम् कुशोत्तरे ॥३०४  
ध्यायन्तः पद्मनाभं तु शयीरन् विजितेन्द्रियाः ।  
अर्पयेद् वाऽर्चयेद्विष्णुं त्रिकालं श्रद्धयाऽन्यताः ॥३०५  
आचरेयुः परं धर्मं यथावृत्त्यनुसारतः ।  
प्रातः कृष्णं जगन्नाथं कीर्तयेत् पुण्यनामभिः ॥३०६  
शौचादिरुन्तु यत्कर्म पूर्वोक्तं सर्वमाचरेत् ।  
नैमित्तिकविशेषेण पूजयेत् पतिमव्ययम् ॥३०७  
सत्तत्काले तु तन्भूते रर्चनं मुनिभिः स्मृतम् ।  
प्रसुप्ते पद्मनाभे तु नित्यं मासचतुष्टयम् ॥३०८  
द्रोण्यान्दोलायामपि वा भक्त्या संपूजयेद्विभुम् ।  
क्षीराब्धौ शेषपयङ्के शयानं रमया सह ॥३०९  
नीलजीमूतसङ्काशं सर्वालङ्कारमुन्दरम् ।  
कौस्तुभोद्भासितवनुं वैजयन्त्या विराजितम् ॥३१०  
लक्ष्मोघनकुचस्पर्शशुभोरस्कं मुवर्चसम् ।  
ध्यात्वैवं पद्मनाभन्तु द्वादशार्णेन नित्यशः ॥३११  
पूजयेद्गन्धपुष्पाद्यै स्त्रिसन्ध्यास्वपि वैष्णवः ।  
निवेश पायसान्नं तु दद्यात् पुष्पाञ्जलिं ततः ॥३१२

ऽग्रायः'] भगवन्नित्यनैमित्तिकसमाराधनविधिवर्णनम् । ११०५

सर्वैश्च वैष्णवैः (मन्त्रैः) सूक्तैर्मध्वाज्यतिलपायसैः ।  
हुत्वा दत्त्वा दशार्णेन सहस्रं जुहुयात्ततः ॥३२४  
पश्चादारोपयेद्विष्णोः पवित्राणि शुभानि वै ।  
पयस्य सोम इति च जपन् सूक्तं सुपावनम् ॥३२५  
निधेदयेत्पवित्राणि तथा विष्णोर्यथाक्रमान् ।  
मन्दिदरं कुरायोक्त्रेण वैष्टयन् परमात्मनः ॥३२६  
वित्तानपुष्पमालाद्यं रत्नद्वन्द्वं च सर्वतः ।  
सहस्रं द्वादशार्णेन भक्त्या पुष्पाञ्जलिं न्यसेत् ॥३२७  
अथोपनिषदुक्तानि पञ्चसूक्तान्यनुक्रमान् ।  
त्वयाहन् पीतमिज्यादि जपन् पुष्पाञ्जलिं ततः ॥३२८  
ब्राह्मणान् भोजयेत्पश्चात् स्वयं कुर्वीत पारणम् ।  
शक्त्या वा चोत्सवं कुर्यात्त्रिरात्रं वैष्णवोत्तमः ॥३२९  
प्रत्यब्दमेवं कुर्वीत पवित्रारोपणं हरेः ।  
क्रतुकोटिसहस्रस्य फलं प्राप्नोत्यसंशयः ॥३३०  
तत्र दुर्भिक्षरोगादिभयं नास्ति कदाचन ।  
संप्राप्ते कार्तिके मासे सायाह्ने पूजयेद्भरिम् ॥३३१  
हृदये पुष्पैश्च जातीभिः कोमलैः स्तुलसीदलैः ।  
अर्चयेद्विष्णुं गायत्र्याऽनुवाकैर्वैष्णवैरपि ॥३३२  
पावमान्यैश्च तन्मासं भक्त्या पुष्पाञ्जलिं न्यसेत् ।  
अष्टोत्तरसहस्रं वा शतमष्टोत्तरं तु वा ॥३३३  
अष्टाविंशतिं वा शक्त्या दद्याद्दीपान् सुपालिकान् ।  
सुवासितेन तैलेन गन्धाज्येनाथवा हरेः ॥३३४

अष्टोत्तरशतं निरुं निरुहोमं ममाशये ।  
 मनुना वैष्णवेनापि मायया विष्णुमंथया ॥३६४  
 हृत्वा पुष्पाञ्जलिं दद्यात् साध्यामेव गता विभोः ।  
 त्रिपिण्यं भोजनं शुद्धं नरं भुञ्जीत पायनः ॥३६५  
 तैलं शुणं तथा मांसं निष्यादन्माश्रिकं नया ।  
 चणकानपि माषाञ्च वर्जयेत्तानिरेऽग्नि ॥३६६  
 भोजयेद्वैष्णवान् विप्रान् निर्यं दानादिशायः ।  
 अन्ते च भोजयेद्विप्रान् दक्षिणाभिश्च सारयेत् ॥३६७  
 एवं संपूज्य देवरां कार्तिके प्रभुसौदिभिः ।  
 पुण्यं प्राप्यानघो भूया विष्णुसौमं मदीयते ॥३६८  
 दशमीमिश्रितां त्यक्त्वा वैशाखात्तृतीयं ।  
 ह्योष्यैकादशीं शुद्धां द्वादशीं चाऽपि वैष्णवः ॥३६९  
 द्वादश्याऽऽमलघ्या नद्यां तु विधानेन हरिं यजेत् ।  
 सुगन्धकुपुमैः प्रैकचरैश्च मयैशः ॥३७०  
 रात्रौ जागरणं कुर्यात् पुराणं मंहितां पठेत् ।  
 जागरेऽस्मिन्नशतश्रेद्भानास्तीर्थं वैष्णवः ॥३७१  
 पुरतो वामुदेवस्य भूमौ स्वप्यात्ममाहितः ।  
 ततः प्रभातसमये तु न्यसोमिश्रितैर्जलेः ॥३७२  
 द्वादशा सन्तर्प्य देवरां तुल्यम्या मूलमन्त्रतः ।  
 द्वयेन वा विष्णुसूक्तैः कुर्यात् पुष्पाञ्जलीस्ततः ॥३७३  
 तथैव जुहुयादाज्यं मन्त्रेणैव शतं ततः ।  
 पायसान्नं निवेदयेद्वा द्वादश्यान् भोजयेत्ततः ॥३७४

ऽध्यायः ] भगवन्नित्यनैमित्तिकसमाराधनविधिचर्चनम् । ११७

ध्यायन् कमलपत्राक्षं स्वयं भुञ्जीत वाम्यतः ।  
अहं शेषं समानीय पुराणं वाचयन् बुधः ॥३४६  
सायाह्ने समनुप्राप्ते दोलाया पूजयेद्भरिम् ।  
अभ्यर्च्य गन्धपुष्पाद्यैर्भक्ष्यैर्नानाविधैरपि ॥३४७  
ब्राह्मणस्य तु सूक्तैश्च शनैर्दाला प्रचालयेत् ।  
इतिहासपुराणाभ्यां गीतवाद्यैः प्रचन्धकैः ॥३४८  
एवं संपूजयेद्देवं तस्या निशि समाहितः ।  
मध्याह्ने पूजयेद्विष्णुं धैष्णवेन समाहितः ॥३४९  
चम्पकैः शतपत्रैश्च करवीरैः सितैरपि ।  
धैष्णवेनैव मन्त्रेण पूजयेत्कमलापतिम् ॥३५०  
नकरीन्द्रेति सूक्तेन दद्यात् पुष्पाञ्जलिं हरेः ।  
मन्त्रेणाष्टोत्तरशतं दद्यात् पुष्पाणि भक्तितः ॥३५१  
तथैव होमं कुर्वीत तिलैर्ग्रीहिभिरेव वा ।  
सुद्ध्यन्नं फलयुतं नैवेद्यं विनिवेदयत् ॥३५२  
दीपैर्नीराजनं कृत्वा धैष्णवान् भोजयेत्ततः ।  
मन्दशारे तु सायाह्ने तायत्सम्यगुपोषितः ॥३५३  
तिलैः स्नात्वा विधानेन सन्तर्प्य च सनातनम् ।  
नृसिंहवपुषं देवं पूजयेत्तद्विधानतः ॥३५४  
मन्त्रराजेन गायत्र्या मूलमन्त्रेण वा यजेत् ।  
अखण्डविल्वपत्रैश्च जातिकुन्दैश्च यूथिकैः ॥३५५  
छन्नं पञ्चोशना शान्त्याः त्वमग्ने ! शुभिरीति च ।  
दद्यात् पुष्पाञ्जलिं भक्त्या मन्त्रेणैव शतं यथा ॥३५६

त्वं सोम इति सूक्तेन प्रत्यृच कुमुमैयजेत् ।  
 पश्चाद्धोमं प्रकुर्वीत पायसान्नं सशर्करम् ॥३६८  
 मन्त्रेणाष्टोत्तरशतं सूक्तेन प्रत्यृचं तथा ।  
 अग्निसोमानुवाकेन समिद्धि पिप्पलैर्यजेत् ॥३६९  
 सहस्रनामभिस्तुत्वा नमस्कृत्वा जनार्दनम् ।  
 वैष्णवान् भोजयेत्पश्चात्पायमान्नेन शक्तित ॥३७०  
 स्वयं भुक्त्वा हविः शेषं शयीत नियतेन्द्रियः ।  
 एषं संपूज्य देवेशं पौर्णमास्यां जनार्दनम् ॥३७१  
 सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णु सायुज्यमाप्नुयात् ।  
 मघायामपि पूर्वाह्ने स्नात्वा कृष्ण जलैर्द्विजः ॥३७२  
 सन्तर्प्य मूलमन्त्रेण तिलमिश्रितवारिभिः ।  
 तर्पयित्वा पितृन्देवानर्चयेदच्युतं ततः ॥३७३  
 कृष्णैश्च तुलसीपद्मैः केतकैः कमलैरपि ।  
 शोणितैः करवीरैश्च जपाकुटजपाटलैः ॥३७४  
 अस्य वामेति सूक्तेन दद्यात् पुष्पाञ्जलिं हरेः ।  
 मन्त्रेणाष्टोत्तरशतं कृष्णं श्रीतुलसीदलैः ॥३७५  
 तथैव जुहुयादग्नौ तिलैः कृष्णैः सवर्शरैः ।  
 आज्येन पौरुषं सूक्तं प्रन्यृचं जुहुयात् ततः ॥३७६  
 नारायणानुवाकेन उपस्थाय जनार्दनम् ।  
 सुसंयावैः सौहृदैश्च शाल्यन्नं विनिवेदयेत् ॥३७७  
 वैष्णवान् भोजयेत्पश्चात्स्वयं भुञ्जीत वरग्यतः ।  
 तस्यां रात्रौ जपेन्मन्त्रमच्युतं हरिसन्निधौ ॥३७८



ऽध्यायः ] भगवन्नित्यनैमित्तिकसमासाधनविधिवर्णनम् । ११११

अचेयेद्भूधरं देवं तन्मन्त्रेणैव वैष्णवः ।

दूरादिहेति सूक्तेन दद्यात् पुष्पाञ्जलिं द्विजः ॥३६०

मन्त्रेण च सहस्रं तु शतं वाऽपि यजेत्तदा ।

तिलैश्च जुहुयात्तद्वत् सूक्तेन प्रत्यृचं घृतम् ॥३६१

सूपान्नं कृसरान्नं च भक्ष्यापूपान् घृतप्लुवान् ।

नवेद्यं विनिवेद्येशो ब्राह्मणान् भोजयेत्ततः ॥३६२

एवं संपूज्य देवेशं संक्रान्तौ ग्रहणे हरिम् ।

कल्पकोटिसहस्राणि विष्णुलोके महीयते ॥३६३

वैशाखे पूजयेद्रामं काकुत्स्थं पुरुषोत्तमम् ।

सीतालक्ष्मणसंयुतं मध्याह्ने पूजयेद्विभुम् ॥३६४

पुन्नागकेतकपिदुर्भरुत्पलैः करवीरकैः ।

चापेयैर्बुलैः पूजा पटवर्णेनैव कारयेत् ॥३६५

जातये यातिसूक्तेन कुर्यात् पुष्पाञ्जलिं ततः ।

संक्षेपेण शतश्लोक्या प्रतिश्लोकं यजेत्ततः ॥३६६

पुष्पाञ्जलिं सहस्रं तु मन्त्रेणैव यजेत्ततः ।

त्वमम इति सूक्तेन पायसं जुहुयाद्दद्यात् ॥३६७

पश्चान्मन्त्रेणाऽऽज्यहोमो नैवेद्यं पायसं घृतम् ।

कदलीफलं शर्करा च पानकं च निवेदयेत् ॥३६८

पश्च सप्त त्रयो वाऽपि पूजनीया द्विजोत्तमाः ।

सुहृद्यैरन्नपानाद्यैर्गोहिष्यादिदक्षिणैः ॥३६९

हविष्यान्नं स्वयं मुक्त्वा पठेद्रारामायणं नरः ।

एवं संपूज्य विधिवद्राघवं जानकीयुतम् ॥४००

ऽध्यायः ] भगवन्नित्यनैमित्तिकसमाराधनविधिवर्णनम् । १११३

लोधनीपाजुनैर्नागैः कर्णिकारैः कदम्बकैः ।  
कोविदारैः करवीरैः त्रिल्वेरास्फोटकैरपि ॥४१२  
दशाक्षरेण मन्त्रेण पूजयेत् पुरुषोत्तमम् ।  
ये त्रिशतीति सूक्तेन दद्यात् पुष्पाञ्जलिं ततः ॥४१३  
श्रीकृष्णं तुलसीपत्रैः प्रत्यूचं पूजयेद्विभुम् ।  
श्रीकृष्णाय नम इति सूक्तेनाष्टोत्तरं शतम् ॥४१४  
पूजयित्वाऽथ होमन्तु तिलैः कृष्णैर्घृतान्वितैः ।  
प्रत्यूचं वैष्णवैः सूक्तैः क्षुद्रयात् पुरुषोत्तमम् ॥४१५  
समिद्धिः पिप्पलैश्चापि मन्त्रेणाष्टोत्तरं शतम् ।  
नामभिः केशाद्याद्यश्च चरुं पश्चाद् घृतप्लुतम् ॥४१६  
वैष्णव्या चैव गायत्र्या वृषदास्यं शतं तथा ।  
गुहोदनं सर्पिपाऽक्तं भक्ष्याणि विविधानि च ॥४१७  
क्षीराक्षं शर्करोपेतं नैवेद्यञ्च समर्पयेत् ।  
द्वैष्णवान् भोजयेत्पश्चात् स्वयं भुञ्जीत वाम्यत ॥४१८  
एवमभ्यर्च्य गोविन्दं कृष्णाष्टम्या विधानतः ।  
सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुसायुज्यमाप्नुयात् ॥४१९  
द्वयोरप्यनयोः श्रीशं कूर्मरूपं समर्चयेत् ।  
ससागरां महीं सर्वां लभते नात्र संशयः ॥४२०  
अर्चयेन्मूलमन्त्रेण गन्धपुष्पाक्षतादिभिः ।  
अश्रयित्वा विधानेन हविष्यं व्यञ्जनैर्युतम् ॥४२१  
सुदीर्घयन्त्रजान् सूपघृतमिश्रान् निवेदयेत् ।  
अहं पूर्वति सूक्तेन कुर्यात्पुष्पाञ्जलिं ततः ॥४२२

ऽध्यायः ।] भगवन्नित्यनैमित्तिकसमाराधनविधिवर्णनम् । १११५

षडक्षरेण मन्त्रेण गन्धमाल्यानुलेपनैः ।

अभ्यर्च्य जगतामीशं जपेन्मन्त्रं समाहितः ।

शान्तिं शास्त्रं पुराणञ्च नाम्नां विष्णोः सहस्रकम् ॥४३४

पावमानैर्विष्णुसूक्तैः कुर्यात् पुष्पाञ्जलिं ततः ।

रामायणशतश्लोक्या दद्यात् पुष्पाणि वैष्णवः ॥४३५

सशर्करं पायसान्नं कपिलाघृतसंयुतम् ।

रम्भाफलं पानकञ्च नैवेद्यं विनिवेदयेत् ॥४३६

पीतानि नागपणानि स्निग्धपूगीफलानि च ।

कर्पूरेण च संयुक्तं ताम्बूलञ्च समर्पयेत् ॥४३७

दीपान्नीराजयेद्भक्त्या नमस्कृत्य पुनः पुनः ।

प्रीतये रघुनाथस्य कुर्यादानानि शक्तितः ॥४३८

षडक्षरेण साहस्रं तिलैर्वा पायसेन वा ।

कमलै र्विल्वपत्रै र्वा घृतेन जुहुयात्ततः ॥४३९

अस्य धामेति सूक्तेन समिद्धिः पिप्पलस्य तु ।

वैकुण्ठपार्षदं हुत्वा होमरोपं समापयेत् ॥४४०

रात्रौ जागरणं कुर्यात् द्वित्रियामं समर्चयेत् ।

प्रभाते विमले चापि ततो भरतजन्मानि ॥४४१

तृतीयेऽहनि मध्याह्ने सौमित्रे जन्मवासरे ।

सानुजं जगतामीशमर्चयेत् पूर्ववद् द्विजः ॥४४२

पूजां पुष्पाञ्जलिं होमं जपं ब्राह्मणभोजनम् ।

अविच्छिन्नं तथा कुर्यादग्निहोत्रं त्रिवासरम् ॥४४३

तन्मन्त्रमन्त्ररवाभ्यां माधवं विधिना यजेत् ।  
मण्डकान् क्षीरसंयुक्तान् शाल्यन्नं घृतसंयुतम् ॥४५५  
कृष्णरम्भाफलैर्जुष्टं नैवेद्यं विनिवेदयेत् । -  
अस जीवत्य इत्यादि षट्सूक्तैः कुसुमैर्यजेत् ॥४५६  
मन्त्रेणाष्टोत्तरशतं कोमलैः स्तुलसीदलैः ।  
संपूज्य होमं कुर्वीत साज्येन चरुणा, ततः ॥४५७  
विहीमोतोरित्येतेन सूक्तेन प्रत्यृचं द्विजः । -  
कमलैः बिल्वपत्रैः वा मन्त्रेणाष्टोत्तरं शतम् ॥४५८  
हुत्वाऽथ पौरुषं सूक्तं श्रीसूक्तं जुहुयाद् द्विजः ।  
सहस्रनामभिः स्तुत्वा वैष्णवान् भोजयेत्ततः ॥४५९  
हुतशेषं स्वयं भुज्या भूमौ स्वप्याज्जितेन्द्रियः ।  
एवं संपूज्य देवेशं माधव्यां मधुसूदनः ॥४६०  
सर्वाङ्गं कामानवाप्नोति हरिसायुज्यमाप्नुयात् ।  
वशाख्यां पौर्णमास्यान्तु मध्याह्ने पुरुषोत्तमम् ॥४६१  
अर्घ्येद्रक्तकमलैः रुपलैः पाटलैरपि ।  
ह्रींवरकरवीरैश्च गायत्र्या विष्णुसंज्ञया ॥४६२  
दध्यन्नं फलसंयुक्तं पायसञ्च निवेदयेत् ।  
प्रत्यृचं चेदिवं सूक्तैः प्रत्यृचं जुहुयात्ततः ॥४६३  
सौराष्ट्रे द्वेति सूक्तेन दीपैर्नीराजयेत्ततः ।  
शक्त्या विप्रान् भोजयित्वा पूजयेद्देशिकं तथा ॥४६४  
तस्मिन् सम्पूजितो देवः प्रसन्नस्तत्क्षणाद्भवेत् ।  
शयने भोजयेद्विष्णुं पूजयेच्छङ्खद्वयाऽन्वितः ॥४६५

कुशप्रसूनदूर्वाग्रपुण्डरीककदम्बकैः ।

मूलमन्त्रेण श्रीविष्णुं गायत्र्या च समर्घयेत् ॥४६६

सत्येनोत्तमसूक्तेन ऋग्भिः पुष्पाञ्जलिं यजेत् ।

मन्त्रेणाष्टोत्तरशतं तुलसीपद्मैः स्तथा ॥४६७

पद्माद्धोमं प्रकुर्वीत विष्णुमूक्तं सुपायसम् ।

मन्त्ररत्नेन जुहुयादाज्यमष्टोत्तरं शतम् ॥४६८

सरारकं पायसान्नमपूपान्विनिवेदयेत् ।

विश्वजितेति सूक्तेन कुर्व्यान्नीराजनं सतः ॥४६९

भोजयेद्वैष्णवान् विप्रान् पूजयेच्च विशेषतः ।

सर्वान् कामानवाप्नोति हयमेधायुतं लभेत् ॥४७०

प्राजापत्यर्क्षसंयुक्ता नभः कृष्णाष्टमी यदा ।

नभश्चस्यैव भवेत्सातु जयन्ती परिकीर्तिता ॥४७१

तस्यां जातो जगन्नाथः फेरायः कंसमर्दनः ।

तस्मिन्नुपोष्य विधिवत्सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥४७२

अष्टमी रोहिणीयोगो मुहूर्ते वा दिवानिशम् ।

मुख्यकाल इतिख्यातस्तत्र जातः स्वयं हरिः ।

मासद्वये यद्यलाभे योगे तस्मिन् दिवा निशि ॥४७३

नवमी रोहिणीयोगः कतेव्यो वैष्णवैर्द्विजैः ।

रात्रियोगस्तु बलवान् तस्यां जातो जनार्दनः ॥४७४

तिलेन वै भवान्ते च पारणा यत्र चोच्यते ।

। प्रातरेव हि पारणा ॥४७५

अध्यायः ] भगवन्नित्यनैमित्तिकसमाराधनविधिबर्णनम् । १११६

पूर्वेद्युर्नियमं कुर्व्यादन्तधावनपूर्वकम् ।

प्रातः स्नात्वा विधानेन पूजयेत् कृष्णमन्ययम् ॥४७६

पङ्क्षरेण मन्त्रेण बालकृष्णतनुं हरिम् ।

सुरुष्णतुलसीपत्रैरर्चयेच्छूद्रयाऽन्वितः ॥४७७

दुग्धं क्षीरं शर्कराञ्च नवनीतं निवेदयेत् ।

सहस्रमयुतं घाऽपि जपेन्मन्त्रं पङ्क्षरम् ॥४७८

गवाज्यं जुहुयाद्दहौ कृष्णमन्त्रेण पायसम् ।

सहस्रं शतवारं वा प्रत्यूचं विष्णु सूक्तकैः ॥४७९

हुत्वा सुगन्धिपुष्पाणि सैरेष च समर्चयेत् ।

सहस्रनाम्नां गीतानां पठनं गुरुपूजनम् ॥४८०

वैष्णवान् भोजयेच्छुक्ताया हुतरोषं सकृत्स्वयम् ।

हुत्वा (मुक्ता) कुशोत्तरे स्वप्याद्भूमौ नियमवान् शुचिः ॥४८१

परेऽह्नुपोष्य विधिवत् स्नात्वा नद्यां विधानतः ।

तर्पयित्वा जगन्नाथं पितृन्देवाञ्च तर्पयेत् ॥४८२

पूर्ववत् पूजयित्वेशं अपहोमादिकं चरेत् ॥४८३

अवैष्णवं द्विजं तस्मिन् बाह्याग्नेणापि (न) वार्चयेत् ।

पुराणादिप्रपाठेन रात्रौ जागरणं चरेत् ॥४८४

शीतांशावुदिते स्नात्वा शुक्लाम्बरधरः शुचिः ।

नवो नवो भवतीत्युचाऽर्घ्यं विनिवेदयेत् ॥४८५

अर्चयेन्मातुरुत्सङ्गे स्थितं कृष्णं सनातनम् ।

तुलसीगन्धपुष्पैश्च कस्तूरीचन्द्रचन्दनैः ॥४८६

पञ्चक्षरेण मन्त्रेण भक्त्या सम्पूजयेद्धरिम् ।  
 वसुदेवं नन्दगोपं बलभद्रञ्च रोहिणीम् ॥४८७  
 यशोदा च सुभद्रा च माया दिक्षु प्रपूजयेत् ।  
 प्रह्लादादीन् वैष्णवाञ्च तथा लोकेश्वरानपि ॥४८८  
 धूप दीपञ्च नैवेद्यं ताम्बूलञ्च समर्पयेत् ।  
 अनूत्तमिति सूक्तेन भक्त्या नीराजन तथा ॥४८९  
 शन्न इत्यादिसूक्तैश्च दद्यात् पुष्पाणि वैष्णवः ।  
 दशाक्षरेण मन्त्रेण पूजयेत् पुरुषोत्तमम् ॥४९०  
 सहस्रनामभिः स्तुत्वा शय्यायां विनिवेशयेत् ।  
 गीतं नृत्यञ्च वाद्यञ्च यथा शक्त्या च कारयेत् ॥४९१  
 ततः प्रभ तसमये सन्ध्यामन्वास्य वैष्णवः ।  
 दशाक्षरेण मन्त्रेण तुलसीचन्दनादिभिः ॥४९२  
 सम्पूज्य वैष्णवैः सूक्तैः कुर्यात् पुष्पाञ्जलिं ततः ।  
 मन्त्रेण जुहुयादाज्यं सहस्रं हव्यवाहने ॥४९३  
 ममाम् इति सूक्ताभ्यां जुहुयात्पायसं ततः ।  
 परोमाशेति सूक्तेन चरुं तिलविमिश्रितम् ॥४९४  
 सबन्ध भगवन्मन्त्रैरेकैकामाहुतिं यजेत् ।  
 नामभिः केशवाद्यैश्च तथा सङ्कर्षणादिभिः ॥४९५  
 वैकुण्ठपार्षदं हुत्वा होमशेषं समापयेत् ।  
 ततो मङ्गलार्चिर्गौ यानै र्योक्तैश्च चामरैः ॥४९६  
 लाजैर्हरिद्राचूर्णैश्च गन्धैः पुष्पैः सुगन्धिभिः ।  
 मुदा विकीरयन् सर्वे बालयुद्धाञ्च मण्यमाः ॥४९७

नार्प्यश्च रमणैः साद्धं सुवासिन्यश्च योपितः ।  
 आरोप्य शिविकायान्तु देवकीनन्दनं हरिम् ॥४६८  
 अकर्दमां नदी रम्या तडार्गं वा मनोहरम् ।  
 गच्छेद्युर्पादशैवालजलौकादिविवर्जितम् ॥४६९  
 कुट्यादवभृथं तत्र पावमान्यैः पवित्रकैः ।  
 विष्णुसूक्तैश्च सुस्नात्वा देवान् पितॄंश्च तर्पयेत् ॥४७०  
 विचित्राणि च भक्ष्याणि दद्यात्तत्र शुभाम्बितः ।  
 गृहं गत्वा तथैत्रेशं पूर्वपत्पूजयेद् द्विजः ॥४७१  
 भोजयित्वा ततो विप्रान् दक्षिणाभिश्च तोपयेत् ।  
 हिरण्यवस्त्राभरणैराचार्यं पूजयेत्तु सः ॥४७२  
 स्वयंश्च पारणां कुट्यात् पुत्रयौत्रसमन्वितः ।  
 सायाह्ने समनुप्राप्ते दोलायामर्घयेद्हरिम् ॥४७३  
 चतुः स्तम्भां चतुर्धामवितानाद्यैरलङ्कृताम् ।  
 घूपैर्दोषैश्चैव रम्यां दोलां सम्पूजयेद् द्विजः ॥४७४  
 स्तम्भेषु वंदान् मन्त्राश्च धामस्वभ्यर्च्य कच्छपम् ।  
 पादेष्वशागजान् पीठे सप्तच्छन्दासि चाऽऽस्तरे ॥४७५  
 प्रणवध्वाऽऽतपत्रे तु शेषं केतौ रणेऽथ रम् ।  
 इतिहासपुराणानि सर्वतः परिपूजयेत् ॥४७६  
 तस्या निवेश्य दोलायां वासुदेवं त्रियः पतिम् ।  
 उपचारैर्वर्चयित्वा शनैर्दालाञ्च दोलयेत् ॥४७७  
 वेदाद्यैर्ब्रह्मणस्पत्यैः सूक्तैरङ्गैर्द्विजोत्तमः ।  
 सामगानैः प्रबन्धैश्च गायन् कृष्णं जगद्गुरुम् ॥४७८



पटक्षरेण मन्त्रेण भक्त्या सम्पूजयेद्धरिम् ।  
 वसुदेवं नन्दगोपं बलभद्रञ्च रोहिणीम् ॥४८७  
 यशोदा च सुभद्रां च मायां दिक्षु प्रपूजयेत् ।  
 ब्रह्मादादीन् वैष्णवांश्च तथा लोकेश्वरानपि ॥४८८  
 धूपं दीपञ्च नैवेद्यं ताम्बूलञ्च समर्पयेत् ।  
 अनूतमिति सूक्तेन भक्त्या नीराजनं तथा ॥४८९  
 शन्न इत्यादिमूक्तैश्च दद्यात् पुष्पाणि वैष्णवः ।  
 दशाक्षरेण मन्त्रेण पूजयेत् पुरुषोत्तमम् ॥४९०  
 सहस्रनामभिः स्तुत्वा शय्यायां विनिवेशयेत् ।  
 गीतं नृत्यञ्च वाद्यञ्च यथा शक्त्या च कारयेत् ॥४९१  
 ततः प्रभतसमये सन्ध्यामन्यास्य वैष्णवः ।  
 दशाक्षरेण मन्त्रेण तुलसीचन्दनादिभिः ॥४९२  
 सम्पूज्य वैष्णवैः सूक्तैः कुर्यात् पुष्पाञ्जलिं ततः ।  
 मन्त्रेण जुहुयादाज्यं सहस्रं हव्यवाहने ॥४९३  
 ममाग्र इति सूक्ताभ्यां जुहुयात्पायसं ततः ।  
 परोमात्रेति सूक्तेन चरुं तिलविमिश्रितम् ॥४९४  
 सवधं भगवन्मन्त्रैरेकैकामाहुतिं यजेत् ।  
 नामभिः केशवाग्रैश्च तथा सङ्कर्षणादिभिः ॥४९५  
 वैतुष्टपार्षदं हुत्वा होमशेषं समापयेत् ।  
 ततो मङ्गलार्चिर्गौ यानै र्योक्तैश्च चामरैः ॥४९६  
 लाजै हस्तिद्राचूर्णैश्च गन्धैः पुष्पैः सुगन्धिभिः ।  
 मुदा विकीरयन् सर्वे बालवृद्धाश्च मध्यमाः ॥४९७

ऽध्यायः ] भगवन्नित्यनैमित्तिकसमाराधनविधिवर्णनम् । ११२१

नार्घ्यश्च रमणैः साद्धं सुवासिन्यश्च योषितः ।

आरोप्य शिविकायान्तु देवकीनन्दनं हरिम् ॥४६८

अकर्दमां नदीं रम्यां तडागं वा मनोहरम् ।

गच्छेयुर्ग्राहशेवालज्जलौकादिविवर्जितम् ॥४६९

कुट्याद्वयभृथं तत्र पायमान्यैः पवित्रकैः ।

विष्णुसूक्तैश्च सुस्नात्वा देवान् पितॄंश्च तर्पयेत् ॥४७०

विचित्राणि च भक्ष्याणि दद्यात्तत्र शुभाम्बितः ।

गृहं गत्वा तथैवेशं पूर्ववत्पूजयेद् द्विजः ॥४७१

भोजयित्वा ततो विप्रान् दक्षिणाभिश्च तोषयेत् ।

हिरण्यवस्त्राभरणैराचार्यं पूजयेत्तु सः ॥४७२

स्वयञ्च पारणां कुर्व्यात् पुत्रपौत्रसमान्वितः ।

सायाह्ने समनुप्राप्ते दोलायामर्चयेद्धरिम् ॥४७३

चतुः स्तम्भां चतुर्धामयितानाद्यैरलङ्कृताम् ।

पूषैर्दीपैश्चैव रम्यां दीलां सम्पूजयेद् द्विजः ॥४७४

स्तम्भेषु वेदान् मन्त्रांश्च धामस्वभ्यर्च्य कच्छपम् ।

पादेष्ववाशागजान् पीठे सप्तच्छन्दासि चाऽऽस्तरे ॥४७५

प्रणवश्चाऽऽतपत्रे तु शेषं केतौ ह्यगेश्वरम् ।

इतिहासपुराणानि सर्वतः परिपूजयेत् ॥४७६

तस्यां निवेश्य दोलाया घासुदेवं श्रियः पतिम् ।

उपचारैरर्चयित्वा शनैर्दोलाञ्च दोलयेत् ॥४७७

वेदाद्यैर्ब्रह्मणस्पत्यैः सूक्तै रङ्गैर्द्विजोत्तमः ।

सामगानैः प्रबन्धैश्च गायन् कृष्णं जगद्गुरुम् ॥४७८

सुवासिन्यो दोलयित्वा वैष्णवान् पूजयेत्ततः ।  
 एवं संपूज्य देवेशं पापैर्मुक्तो हरिं व्रजेत् ॥५०६  
 दोलाया दर्शनं विष्णोर्महापातकनाशमम् ।  
 कोटियागानुजं पुण्यं लभते नात्र संशयः ॥५१०  
 शिवब्रह्मादयो देवा नारदाद्या महर्षयः ।  
 दोलाया दर्शनार्थं ये प्रयान्त्यनुचरः सह ॥५११  
 गन्धर्वाप्सरसः सर्वा विमानस्थाः सकिन्नराः ।  
 गायन्ति सामगानैश्च दोलायमर्चितं हरिम् ॥५१२  
 गवाज्यसंयुतैर्दीपैर्मध्या नीराजनं चरेत् ।  
 मरुत्व इन्द्रसूक्तेन मङ्गलाशीर्भिरेव च ॥५१३  
 ताम्बूलफलपुष्पाद्यैर्वैष्णवान् भोजयेत्ततः ।  
 आशिषोवाचनं कृत्वा नमस्कृत्वा विसर्जयेत् ॥५१४  
 एवं संपूज्य देवेशं जयन्त्या मधुसूदनम् ।  
 सर्वां लोकान् जपेस्वाशु याति विष्णोः परं पदम् ॥५१५  
 मासि भाद्रपदे शुक्ले द्वादश्यां विष्णुर्देवते ।  
 आदित्यामुद्भूद्विष्णुहरेन्द्रो वामनोज्ज्वलः ॥५१६  
 तस्यां स्नानोपवासाद्यमक्षय्यं परिकीर्तितम् ।  
 श्रीकृष्णजन्मवत् सर्वं कुर्यादत्रापि वैष्णवः ॥५१७  
 सर्वान् कामानवाप्नोति विष्णुसायुज्यमाप्नुयात् ॥५१८  
 माघमासे तु सप्तम्या मुदिते चैव भास्करे ।  
 स्नात्वा जयां विधानेन पूजयेत् पुरुषोत्तमम् ॥५१९

रक्तैश्च करवीरैश्च कुमुदेन्दीवरादिभिः ।  
 मन्त्ररत्नेनान्वयित्वा पायसान्नं निवेदयेत् ॥५२०॥  
 यतश्च गोपा इत्यादि दश सूक्तान्यनुकमात् ।  
 पुष्पाणि दद्याद्भक्त्या वै प्रत्यृचं वैष्णवोत्तमः ॥५२१॥  
 सहस्रं शतवारं वा मन्त्रेणापि यजेत्ततः ।  
 पश्चाद्धोमं प्रकुर्यात् तिलैः कृष्णैः सरर्करैः ॥५२२॥  
 वैष्णवैरनुवाकैश्च मन्त्ररत्नेन मन्त्रवित् ।  
 वैकुण्ठपार्यदं हुत्वा शेषं कम्मे समाचरेत् ॥५२३॥  
 नीराजनं ततो दद्यादयं गौरित्यनेन तु ।  
 इति वा इति सूक्तेन उपस्थाय जनार्दनम् ॥५२४॥  
 सहस्रनामभिः स्तुत्या वैष्णवान् भोजयेत्ततः ।  
 गुरुं सम्पूजयेद्भक्त्या भुञ्जीत सद्गविः सकृन् ॥५२५॥  
 अधःशायी ब्रह्मचारी जपेद्वाग्री समाहितः ।  
 एवं सम्पूज्य देवेशं तस्मिन्नहनि वैष्णवः ॥५२६॥  
 त्रिकोटिकुलमुद्धृत्य वैष्णवं यदमाप्नुयाम् ।  
 द्वादश्यामपि तस्यां नै यज्ञबाराहमच्युतम् ॥५२७॥  
 वैष्णव्या चैव गायत्र्या पूजयेत् प्रयतात्मवान् ।  
 महिषाख्यं घृताक्तं वै धूपं दद्यात् प्रयत्नव ॥५२८॥  
 दद्यादष्टाङ्गदीपं च गवाज्येन च वैष्णवः ।  
 सरर्कराज्यं स्तूपान्नं मौदिकान् कृसरं तथा ॥५२९॥  
 इक्षुदण्डानि रम्याणि फलानि च निवेदयेत् ।  
 प्र ते महीति सूक्तेन दद्यात् पुष्पाणि भक्तिमान् ॥५३०॥

सर्वैश्च वैष्णवैः सूक्तैश्चरुणा पायसेन वा ।  
 मधुसूक्तेन होतव्यं गायत्र्या विष्णुसंज्ञया ॥५३१  
 आज्येन वैष्णवैर्मन्त्रैः त्रिशतं त्रिभिरेव तु ।  
 वैकुण्ठपार्षदं हुत्वा होमशेषं समापयेत् ॥५३२  
 भोजयेद् ब्राह्मणान् भक्त्या गुरुं चापि प्रपूजयेत् ।  
 सर्वयज्ञेषु यत्पुण्यं सर्वदानेषु यत्फलम् ॥५३३  
 तत्फलं लभते मर्त्यो विष्णुसायुज्यमाप्नुयात् ।  
 कोट्यब्दस्ये दिनकरे तस्मिन्मासि निरन्तरम् ॥५३४  
 अरुणोदयरेलाया प्रातः स्नानं समाचरेत् ।  
 सर्पयित्वा विधानेन कृत्तकृत्यः समाहितः ॥५३५  
 नारायणं जगन्नाथमर्घ्येद्विधिवद् द्विजः ।  
 पौरुषेण विधानेन मूलमन्त्रेण वा यजेत् ॥५३६  
 शतपत्रैश्च जातीभिस्तुलसीवित्पुष्करैः ।  
 गन्धर्वूपैश्च दीपैश्च नैवेद्यैर्विविधैरपि ॥५३७  
 पायसान्नं शर्करान्नं मुद्गान्नं सघृतं हविः ।  
 सुवासितञ्च दध्यन्नमूपान् मधुमिश्रितान् ॥५३८  
 मोदकान् पृथुकान् लाजान् शण्डुली(सक्तुभिः)चणकानपि ।  
 विविधानि च भक्ष्याणि फलानि च निवेदयेत् ॥५३९  
 वेदपारायणेनैव माममेकं निरन्तरम् ।  
 ऋचां दशसहस्राणि ऋचां पञ्चशतानि च ॥५४०  
 ऋचामशीतिपादश्च पारायणं प्रकीर्तितम् ।  
 वेदपारायणेनैव प्रत्यृचं कुशुमान्यजेत् ॥५४१

अध्यायः ] भगवन्नित्यनैमित्तिकसमाराधनविधानवर्णनम् । ११२५

रात्रौ होमं प्रकुर्वीत तिलैर्ग्रीहिभिरेव वा ।  
सर्ववेदेष्वशक्तस्तु होमकर्मणि वैष्णवः ॥५४२  
वैष्णवेरनुवाकैर्वा प्रत्यहं जुहुयाद् बुधः ।  
यजुषाऽपि तथा साम्नां शक्त्या पुष्पाञ्जलिं चरेत् ॥५४३  
अशक्तो यस्तु वेदेन प्रतियासरमच्युतम् ।  
मूलमन्त्रेण साहस्रं दद्यात् पुष्पाञ्जलिं द्विजः ॥५४४  
तेनैव जुहुयाद्भक्त्या सहस्रं वह्निमण्डले ।  
अथवा रघुनाथस्य चारित्र्येण महात्मनः ॥५४५  
प्रतिक्षोकेन पुष्पाणि दद्यान्मासं निरन्तरम् ।  
अथःशायी ब्रह्मचारी सकृद्भोजी भवेद्द्विजः ॥५४६  
मासान्ते तु विशेषेण पूजयेद् वैष्णवान् द्विजान् ।  
एवमभ्यर्च्य गोविन्दं धनुर्मासे निरन्तरम् ॥५४७  
दिने दिने वैष्णवेष्वा फलं प्राप्नोत्यसंशयः ।  
यं यं कामयते चित्तं तं तमाप्नोति पुरुषः ॥५४८  
महद्भिः पातकैर्मुक्तो विष्णुलोके महीयते ।  
ततोमास्युदिते भानौ मासमेकं निरन्तरम् ॥५४९  
स्नात्वा नद्यां तडागे वा तर्पयेत्पतिमच्युतम् ।  
अर्चयेन्माधवं नित्यं नन्मन्त्रेणैव तत्र वै ॥५५०  
मन्त्ररत्नेन वा नित्यं माधवीचूतचम्पकैः ।  
मण्ड(क)पानि विचित्राणि शर्कराज्ययुतानि च ॥५५१  
शाल्यन्नं दधिसंयुक्तं मोदकांश्च निवेदयेत् ।  
वैष्णवैः पावमानैश्च कुर्यात् पुष्पाञ्जलिं ततः ॥५५२

तिलैश्च जुहुयाद्ब्रह्मै मधुरार्कमभिहितै ।  
 प्रत्यृच पुरुषसूक्तेन श्रीसूक्तेनापि वैष्णव ॥५५३  
 सहस्र मूलमन्त्रेण तन्मन्त्रेणापि वै द्विज ।  
 सहस्र वा शत वाऽपि शक्त्या च जुहुयाद् बुध ॥५५४  
 यज्ञे यज्ञमिति ऋचा दीपान्नीराजयेत्तत ।  
 रात्रौ दोलाचन कुर्याद्वैष्णवैर्द्विजसत्तमै ॥५५५  
 मासान्ते भोजयेद्विप्रान् वासोऽलङ्कारभूषणै ।  
 एव सम्पूजिते तस्मिन् प्रसन्नोऽभूज्जनार्दन ॥५५६  
 ददाति स्वपदं दिव्यं योगिगम्यं सनातनम् ।  
 कालगुन्या पौर्णमास्यां वै उदिते च निशाकरे ॥५५७  
 उपोष्य विधिनर्हति पूजयेद्वैष्णवोत्तम ।  
 तिलैश्च फरवीरैश्च कर्णिकारैश्च पाटलै ॥५५८  
 कुन्दसहस्रकुसुमैर्यजेत् तं कमलापतिम् ।  
 विष्णुसूक्तं प्रत्यृच च चरणाऽज्येन सन्वृत ॥५५९  
 ब्रह्मा देवानामनेन दीपान्नीराजयेत्तत ।  
 प्रसन्नो नित्यमनेन उपस्थाय सनातनम् ।  
 वैष्णवान् भोजयेच्छक्त्या भुञ्जीयाद्वाग्यत रजयम् ॥५६०  
 एव सम्पूज्य देवश तस्यां रात्रौ सनातनम् ।  
 पष्टिर्वर्षसहस्रस्य पूजामाप्नोत्यसशय ॥५६१  
 एव सम्पूजयेद्विष्णु निमित्तेषु विशेषत ।  
 यथाकालं यथावर्णं यथाशक्त्या यथाचलम् ॥५६२  
 यथोक्तपुष्पांशुभिः तु सुलस्या वै समर्चयेत् ।

नैवेद्यस्याप्यलामे तु हविष्यं वा निवेदयेत् ॥५६३  
सूक्तानि वैष्णवान्येन सूक्तालामे यथा जपेत् ।  
एकेन वा पौरुषेण सूक्तेन जुहुवाच्चया ॥५६४  
सर्वत्राऽज्यं प्रशस्तं स्वान्द्रोमद्रव्याद्यलामतः ।  
मन्त्रालामे मूलमन्त्रं सर्वतन्त्रेषु यो यजेत् ॥५६५  
उपस्थानन्तु सर्वत्र तद्विष्णोरिति वा श्रुचा ।  
नीराजनन्तु सर्वत्र भिये जातेत्यनेन वा ॥५६६  
वसत्कालोचितं सर्वं मनसा वाऽपि पूजयेत् ।  
तुलसीमिश्रितं तोयं भक्त्या वाऽपि समर्पयेत् ॥५६७  
सर्वेऽप्ये निमित्तेषु महाभागवतोत्तमान् ।  
सम्पूज्य परिपूर्णत्वमाप्नोत्यत्र न संशयः ॥५६८

इति पृष्ठहारोत्सवृत्तौ विशिष्टपरमधर्मशास्त्रे भगवत्प्रित्यनैमित्तिक-  
समाराधनविधिर्नाम पञ्चमोऽध्यायः ।

॥ पञ्चोऽध्यायः ॥

अथ महापापादिप्रायश्चित्तप्रकरणविधौ ।

प्रथमं भगवतः यात्रोत्सववर्णनम् ।

हारीव उवाच ।

महोत्सवविधिं कुर्यादेवस्य परमात्मनः ॥१

ग्रामार्चायाः प्रकुर्वीत यथोक्तविधिना नृप ! ।

यात्रोत्सवे कृते विष्णोः श्रुतिस्मृत्युक्तमार्गतः ॥२



अनावृष्ट्यग्निदुर्भिक्षभयं नास्त्यत्र किञ्चन ।  
 वारिजं घातजं बाऽग्निसर्पविद्युद्विपत्कृतम् ॥३  
 महारोगग्रहेऽथैवं यद्भयं ग्रामवासिनाम् ।  
 कृते महोत्सवे तत्र भयं नास्ति न संशयः ॥४  
 तस्य दासा भविष्यन्ति नानाजनपदेश्वराः ।  
 सार्वभौमो भवेद्वाजा भक्त्या कृत्वा महोत्सवम् ॥५  
 नवाहिकं च मसाहं पञ्चाहं प्रत्यहं तथा ।  
 सम्यत्सरे ऋतौ मासि पक्षेत् कुर्यात् क्रमेण तु ॥६  
 तस्मिन्नादौ शुभदिने स्तस्तित्राचनपूर्वकम् ।  
 अङ्कुरार्पणमादौ तु गरुत्मत्वेतुमुच्छ्रयेत् ॥७  
 याश्च पढित्योपधयः केतुको वेद इत्यपि ।  
 अश्वत्थारण्यशमीगर्भशुभामरणिमाहरेत् ॥८  
 निर्मथितेति सूक्तेन तथैवासीदमीति च ।  
 आभ्यां च प्रत्यृचं तस्मिन्निध्याधानादि पूर्ववत् ॥९  
 चर्वाङ्ग्यैरथमग्नीति उपस्थायाङ्ग्येतथा ।  
 तदाग्निं संप्रहेत्तावदुत्सवः परिपूर्यते ॥१०  
 दीक्षित स भवेत्तायदाचार्यो विजितेन्द्रियः ।  
 वेदवेदाङ्गविच्छ्रौतस्मार्तकर्मविवानयत् ॥११  
 महाभागवतो विप्रस्तान्त्रिकः सर्वकर्मसु ।  
 लौकिके वा प्रकुर्वीत मथिताग्निर्न चेद्यदि ॥१२  
 आभ्यामेव च सूक्ताभ्यामग्नौ देवं यजेद्बुधः ।  
 प्रातः (स्नात्वा) स्मार्तविधानेन धीतवस्त्रोर्ध्वपुण्ड्रधृत् ॥१३

ऋत्विग्भिर्वाह्यैर्दान्तैर्यागभूमिं विशेद्गुरु ।  
 देवालयस्य मध्ये तु वेदिं रम्यां प्रकल्पयेत् ॥१४  
 अङ्कुरार्पणपात्रैश्च भद्रतुम्भैरलङ्कृताम् ।  
 वितानतुसुमाद्युक्तां कृत्वा तत्र सुखासने ॥१५  
 महोरसयाहं निम्नं च निवेश्यास्मिन् प्रपूजयेत् ।  
 धीभूनिळादिसंयुक्तं नित्यं परिजनैर्दत्तम् ॥१६  
 मन्त्ररत्नविधानेन पूजयित्वा जगद्गुरुम् ।  
 इमे विप्रस्येत्यादिभि स्त्रिभि सुप्तैश्च पूजयेत् ॥१७  
 सुरभीणि च पुष्पाणि प्रत्यृचं रिनिवेदयेत् ।  
 चतुर्विंशु च चत्वारो ब्राह्मणा मन्त्रवित्तमा ॥१८  
 वाराहं नारसिंहं च वामनं राघवं मनुम् ।  
 ईशान्यादिषु चत्वारो विष्णुमन्त्रान् विविशु च ॥१९  
 वेद्या दक्षिणतः कुण्डं (कुम्भ) लक्षणा(द्य)द्वयं च तत्र तु ।  
 हुताशनं प्रतिष्ठाप्य इध्माधानानिकं चरेत् ॥२०  
 सर्वैश्च वैष्णवै सुप्तैश्चरं तिलविमिश्रितम् ।  
 प्रत्यृच जुहुयादहौ मध्याज्यगुडमिश्रितम् ॥२१  
 आज्यं श्रीभूमिसूताभ्यां त्व सोम इति पायसम् ।  
 पूर्वोस्तैर्वैष्णवैर्मन्त्रैस्त्रिभिरेव वा ॥२२  
 प्रत्येकं जुहुयात्पश्चादष्टोत्तरशतं क्रमात् ।  
 वैकुण्ठपार्षदं हुत्वा होमशेषं समापयेत् ॥२३  
 सुदध्यन्नं फलयुतं पानकञ्च निवेदयेत् ।  
 ताम्बूलञ्च समर्प्याथ ऋत्विजश्चापि पूजयेत् ॥२४

ततः स्यन्दनमानीय पताकाच्छत्रसंयुतम् ।  
 श्वेतैः सलक्षणैरुह्ययानमश्वैः प्रकल्पितैः ॥२५  
 वस्त्रपुष्पमणिस्वर्णभूषितं तत्र चित्रितम् ।  
 तस्मिन् मृदुतरश्मद्वर्णपर्यङ्कं स्थाप्य देशिकः ॥२६  
 तस्मिन्निवेश्य देवेशं देवीभ्या सहितं हरिम् ।  
 अर्घयेद् गन्धपुष्पाद्यैर्धूपदीपादिभिस्तथा ॥२७  
 रथचक्रेषु वेदांश्च धर्मादीनपि पूजयेत् ।  
 आधारशक्तिमाधारे ईपादण्डे पुराणकम् ॥२८  
 छन्दांसि कूवरे साम पर्यङ्के भुजगाधिपम् ।  
 ह्येषु चतुरो मन्त्रान् योक्त्रेष्वङ्गानि पट् च वै ॥२९  
 यजे पताकराजानं छत्रेऽजन्तं श्वराणि तु ।  
 तालवृन्ते चामरे च अक्षराणि च पूजयेत् ॥३०  
 अभ्यर्चयन् रथं दिव्यं पश्चात् संपूजयेद्धरिम् ।  
 दिक्पालावरणांश्चैव मर्चयेद्दिक्षु सर्वतः ॥३१  
 जीमूतस्येति सूक्तेन तत्र पुष्पाञ्जलिं चरेत् ।  
 मरुत्वानिन्द्रेति सूक्तेन कृत्वा नीराजनं ततः ॥३२  
 घनस्पतीति सूक्तेन धादयेत्पटहादिकम् ।  
 गीतैर्नृत्यैश्च चादिगैः पुण्यस्तोत्रैर्मनोहरैः ॥३३  
 ह्ययैर्गजैः स्यन्दनैश्च परितस्तर्पयेत्प्रभुम् ।  
 ऋत्विजः पुरतो वेदानङ्गानि च जपेत्तदा ॥३४  
 गायेत् सामानि भषया वै पुरतः पार्श्वतो हरेः ।  
 कुङ्कुमैः कुसुमैर्लज्जैर्विकिरन्चै समन्ततः ॥३५

स्वलङ्कृतेषु विधिषु पर्यटन् सेवयेत्प्रभुम् ।  
 गृहद्वारेषु मार्गेषु मङ्ग्यैरिष्टुभिरेव च ॥३६  
 कुसुमैर्धूपदीपैश्च ताम्बूलैश्चापि सेवेत् ।  
 एवं निषेव्य देवेश पुनर्गेहं निवेशयेत् ॥३७  
 तमभि प्रगायतेति जपन् सूक्तं निवेशयेत् ।  
 प्रसन्नाज मित्यनेन दीपान्नीराजयेत्ततः ॥३८  
 पीठे निवेश्य देवेशमुपचारान् समर्पयेत् ।  
 वयमुपेत्य ध्यायेम आशिषो वाचनं चरेत् ॥३९  
 अनेन विधिना कुर्यादुत्सवं प्रतिवासरम् ।  
 अपेक्षामैस्तथा दानैर्विप्राणां भोजनैरपि ॥४०  
 समाप्ते चोत्सवे विष्णो कुर्यादवभृथं शुभम् ।  
 नदीं स्नातं तडागं वा देवेन सहितो व्रजेत् ॥४१  
 स्यन्दनादिषु यानेषु स्थिता नार्यं स्वलङ्कृता ।  
 पुरुषाश्च हरिद्राश्च चूर्णादीन् विकिरन्मथ ॥४२  
 कुर्यादवभृथं तत्र विशिष्टैर्ग्राहणं सह ।  
 वासुदेवोत्सवे स्नानमश्वमेधफलं लभेत् ॥४३  
 स्नात्वा सन्तर्प्य देवादीन् प्रविश्य हरिमन्दिरम् ।  
 यजेतावभृथेष्टिश्च अस्य वामेति सूक्ततः ॥४४  
 चरुमाज्यं तिलैर्वापि अनुवाकैश्च वैष्णवैः ।  
 एव हुत्वावभृथेष्टिं यै वैष्णवान् भोजयेत्ततः ॥४५  
 गुरुश्च ऋत्विजश्चैव पूजयेद्भक्तितः स्ततः ।  
 पिबासोमेत्यध्यायेन कुर्यात् स्वस्त्ययनं हरे ॥४६

इच्छन्ति त्वेत्य ध्यानेन प्रत्यृचश्च द्वयेन च ।  
 अष्टोत्तरशतं जुहुयात्कुसुमैरेव वैष्णवः ॥४७  
 हिरण्यगर्भसुतेन तथैवाऽऽज्यं द्विजोत्तमः ।  
 पुनरेव तु होतव्यं हुत्वा वैकुण्ठपार्षदम् ॥४८  
 होमशेषं समाप्याथ वैष्णवान् भोजयेदपि ।  
 सर्वयज्ञसमाप्तौ तु पुष्पयागं समाचरेत् ॥४९  
 सर्वं सम्पूर्णतामेति परितुष्टो जनार्दनः ।  
 एषं महोत्सवं कुर्यात्प्रत्यहं परमात्मनः ॥५०  
 अथ निस्थोत्सवे पूजा होमश्चात्र विधीयते ।  
 शिविकायां निरस्येशं पूजयित्वा विधानतः ॥५१  
 तत्र चामरवादित्रभृद्भारै रतालवृन्तकैः ।  
 दीपिकाभि रनेकाभिर्दुर्वांपकुमुमाक्षतैः ॥५२  
 फलमोदकहस्ताभिर्नारीभिः समलङ्कृतम् ।  
 देवस्याऽऽयतनं रम्यं त्रिः प्रदक्षिणमाचरेत् ॥५३  
 तत्तन्मन्त्रान् जपेद्दिक्षु सर्वासु द्विजपुङ्गवाः ।  
 बलिश्च निक्षिपेतासु देवानुद्दिश्य पूर्वतः ॥५४  
 प्राचीं विश्वजिते सूक्त मग्ने तव अनन्तरम् ।  
 याम्ये परे इमां सन्तु मोषुणस्तु तदन्तरम् ॥५५  
 यषिद्वेति प्रतीच्यान्तु विहिहोत्येत्यनन्तरम् ।  
 स सोम इति सौम्यान्तु कद्रुदायेत्यनन्तरम् ॥५६  
 प्रजापतिं तथा चोर्द्ध मघश्च पृथिवीं क्षिपेत् ।  
 एवं दिक्षु बलिं दत्त्वा परिणीय जनार्दनम् ॥५७

स्तुतिभिः पुष्कलाभिश्च भवनं सम्प्रवेशयेत् ।  
 पीठे निवेश्य देवेशं पूजयित्वा विधानतः ॥५८  
 विहिसोतादि सूक्तेन दद्यात् पुष्पाणि शार्ङ्गिणे ।  
 नीराजनं ततो दद्यात् ध्रुवसूक्तेन वैष्णवः ॥५९  
 शाययित्वा च शय्याया दद्यात् पुष्पाणि मन्त्रतः ।  
 इमं महेति सूक्ताभ्यां पूजयेत् विष्णुमन्ययम् ॥६०  
 सौदशनेन मन्त्रेण रक्षां कुर्यात्समन्ततः ॥६१  
 एयं नित्योत्सवं कुर्याद्वात्रौ चाहनि सर्वदा ।  
 गुरुणामन्त्यदिषसे भगवज्जन्मवासरे ॥६२  
 कार्तिक्यां श्रावणे वाऽपि कुर्यादिष्टिश्च वैष्णवीम् ।  
 उपोष्य पूर्वदिषसे दीक्षित सुसमाहितः ॥६३  
 स्वस्तिराचनपूर्वेण कारयेद्दुरार्षणम् ।  
 नद्यां स्नात्वा च ऋत्विग्भिश्चतुर्भिर्वेदपारगैः ॥६४  
 पौरुषेण विधानेन पूजयेत् पुरुषोत्तमम् ।  
 गन्धैर्नाम्नाविधैः पुष्पैर्धूपैर्दीपैर्निवेदनैः ॥६५  
 फलैश्च भक्ष्यभोज्यैश्च ताम्बूलाद्यैः प्रपूजयेत् ।  
 अर्घ्याद्यैरुपचारैस्तु सूक्तान्ते पूजयेद्भरिम् ॥६६  
 अध्यान्ते मण्डलान्ते नैवेद्यैर्विविधैरपि ।  
 पूजयित्वा हरिं भक्त्या वैष्णवान् भोजयेत्तथा ॥६७  
 आज्येन चरुणा वाऽपि तिलैः पद्मैरथापि वा ।  
 समिद्धिर्बिल्वपत्रैर्वा होमं कुर्यात् वैष्णवः ॥६८

यज्ञरूपं हरिं ध्यायन् प्रत्यृचं वेदसहिताम् ।  
 होम समाप्यते यावत्तारद्वै दीक्षितो भवेत् ॥६६  
 जुहुयाद्वै गार्हपत्यो सोऽग्निमभ्यर्च्य भूपते ।।  
 अग्निरक्षणमप्युक्तं यावदिष्टि समाप्यते ॥७०  
 विशिष्टान् वैष्णवान् विप्रान् भोजयेत्प्रतिवासरम् ।  
 ऋत्विजश्च पठेत्तावच्चतुर्मन्त्रान् समाहित ॥७१  
 यजेद्वयमृथेष्टि च पाथमान्यैश्च वैष्णवैः ।  
 अन्ते सपूजयेद्विप्रान् वासोऽल्लङ्घ्यारभूपणैः ॥७२  
 ऋत्विजश्च गुरु वैष पूजयेत् विशेषतः ।  
 एषमिष्टिन्तु य कुर्याद्वैष्णवीं वैष्णवोत्तम ॥७३  
 ऋतूनां दशकोऽग्नीनां फल प्राप्नोत्यसंशयः ।  
 यस्मिन्देशे वैष्णवेष्ट्या पूजितो मधुसूदन ॥७४  
 दुर्भिक्षरोगाग्निभय तस्मिन् नास्ति न संशयः ।  
 अशक्त सर्वदेवेन कर्तुमिष्टि च वैष्णवीम् ॥७५  
 सर्वैश्च वैष्णवैः सूक्तैर्जुहुयात्प्रत्यृच इवि ।  
 तैरेव पुष्पाञ्जलिं च कुर्यादिष्ट्या प्रपूर्त्तये ॥७६  
 अथवा मूलमन्त्रं तु लक्षं जप्त्वा हुताशने ।  
 अयुतं जुहुयात्तद्वत्पुष्पाणि च सनातने ॥७७  
 इष्टि सपूर्णता याति सर्वदेवा सदक्षिणाः ।  
 एवमिष्टिं प्रजुह्वीत प्रत्यङ्ग वैष्णवोत्तम ॥७८  
 तुष्ट्यर्थं वामुदेवस्य वंशस्थोऽजीवनाय च ।  
 वृष्ट्यर्थमपि लोकस्थ देवतानां हिताय च ॥७९

पिता वा यदि वा माता भ्राता वाऽन्ये सुहृज्जनाः ।  
 यदि पञ्चत्पमापन्नाः कथं कुर्याद् द्विजोत्तमः ॥७६  
 कनिष्ठवर्जमेवात्र वपनं मुनिभिः स्मृतम् ।  
 स्नात्वाऽऽचम्य विधानेन कारयेत् पूजनं हरेः ।  
 रङ्गयल्यादिभि स्तत्र कुर्यात् सर्वत्र मङ्गलम् ॥८०  
 रोदनं वर्जयित्वैव गोमयेन शुचि स्नानम् ।  
 विलिप्य मण्डले तत्र धान्यस्योपर्युलूखलम् ॥८१  
 कलशास्तु चतुर्दिक्षु तण्डुलोपरि निक्षिपेत् ।  
 हिरण्यपञ्चगव्यानि पञ्चत्यक्पद्मवान् न्यसेत् ॥८२  
 घाससा तन्तुना वाऽपि वेष्टयेत् त्रिः प्रदक्षिणम् ।  
 बलूखले वासुदेवं कलशेषु क्रमेण च ॥८३  
 प्रद्युम्न मनिरुद्धश्च सङ्कर्षण मघोक्षजम् ।  
 सम्पूज्य गन्धपुष्पाद्यैर्भक्त्या भक्ष्यं निवेदयेत् ॥८४  
 अभ्यर्च्य मुमलं पुष्पैर्गायत्र्या प्रणयेन च ।  
 हरिद्रामवहन्यात्तु परोमात्रेति वै जपन् ॥८५  
 भगवन्मन्दिरे किष्कुं हरिद्राद्यैः प्रपूजयेत् ।  
 पितुः शरीरं विधिवत् स्नापयेत्कलशोदकैः ॥८६  
 तिलैश्च पञ्चगव्यैश्च गायत्र्या वैष्णवेन च ।  
 उद्वर्त्यसर्वकर्मणेति स्नापयेत्पितरं सुतः ॥८७  
 नारायणानुवाकेन चैवं स्नाप्य सतः पितुः ।  
 धौतवस्त्रश्च सम्बेष्ट्य भूपणैर्मूपयेत्ततः ॥८८



गन्धमालौ रत्नकृत्य शुचौ देशे कुशोत्तरे ।  
 तिलांपरि विधायैनं वस्त्रं हित्वाऽन्यत् सुतम् ॥८६  
 धारयेदुत्तरीये द्वे याज्जकर्म समाप्यते ।  
 हृत्प्रेयोपासनं तस्य आर्द्रयक्ष्णीयकाप्लवे ॥८७  
 शिविषां धारयित्वाऽथ धन्वमूल्यादिभि शुभाम् ।  
 तस्मिन्निवेश्य सं प्रेतं बाह्वकान्तरयेत्तत् ॥८८  
 स्वयं यत्पुत्रवानेय पूजयेन् स्वर्णदक्षिणै ।  
 बहेयुस्तेऽपि भक्त्या सं पठन् विष्णुस्तवान् मुदा ॥८९  
 हरिद्रालाजपुष्पाणि विकिरन् वैष्णवा मुदा ।  
 धादिप्रनृत्यगीतान् प्रजेषु धीर्तपन् हरिम् ।  
 हुताग्निममृतं पृथ्वा गच्छेयुस्तस्य धान्धवा ॥९०  
 बाह्वकानामलाभे तु शवटे गोशृषान्विते ।  
 निक्षय शिविषां रम्यां प्रजयुर्नगराद्धदि ॥९१  
 दक्षिणेन गृहं शूद्र पुरद्वारेण निर्हरेत् ।  
 पश्चिमोत्तरपूर्वेषु यथासद्व्यं द्विजातयः ॥९२  
 प्राग्द्वारं सर्ववर्णानां न निषिद्धं कदापन ।  
 गन्धा शुभनरं देशं रम्यं शुभजलान्वितम् ॥९३  
 यत्तदृथममारीणं ममेव्यादिविर्वाजितम् ।  
 ग्राह्यं तत्र पुण्ड्रं तु निम्नं दन्तप्रथं तदा ।  
 द्वाभ्यान्निभिरां विस्तारं चतुरायनमेव च ॥९४  
 सत संमाजनं कृत्वा गोमयान्वितवारिणा ।  
 सम्प्रोक्ष्य यक्षिणे पाण्डे स्मितिं युर्याद्यथाविधि ॥९५

आस्तीर्य दक्षिणामेयमेणाजिन मनुत्तमम् ।  
 तस्मिन्नास्तीर्य्ये दर्भास्तु विकीर्य्य च तिलांस्तथा ॥६८  
 तस्मिन्निवेश्य तं देवं (प्रेतं) घृताक्तं नववस्त्रम् ।  
 ईषद्भौतं नवं श्वेतं सदशं यन्न धारितम् ॥६९  
 अहत्तं तद्विजानीयाद्देवं पित्र्ये च कर्मणि ।  
 परिपिब्य चित्तिं पश्चादापोऽप्यस्मानितीत्युच्यते ॥१००  
 परित्तोर्य्य शुभैर्देभिरपसव्येन सव्यतः ।  
 वरस्याग्निं निधायास्य पात्रासादानमाचरेत् ॥१०१  
 प्रोक्षणं चमसाज्येन चरुमिध्मस्रुषौ तथा ।  
 आसाद्योक्तविधानेन इध्माधानान्तमाचरेत् ॥१०२  
 श्वगृह्योक्तविधानेन हुत्रा सर्वमशेषतः ।  
 पश्चादाज्ययुतं हव्यं जुहुयादुपवीतवान् ॥१०३  
 सोमानमित्योदनेन प्रत्यर्चं तत्त आज्यतः ।  
 तं महेन्द्रेति सूक्तेन हुत्रा प्रत्यर्चमेव च ॥१०४  
 एष इत्यनुषाकाभ्यां पुनर्दाज्यं यजेत्ततः ।  
 सर्वैश्च वैष्णवैर्मन्त्रैः पृथगष्टोत्तरं शतम् ॥१०५  
 तिलैश्च जुहुयात्पादमष्टाविंशतिमेव वा ।  
 एकैकामाहुतिं पश्चाद्वैकुण्ठपार्षदं यजेत् ॥१०६  
 ब्रह्ममेध इति प्रोक्तं मुनिभिर्ब्रह्मतत्परैः ।  
 महाभागवतानां वै कृतव्यमिदमुत्तमम् ॥१०७  
 केशवार्पितसर्वाङ्गं शशिभं मङ्गलाद्वयम् ।  
 न वृथा दापयेद्विद्वान् ब्रह्ममेधविधिं विना ॥१०८

परमावगतेनापि कर्तव्यं हि द्विजन्मनः ।  
 द्रव्यालाभेऽपि होतव्यं यज्ञियैश्च प्रसूनकैः ॥१०६  
 शूद्रस्यापि विशिष्टस्य परमैकान्तिनस्तथा ।  
 स्वाहाकारं च वेदं च दित्वा पुण्यैर्यजेच्छ्रमैः ॥११०  
 तूष्णोमद्भिः परिषिष्य परिस्तोर्यं कुरोस्तिलैः ।  
 नामभिः केशवाद्यैश्च तथा सङ्कुर्वगादिभिः ॥१११  
 मत्स्यकूर्मादिभिश्चैव वेदार्थोत्तप्रयन्धकैः ।  
 नमोज्तमेव जुहुयात् स्वाहाकारं वियर्जयेत् ॥११२  
 जमन्त्रकं प्रकुरीत शूद्रः सवेमरोपतः ।  
 दग्ध्वा शरीरं विधियद्वृण्वस्य महात्मनः ॥११३  
 यन्मरणं तदयमृथमिति मया विचक्षणः ।  
 दानार्थं पुण्यसलिलं व्रजेद्वागवतैः सह ॥११४  
 अनुलिप्य घृतं सर्वं गोमयं चा तिलैः सह ।  
 दूर्वाप्रैरक्षत्रैर्लाजैः दानं कुर्यात् मद्गलम् ॥११५  
 स्पृष्टोऽपि विधानेन तस्य पुत्राः स्वर्गो व्रजाः ।  
 पिण्डोदरप्रदानार्थं सर्वगन्धोर्ध्वं देहिक्म् ॥११६  
 निर्वृत्य विधिना धर्मं मामान्येनाशरोपतः ।  
 विरिष्टं परमं धर्मं नारायणवलिं ततः ॥११७  
 प्रकुर्याद्वैष्णवैः साद्धं यथाशाम्न मतन्द्रितः ।  
 निम व्रजेत् पूर्वेषु ब्राह्मणान् वैष्णवान् शुभान् ॥११८  
 चतुर्विंशानिसंख्यावान् महाभागवतोत्तमः ।  
 केशवादीन् समुद्दिश्य चतुर्विंशतिं वैष्णवान् ॥११९

ऽध्यायः ] वैष्णवेष्टिक्रियातश्चाद्धपर्यन्तविधिवर्णनम् । ११३६

रात्रौ निमन्त्र्य सम्पूज्य तैः साद्धं चिजितेन्द्रियः ।  
प्रातरुत्थाय तैर्गत्वा नदी पुण्यजलान्विताम् ॥१२०  
धात्रीफलानुलिप्ताङ्गो निमज्ज्य विमले जले ।  
जपन् वै वैष्णवान् सूक्तान् स्नानं कुर्वीत वै द्विजः ॥१२१  
वैकुण्ठतर्पणे कुर्यात् कुसुमैः सतिलाक्षतः ।  
गृहं गत्वाऽर्चयेद्देवं सर्वारवरणसंयुतम् ॥१२२  
सुगन्धपुष्पैर्विविधैर्गन्धैश्च दीपकैः ।  
नैवेद्यैर्भक्ष्यभोज्यैश्च फलैर्नाराज्जनैरपि ॥१२३  
अर्चयित्वा विधानेन मूलमन्त्रेण वैष्णवः ।  
पुरतोर्जिं प्रतिष्ठाप्य इष्माधानं समाचरेत् ॥१२४  
चरुं सशर्कराज्यन्तु जुहुयाद्ब्रह्मिण्डले ।  
प्रत्युचं वैष्णवैः सूक्तैः केशवाद्यैश्च नामभिः ॥१२५  
हुत्वाऽथ वैष्णवैर्मन्त्रैः पृथगष्टोत्तरं शतम् ।  
गवाज्येनैव जुहुयाच्चतुर्भिर्वैष्णवोत्तमः ॥१२६  
वैकुण्ठपार्षदं हुत्वा होमशेषं समापयेत् ।  
अग्नेरुत्तरभागेन गोमयेनानुलिय च ॥१२७  
आस्तीर्य दर्भान् प्रागग्रान् चतुर्विंशतिसंख्यया ।  
उद्वप्रावणिकेनैव केशवादिक्रमेण ह्यु ॥१२८  
अभ्यर्च्य गन्धपुष्पाद्यैस्तत्तन्मन्त्रैः पृथक् पृथक् ।  
मध्याह्न्यतिलमिश्रेण चरुणा पायसेन वा ॥१२९  
कुशेषु तेषु दद्यात्तु पिण्डान् तीर्थं विधानतः ।  
स्वाहाकारेण मनसा केशवादीन् क्रमेण वै ॥१३०

दद्यात् पिण्डान् समभ्यर्च्य गन्धपुष्पाक्षतोदकैः ।  
 नित्यमभ्यर्च्य मुक्तेभ्यो वैष्णवेभ्यस्तथैव च ॥१३१  
 दद्यान् पिण्डत्रयं चैव तेषां दक्षिणतः क्रमात् ।  
 विष्णोर्नुकेति सूक्तेन उपस्थानजपं तथा ॥१३२  
 प्रदक्षिणे नमस्कारं कृत्वा भक्तयाऽथ वैष्णवः ।  
 पिण्डान् सलिले दत्त्वा स्नात्वा संपूज्य केशवम् ॥१३३  
 प्राक्षिणान् भोजयेत्स्नानपादप्रक्षालनादिभिः ।  
 अर्घ्याद्यैर्गन्धपुष्पाद्यैर्घासोज्ज्वलभूषणैः ॥१३४  
 पैरादीन् समुद्दिश्य नित्यान् मुक्तांश्च वैष्णवान् ।  
 सम्पूज्य विधिवद्भक्त्या महाभागवतोत्तमान् ॥१३५  
 पायसं मगुडं भाज्यं शुद्धान्नं पानकं फलैः ।  
 सम्भोज्य विप्रानाचान् नान् प्रणिपत्य विसर्जयेत् ॥१३६  
 दक्षिण्यश्च सद्गुरुवरा भूमौ दद्यान् पुशोत्तरे ।  
 अथ नारायणचलिर्मुनिभिः सम्प्रकीर्तितः ॥१३७  
 स्वगायाना च सर्वेषां कर्तव्यो वैष्णवो नमोः ।

तस्माद्भागवतश्रेष्ठमेकं वाऽपि सुपूजयेत् ।  
 हरिश्च देवताश्चैव पितरश्च महर्षयः ॥१४२  
 तरिमन् सन्पूजिते विप्रे तुष्ट्यन्त्येव न संशयः ।  
 अचेनं मन्त्रपठनं ध्यानं होमश्च घन्दनम् ॥१४३  
 मन्त्रार्थचिन्तनं योगो वैष्णवानाश्च पूजनम् ।  
 प्रसादतीर्थसेवा च नवेज्याकर्म उच्यते ।  
 पञ्चसंस्कारसम्पन्नो नवेज्याकर्मकारकः ॥१४४  
 आकारत्रयसम्पन्नो महाभागवतोत्तमः ।  
 श्राद्धानामयलाभे तु एकं नारायणं वलिम् ॥१४५  
 कुर्यात् परया भक्त्या वैकुण्ठपदमाप्नुयात् ।  
 नित्यश्च प्रतिमासश्च पित्रोः श्राद्धं विधानतः ॥१४६  
 सोदकुम्भं प्रदद्यात्तु याय (व्दान्तिकं) दिष्ट्यान्तिकं द्विजः ।  
 प्रत्यब्दं पार्वणश्राद्धं मातापित्रोर्मृतेऽहनि ॥१४७  
 अर्चयित्वाऽच्युतं भक्त्या पश्चात् कुर्याद्विधानतः ।  
 वैष्णवानेव विप्रास्तु सर्वकर्मसु योजयेत् ॥१४८  
 सर्वत्रावैष्णवान् विप्रान् पतितानिव सन्त्यजेत् ।  
 शङ्खचक्रविहीनास्तु देवतान्तरपूजकाः ।  
 द्वादशीविमुखा विप्राः शैवाश्चावैष्णवाः स्मृताः ॥१४९  
 अवैष्णवानां संसर्गात् पूजनाद्वन्दनादपि ।  
 यजनाभ्यापनात्सद्यो वैष्णवत्वाच्च्युतो भवेन् ॥१५०  
 श्रुतिस्मृत्युदितं धर्मं नातिक्रम्याऽऽचरेत्सदा ।  
 स्वशास्त्रोक्तविधानेन वैकुण्ठार्चनपूर्वकम् ॥१५१

कर्तृत्वफलसङ्क्षिते परित्यज्य ससाचरेत् ।  
 धर्मस्य कर्ता भोक्ता च परमात्मा सनातनः ॥१५२  
 अधर्मं मनसा वाचा कर्मणाऽपि त्यजेत्सदा ।  
 अष्टस्य करणादिप्र कृत्याकरणादपि ॥१५३  
 अनिमग्नहृद्भेन्द्रियाणां सद्यः पतनमृच्छति ।  
 अनिरां मनसा यस्तु पापमेवाभिर्विषयेषु ॥१५४  
 कल्पकोटिसहस्राणि निरयं वै स गच्छति ।  
 यस्तु वाचा यदेत्पाप मसत्यकथनादिकम् ॥१५५  
 कल्पायुतसहस्राणि तिर्यग्योनिषु जायते ।  
 यस्तु यथं ब्रुते नित्यं पापल्यात्वरणादिभिः ॥१५६  
 युगरोटिसहस्राणि विष्ट वा जायते त्रिभिः ।  
 दान्तं शुचिं स्वपत्नीं च सत्यवाग्विजितेन्द्रिय ॥१५७  
 स सात्त्विकः शमयुतः सुरयोनिषु जायते ।  
 धर्मार्थकामनिरतः सदा विषयचापलः ॥१५८  
 स राजसोऽमनुष्येषु भूयो भूयोऽभिजायते ।  
 क्रोधी प्रमादवान् हनो नास्तिको विपरीतशक् ॥१५९  
 मित्रादुक्तामसो याति बहुशो मृगपक्षिताम् ।  
 महापापश्चानिपार्थं पातश्चोपपातश्च ।  
 प्रासङ्गिकं नरः पृथ्वा नरकान् याति दाम्ण्याम् ॥१६०  
 तामिस्रं मन्त्रतामिस्रं महारीरवरीरवौ ।  
 सङ्गतं कालमृशं पुयरोषितरन्दमम् ॥१६१

कुम्भीपाकं लोहशङ्कुस्तथा विष्णुप्रसागरः ।  
 तप्तायसास्त्रयो घोरा स्तप्रायसमयं गृहम् ॥१६२  
 शय्या तप्तायसमयी पानकञ्चामिसन्निभम् ।  
 शूलमुद्गरसङ्घातं काककङ्कोलदंशितम् ॥१६३  
 सिंहाय्याधमहानागभीकरं सम्प्रत्तापनम् ।  
 क्रिमिराशिमहाज्वालं तथा विष्णुभोजनम् ॥१६४  
 असिपत्रवनं घोरं तपाङ्गारमयी नदी ।  
 सञ्जीवनं महाघोरमित्याद्या नरकाः स्मृताः ॥१६५  
 महापातकजैर्घोरैरुपपातकजैरपि ।  
 प्रजतीमान् महाघोरान् दुर्गुत्तरन्वितश्च यः ॥१६६  
 प्रायश्चित्तरूपेत्येनो यदकार्यकृतं महत् ।  
 कामतस्तु कृतं यत्तु मरणात्सिद्धि मृच्छति ॥१६७  
 ब्रह्महत्या सुरापानं विप्रस्वर्णस्य हारणम् ।  
 गुरुदाराभिगमनं तत्संयोगश्च पञ्चमः ।  
 संलापात् स्पर्शनाढासा(सोद)देकशय्यासनाशनात् ॥१६८  
 सौहार्दाद्वीक्षणादानात्तेनैव समतां प्रजेत ।  
 गुर्वाक्षेपस्त्रयीनिन्दा मुहदाम्बध एव च ॥१६९  
 ब्रह्महत्यासमं द्वेयमधीतस्य च नाशनम् ।  
 यागस्थं क्षत्रियं वंश्यं विशिष्टं शूद्रमेव च ॥१७०  
 शरणागतं स्वामिनं च पितरं भ्रातरं गुरुम् ।  
 पुत्रं तपस्विनं शिष्यं भार्यां तेषां च सर्वतः ॥१७१



अन्तर्बन्धो स्त्रियो गाश्च तथाऽऽत्रेयी रजस्वलाः ।  
 देवताप्रतिमां साध्यो बालाश्चैव तपस्विनीम् ॥१७२  
 घातयित्वा समाप्नोति ब्रह्महत्यां न संशयः ।  
 जैह्वयमात्मस्तवं क्रूरं निषिद्धानां च भक्षणम् ॥१७३  
 रजस्वलामुत्सासादः पञ्चयज्ञादिवर्जनम् ।  
 अनृतं घृष्टसाक्षी च महायन्त्रप्रवर्तनम् ॥१७४  
 आभर्षणादि पट्पर्म लाक्षालवणविक्रयः ।  
 पापण्ड्यलजबुहकमेदवाह्यविधिक्रिया ॥१७५  
 यक्षराक्षसभूतानामर्पणं यन्दनं तथा ।  
 वधमेणैवाभ्युपानश्च सुरापस्त्रीनिषेवणम् ॥१७६

मातामही पितामही पितुर्मातुश्च सोदरा ।  
 अन्या मा(ध्रा)तुव्यदुहिता मातुलानी पितृप्यसा ॥१८३  
 जननी भगिनी धात्री दुहिवाऽऽचार्यभामिनी ।  
 सुपाऽऽचार्यसुता चैव सत्पत्नी सुमहावपाः ॥१८४  
 मातुः सपत्नी साधेभौमी दीक्षिता चैव भामिनी ।  
 कपिला महिषी धेनुर्देवताप्रतिमा तथा ॥१८५  
 आसामन्यतमाङ्गच्छेद् गुरुवरूपग उच्यते ।  
 महापातकिनामत्र तत्संयोगिन एव च ॥१८६  
 प्रायश्चित्तं नास्ति तेषा भृगुमिषतनं स्मृतम् ।  
 क्षीनरणाभिगमनं गर्भनं भर्तृहिंसनम् ॥१८७  
 पिरोपपतनीयानि स्त्रोणां पुंसां च यानि तु ।  
 स्त्रीशूद्रपितृशत्रयधो गोबालहननं तथा ॥१८८  
 फलपुष्पद्रुमाणां हि चोपधीनाश्च हिंसनम् ।  
 वापीकूपतडागानां ध्वंसनं ग्रामचातनम् ॥१८९  
 अभिचारादिकं कर्म सस्यध्वंसनमेव च ।  
 उद्यानारामहननं प्रपाविध्वंसनं तथा ॥१९०  
 मातापितृमुक्तयागो दारत्यागस्तथैव च ।  
 स्वाध्यायाग्निगुरुत्यागस्तथा धम्मस्य विक्रयः ॥१९१  
 कन्याया विक्रयश्चैव स्वाध्यायमयविक्रयः ।  
 परस्त्रीगमनञ्चैव परद्रव्यापहारणम् ॥१९२  
 तथा पुंसोऽभिगमनं पशूनां गमनं तथा ।  
 वृषक्षद्रूपशूनाश्च पुस्त्वविध्वंसनं तथा ॥१९३

तच्छ्रावणं पराङ्गं च दिवामैथुनमेव च ।  
 रजस्वला सूत्रिकां च परस्त्रीमभिदर्शनम् ॥२०५  
 उपवासदिने श्राद्धे दिवा पर्वणि मैथुनम् ।  
 शूश्रेष्ठ्यं ह्योनसख्यमुच्छिष्टस्पर्शनादिकम् ॥२०६  
 स्त्रीमिर्ज्ञेयं कामजलं मुक्तकेश्यादिवीक्षणम् ।  
 इत्यादयो ये च दोषाः प्रकीर्णाः परिकीर्तिताः ।  
 महापापं पातकञ्च अनुपातकमेव च ॥२०७  
 उपपापं प्रकीणञ्च पञ्चधा तत्र कीर्तितम् ।  
 महापातकतुल्यानि पापान्युक्तानि यानि तु ॥२०८  
 तानि पातकसंज्ञानि तन्मन्यून मनुपातरम् ।  
 उपपापं ततो न्यूनं ततो ह्यनं प्रकीर्णकम् ॥२०९  
 संसर्गस्तु तथा तेषां प्रसङ्गात्सम्प्रकीर्तितम् ।  
 क्रमेण वक्ष्यते तेषां प्रायश्चित्तं विशुद्धये ॥२१०  
 यो येन सम्बसेतेषां तस्यैव व्रतमाचरेत् ।  
 संसर्गिणस्तु संसर्गस्तत्संसर्गस्तथैव च ॥२११  
 चतुर्थस्य न दोषस्तु पतत्येषु यथाक्रमम् ।  
 प्रकीणकादिदोषाणां प्रासङ्गिकं भविष्यते ॥२१२  
 स्वल्पत्वात्पतनाभावात्तत्संसर्गाङ्गं दुष्यति ।  
 क्षान्तञ्च शुद्धिर्दोषस्य संसर्गात्पतितं विना ॥२१३  
 सात्रिभ्या वाऽपि शुभ्येत कर्तुरेव व्रतक्रिया ।  
 कृते पापे यस्य पुंसः पश्चात्तापोऽनुजायते ॥२१४

प्रयागे सेनुवन्धादिपुण्यक्षेत्रेषु पापकृत् ।  
 सत्र वर्षादि विज्ञाप्य स्वस्वकल्पमशेषतः ॥२२६  
 तत्रस्यैर्वाहणैरेवानुज्ञातो घृतमाचरेत् ।  
 चत्वारो ब्राह्मणाः शिष्टाः पर्षदित्यभिधीयते ॥२२७  
 स रुक्माचरेद्धर्मभेदो वाऽध्यात्मवित्तमः ।  
 जटी धरुलवासाश्च बहिरेष समाविशन् ॥२२८  
 ज्ञानं त्रिषवणं कुर्वन् क्षितिशायी जितेन्द्रियः ।  
 एकभुक्तेन नक्तेन फट्चैरनशनेन च ॥२२९  
 समापयेत्कर्मफलं यथाकालं यथाबलम् ।  
 राममिन्दीवरस्यामं पौलस्त्यन्नमरसमपम् ॥२३०  
 ध्यात्वा पङ्कजरं मन्त्रं नित्यं तायदहर्तिशम् ।  
 एवं द्वादशवर्षाणि पुण्यतीर्थे समाचरेत् ॥२३१  
 मुष्यते ब्रह्महत्याया स्तपसा वीतकल्मषः ।  
 चरितव्रत आयाते यवसं गोषु दापयेत् ॥२३२  
 स रतस्य च सुसंस्काराः कर्तव्या बान्धवैर्जनैः ।  
 विप्रमुख्याय गां दत्त्वा ब्राह्मणान् भोजयेत्ततः ॥२३३  
 प्रारम्भव्रतमध्ये तु यदि पञ्चत्वमाप्नुयात् ।  
 विशुद्धिस्तस्य विज्ञेया शुभाङ्गतिमवाप्नुयात् ॥२३४  
 असंश्रुतस्तु गोषु स्यात् पुनरेव व्रतं चरेत् ।  
 अशक्तस्तु व्रते दद्याद् गोमहसं द्विजन्मनाम् ॥२३५  
 पात्रे धनं वा पर्याप्तं दत्त्वा शुद्धिमवाप्नुयात् ।  
 ब्रह्महत्यासमेष्टेवं कामतो व्रतमाचरेत् ॥२३६

प्रायश्चित्तं तु तस्यैव कर्तव्यं नेतरस्य तु ।  
 जानुतापस्य भवेत्प्रायश्चित्तं यथोदितम् ॥२१५  
 नानुतापस्य पुंसस्तु प्रायश्चित्तं न विद्यते ।  
 नाश्वमेधकलेनापि नानुतापी विशुद्ध्यते ॥२१६  
 तस्माज्जानुतापस्य प्रायश्चित्तं विशुद्ध्यते ।  
 चरेदकामतः कृत्वा पतनीयं महत् पुमान् ॥२१७  
 न कामतश्चरेद्धर्मं भृग्वग्निपतनं विना ।  
 य. कामतो महापापं नरः कुर्यात्कथञ्चन ॥२१८ .  
 न तस्य शुद्धिर्निर्दिष्टा भृग्वग्निपतनं विना ।  
 इत्युक्तं ब्रह्मणा पूर्वं मनुना च महर्षिभिः ॥२१९  
 पातकेषु च सर्वत्र कामतो द्विगुणं व्रतम् ।  
 कामतः पतनीयेषु मरणाच्छुद्धिर्मृच्छति ॥२२०  
 ह्यश्वमेधाय न (न) शुद्धिः सर्वभौमस्य भूपतेः ।  
 कामतस्तत्पुत्रेषु लोके न व्यवहार्यता ॥२२१  
 महत्सु पातिपापेषु प्रदीप्तज्वलनं विशेत् ।  
 प्रायश्चित्तैरपैत्येनो यदकामकृतं भवेत् ॥२२२  
 कामतो व्यवहारस्तु वचनादिह जायते ।  
 इति योगेश्वरेणोक्तं सुपपापेषु तत्र तत् ॥२२३  
 तस्मादकामतः पापं प्रायश्चित्तेन शुष्यति ।  
 तेषां क्रमेण वक्ष्यामि प्रायश्चित्तं विशुद्ध्ये ॥२२४  
 शिरः कपालध्वजवान् भिक्षाशी कर्म वेदयन् ।  
 महाहा द्वादशाब्दानि पुण्यतीर्थं समाविशेत् ॥२२५ .

प्रयागे सेनुवन्धादिपुण्यक्षेत्रेषु पापकृत् ।  
 तत्र वर्षादि विज्ञाप्य स्वस्वकल्पमशेषत ॥२२६  
 तत्रस्यैर्वाक्षणेरेवानुज्ञातो घृतमाचरेत् ।  
 चत्वारो ब्राह्मणा शिष्टा पर्षदित्यभिधीयते ॥२२७  
 त रुक्तामाचरेद्धर्ममेको वाऽध्यात्मवित्तम् ।  
 जटी घटः प्लवासाश्च बहिरेव समाविशन् ॥२२८  
 स्नानं त्रिपवणं कुर्वन् क्षितिशायी जितेन्द्रिय ।  
 एकमुत्तेन नत्तेन फञ्जैरनशनेन च ॥२२९  
 समापयेत्कर्मफलं यथाकालं यथावलम् ।  
 राममिन्द्रीयरक्ष्यामं पौलस्त्यनमरलमयम् ॥२३०  
 ध्यात्वा पङ्कजरं मन्त्रं नित्यं सावदहर्निशम् ।  
 एव द्वादशवर्षाणि पुण्यतीर्थे समाचरेत् ॥२३१  
 मुच्यते ब्रह्महत्याया स्तपसा वीतकटमप ।  
 चरितघ्नत आयात्ते यवस गोषु दापयेत् ॥२३२  
 ■ रसाय च सुसस्कारा कर्तव्या घान्धर्वैर्जनैः ।  
 विप्रमुत्पाय गा दत्वा ब्राह्मणान् भोजयेत्तत ॥२३३  
 प्रारम्भत्रतमध्ये तु यदि पथ्यवमाप्नुयात् ।  
 विशुद्धिस्तस्य विज्ञेया शुभाङ्गतिमवाप्नुयात् ॥२३४  
 असंस्तु गोषु स्यात् पुनरेव वृत्तं चरेत् ।  
 अशक्तस्तु घृते दद्याद् गोसहस्रं द्विजन्मनाम् ॥२३५  
 पात्रे धनं वा पर्याप्तं दत्वा शुद्धिं भवाप्नुयात् ।  
 ब्रह्महत्यासमेष्टेर्व कामतो वृत्तमाचरेत् ॥२३६

मरणाच्छुद्धिमाप्नोति जीवेशदि विशुध्यति ।  
 मद्यस्य प्रतिषिध्यधं घृतं क्षीरमथाम्बु वा ॥२७६  
 प्राशयित्वाऽग्निवर्णन्तु तद्वत्ता शुद्धिमाप्नुयात् ।  
 दत्त्वा सुवर्णं विप्राय गाथ दत्त्वा विशुध्यति ॥२७७  
 क्षत्रविदूश्चूद्रजातीनां सुवर्णं तु यथाक्रमम् ।  
 पादोनमद्दं पादं वा चरेद् व्रतं यथोक्तवत् ॥२७८  
 समेष्वधं प्रकुर्वीत कामतः पूर्णमाचरेत् ।  
 कामतः स्वर्णहारी तु राज्ञे मुसलमर्पयेत् ॥२७९  
 स्वकर्म ख्यापयंश्चैव हतो मुक्तोऽपि वा शुचिः ।  
 राज्ञा यदि विमुक्तः स्यात् पूर्ववद् व्रतमाचरेत् ॥२८०  
 आत्मतुल्यमुवर्णं वा दद्याद्विप्रस्य तुष्टिकृत् ।  
 तत्समव्यनिरिक्तेषु पादमेव चरेद् व्रतम् ॥२८१  
 चान्द्रायणं पराकं वा कुर्यादल्पेषु सर्वशः ।  
 द्रव्यप्रत्यर्पणं कर्तुंस्तन्मूल्यद्रव्यमेव वा ॥२८२  
 व्रतं समाचरेत् कृत्वा यथा परिपदीरितम् ।  
 धलान्छीर्य्येण वा स्नेहाद् व्यवहारादिनाऽपि वा ॥२८३  
 समाहरति यद् द्रव्यं तत्सर्वं स्तेयमुच्यते ।  
 देशं कालं वयः शक्तिं पापञ्चावेक्ष्य सर्वतः ॥२८४  
 प्रायश्चित्तं प्रदातव्यं धर्मविद्धिर्मनीषिभिः ।  
 भगिनीं मातरं पुत्रीं सुपामाचार्ययोपितम् ॥२८५  
 अकामतः मष्टद् गत्वा चरेत् पूर्णव्रतं नरः ।  
 पश्चिमाभिमुखो गङ्गां कालिन्ध्या सह सङ्गताम् ॥२८६

प्रक्षप्रस्त्रवणं पुण्यं द्वारकां सेतुमेव वा ।  
 चन्द्रपुष्करणीं वाऽपि वेणी सागरसङ्गमम् ॥२८७  
 गोदावर्याः शवर्या वा गत्वा तत्राऽऽचरेद् व्रतम् ।  
 पूर्ववत् द्वादशाब्दानि चरेद् द्रुतमनुत्तमम् ॥२८८  
 कृष्णाय नम इत्येव मन्त्रः सर्वापनाशनः ।  
 इममेव जपन्मन्त्रं ध्यात्वा हृदि सनातनम् ॥२८९  
 त्रिसन्ध्यास्वयुतं भक्त्या नित्यं द्वादशवत्सरम् ।  
 चान्द्रायणैः परार्कै र्वा कृच्छ्रै र्वा शमयेत् समाः ॥२९०  
 जीवे श्रीणेऽथवा पुण्यकामी मण्डपपाटलैः ।  
 निवसित्वा चहिर्माता क्षितिशायी जितेन्द्रियः ॥२९१  
 मनः सन्तापकरणमुद्धहेच्छोकमन्ततः ।  
 सदा कृष्ण हरिं ध्यायन् जपन्मन्त्रमनुत्तमम् ॥२९२  
 द्वादशाब्दाद्विमुच्येत पापादस्मात्तपो बलात् ।  
 भगिन्यादिषु योऽपि तु यो गच्छेत्कामतो नरः ॥२९३  
 प्रतप्तासमतोयेन समाश्लिष्य हुताशने ।  
 शयित्वा सुमद्वह्नौ दग्धः शुद्धिमवाप्नुयात् ॥२९४  
 एतासु मतिदुष्टासु कामतो बहुशो व्रजेत् ।  
 एवमपि विशेषीमान् पापं विज्ञाप्य पर्यदि ॥२९५  
 अकामतः सकृद् गत्वा चरेद्धर्मघृतं नरः ।  
 अभ्यासे तु चरेत् पूर्णं कामतः सकृदेव च ॥२९६  
 कामतोऽभ्यासविषये तत्रापि मरणान्तिकम् ।  
 समेष्वथं प्रकुर्वीत सकृदेव हाकामतः ॥२९७ -



कामतस्तु चरेन् पूर्णमभ्यासे मरणान्तिष्ठम् ।  
 अकामतो वाऽभ्यासे तु पूर्णमेव व्रतं चरेत् ॥२६८  
 अन्यास्तपि च नारीषु सकृद्गत्वाऽयकामत ।  
 पादमेवाऽऽचरेद्विद्वानभ्यासे त्वर्थमाचरेत् ॥२६९  
 साधारणामु सर्वासु चरेन्नान्द्रायणव्रतम् ।  
 कामतो द्विगुण तामु अभ्यासे व्रतमाचरेत् ।  
 स्वदारहत्यास्यगमने पुंसि तिर्यक्षु कामत ॥३००  
 चान्द्रायण परार्कं वा प्राजापत्यमथापि वा ।  
 उदक्या सूतिकां गत्या चरेत्सन्तपनं व्रतम् ॥३०१  
 चान्द्रायण तथाऽन्यासु कामतो द्विगुण चरेत् ।  
 अष्टन्याश्च चतुर्दश्यां दिवा पर्वणि मैथुनम् ॥३०२  
 कृत्वा सचैलं स्नात्वा च यारुणीभिश्च मार्जयेत् ।  
 चण्डाली पुश्वली म्लेच्छा पापण्डी पत्तितामपि ॥३०३  
 रजकीं घुङ्गीं व्याधा सर्वां मामान्त्यजां स्त्रिय ।  
 अकामत सकृद् गत्वा चरेन्नान्द्रायणव्रतम् ॥३०४  
 अभ्यासे तु व्रतं पूर्णन्ताभिश्च सह भोजने ।  
 कामतस्तु सकृद् गत्वा भुक्त्वा त्वर्थव्रतं चरेत् ॥३०५  
 तत्र भूयश्चरेन् पूर्णमभ्यासे मरणान्तिष्ठम् ।  
 यो येन सम्बसेदेपान्तत्पापं सोऽपि तत्सम ॥३०६  
 संलापस्पर्शनादेव शय्याशनासनादिभिः ।  
 वदनेवाऽऽचरेत् सर्वं व्रतं द्वादशवार्षिकम् ॥३०७

अकामतश्चरेद्धर्मं पण्मासात्पादमाचरेत् ।  
 मासत्रये द्विपर्यं स्यान्मासमात्रे तु वत्सरम् ॥३०८  
 कामतो द्विगुणं तत्र चरेद्द्विपर्यं व्रतम् ।  
 ऊर्द्धन्तु वत्सरात्पूर्वं द्वैगुण्याद्यमतः क्रमात् ॥३०९  
 कामतो वत्सरादूर्ध्वं द्विगुणव्रतमाचरेत् ।  
 ऊर्ध्वं द्विपर्याप्तस्यापि मरणान्तिरुमुच्यते ॥३१०  
 यजनाभ्यापनाहानात्पानाद्य सह भोजनात् ।  
 सद्य एव पतत्यस्मिन् पतितेन सहाऽऽचरन् ॥३११  
 तत्राप्यकामतस्त्वर्थं कामतः पूर्णमाचरेत् ।  
 पण्मासे वत्सरेऽप्यत्र द्विगुणं त्रिगुणं स्मृतम् ॥३१२  
 ऊर्ध्वं तु निष्कृतिर्न स्याद् भृग्यग्निपतनं विना ।  
 द्वितीयस्य तृतीयस्य नेष्यते मरणान्तिरुम् ॥३१३  
 अर्द्धं पादं समुद्दिष्टं कामतो द्विगुणं तथा ।  
 ब्रह्मचर्योपवासेन चतुर्थस्य विनिष्कृतिः ॥३१४  
 पञ्चमस्य न दोषः स्यादिति धर्मविदो विदुः ।  
 अन्येषामपि संसर्गात्प्रायश्चित्तं प्रकरयेत् ॥३१५  
 पतनीयेषु नारीणां मरणान्तिरुमुच्यते ।  
 अकामतश्चरेद्धर्मव्रतं पृथु यथोदितम् ॥३१६  
 व्यभिचारे तु सर्वत्र कामतो मरणाच्छुचिः ।  
 अकामतश्चरेत्पूर्णं प्रातिलोभ्यं गता सती ॥३१७  
 अर्द्धं मेवाऽऽनुलोभ्येषु तथैव भ्रूणदादिषु ।  
 यतिश्च ब्रह्मचारी च गत्वा स्त्रियमकामतः ॥३१८

गुस्तल्पगमुद्दिष्टं पूर्णमर्थं समाचरेत् ।  
 नामतो ब्रह्मचारी ॥ पूर्णमेवाऽऽचरेद् व्रतम् ॥३१६  
 यतेस्तु मरणाच्छुद्धिः शिश्नः स्थान् कृन्तनेन वा ।  
 तयोस्तु रेतः स्खलने कृच्छ्रं चान्द्रायणं चरेत् ॥३१७  
 जप्त्या सहस्रं गायत्र्या गृहस्थः शुद्धिमाप्नुयान् ।  
 द्विसहस्रं धनस्थस्तु जपेद्रेतो निपातने ॥३१८  
 तत्रापि कामतस्तेषां द्विगुणत्रिगुणादिकम् ।  
 परिधाजनकामस्तु नयनोत्पाटनं तथा ॥३१९  
 एवं समाचरेद्द्रीमान् प्रायश्चित्तं मतन्द्रितः ।  
 प्रायश्चित्तं भकुर्वाणः पापेषु निरतः सदा ॥३२०  
 कल्पयुतशतं गत्वा नरकं प्रतिपद्यते ।  
 घृत्वा गोचर्ममात्रन्तु सममेकं निरन्तरम् ॥३२१  
 पञ्चगव्यं पिबन् गोघ्नो गुरुगामी विशुध्यति ।  
 गोमूत्रेणैव च क्त्वा पीत्वा चाऽऽचम्य वारिभिः ॥३२२  
 विष्णोः सहस्रनामानि जपन्मित्यं समाहितः ।  
 शयीत गोत्रजे रात्रौ गयां हितं मनुस्मरन् ॥३२३  
 व्याघ्रादिभिर्गृहीतां गां पङ्के निपतितां तथा ।  
 स चरेदथवा प्राणान् सदर्थं वै परित्यजेत् ॥३२४  
 तेनैव हि विशुद्धः स्यादसम्पूर्णव्रतोऽपि वा ।  
 व्रतान्ते गोप्रदो भूत्वा ततः शुद्धिमवाप्नुयान् ॥३२५  
 गोस्यामिने च गां दत्त्वा पश्चादेवं व्रतं चरेत् ।  
 दद्यात् त्रिरात्रमुपोष्य वृषमेव श्वं गां दश ॥३२६

योयत्रेच गृहदाहाद्यैर्वन्धनैर्वा हता यदि ।  
 मतिपूर्वेण गां हत्वा चरेत्त्रैवार्षिकं व्रतम् ॥३३०  
 द्विवर्षं पूर्ववद्वाऽपि चर्मणाऽऽर्द्धेण वासमा ।  
 कपिलां गर्भिणीं वाऽपि वृषं हत्वा च कामतः ॥३३१  
 व्रतं द्वादशावपांश्चि चरेद् ब्रह्मव्रतोदितम् ।  
 आचार्यदेवविप्राणां हत्वा च द्विगुणं चरेत् ॥३३२  
 होमघेनुं प्रसूताञ्च दाने च समलङ्कृतम् ।  
 उपभुक्तां वृषेणापि ताञ्च द्वादशवार्षिकम् ॥३३३  
 निष्पीडनं वाऽपि तेषु दोषेऽप्यल्पमनन्दितः ।  
 शरणागतचालस्त्रीघातुकैः सम्बसेत्र तु ॥३३४  
 चीर्णव्रतानपि चरन् कृतघ्नानपि सर्वदा ।  
 अग्निदाङ्गरदां चण्डीं भर्तृघ्नीं लोकघातिनीम् ॥३३५  
 हिंसयंस्तु विधानस्त्रीं हत्वा पापं न गच्छति ।  
 गुरुं वा चालवृद्धान्वा श्रोत्रियं वा बहुश्रुतम् ॥३३६  
 आततायिन मायान्तं हन्यादेवाविचारयन् ।  
 नाऽऽततायिवधे दोषो हन्तुर्भयति कश्चन ॥३३७  
 प्रख्यातदोषः कुर्वीत परित्यक्तं यद्योदितम् ।  
 अनभिरुयात्तदोपस्तु रहस्यव्रतमाचरेत् ॥३३८  
 कण्ठमात्रजले स्थित्वा राममन्त्रं समाहितः ।  
 जपेद्वा दशसाहस्रं ब्रह्महा शुद्धिमाप्नुयात् ॥३३९  
 सुरापः स्वर्णहारी तु जपेदष्टाक्षरं तथा ।  
 लक्षं जप्त्वा कृष्णमन्त्रं मुच्यते गुरुतल्पगात् ॥३४०

उपोष्यान्तजले स्थित्वा वामुदेवमनुं शुभम् ।  
 जपेद्द्वादशसाहस्रं गोघ्नः प्रयतमानसः ॥३४१  
 असंख्यानि च पापानि अनुक्तान्यपि यानि च ।  
 चित्तस्यो भगवान् कृष्णः सर्वं हरति तत्क्षणात् ॥३४२  
 एकादश्रुपवासस्य फलं प्राप्नोति मानवः ।  
 आपादादिचतुर्मासे कृते मुक्ता जितेन्द्रियः ॥३४३  
 दुग्धाद्यधौ शेषपर्यङ्के शयानं कमलापतिम् ।  
 ध्यात्वा समर्चयेन्नित्यं महद्भिर्मुच्यते ह्यधैः ॥३४४  
 इति रहस्यप्रायश्चित्तवर्णनम् ।

अथ महापापादिप्रायश्चित्तप्रकरणवर्णनम् ।

रजस्वला स्मृतिकाञ्च चण्डालं पतितं तथा ॥३४५  
 पापण्डिनं विकर्मस्थं शैवं शृष्ट्वाऽध्यकामतः ।  
 गोमयेनानुलिप्ताङ्गः सधासा जलमाविशेत् ॥३४६  
 गायत्र्यष्टशतं जप्त्वा घृतं प्राश्य विशुध्यति ।  
 शृष्ट्वा तु कामतः स्नात्वा चरेत्सान्तपनं व्रतम् ॥३४७  
 स्वपचं पतितं शृष्ट्वा गोपालव्यजनादृतम् ।  
 विद्वराहं शुनद्वारं गर्दभं यूपमेव च ॥३४८  
 मद्यं मांसं तथैवोष्ट्रं विष्णूत्रं दशमेव च ।  
 करकञ्जलफेनञ्च वृक्षनिर्यासमेव च ॥३४९

चण्डालं पतितं मद्यं सूतिकाञ्च रजस्वलाम् ।  
 उच्छिष्टेन तु संस्पृष्टं पराश्रयमाचरेत् ॥३६०॥  
 उच्छिष्टेन चिरं कालं मुपित्वा स्नानमाचरेत् ।  
 उच्छिष्टाशौचमरणे चरेदब्दं द्विजातयः ॥३६१॥  
 रजस्वला सूतिका वा पञ्चत्वं यदि चेद् गता ।  
 पञ्चगव्यै स्नापयित्वा पात्रमान्यैर्द्विजोत्तमा ॥३६२॥  
 प्रत्यूच कलशौ स्नाप्य सपत्त्रिजलैः शुभैः ।  
 शुभ्रवस्त्रेण सम्येष्ट्य दाहं कुर्याद्विधानतः ॥३६३॥  
 चण्डालात् प्राक्षणात्सर्पात् क्रव्यादादुदकादिभिः ।  
 हतानामपि कुर्वीत पूर्वमुद्विजपुङ्गवः ॥३६४॥  
 तत्रापि कामतः कुर्यात् पञ्चर्तुं तस्य गान्धवाः ।  
 त्रिपाद्यैर्घनशस्त्राद्यैरात्मानं यदि घातयेत् ॥३६५॥  
 गोशतं विप्रमुख्येभ्यो दद्यादेकं शृणु तथा ।  
 नारायणवर्णिं कृत्वा सर्वमग्नौर्ध्वदेहिकम् ॥३६६॥  
 रजस्वला तु या नारी स्पृष्ट्वा चान्यां रजस्वलाम् ।  
 चण्डालं पतितं वाऽपि शुनं गर्दभमेव च ॥३६७॥  
 तावत्तिष्ठेन्निराहारा चरेत्सान्तपन्नं व्रतम् ।  
 सप्तपञ्चकामतः स्नात्वा पञ्चगव्यैः शुभैर्जलैः ॥३६८॥  
 चातुर्वर्णस्य गेहेषु चण्डालं पतितोऽपि वा ।  
 अन्तर्वर्ती भवेत्सा चेत्कथं स्यात्तत्र निष्कृतिः ॥३६९॥  
 तद्गृहन्तु परित्यक्त्वा दग्ध्वा वाऽन्यत्र संस्थितः ।  
 सन्नर्गोक्तप्रकारेण प्रायश्चित्तं समाचरेत् ॥३७०॥

पृथक् पृथक् प्रकुरीरन् सब गृहनिवासिनः ।  
 दाराः पुत्रश्च सुहृद्ः प्रायश्चित्तं यथोदितम् ॥३७१  
 सभगृ काणा नारीणां वपनन्तु विवर्जयेत् ।  
 सर्वान् केरान् समुद्धृत्य च्छेदयेद्गुह्यलित्रयम् ॥३७२  
 केरानां रक्षणार्थाय द्विगुणं व्रतमाचरेत् ।  
 प्रायश्चित्ते तु सम्पूर्णं कृत्वा सान्तपनं व्रतम् ॥३७३  
 श्राद्धकूर्चापघासं वा विशुध्यन्ति तदेनसः ।  
 अर्घाकूसम्बत्सरार्धात्तु गृहदाहं न चोदितम् ॥३७४  
 यद्गृहे पातकोत्पत्ति स्तत्र यस्तेन दाहयेत् ।  
 त्यजेद्वा संनिकृष्टाश्च शुद्धिर्ब्रह्मैवाऽऽत्मनस्ततः ॥३७५  
 सन्त्रन्धाश्चैव संसर्गात्तुल्यमेव नृणामघम् ।  
 तस्मात्संसर्गसम्बधान् पतितेषु विवर्जयेत् ॥३७६  
 चण्डालपत्तितादीनां तोयं यस्तु पिवेन्नरः ।  
 पराकं कामतः कुर्याद् ब्रह्मकूर्चमकामतः ॥३७७  
 अभ्यासे तु पङ्कजं स्याच्चान्द्रायणमकामतः ।  
 चण्डालानां सडागे वा नदीनां तीर्थ एव वा ॥३७८  
 स्नात्वा पीत्वा जलं विप्रः प्राजापत्यमकामतः ।  
 कामतस्तु पराकं वा चान्द्रायणमथाऽपि वा ॥३७९  
 अभ्यासे तु व्रतं पूर्णं पङ्कजं स्यादकामतः ।  
 सर्वेषां प्रतिलोमानां पीत्वा सन्तापनं चरेत् ॥३८०  
 चान्द्रायणं पराकं वा त्र्यब्दं वाऽपि यथाक्रमम् ।  
 भोजने गमनेऽप्येवं प्रायश्चित्तं समाचरेत् ॥३८१

चाण्डालपतितादीना गृहेष्वन्नमपि द्विजः ।  
 भुक्त्वाऽऽद्माचरेत् कृच्छ्रं चान्द्रायणमकामतः ॥३८२  
 चण्डालयादिकायान्तु सुप्त्वा भुक्त्वाऽप्यकामतः ।  
 चरेत्सान्तपनं कृच्छ्रं चान्द्रायणमथाऽपि वा ॥३८३  
 चण्डालवाटिकायान्तु मृतस्याब्दं विशोधनम् ।  
 स्नापनं पञ्चगव्यैश्च पावमान्यै शुभैर्जलैः ॥३८४  
 शूद्राग्नं सूतिकाग्नं वा शुना स्पृष्ट्वा कामतः ।  
 भुक्त्वा चान्द्रायणं कृच्छ्रं पराकं वा समाचरेत् ॥३८५  
 जलं पीत्वा तयोर्विप्रः पञ्चगव्यं पिवेद् द्वयहम् ।  
 चण्डालः पतितो वाऽपि यस्मिन् गोहे समा(विशेत्)चरेत् ।  
 त्यक्त्वा मृण्मयभाण्डानि गोभिः संक्रामयेत् त्र्यम् ॥३८६  
 मासादूर्ध्वं दशाहन्तु द्विमासं पक्षमेव तु ।  
 पण्मासात्तु तथा मासं गवां वृन्दं निवेशयेत् ॥३८७  
 ऊषन्तु दहनं प्रोक्तं लाङ्गुलेन च रातनम् ।  
 ब्राह्मकूयं तथा कृच्छ्रं चान्द्रायणमथापि वा ॥३८८  
 अतिरुच्छ्रं पराकश्च त्र्यब्दं वाऽपि समाचरेत् ।  
 षडब्दमूर्ध्वं पण्मासात्प्रायश्चित्तं समाचरेत् ॥३८९  
 यत्सरादूर्ध्वसम्पूर्णं घृतमेवाऽऽचरेद् बुधः ।  
 अमेप्यशवचण्डालमद्यर्मासादिदूषितात् ॥३९०  
 पूषादुद्धृत्य कल्शैः सहस्रं रेचयेज्जलम् ।  
 निक्षिप्य पञ्चगव्यानि वाष्णैरपि मन्त्रयेत् ॥३९१



तदागम्यापि शुद्ध्यर्थं गोभिः संक्रामयेज्जलम् ।  
 धान्यन्तु क्षालनाच्छुद्धिर्बाहुल्यं प्रोक्षणादपि ॥३६२  
 रसानान्तु परित्याग आण्डालादिप्रदूषणान् ।  
 प्रासाददेवहर्म्याणां चण्डालपत्तितादिषु ॥३६३  
 अन्तः प्रविष्टेषु तदा शुद्धिः स्यात्केन कर्मणा ।  
 गोभिः संक्रमणं कृत्वा गोमूत्रेणैव लेपयेत् ॥३६४  
 पुण्याहं वाचयित्वाऽथ तत्तोयैर्देर्ममयुतैः ।  
 मम्प्रोक्ष्य सर्वतः पश्चादेवं समभिषेचयेत् ॥३६५  
 पश्चामृतैः पञ्चपट्यैः स्नापयित्वाऽथ वैद्यकः ।  
 प्रत्यृचं पावमान्यैश्च वैष्णवैश्चाभिषेचयेत् ॥३६६  
 अष्टोत्तरसहस्रं वा शतमष्टोत्तरं तु वा ।  
 चतुर्भिर्वैष्णवैर्मन्त्रैः ज्ञाप्य पुष्पाञ्जलिं तथा ॥३६७  
 शीसूतेन तदा दिव्यैर्दद्यान्नीराजनं ततः ।  
 अवैष्णवस्पर्शनेऽपि एवं कुर्यात् वैष्णवः ।  
 भिक्षे विम्बे तथा दग्धे परित्यक्तवैव तं गृहे ॥३६८  
 वैदेही वैष्णवीमिष्ट्वा पुनः स्थापनमाचरेत् ।  
 क्षीराक्षपट्कते नष्टे वासुदेवी यज्ञेश्वरम् ॥३६९  
 स्थानान्तरगते विम्बे पुनः स्थापनमाचरेत् ।  
 तोयाधिवासनं वेद्यामधिरोहणमेव च ॥३७०  
 नयनोन्मीलनं दीक्षां वर्जयित्वाऽन्यमाचरेत् ।  
 पञ्चगव्यैः स्नापयित्वा पञ्चत्वक्पल्लवाक्षितैः ॥३७१

मङ्गलद्रव्यसंयुत्तरिद्विः समभिषेचयेत् ।  
 सूक्तं च ब्राह्मणं स्पृश्यै रविर्गवैष्णवीस्तथा ॥४०२  
 चतुर्भिर्वैष्णवैर्मन्त्रैः पृथगाष्टोत्तरं शतम् ।  
 वैष्णव्या चैव गायत्र्या शङ्खेन स्नापयेद् धुधः ॥४०३  
 ध्रुवसूतमृचं स्मृत्वा जपन् संस्थापयेद्धरिम् ।  
 ततस्तन्मूर्तिमन्त्रेण मूलमन्त्रेण वा द्विजः ॥४०४  
 दद्यान् पुष्पसहस्राणि देवतां स मनुं स्मरन् ।  
 पश्चात् सावरणं विष्णोरर्चयित्वा विधानतः ॥४०५  
 इन्द्रसोमं सोमपतेरिति सूक्तमनुत्तमम् ।  
 जपन् भक्त्याऽथ देवैस्तु दद्यान्नीराजनं द्विजः ॥४०६  
 प्रदक्षिणं नमस्कारं कृत्वा विप्रास्तु भोजयेत् ।  
 अवैष्णवेन विप्रेण शूद्रेणैवार्चिते हरौ ॥४०७  
 सहस्रमभिषेकं च पुष्पाञ्जलिसहस्ररुम् ।  
 महाभागवतो विप्रः कुर्यान्मन्त्रद्वयेन च ॥४०८  
 देवतोत्तरसम्पर्कं विना स्वाहरणं हरौ ।  
 अवैष्णवानां मन्त्राणां पक्काग्रस्य निवेदने ॥४०९  
 कृत्वा नारायणीमिष्टिं पुनः संस्कारमाचरेत् ।  
 देशान्तरगते विम्वे चिरकालमनर्चिते ॥४१०  
 अधिवासादिकं सर्वं पूर्ववद्वैष्णवोत्तमः ।  
 विष्णोस्तमवमध्ये तु विद्युत् स्तनितसम्भवे ॥४११  
 रथे विम्वे ध्वजे भग्ने विम्वे च पतिते मुवि ।  
 ग्रामदाहेऽश्मवर्षे च शुरावृत्तिजि वै मृते ॥४१२

नालङ्कृतेषु विधिषु परिणीते जनार्दने ।  
अवैदिकक्रियोपेते जपहोमादिवर्जिते ॥४१३  
कुर्वीत महतीं शान्तिं वैष्णवीं वैष्णमोत्तमः ।  
अग्निनाशे तु तन्मध्ये पुनरादानमाचरेत् ॥४१४  
कुर्वीत वैनतेयेष्टिं वैष्वक्सेनीमथापि वा ।  
श्वशूकरादिसम्पर्के पवित्रेष्टिं समाचरेत् ॥४१५  
वैष्णवेष्टिं प्रकुर्वीत पापण्डादिप्रदूषिते ।  
अथास्य संप्रुये विष्णोर्यत्र यत्र च सङ्करम् ॥४१६  
तत्र तत्र यजेदिष्टिं पावमानीं द्विजोत्तमः ।  
स्वापचारैः स्तथाऽन्यैर्वा मुच्यते सर्वकिल्बिषैः ॥४१७  
अवष्णवेन विप्रेण स्थापिते मधुसूदने ।  
तद्वाष्ट्रं वा भूपतिर्वा विनाशमुपयास्यति ॥४१८  
कुर्वीत वासुदेवेष्टिं सर्वं पापं प्रशामयेत् ।  
महाभागवतेनैव पुनः संस्कारमाचरेत् ॥४१९  
सेनेशवेनतेयादि नित्यानाम् दिवौकसाम् ।  
मुक्तानामपि पूजार्थं बिम्बानि स्थापयेद्यदि ॥४२०  
स निवेश्यै करात्रन्तु गन्धैः स्नाप्याऽथ देशिकः ।  
सर्ववैष्णवसूक्तैश्च तद्गायत्र्या सहस्रकम् ॥४२१  
शङ्खे (कुम्भे)नैवामिषिण्याथ भगवत्पुरतो न्यसेत् ।  
स्थण्डिलेऽग्निं प्रतिष्ठाप्य यजेच्च पुरतो हरेः ॥४२२  
अस्य यामेति सूक्तेन पायसं मधुमिश्रितम् ।  
अष्टोत्तरशतं पद्मादाज्यं मन्त्रचतुष्टयात् ॥४२३

सु(प)र्णः तादर्थ्यसूकाभ्या पृषदाज्यं यजेत्ततः ।  
 तिलैर्व्याहृतिभिर्हुत्वा पश्चादष्टोत्तरं शतम् ॥४२४  
 वैशुण्डं पार्षदञ्चैव होमशेषं समापयेत् ।  
 अहमस्मीतिसूक्तेन पीठे संस्थापयेद्बुधः ॥४२५  
 प्रणयादि चतुर्थ्यन्तनामभिस्तत्प्रकाशकैः ।  
 आवाह्य पूजयित्वाऽथ दद्यात्पुष्पाञ्जलिं ततः ॥४२६  
 द्वादशार्णेन मनुना सहस्रमथवा शतम् ।  
 सोमरद्रेति सूक्तेन दीपैर्नो राजयेत्ततः ॥४२७  
 भोजयित्वा ततो विप्रान् गुरुं सम्यक् प्रपूजयेत् ।  
 मत्तयकूर्मादिमूर्तीनामेवं संस्थापनं चरेत् ॥४२८  
 तत्तत्प्रकाशकैर्मन्त्रैर्जपहोमादिकं चरेत् ।  
 सहस्रनामभिर्द्रव्यात्पुष्पाणि सुरभीणि च ॥४२९  
 घापीकृषत्तडागानां तरुणां स्थापने तथा ।  
 वारुणीभिश्च सौम्यैश्च जपहोमादि पं चरेत् ॥४३०  
 तरुणां स्थापने गोपकृष्णं मातरमेव च ।  
 ताभ्यामेव तु मन्त्राभ्यां सहस्रं जुहुयाद् घृतम् ॥४३१  
 वैनतेयाङ्कितं स्तम्भं मध्ये संस्थापयेद्बुधः ।  
 अवैष्णवान्वये जातः कृत्वेष्टिं वैष्णवीं द्विजः ॥४३२  
 वैष्णवैः पञ्चसंस्कारैः संस्कृतो वैष्णवो भवेत् ।  
 देवतान्तरशेषस्य भोजने स्पर्शने तथा ॥४३३  
 अनर्चिते पद्मानाभे तस्यानर्पितभोजने ।  
 अवैष्णवानां विप्राणां पूजने वन्दने तथा ॥४३४

याजनेऽध्यापने दाने आद्धे चैपाञ्च भोजने ।  
 अनर्चिते भागवते हरिवासरभोजने ॥४३५  
 प्रायश्चित्तं प्रकुञ्चीत वैय्यूहो मिष्टिमुत्तमाम् ।  
 पञ्चाङ्गागवतानाञ्च पिवेत् पादजलं शुभम् ॥४३६  
 एत समस्तपापाना प्रायश्चित्तं मनीषिभिः ।  
 निर्णीतं भगवद्भक्तपादामृतनिषेवणम् ॥४३७  
 अङ्गीकृतं महाभागैर्महाभागवतैर्द्विजैः ।  
 सत्कारपचारैर्मन्त्र्येत परां वृत्तिञ्च विन्दति ॥४३८  
 प्रयश्चित्तं तथा चीर्णे महाभागस्ताद् द्विजात् ।  
 वैष्णवैः पञ्चसंस्कारैः संस्कृतो हरिमन्त्रयेत् ॥४३९  
 इति पृथ्वहारीतरमृतौ महापापादिप्रायश्चित्तप्रकरणं  
 नाम पष्ठोऽध्यायः ।

॥ सप्तमोऽध्यायः ॥

अथ नानाविधोत्सवविधानवर्णनम् ।

अम्बरीष उवाच ।

भगवन् । भवता प्रोक्ता विष्णोराराधनक्रिया ।  
 प्रायश्चित्तमकृत्यानामसत्ता दण्डमेव च ॥१  
 अधुना श्रोतुमिच्छामि शाश्वती वृत्तिमुत्तमाम् ।  
 इष्टीनाञ्च विधानानि विशेषाश्चोत्सवान् हरे ॥२  
 ७४

हारीत उवाच ।

गणु राजन् ! प्रवक्ष्यामि सर्वं निरवशेषतः ।  
 इष्टीनाञ्च विधानञ्च हरेत्सवकर्मणाम् ॥३  
 नारायणो वासुदेवी गारुडी वैष्णवी तथा ।  
 वैष्ण्वही वैभवी पाद्मो (ऋणी) पवित्री पाद्यमानिका ॥४  
 सौदर्शिनी च सेनेशी आनन्ती च शुभाह्वया ।  
 महाभागवतीत्येताः सर्वपापहराः शुभाः ॥५  
 प्रायश्चित्तार्थमपि वा भोगार्थं वा समाचरेत् ।  
 पूर्वं विघनसे विष्णुं प्रोक्तवान् विघनस्ता मृगोः ॥६  
 प्रोक्तं भमेरितं तेन मृगुणा दिव्यमुत्तमम् ।  
 शुद्धं तत्सर्वदेवेषु निश्चितं ते ब्रह्मीम्यहम् ॥७  
 अग्निं वै देवानामय मे विष्णुरीश्वरः ।  
 तदन्तरेण वै सर्वा देवता इति ह श्रुतिः ॥८  
 निवसन्ति पुरोडाशमग्नौ वैष्णवमठययम् ।  
 देवाश्च ऋषयः सर्वे योगिनः सनकादयः ॥९  
 अग्नौ यद्धूयते हृष्यं विष्णवे परमात्मने ।  
 सद्ग्नौ वैष्णवं प्रोक्तं सर्वदेवोपजीवनम् ॥१०  
 एतदेव हि कुर्वन्ति सदा नित्या अपीश्वराः ।  
 विमुक्ता अपि भोगा मेभ्येव मुमुक्षवः ॥११  
 एतदेव परं प्रीतिः सन्धियः परमा मनः ।  
 एतद्विना न नुप्येत भगवान् पुण्योत्तम ॥१२

यज्ञार्थमेव संसृष्टमात्मवागं चतुर्विधम् ।  
 यज्ञार्थात्कर्मणोऽन्यस्तु सदेर्पा व र्मयन्धनम् ॥१३  
 वह्निर्जिह्वा भगवतो वेदा अङ्गाः सदाऽध्वरे ।  
 अस्थीनि समिधः प्रोक्ता रोमा द्दमाः प्रकीर्तिताः ॥१४  
 स्नाहाकारः शिरः प्रोक्तं प्राणा एव हवींषि च ।  
 सर्ववेदक्रिया भोगा मन्त्राः पत्न्यः प्रकीर्तिताः ॥१५  
 एवं यज्ञवपुर्विष्णुर्विदित्वैनं हुताशने ।  
 जुहुयाद्वै पुरोडाशं अज्ञात्वैवम्पतेदथ ॥१६  
 यज्ञो यज्ञपति यंङ्मा जज्ञाङ्गो यज्ञराहनः ।  
 यज्ञभृद्यद्यरुचक्षी यज्ञभुग्यज्ञसाधनः ॥१७  
 यज्ञान्तकृद्यज्ञगुह्यमग्नमन्नाद एव च ।  
 तस्मादेनं विदित्वैषं यज्ञं यज्ञेन पूजयेत् ॥१८  
 कोऽयं लोकोऽस्त्ययज्ञस्य कथं स्यात्परतः शुचिः ।  
 द्रव्ययज्ञास्तपोयज्ञा योगयज्ञास्तथा परे ॥१९  
 स्वाध्यायज्ञानयज्ञाश्च सदा कुर्वन्ति योगिनः ॥२०  
 हरेर्भागतया कुर्यान्न साधनतया कश्चित् ।  
 साधनं भगवान् विष्णुः साध्याः स्युर्वेदिकाः क्रियाः ॥२१  
 शेषभूतश्च जीवस्य तदास्यैकफलाः क्रियाः ।  
 क्षुतिस्मृत्युदितं कर्म तदास्यं परिकीर्तितम् ॥२२  
 नैसर्गिकं तथा कुर्यात्तदास्यकं निवीर्तितम् ।  
 वैदिकेनैव मार्गेण पूजयेत्परमेष्ठरम् ॥२३

अन्यथा नरकं याति कल्पकोटिशतत्रयम् ।  
 तस्माच्छ्रुत्युक्तमार्गेण यजेद्विष्णुं हि वैष्णवः ॥२४  
 अर्चायामन्त्रेयेत्पुष्परङ्गौ च जुहुयाद्धविः ।  
 ध्यायेत्तु मनसा वाचा जपेन्मन्त्रान् सुवेदिकान् ॥२५  
 एवं विदित्वा सत्कर्म भोगार्थं परमात्मनः ।  
 कुर्वीत परमैकान्ती पत्युः पत्नी यथा प्रिया ॥२६  
 इदं प्रसङ्गेणोक्तं स्याद्विधानं तद् वक्ष्यीमि ते ।  
 पूर्वपक्षदशम्यान्तु स्नात्वा सम्पूज्य वेशवम् ॥२७  
 हस्तिनाचनपूर्वेण कुर्यादत्राङ्कुरार्पणम् ।  
 हरिं नारायणेऽथ्यर्थमिति सङ्कल्प्य पूजयेत् ॥२८  
 विष्णुप्रकाशकै राज्यं भूसूक्ताभ्या शतं ततः ।  
 मन्त्रेण चैत्र वैकुण्ठं पापदं हुत्वा समापयेत् ॥२९  
 अयुतं तु जपेन्मन्त्रं होमश्चाष्टोत्तरं शतम् ।  
 शेषं निवेद्य देवाय भुञ्जीयात् स्त्रियमेव च ॥३०  
 ततो मौनी जपेन्मन्त्रं शयीत पुरतो हरेः ।  
 प्रभाते च नदीं गत्वा स्नात्वा सन्तर्प्य देवताः ॥३१  
 सन्ध्यामन्वाह्य चाऽऽगत्य हरगेहे समलङ्कृते ।  
 वेद्यां संपूज्य देशं मन्त्ररत्नविधानतः ॥३२  
 सप्तावरणसंयुक्तं महिषीभिः समन्वितम् ।  
 अभ्यर्च्य गन्धपुपागैर्धूपदीपनिवेदनैः ॥३३  
 अर्चयित्वा विधानेन कुण्डं दक्षिणभागतः ।  
 विस्तरायामनिम्नश्च हस्तमात्रान्त्रिमेऽलम् ॥३४



तत्र वह्निं प्रतिष्ठाप्य इध्माधानान्तमाचरेत् ।  
 ओङ्कार स्यात्परं ब्रह्म सवमन्त्रोपु नायक ॥३५  
 इयक्षर तत्त्रयाणां च वेदाना बीजमुच्यते ।  
 अजायन्त ऋच पूर्वमकाराद्विष्णुप्राचकात् ॥३६  
 श्रीप्राचकादुकारात्तु यजूपि तदनन्तरम् ।  
 अजायन्त तयो सङ्गात्सामान्यन्यान्यनेकश ॥३७  
 तयोर्दासो मकारेण प्रोच्यते सवदेहिन ।  
 कारण सर्वमर्णानामकार प्रोच्यते बुधै ॥३८  
 अकारो वै च सर्वा वाक् सैषा स्पर्शोऽप्यभि सदा ।  
 बह्वौ सा व्यज्यमानाऽपि नानारूपा इति श्रुति ॥३९  
 अकार एव लुचन्ति सर्वमन्त्राक्षराणि हि ।  
 अकारो घासुदेव स्यात्तस्मिन् सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥४०  
 मन्त्रो हि बीज सवत्र क्रिया तच्छक्तिरुच्यते ।  
 मन्त्रतन्त्रसमायुक्तो यज्ञ इत्यभिधीयते ॥४१  
 मन्त्र पुमान् क्रिया स्त्री च तदुक्त मिथुन स्मृतम् ।  
 तस्माद्यजूपि तन्त्राणि ऋचो मन्त्राणि चाध्वरे ॥४२  
 मन्त्रक्रियाजु मेर मिथुन यज्ञ उच्यते ।  
 मन्त्रतन्त्रांशमेते ऋग्यजुषी यज्ञकर्मणि ॥४३  
 ददुर्गीतं तु भवेत्साम तस्मात्तद्वेष्णवं प्रथम् ।  
 ऋग्भिरेव तमुद्दिश्य पुरोडाश यजेद् बुध ॥४४  
 सामिरेव तु पुष्पाणि दद्यात्कर्मसु शार्ङ्गिणे ।  
 इन्द्राग्निवरणादीनि नामान्युक्तानि तत्र ॥ ।  
 होयानि विष्णो स्तन्यग्र नान्येषा स्यु कथञ्चन ॥४५

अकारे रुद्धइत्यग्निमिन्द्रत्व वर ईश्वरे ।

आत्मना प्रसवे सूय मौम्यत्वात्साम इत्यत ॥४६

वायु स्याज्जीवत प्राणाद्वरुण सर्वजीवन ।

मित्र स्यात्सर्वमित्रत्वादात्मैकत्वाद् बृहस्पति ॥४७

रोगनाशो भग्नेद्रुद्रो यम स्यात्तु नियामक ।

हिरण्यत्यमिति प्रोक्त नेति प्राप्यत्यमुच्यते ॥४८

नित्यसत्याद्विरण्य स्यात्तद्गर्भत्वाद्विरण्यमय ।

हिरण्यगर्भ इत्युक्त सत्वगर्भो जनार्दन ॥४९

हिरण्यमय स भूतेभ्यो ददरो इति वै श्रुति ।

सर्वान् स त्राति सविता पिता च पितृनत्पिता ॥५०

स्वर्भूर्भुव इति प्रोक्तो वेदवेगेति चोच्यते ।

यस्य छन्दासि चाङ्गानि स सुपर्ण मिहोच्यते ॥५१

अत्राङ्ग वर्णमिष्युक्तं छन्दोमयमुदाहृतम् ।

गायत्र्युष्णिगनुष्टुप् च बृहती षड्तिरेव च ॥५२

त्रिष्टुप् च जगती चैव छन्दास्येतान्यनुक्रमात् ।

एतानि यस्य चाङ्गानि स सुपर्ण इहोच्यते ॥५३

यस्माज्जातास्त्रयो वेदा जातवेदा न उच्यते ।

पथमान पावयित्वा शिव स्यात्सवदा शुभात् ॥५४

सुजने सेव्यते यस्तु अतो वै शम्भुरित्यज ।

सर्वान्यस्यैव नामानि वैदिकानि विवेचनार् ॥५५

पुत्राणामानि यानि विष्णो स्त्रो नामानि श्रियस्तथा ।

परस्य वैदिना शब्दा समानृष्येत्तरेष्वपि ॥५६

व्यग्रहियन्ते सततं लोकवेदानुसारतः ।  
 न तु नारायणादीनि नामान्यन्यस्य कर्हिचित् ॥५७॥  
 एतन्नाम्ना गतिर्विष्णुरेक एव प्रचक्षते ।  
 शब्दब्रह्मत्रयी सधं वैष्णवं तदिहोच्यते ॥५८॥  
 देवतान्तरशङ्का तु न कर्तव्या हि वेदिवैः ।  
 यपद्भूतं यद्वेदेन तदत्यन्तप्रियं हरैः ॥५९॥  
 स्वाहास्वधाभ्यां नमसा हुतं तद्वैष्णवं स्मृतम् ।  
 समिदाज्यै यां आहुतीर्यै वेदेनैव जुहति ।  
 यो मनसा सधर इत्युक्ता प्रोक्ता सदाऽध्वरे ॥६०॥  
 वेदेनैव हरिं तस्माद्यजेत द्विजसत्तमः ।  
 प्रसङ्गादेव मुक्तं स्याद्विधानं तद् भवीमि ते ॥६१॥  
 ऋग्वेदसंहितायान्तु मण्डलानि दश क्रमात् ।  
 एकैकमिष्ट्या होतव्यं चरुणा पायसेन वा ॥६२॥  
 घृतेन वा तिलैर्वाऽपि विल्वपत्रैरथापि वा ।  
 अग्निमील इति पूर्वं मण्डलं प्रत्यृचं यजेत् ॥६३॥  
 पुष्पाणि च तया दद्यात् सुगन्धीनि जनार्दने ।  
 विष्णुसूक्तैर्द्विहुत्वा चतुर्मन्त्रैः शतं यजेत् ॥६४॥  
 वैष्णवान् भोजयेन्नित्यमग्निश्चापि मुसंभरेत् ।  
 उपोषितो दीक्षितश्च यावदिष्टिः समाप्यते ॥६५॥  
 अन्ते चावभृथेष्टिश्च पुष्पयागाश्च पूरयत् ।  
 आचार्यं ब्राह्मणं प्रापि दक्षिणाभि प्रपूजयेत् ॥६६॥

इमान्नारायणेष्टिञ्च स्रुद्धाऽपि यजेत्तु यः ।

अनधीतवेदश्चेष्टिमयुतं मूलमन्त्रतः ॥६७

होमं पुष्पाक्षलिं वाऽपि तथैवायुतमाचरेत् ।

पूजयित्वा ततो विप्रान्निष्ट्याः सम्यक्फलो भवेत् ।

अथाव्यधौस्त्वं सूतमष्टोत्तरशतं चम् ।

दृष्ट्वा चतुर्भिर्मन्त्रैश्च लभेदिष्टिं न संशयः ॥६८

अथ वासुदेवेष्टिरुच्यते ।

एकादश्यां कृष्णपक्षे स्रुपोप्य जनार्दनम् ।

समर्चयेद्विधानेन रात्रौ जागरणान्वितः ॥७०

द्वादश्यां प्रातरुत्थाय स्नायान्नद्यां तिलैः सह ।

द्वादशाहोर्न मनुना सिञ्चेद्गोत्तरं शतम् ॥७१

अभिमन्त्र्य जलं पश्चात्तुलसीमिश्रितं पिबेत् ।

सर्वकर्मस्थमिहित एतदेवाघमर्पणः ॥७२

तत्तत्कर्मणि तन्मन्त्रो यो जपेदघमर्पणे ।

स्नात्वा सन्तर्प्य देवर्षीन् कृतकृत्यः समाहितः ॥७३

गृहं गानाऽर्चयेद्देवं वासुदेवं सनातनम् ।

द्वादशाहोविधानेन वस्तूरोचन्दनादिभिः ॥७४

जातिक्लेशकुन्दाद्यैः सुकृष्णतुलसीदलैः ।

सुधावधौ शेषपयङ्के समासीनं श्रिया सह ॥७५

इन्दीवरदलप्रयामं चक्रशङ्खगदाधरम् ।

सर्वाभरणसम्पन्नं सदायौवनमच्युतम् ॥७६

अनन्तं विद्वाधीशं शौनकाद्यैरुपासितम् ।  
 त्रिदशेन्द्रैरिमानस्थैर्ब्रह्मरुद्रादिभि स्तया ॥७७  
 स्तूयमानं हरिं ध्यात्वा अर्चयेत्प्रयतात्मवान् ।  
 सर्वमावरणं पश्चादर्धयेत् कुसुमादिभिः ॥७८  
 प्रथमं महिषीसहस्रं लक्ष्मीभूभ्यौ सनीलया ।  
 अनन्तरञ्च गरुडधर्मसेनादिभि स्तया ॥७९  
 ऐश्वर्यज्ञानवैराग्याः पूजनीया यथाक्रमम् ।  
 सनन्दनश्च सनकः सनरुमारः सनातनः ॥८०  
 औदुम्बरश्च सोमकपिलः पञ्चमो नारदः स्तया ।  
 भृगुर्निचनसोऽग्निश्च मरीचिः कश्यपोऽङ्गिराः ॥८१  
 पुलहः स्वायम्भुवो दाल्भ्यो वशिष्ठाद्यास्ततः क्रमात् ।  
 वशिष्ठो वामदेवश्च हारीतश्च पराशरः ॥८२  
 व्यासः शुकश्च प्रह्लादः शौनको जनकस्तथा ।  
 मार्कण्डेयो ध्रुवश्चैव पुण्डरीकश्च मारुतः ॥८३  
 रत्नमाङ्गदः शिष्यो ब्रह्मा पूजनीया यथाक्रमम् ।  
 तथा लोकेश्वराः पूज्याः शङ्खचक्रादिहेतयः ॥८४  
 वेदाश्च साङ्गाः स्मृतयः पुराणं धर्मसंहिताः ।  
 राशयो ग्रहनक्षत्राः पूजनीया समं ततः ॥८५  
 एवं सम्पूज्य देवेश मग्न्याधानादिपूर्वकम् ।  
 द्वितीयं मण्डलमृचा जुहुयात्समृतं चरुम् ॥८६  
 ध्यात्वा बहौ वासुदेवं दद्यात्पुष्पाणि तत्र तु ।  
 वैष्णवाश्च यजेत्तत्राथभृत्यं पुष्पयागकम् ॥८७

प्राक्षणान् भोजयेदन्ते गुरुश्च।पि प्रपूजयेत् ।  
 इमाश्च वासुदेवेष्टि यः कुर्याद्विष्णोत्तमः ॥८८  
 कुलकोटिं समुद्धृत्य स गच्छेत्परमं पदम् ।  
 अथवा वासुदेवस्य मन्त्रेणैव द्विजोत्तमः ॥८९  
 जुहुयाद्युतं बह्वौ वैष्णवै प्रत्यर्चं तथा ।  
 पुष्पाणि दत्त्वा देवेशे सम्यगिन्द्र्या लभेत्फलम् ॥९०  
 अथ वक्ष्यामि राजर्षे ! वैष्णवेष्ट्या विधिं ततः ।  
 श्रवणक्षौ तु पूर्वाह्ने पूर्वयच्च समारभेत् ॥९१  
 उपोष्य पूर्वदिवसे पूजयेज्जागरे हरिम् ।  
 प्रभाते पूर्वयत् क्त्वात्वा तर्पयेज्जगतां पतिम् ॥९२  
 पद्मक्षरविधानेन परव्योम्नि स्थितं हरिम् ।  
 पद्मपर्कं हेमविम्बाद्यैर्योगपीठसुसंस्थितम् ॥९३  
 चतुर्भुजं सुन्दराङ्गं सर्वाभरणभूषितम् ।  
 चक्रराक्षगादाशङ्कान् विभ्राणो दोर्भिरायतैः ॥९४  
 वामाङ्गुलश्रिया सार्द्धं गन्धपुष्पाक्षतादिभिः ।  
 नवैर्गन्धैश्च फलेभेदयैर्दिव्यैर्भोज्यैः सुपानकैः ॥९५  
 अर्चयेद्देवदेवेशं सर्वाभरण संयुतम् ।  
 श्रीलक्ष्मी. कमला पद्मा सोता सत्या च रुक्मिणी ॥९६  
 मावित्री परितः पूज्या ततस्तुते बलादयः ।  
 अनन्तताक्ष्यदेवेशसत्त्वधर्मदमा. शमा. ॥९७  
 बुद्धिश्च पूजनोपास्ते दिक्षु सर्वास्वनुक्रमात् ।  
 मतो लोकेभ्यः पूज्या ततश्च दिष्टेभ्यः ॥९८

महाभागवत्ताः पूज्या होमकर्म समाचरेत् ।  
 चतुर्भिर्वैष्णवैः सूक्तैः प्रत्यृचं जुहुयाच्चरुम् ॥६६  
 व्यापका मन्त्ररत्नश्च चतुर्मन्त्रा उदाहृताः ।  
 तैरप्यष्टोत्तरशतं पृथक् पृथगतो यजेत् ॥१००  
 हस्तीयमश्वत्थं पञ्चाङ्गजुहुयात्प्रत्यृचं सतः ।  
 तथा पुष्पैश्च सम्पूज्य कुर्याद्भृशं सतः ॥१०१  
 समाप्य पुष्पयोगेन वैष्णान् भोजयेत्ततः ।  
 एवं कर्तुमराक्तश्रेष्ठैष्णवी वैष्णवोत्तमः ॥१०२  
 वैष्णव्या चैव गायत्र्या पुष्पाञ्जल्ययुतं चरेत् ।  
 त्रिसहस्रं चरुं हुत्वा वैष्णवैरुदया. फलं लभेत् ॥१०३  
 इमां तु वैष्णवीं मिष्टिं चः कुर्याद्वैष्णवोत्तमः ।  
 त्रिकोटिकुल्लमुद्घृत्य याति विष्णो. परं पदम् ॥१०४  
 प्रायश्चित्तं मित्रं कुर्याद् वृत्तिभङ्गेषु वैष्णवः ।  
 शान्त्ययं देवकार्येषु पापेषु च महत्स्यपि ॥१०५

अथ वैयूही इतिरुच्यते ।

शुक्लपक्षे तु द्वादश्या सङ्क्रान्तौ ग्रहणंऽपि वा ।  
 उपोष्य त्रिधिवद्विष्णुं पूजयित्वा विधानतः ॥१०६  
 अभ्यर्चयेद् गन्धपुष्पैः केशवादीन् पृथक् पृथक् ।  
 मङ्गलपणादीनपि च पूजयेत्प्रयत्नात्मवान् ॥१०७  
 तत्तन्मूर्तिं पृथक् ध्यात्वा पृथगेव समर्चयेत् ।  
 केशवस्तु सुवर्णाभः श्यामो नारायणोऽप्यय ॥१०८

माधवः स्यादुत्पलाम्भो गोविन्दः शशिसन्निभः ।  
 गौरवर्णस्तथा विष्णु शोणो मधुजिदव्ययः ॥१०६  
 त्रिविक्रमोऽद्विसङ्काशो वामनः स्फटिकप्रभः ।  
 श्रीधरस्तु हरिद्राम्भो हृषीकेशो शुभन् यथा ॥११०  
 पद्मनाम्भो घनश्याम्भो हैमो दामोदरः प्रभु ।  
 सङ्कर्षणश्च मुक्ताम्भो वासुदेवो घनद्युतिः ॥१११  
 प्रद्युम्ना रत्नवर्णः स्यादनिरुद्धो यथोत्पलम् ।  
 अधोक्षजः शाङ्खलाम्भो रक्षाङ्गः पुरुषोत्तमः ॥११२  
 नृसिंहो मणिवर्णः स्यादच्युतोर्जसुप्रभम् ।  
 जनार्दनश्चुन्दवर्णो लोपेन्द्रो विद्रुमद्युतिः ॥११३  
 हरिर्वै सूर्यसङ्काशः पृष्णगोभिर्भास्वनद्युतिः ।  
 आयुधानि ध्रुवे श्वेषा दक्षिणाधः करादितः ॥११४  
 पद्मं शङ्खं गदाचक्रं गदां दधाति केशवः ।  
 शङ्खं पद्मं गदाचक्रं धत्ते नारायणोऽव्ययः ॥११५  
 माधवस्तु गदां चक्रं शङ्खं पद्मं विभर्ति च ।  
 चक्रं गदां तथा पद्मं शङ्खं गोविन्द एव च ॥११६  
 गदा पद्मं गदाशङ्खं चक्रं विष्णुर्विभर्ति हि ।  
 चक्रं शङ्खं तथा पद्मं गदा च मधुसूदनः ॥११७  
 पद्मं गदां तथा चक्रं शङ्खं च त्रिविक्रमः ।  
 शङ्खं चक्रं गदापद्मं वामनो निभृयाक्षया ॥११८  
 पद्मं चक्रं गदाशङ्खं श्रीधरः श्रीपतिदधन् ।  
 गदां चक्रं हृषीकेशः पद्मं शङ्खं विभर्ति हि ॥११९



पद्मनाभस्तथा शङ्खं पद्मं चक्रं गदा धरेत् ।  
 पद्मं शङ्खं गदा चक्रं धत्ते दामोदरस्तथा ॥१२०  
 सङ्कपणो गदा शङ्खं पद्मं चक्रं दधाति हि ।  
 वासुदेवो गदा शङ्खं चक्रं पद्मं विभर्त्ति हि ॥१२१  
 चक्रं शङ्खं गदा पद्मं प्रचुञ्चो विभृयात्तथा ।  
 अनिरुद्धस्तथा चक्रं गदा शङ्खं च पङ्कजम् ॥१२२  
 चक्रं पद्मं तथा शङ्खं गदा च पुरुषोत्तम ।  
 पद्मं गदा तथा शङ्खं चक्रं चाघोषजो हरिः ॥१२३  
 चक्रं पद्मं गदा शङ्खं नरसिंहो विभर्त्ति हि ।  
 अच्युतश्च गदा पद्मं चक्रं शङ्खं विभर्त्ति हि ॥१२४  
 जनार्दनस्तथा पद्मं शङ्खं चक्रं गदा धरेत् ।  
 ह्येन्द्रातु तथा शङ्खं गदा चक्रं च पङ्कजम् ॥१२५  
 हरिस्तु शङ्खं चक्रं च पद्मं चैव गदा धरेत् ।  
 शङ्खं गदा पङ्कजं च चक्रं कृष्णो विभर्त्ति हि ॥१२६  
 एवं चतुर्विंशतिस्तु मूर्ती ध्यात्वा समर्चयेत् ।  
 तत्तद्विम्बेषु वा राजन् ! शालग्रामशिलासु वा ॥१२७  
 गन्धे पुष्पैश्च ताम्बूलैर्धूपैर्दीपैर्निवेदनैः ।  
 फलैश्च भक्ष्यभोज्यैश्च पानीयैः शर्करान्वितैः ॥१२८  
 नामभिस्तश्चतुर्थ्यं तेर्मूलमन्त्रेण वा यजेत् ।  
 देवानाधरणीयान् पूजयेत्परितः क्रमात् ॥१२९  
 यं हेत्वाह(नही त्वने)तिसूक्तेन कुर्यान्नोराजनं शुभम् ।  
 पु(तोर्जनिं प्रतिष्ठाप्य स्वगृह्योत्तविधानतः ।  
 मण्डलेन चतुर्थेन प्र यच्च जुहुयाच्चरम् ॥१३०

पुष्पैः सम्पूजयेद्भक्त्या कुर्यादवभृथं नरः ।  
 इमा वैयूहिनीमिष्टिं सम्यक् प्राहुर्महर्षयः ॥१३१  
 प्रायश्चित्तमिदं प्रोक्तं पातकेषु महत्स्वपि ।  
 अतस्त्वपि च विग्रहानां शान्त्यर्थं वा समाचरेत् ॥१३२  
 प्रायश्चित्तं विशिष्टं स्याद्देहं प्रत्यूचकर्मसु ।  
 अतघोतः कथं कुर्याद्वैयूही वैष्णवी द्विजः ॥१३३  
 प्रत्येकं शतमष्टौ च मन्त्रौत्तेषा यजेद्गुधः ।  
 सबेप्रावमृषेष्टिश्च पुत्रयागश्च वैष्णवः ॥१३४  
 द्वयेन मूलमन्त्रेण कुर्यात् सुसमाहितः ।  
 वैष्णवान् भोजयेद्भक्त्या कर्मान्ते सत्वसिद्धये ॥१३५  
 चतुर्विंशतिसंख्यानं महाभागवतान् द्विजान् ।  
 एकं वा भोजयेद्विप्रं महाभागवतं तत्तमम् ।  
 सर्वं सम्पूर्णतामेति तस्मिन् संपूजिते द्विजे ॥१३६  
 यः करोति सुभामिष्टिं वैयूही वैष्णोस्तमः ।  
 अनन्तस्याप्नुवानाश्च विशिष्टोऽन्यतमो भवेत् ॥१३७  
 वैभधीनय वक्ष्यामि सवपापप्रणाशिनीम् ।  
 पावनी सर्वलोकानां सर्वकामप्रदा शुभाम् ॥१३८  
 भगवज्जमदिवसे चारे सूर्यसुतस्य वा ।  
 रजन्मर्क्षेऽपि वा कुर्याद्वैभगी मङ्गलाह्वयाम् ॥१३९  
 पूर्वेऽथभुद्रं कुर्याद्वैभगीमन्त्रपूर्वकम् ।  
 तपोप्य पूजयेद्विष्णुं मान्यं च न समाचरेत् ॥१४०

स्नात्वा परेऽहि विधिना सन्तर्प्य पितृदेवताः ।  
 विशिष्टैर्वाह्वणैः सार्द्धमर्चयित्वा जनार्दनम् ॥१४१॥  
 मत्स्यं कूर्मं च वाराहं नारसिंहं च वामनम् ।  
 श्रीरामं बलभद्रञ्च कृष्णं कङ्किनमन्ययम् ॥१४२॥  
 हयग्रीवं जगद्योनिं पूजयेद्वैष्णयोत्तमः ।  
 नार्चयेद्भागवं बुद्धं सर्वत्रापि च कर्मेभु ॥१४३॥  
 कुशाग्रन्यिषु त्रिम्येषु शालग्रामशिलामु वा ।  
 अर्चयेद्गङ्गाधपुष्पाद्यैः प्रागुदङ्गप्रवणेन च ॥१४४॥  
 पृथक् पृथक् च नैवेद्यं विविधं वै समर्पयेत् ।  
 मोदकान् पृथुकान् सक्तूनपूरान् पायसांस्तथा ॥१४५॥  
 हविष्यमन्नमुद्गात्रं मण्डकान् मधुसंयुतान् ।  
 दध्यन्नञ्च गुडाञ्च भक्ष्या तेभ्यो निवेदयेत् ॥१४६॥  
 कर्पूरसंयुतं दिव्यं ताम्बूलञ्च निवेदयेत् ।  
 इमा विश्वेति सूक्तेन वद्यान्नीराजनं तथा ॥१४७॥  
 सहस्रनामभिः स्तुत्वा भक्त्या च प्रणमेद्बुधः ।  
 इध्माधानादिपर्व्यन्तं कृत्वा होमं समाचरेत् ॥१४८॥  
 सयस्तु देवगवैः सूक्तैर्हुत्वा पूर्वं शुभं हविः ।  
 पञ्चमं मण्डलं पश्चात्प्रत्यूषं जुहुयाद्द्विजः ॥१४९॥  
 इमान्तु दैवचोमिष्टिं कुर्वाद्द्विष्णुपरायणः ।  
 अकृत्वा घैभवीमन्त्रं योऽध्यापयति देविकः ॥१५०॥  
 रौरवं नरकं याति पावदामूससंप्लवम् ।  
 होमं विना स शूद्राणां कुर्यात् सवैमरोपतः ॥१५१॥

मन्त्रैर्ना जुहुयादाज्यं तत्तन्मूर्तिप्रकाशकैः ।  
 पूजयित्वा द्विजवरान् पश्चान्मन्त्रां प्रदापयेत् ॥१५२  
 अशक्तो यस्तु वेदेन कर्तुमिष्टिं द्विजोत्तम ।  
 तत्तन्मूर्तिमयेर्मन्त्रौ पृथगष्टोत्तरं शतम् ॥१५३  
 दृष्ट्वा चरुं घृतयुतं सम्यगिष्ट्वा फलं लभेत् ।  
 वैष्णवस्याच्युतस्यापि कारयेदिष्टिमुत्तमाम् ॥१५४  
 वृद्धिश्च वैष्णवान् स्वस्वपितृनपि च वैष्णवः ।  
 यः कुर्याद्वैष्णवीमिष्टिं भक्त्या परमया युत ॥१५५  
 वैष्णवस्य कुलं सर्वं लभेत स न संशयः ।  
 अथ ऊर्ध्वं प्रदद्यामि आनन्तीमयनाशनीम् ॥१५६  
 पौर्णमास्यां प्रकुर्यात् पूर्वोक्तविधिना नृप ॥  
 आदानं पूजयित्वा अहुरार्षेयपूर्वकम् ॥१५७  
 उपोष्याभ्यर्चयेद्देवमनन्तं पुरुषोत्तमम् ।  
 सहस्रशीर्षं विश्वेशं सहस्रकरलोचनम् ॥१५८  
 सहस्र(किरण)चरणं श्रीशं सदैवाश्रितरत्नसलम् ।  
 धौरपेण विधानेन पूजयेत् पुरुषोत्तमम् ॥१५९  
 गन्धपुष्पैश्च धूपैश्च दोषैश्चापि निवेदनैः ।  
 पूजयित्वा जगन्नाथं पश्चादावरणं यजेत् ॥१६०  
 पार्श्वयोश्च श्रियं भूमिं नीलाश्वं शुभलोचनाम् ।  
 हिरण्यवर्णां हरिणीं जातवेदां हिरण्ययी ॥१६१  
 चन्द्रां सूर्यां च दुर्धर्षां गन्धद्वारा महेश्वरी ।  
 नित्यतृपुष्टां सहस्राक्षीं महालक्ष्मीं सनातनी ॥१६२

पूजनीया समस्ताश्च गन्धपुष्पाक्षतादिभि ।  
 संस्पर्पणस्तथाऽनन्त शेषो भूधर एव च ॥१६२  
 लक्ष्मणो नागराजश्च बलभद्रो हलायुध ।  
 तच्छक्त्य पूजनीया प्रागादिषु यथाक्रमम् ॥१६४  
 रेवती चारुणी कान्तिरैश्वर्या च इला तथा ।  
 भद्रा सुमङ्गला गौरी शक्त्य परिकीर्तिता ॥१६५  
 अस्त्रान् लोकेश्वरान् पूज्य पश्चाद्भोम समाचरेत् ।  
 पश्चात्तु मण्डल पट्ट प्रत्येक जुहुयाच्चरुम् ॥१६६  
 पुष्पाणि च तथा दत्त्वा कुप्यादवभृथादिकम् ।  
 अशक्त्येनृतसूतेन शतमष्टोत्तर चरुम् ॥१६७  
 इष्टु वेष्ट्या फल सम्यगाप्नोत्येव न सशय ।  
 आनन्तीयामिमामिष्टि वैकुण्ठपदमानुयान् १६८  
 न दास्यमीशस्य भवेद्यशस्य दाम्य नृणामसत् ।  
 तत्र कुर्यादिमामिष्टि दास्यैकफञ्जसिद्धये ॥१६९  
 अधुना धेनतेयेष्टि वक्ष्यामि नृपसत्तम ।।  
 पञ्चम्या भानुगारे वा कस्मिंश्चिच्छुभवासरे ॥१७०  
 उपोष्य पूर्ववत्सर्वं कुर्यादभ्युदयादिकम् ।  
 स्नात्वाऽर्चयित्वा देवशं गन्धपुष्पाक्षतादिभि ॥१७१  
 लक्ष्म्या सह समासीन वैकुण्ठभगने शुभे ।  
 सद्य मन्त्रमये दिव्ये वाह्मये परमासने ॥१७२  
 मन्त्रस्वरै रक्षरैश्च साङ्गैर्वेदै समन्वित ।  
 तारेण सह सावित्र्या सस्तीर्ण शुभवर्चसि ॥१७३

ईश्वर्यां च समासीनं सदस्रार्कसमद्युतिम् ।  
 चतुर्भुजमुदाराङ्गं कन्दपशवसन्निभम् ।  
 युवानं पद्मपत्राक्षं चक्रशङ्खगदाङ्गिनम् ॥१७४  
 दैष्ण्यया चैव गायत्र्या पूजयेद्भरिमव्ययम् ।  
 श्रियं देवीं नित्यपुष्टा सुभगाञ्च सुलक्ष्णाम् ॥१७५  
 ऐरावती वेदवतीं सुफेशीञ्च सुमङ्गलाम् ।  
 अर्चयेत्परितो देवीं सुम्पा नित्ययौवनाः ॥१७६  
 सतः समर्चयेत्तदयं गरुडं विनतासुतम् ।  
 सुपर्णञ्च चतुर्दिक्षु विदिक्षु शक्तयस्तथा ॥१७७  
 भृतिस्मृतीतिहासाश्च पुराणानीति शक्तयः ।  
 अस्त्रादीनीश्वरान् पश्चादर्चयेत् कुसुमाक्षतैः ॥१७८  
 धूपं दीपञ्च नैवेद्यं ताम्बूलञ्च समर्चयेत् ।  
 अयं हि ते चार्थीति दद्यान्नीराजनं शुभम् ॥१७९  
 प्रदक्षिणं नमस्कारं कृत्वा होमं समाचरेत् ।  
 यशि(मि)ष्टेन च संदष्टं सम्मं मण्डलं धु(हु)नेत् ॥१८०  
 पुष्पाणि च ततो दत्त्वा कुर्यादवभृथादिकम् ।  
 रद(थ)यानादिभङ्गे च वाहनध्वंसने तथा ॥१८१  
 अवैदित्रक्रियाजुष्टे कुर्यादिष्टिमिमां शुभाम् ।  
 अरिष्टे चोपपातेषु शान्दर्थमपि वा यजेत् ॥१८२  
 इष्ट्याऽनया पूजितेऽपि रोगसर्पाग्निभिः शमेत् ।  
 वैततेयसमो भूत्वा भवेदनुचरो हरेः ॥१८३

घैष्वरूसेनीं ततो वक्ष्ये सर्वपापप्रणाशिनीम् ।  
उपोष्यैकादशी शुद्धां पूर्ववत् पूजतेद्वरिम् ॥१८४  
तद्विष्णोरिति मन्त्राभ्यामुपचारं समर्चयेत् ।  
विष्वक्सेनश्च सेनेशं सेनान् पञ्च चमूपतिम् ॥१८५  
अर्चयित्वा चतुर्दिक्षु शक्तयश्च विदिक्षु च ।  
प्रयोः सूत्रवतीं सौम्यां सावित्रीं चार्चयेद्द्विज ॥

अस्नान् (दिगीशान्) दीपाश्च सम्पूज्य होमं पश्चान् समाचरेत् । १८६  
कृत्येष्माधानपर्यन्तमष्टम मण्डलं यजेत् ॥१८७  
पायसेनाथ पुष्पाणि दद्यात् प्रयतमानसः ।  
अन्ते घायभृथेष्टिश्च प्रसूनयजन तथा ॥१८८  
ब्राह्मणान् भोजयेच्छतया दक्षिणाभिश्च तोषयेत् ।  
अशक्तो यस्तु वेदेन कर्तुमिष्टिश्च वैष्णव ॥१८९  
तद्विष्णोरिति मन्त्राभ्यां सहस्रं जुहुयाद्यरम् ।  
कृत्वा पुष्पाञ्जलिश्चापि सम्यगिष्टिं लभेन्नरः ॥ १९०  
घैष्वरूसेनीं मिमां हुत्वा विष्वक्सेनसमो भवेत् ।  
प्रभूतधनधान्याढ्यभैश्वर्यं चैव विन्दति ॥१९१  
यक्षराक्षसभूतानां तामसानां दिवौकसाम् ।  
अभ्यचने रक्षोपस्य विशुद्धयधमिदं यजेत् ॥१९२  
सौदर्शनीं प्रवक्ष्यामि सरपापप्रणाशिनीम् ।  
व्यतीपाते वेधुतौ वा सरपाप्यार्चयेद्वरिम् ॥१९३  
अखण्डहृत्पद्मं वा वं मलं हृत्पद्मं वा ।  
अर्चयित्वा हृषीकेशं गन्धपुष्पाक्षतैर्दिभिः ॥१९४

पश्चात्समर्चनीयाः स्युः श्रीभूनीलादिमातरः ।  
 सुदर्शनसहस्रारं पवित्रं ब्रह्मण स्पतिम् ॥१६५  
 सहस्रार्कं शतोद्यामं लोकद्वारं हिरण्ययम् ।  
 अभ्यर्चयेत् क्रमादिभ्यु तथा शक्तीः समर्चयेत् ॥१६६  
 अनिष्टध्वंसिनी माया लज्जा पुष्टिः सरस्वती ।  
 प्रकृतीर्जगदाधारा कामधुकू चाष्टशक्तयः ॥१६७  
 तथा ताश्चैव लोकेशाः पूज्या दिभ्यु यथाक्रमात् ।  
 अभ्यर्च्य गन्धपुष्पाद्यैर्नवेद्यैर्विविधैरपि ॥१६८  
 ऋग्वेदोक्तस्य सूक्तेन ततो नीराजनं हरेः ।  
 नवमं मण्डलं पश्चाद्धोतव्यं चरुणा नृप ! ॥१६९  
 आज्येन वा तिलैर्वाऽपि बिल्वैर्वाऽपि सरोरुदैः ।  
 हुत्वा पुष्पाञ्जलिं दत्त्वा कुर्यादवभृथादिकम् ॥२००  
 प्राक्षणान् भोजयेत्पश्चाद् गुरुश्चापि समर्चयेत् ।  
 उद्धाह वैष्णवी कन्या याचित्वा वैष्णवीं तथा ॥२०१  
 हुत्वा वा वैष्णवेनैव तथैवाऽऽदित्यभुज्यसि ।  
 अन्यलिङ्गधृतौ चापि कुर्यादिष्टिमिमा द्विजः ॥२०२  
 सौदर्शनेन मन्त्रेण सहस्रं जुहुयाद्गुरुम् ।  
 पुष्पाणि दत्त्वा साहस्रं सम्यगिष्ट्याः फलं लभेत् ॥२०३  
 अथ भागवतीभिष्टिं प्रवक्ष्यामि नृपोत्तम ।।  
 ऋषोत्प्रेमादशीं शुद्धां द्वादश्यां पूर्ववद्धरिम् ॥२०४  
 अचयित्वा विधानेन गन्धपुष्पाक्षतादिभिः ।  
 पौरुषेण तु सूक्तेन श्रीमदष्टाश्वरेण वा ॥२०५,



अर्चयेज्जगतामीशं सर्वाभरणसंयुतम् ।  
 सतो भागवतान् सर्वानर्चयेत्परितो द्विजः ॥२०६॥  
 पुष्पैर्वा तुलसीपत्रैः सलिलै रक्षतरपि ।  
 प्रह्लादं नारदञ्चैव पुण्डरीकं विभीषणम् ॥२०७॥  
 रुक्माद्भदं तत्सुतश्च हनूमन्तं शिवं भृगुम् ।  
 वशि(मि)ष्ठं यामदेवश्च व्यासं शौनकमेव च ॥२०८॥  
 माकण्डेयं चाम्बरीपं दत्तात्रेयं पराशरम् ।  
 रुक्मदाहभ्यौ कश्यपश्च हारीतश्चात्रिमेव च ॥२०९॥  
 भरद्वाजं वलिं भीष्म मुद्रवाक्त्ररूपकरान् ।  
 गुहं सूतश्च वाल्मीकिं स्थायम्भुम्भुनं ध्रुवम् ॥२१०॥  
 वैष्णवश्च रोमशञ्चैव मातंगं शवरीं तथा ।  
 सनन्दनश्च सनकं त्रिवनश्च सनातनम् ॥२११॥  
 योदु(हं)पश्चशिखञ्चैव गजेन्द्रश्च जटायुपमः ।  
 सुशीलां त्रिजटां गौरीं शुभां सन्ध्यावलिं तथा ॥२१२॥  
 अनसूयां द्रौपदीश्च यशोदां देवकीं तथा ।  
 सुभद्राञ्चैव गोपीश्वरं शुभां नन्दव्रजे स्थिताः ॥२१३॥  
 नन्दं च वसुदेवश्च दिलीपं दशरथं तथा ।  
 कौसल्याञ्चैव जनककन्यामपि च वैष्णवान् ॥२१४॥  
 अर्चयेद्गन्धपुष्पाद्यैर्घूपैर्दीपैर्निवेदनैः ।  
 सान्द्रलैर्मक्ष्यभोज्यैश्च दीपैर्नीराजनैरपि ॥२१५॥  
 अहं मुनेति सूक्तेन दद्यान्नीराजनं हरेः ।  
 पञ्चाद्वोमं प्रकुर्वीत अग्न्याधानादिपूर्ववत् ॥२१६॥

दशमं मण्डलं सध प्रत्यृचं जुहुयाद्विविः ।  
 तिलमिश्रेण साज्येन चरुणा गोघृतेन वा ॥२१७  
 सर्वैश्च वैष्णवैः सूक्तैश्चतुर्भिश्चाष्टोत्तरं शतम् ।  
 नामभिश्च चतुर्थ्यन्तै स्तान् सर्वान् वैष्णवान् यजेत् ॥२१८  
 पुष्परिष्टा चावभृथं प्रसूनेष्टिश्च कारयेत् ।  
 होमं कर्तुमशक्त्यद्वेदेन नृपनन्दन ! ॥२१९  
 चतुर्भिर्वैष्णवैस्त्रैः साहस्रं वा पृथक् पृथक् ।  
 इमां भागवतीमिष्टिं यः कुर्याद्वैष्णरोत्तमः ॥२२०  
 अनन्तगहवादीनामयमन्यतमो भवेत् ।  
 पापमानैर्यद्वा ऋग्भिरिज्यते मधुसूदनः ॥२२१  
 सत्त्वायमानो मुनिभिः प्रोच्यते मधुसूदनः ।  
 यदा तु द्वादशी शुक्ला भृगुरासरसंयुता ॥२२२  
 तस्यामेव प्रकुर्यात् पाद्मोमिष्टिं द्विजोत्तमः ।  
 महाप्रीतिकरं विष्णोः सद्योभुक्तिप्रदायकम् ॥२२३  
 तस्यां कृतायामिष्ट्या तु लक्ष्मीभर्ता जनार्दनः ।  
 प्रत्यक्षो हि भवेत्तत्र सर्वकामफलप्रदः ॥२२४  
 श्रीधरं पूजयेत्तत्र तन्मन्त्रेणैव वैष्णवः ।  
 सुवर्णमण्डपे दिव्ये नानारत्नप्रदीपिते ॥२२५  
 उदयादित्यसङ्काशे हिरण्ये पङ्कजे शुभे ।  
 लक्ष्म्या सह समासीनं कोटिश्रीवांशुसन्निभम् ॥२२६  
 चक्रशङ्खगदापद्मपाणिनं श्रीधरं विभुम् ।  
 पीताम्बरधरं विष्णुं वनमालाविराजितम् ॥२२७

अर्धयेज्जगतामीशं सर्वाभरणभूषितम् ।

पद्मां पद्मलया लक्ष्मीं कमलां पद्मसम्मवाम् ॥२२८

पद्ममालयां पद्महस्तां पद्मनाभीं सनातनीम् ।

प्रागादिषु तथा दिक्षु पूजयेन् कुसुमादिभिः ॥२२९

अस्त्रादीनीश्वरान् पूज्य नमस्कुर्वीत भक्तितः

ततो नीराजनं दत्त्वा श्रीसूक्तेन तु वैष्णवः ॥२३०

पुरतो जुहुयादग्नौ पायसं घृतमिश्रितम् ।

तन्मन्त्रैर्गैव साहस्रं सूक्ताभ्यां सकृदेव हि ॥२३१

हुत्वा मन्त्रेण साहस्रं दद्यात् पुण्याणि शार्ङ्गिणे ।

वष्णवं विप्रमिथुनं पूजयेद्भोजयेत्तथा ॥२३२

इमा पादौ शुभमिष्टिं यः कुर्याद्वैष्णवोत्तमः ।

प्रभूतवनधान्याह्व्यो महाश्रियमवाप्नुयात् ॥२३३

सर्वान् कामानवाप्नोति विष्णुलोकं स गच्छति ।

लक्ष्म्यायुक्तो जगन्नाथः प्रत्यक्षः समभूद्धरिः ॥२३४

ददाति सकलान् कामानिह लोके परत्र च ।

पुण्यैः पवित्रदैवत्यैरिज्यते यत्र वेशवः ॥२३५

तौ पवित्रेष्टिमित्याहुः सर्वपापप्रणाशिनीम् ।

यत्ते पवित्रमित्यादि श्रुग्भिथेत्र यजेद्दुष्टिजः ॥२३६

प्रायश्चित्तार्थं सहसा शान्त्यर्थं वा समाचरेत् ।

एवं विधानमिष्टीनां सम्यगुक्तं महर्षिभिः ॥२३७

वैदिकेनैव विधिना यथाशक्त्या समाचरेत् ।

अवैदिकक्रियाजुष्टं प्रयत्नेन विधर्जयेत् ॥२३८

क्षीराब्धौ शेषपर्यङ्के वृध्यमाने सनातने ।  
 अत्रोत्सवः प्रकुर्वीत पञ्चरात्रं निरन्तरम् ॥२३६  
 नदाश्च पुष्करिण्या वा तीरे रम्यतले शुचौ ।  
 मण्डपं तत्र कुर्वीत चतुर्भिस्तोरणैर्युतम् ॥२४०  
 वितानपुष्पमालादि पताकापत्रजशोभितम् ।  
 अङ्कुरार्पणपूर्वेण यज्ञगेदिच्छ कल्पयेत् ॥२४१  
 ऋत्विग्भिः सार्द्धमाचार्यो दीक्षितो मङ्गलस्वनैः ।  
 रथमारोप्य देवेशं छत्रचामरसंयुतम् ॥२४२  
 पठन्वैशाकुनान् मन्त्रान् यज्ञशालां प्रवेशयेत् ।  
 स्वस्तिवाचनपूर्वेण कुर्यात्कौतुकबन्धनम् ॥२४३  
 पूर्णकुम्भान् शस्ययुतान् पालिकाः परितः क्षिपेत् ।  
 अभ्यर्च्य गन्धपुष्पाद्यैः पश्चादावरणं यजेत् ॥२४४  
 वासुदेवमनन्तश्च सत्यं यज्ञं तथाऽच्युतम् ।  
 मदेन्द्रं श्रीपतिं विश्वं पूर्णकुम्भेषु पूजयेत् ॥२४५  
 पालिकाः सद्दिगीशाश्च दीपिकाश्च हेतयः ।  
 तोरणेषु च चण्डाद्याः पूजनीया यथाक्रमम् ॥२४६  
 वेशाश्च दक्षिणे भागे कुण्डं कुर्यात्सलक्षणम् ।  
 निक्षिप्याग्निं विधानेन इष्माधानान्तमाचरेत् ॥२४७  
 आचार्योपामासौ वा लौकिके वा नृपोत्तम ! ।  
 आधानं पूर्ववत् पूज्या पश्चात्कर्म समाचरेत् ॥२४८  
 प्रातः क्वात्वा विधानेन पूजयित्वा सनातनम् ।  
 प्रत्यहं पादमानीभिर्जुहुयात्पायसं शुभम् ॥२४९

वैष्णवैरनुवाकैश्च मन्त्रैः शयत्या पृथक् पृथक् ।  
 चतुर्भिर्व्यापकैश्चान्यै प्रत्येकं जुहुयाद् घृतम् ॥२५०  
 वैकुण्ठं पार्षदं हुत्वा होमशेषं समाचरेत् ।  
 ताभिरेव च पुष्पाणि दद्याच्च जगताम्पतेः ॥२५१  
 इद्विधोऽधियस्या शयने देवदेवं जनार्दनम् ।  
 पश्चात् सर्वमिदं कुर्यादुत्सवाय द्विजोत्तमः ॥२५२  
 अथ नावं सुविस्तीर्णां घृता तस्मिन् जले शुभे ।  
 पुष्पमण्डपचिह्नादि समास्तीर्णसमन्विताम् ॥२५३  
 सुतोरणवित्तानाढ्यां पताकाध्यजशोभिताम् ।  
 तस्मिन् फनफपर्यङ्के निषेस्य फमलापतिम् ॥२५४  
 अर्चयित्वा विधानेन लक्ष्म्या साद्धं सनातनम् ।  
 पुष्पाञ्जलिशतं तत्र मन्त्ररत्नेन कारयेन् ॥२५५  
 श्रीपौरुषाभ्यां सूक्ताभ्यां दद्यात्पुष्पाञ्जलिं ततः ।  
 परितः शक्तयः पूज्या स्तथाऽऽवरणदेवताः ॥२५६  
 दीपैर्नौराजनं कृत्वा बलिं दत्तं समन्ततः ।  
 नौभिः समं तद् बहुभिर्गीतवादित्रसंयुतम् ॥२५७  
 दीपिकाभिस्नेहाभिस्तोत्रैरपि मनोरमैः ।  
 प्राययन्तो भगन्नार्थं तत्र तत्र जलाशये ॥२५८  
 फलैर्भक्षैश्च ताम्बूलं कलशैर्दधिमिश्रितैः ।  
 कुङ्कुमैः कुपुमैर्लाजैर्विकिरन्तः परस्परम् ॥२५९  
 गानैर्वदैः पुराणैश्च सेवेत निशि केशवम् ।  
 ऋत्विजो वारुणान् सूक्तान् जपेयुस्तत्र भक्तिः ॥२६०

जपेच्च भगवन्मन्त्रान् शान्तिपाठश्चरेत्तथा ।  
एवं संसेव्य बहुधा रात्रावस्मिन् जलाशये ॥२६१  
प्रदेवत्रेति सूक्तेन यज्ञशालां प्रवेशयेत् ।  
तत्र नीराजनं दत्त्वा कुर्यादध्वार्दिपूजनम् ॥२६२  
धृतव्रतेति सूक्तेन तत्र नीराजनं द्विजः ॥२६३  
स्नात्वा पूर्ववदभ्यर्च्य हुत्वा पुष्पाञ्जलिं तथा ।  
आशिषोवाचनं कृत्वा भोजयेद् ब्राह्मणान् शुभान् ॥२६४  
शाययित्वाऽथ देवेशं भुञ्जीयाद्भग्नतः स्वयम् ।  
एवं प्रतिदिनं कुर्यादुत्सवं पञ्चषासरम् ॥२६५  
अन्ते चावभृथेष्टिं च पुष्पयागश्च कारयेत् ।  
आचार्यं मृत्विजो विप्रान् पूजयेदक्षिणादिभिः ॥२६६  
एवं क्षीराब्धियजनं प्रत्यब्दं कारयेन्मृग ! ।  
हस्तम्यगर्थवृद्धयर्थं भोगाय कमलापतेः ॥२६७  
वृद्धयर्थमपि राष्ट्रस्य शत्रूणां नाशनाय च ।  
सर्वधर्मविपृद्धयर्थं क्षीराब्धियजनं वरेम् ।  
तत्र दुर्भिक्षरोगाद्विषापवाधा न सन्ति हि ॥२६८  
गायः पूर्णदुघा नित्यं बहुलस्य फलाधरा ।  
पुष्पिताः फलिता वृक्षा नार्यो भर्तृपरायणाः ॥२६९  
आयुष्मन्तश्च शिशवो जायते भक्तिरच्युते ।  
यः करोति विधानेन यजनं जलशायिनः ॥२७०  
अनुकोटिफलं तत्र प्राप्नोत्येव न संशयः ।  
यस्त्विदं शृणुयान्नित्यं क्षीराब्धियजनं हरेः ॥२७१

सर्धान् कामानवाप्नोति विष्णुलोकश्च विन्दति ।  
 पुष्पिते तु रसाले तु तत्राप्युत्सवमात्मनः ॥२७२  
 त्रिवासरं प्रकुर्वीत दोलानाम महोत्सवम् ।  
 उपोषितः संयतात्मा दीक्षितो माधवं हरिम् ॥२७३  
 छत्रचामरषादिभिः पताकैः शिविकां शुभाम् ।  
 आरोप्यालङ्कृतं विष्णुं स्वयञ्च समलङ्कृतः ॥२७४  
 हरिद्रां चिकिरन्तो वै गायन्तः परमेश्वरम् ।  
 गच्छेयुराद्रुमं प्रातर्नरनारीजनैः सह ॥२७५  
 तत्राऽऽन्नदृक्षच्छायायां वैद्यांसम्पूजयेद्भरिम् ।  
 चूतपुष्पैः सुगन्धीभिर्माधवीभिश्च यूथिकैः ॥२७६  
 मरीचिमिश्रं दध्यन्नं मोदकञ्च समर्पयेत् ।  
 शण्ड्युत्थादीनि भक्ष्याणि पानकञ्च निवेदयेत् ॥२७७  
 सकर्पूरञ्च ताम्बूलं पूगीफलसमन्वितम् ।  
 सर्वमाचरण पूज्यं होमं पश्चात्समाचरेत् ॥२७८  
 कृत्येभ्योऽनादिपर्यन्तं विष्णुसूक्तैश्चरुं यजेत् ।  
 माधवेनैव मनुना शर्करासंयुतान् तिलान् ॥२७९  
 सहस्रं जुहुयाद्ब्रह्मै भक्षया वैष्णवसत्तमः ।  
 वैकुण्ठं पार्षदं हुत्वा होमशेषं समापयेत् ॥२८०  
 प्रत्यूचं पावमानीभिर्देवात् पुष्पाञ्जलिं हरेः ।  
 अथ दोलां शुभाकारां चन्द्रास्मिन् समलङ्कृताम् ॥२८१  
 वज्रवैद्युर्माणिष्यमुक्ताविद्रुमभूषिताम् ।  
 तस्यां निवेश्य देवेशं लक्ष्म्या साद्धं प्रपूजयेत् ॥२८२

गन्धैः पुष्पैर्धूपदीपैः फलैर्मह्यैर्निवेदनैः ।  
 शुशुमाक्षतदूर्वाग्रतिलसर्पिर्मधूदरुम् ॥२८३  
 सर्पपाणि च निक्षिप्य अष्टाङ्गाभ्यं निवेदयेत् ।  
 पादेषु चतुरो वेदान् मन्त्राण्योक्तेषु चास्तरे ॥२८४  
 नागराजञ्च दोलायां पीठे सर्वस्वरैरपि ।  
 व्यजनैर्वनतेयञ्च सावित्रीं चामरे तथा ॥२८५  
 द्विनिशामर्चयेद्दिक्षु उर्ध्वं दृष्ट्वा वृहस्पतिः ।  
 अधस्ताद्यण्डिकं रद्रं क्षेत्रपालविनायकौ ॥२८६  
 विताने चन्द्रसूर्यौ च नक्षत्राणि प्रदांस्तथा ।  
 वेदाश्च सेतिहासाश्च पुराणं देवता गणा ॥२८७  
 भूधराः सागराः सर्वे पूजनीयाः समन्ततः ।  
 एवं सम्पूज्य दोलाया लक्ष्म्या सह जनार्दनम् ॥२८८  
 दोलयेद्य ततो दोला चतुर्वैदेष्वतुर्दिशम् ।  
 सूर्यैश्च ब्रह्मणोऽपत्यैः सामगानैः प्रयन्धनैः ॥२८९  
 नामभिः कीर्तयन् देवमेव मन्दं प्रदोलयेत् ।  
 स्त्रियं स्वलङ्घ्यताः सर्वा गायन्त्यो विभुमध्युतम् ॥२९०  
 चरितं रघुनाथस्य कृष्णस्य चरितं तथा ।  
 दोलयेद्युर्मुदा भक्त्या दोलायां परमेश्वरम् ॥२९१  
 दोलाया दर्शनं विष्णोर्महापातकनाशनम् ।  
 भक्तिप्रसादनं नृणां जन्ममृत्युनिवृत्तनम् ॥२९२  
 देवाः सर्वे विमानस्था दोलायामर्चितं हरिम् ।  
 दर्शयन्ति ततः पुण्यं दोलानामोत्सवं हरेः ॥२९३



भक्त्या नीराजनं दद्यात् श्रीसूक्तेनैव वैष्णव ।  
 ब्राह्मणान् भोजयेत्परचादक्षिणाभिश्च तोषयेत् ॥२६४  
 एव त्रिवासरं कुर्यादुत्सवं वैष्णवोत्तम ।  
 प्रद्युम्नमेवं कुर्वति तत्तत्काले तु वैष्णव ॥२६५  
 श्रौतेनैव च मार्गेण जपहोमपुर सरम् ।  
 वत्सव वासुदेवस्य यथाशक्त्या समाचरेत् ॥२६६  
 यत्र यत्रोत्सवं विष्णो कर्तुमिच्छति वैष्णव ।  
 होम कुर्यात्तत्र मन्त्रैस्तथाविष्णुप्रकाशकैः ॥२६७  
 अतो देवेतिसूक्तेन तथा विष्णोर्नुक्तेन च ।  
 परोमात्रेति सूक्ताभ्या पौरुषेण च वैष्णव ॥२६८  
 नारायणानुवाकेन श्रीसूक्तेनापि वैष्णव ।  
 प्रत्युच जुहुयाद्वह्नौ चरुणा पायसेन वा ॥२६९  
 चतुर्भिर्वैष्णवैर्मन्त्रैः पृथगष्टोत्तरं शतम् ।  
 आज्यहोम प्रकुर्वीत गायत्र्या विष्णुसंज्ञया ॥३००  
 वैकुण्ठपार्षदं हुत्वा शेषं पूर्ववदाचरेत् ।  
 अनादिश्रेष्ठेषु सर्वेषु कुर्यादिष विधानतः ॥३०१  
 ब्राह्मणान् भोजयेद्विप्रान् सर्वं सम्पूर्णतां व्रजेत् ।  
 अथवा मन्त्ररत्नेन सहस्रं प्रतिवासरम् ॥३०२  
 हुत्वा पुष्पाणि दत्त्वा च शेषं पूर्ववदाचरेत् ।  
 होमं विना न वक्तव्यं मुत्सवं परमात्मनः ॥३०३  
 जपहोमविहीनन्तु न गृह्णाति जनार्दन ।  
 तस्मान्छीतं प्रवदयामि विष्णोराराधनं नृप ॥३०४

अश्वयुक्कृष्णपक्षे तु सम्यगभ्युदिते रवौ ।  
 आदर्शात् सप्तरात्रन्तु पूजयेत्प्रभुमव्ययम् ॥३०५  
 स्नात्वा नद्यां विधानेन कृतकृत्यः समाहितः ।  
 गृहीत्वा जलकुम्भन्तु वारुणान् प्रघरान् प्रजेत् ॥३०६  
 पञ्चत्वक्पल्लवान् पुष्पाण्यभिमन्त्र्य चिनिक्षिपेत् ।  
 सौरभेयीं तथा मुद्रां दर्शयित्वा च पूजयेत् ॥३०७  
 त्रिवारं वैष्णवैर्मन्त्रैः शङ्खेनैवाभिषेचयेत् ।  
 पूजयित्वा विधानेन गन्धपुष्पाक्षतादिभिः ॥३०८  
 अपूपान् पायसं शक्तनू कृसरश्च निवेदयेत् ।  
 मन्त्रीरष्टोत्तरशतं दद्यात् पुष्पाणि चक्रिणः ॥३०९  
 पश्चाद्धोमं प्रकुर्वीत साज्येन चरणा ततः ।  
 कस्य वा नतिसूक्तेन वैष्णवैरपि वैष्णवः ॥३१०  
 हुत्वा तु मन्त्ररत्नेन घृतमष्टोत्तरं शतम् ।  
 वैकुण्ठं पार्षदं हुत्वा वैष्णवान् भोजयेत्ततः ॥३११  
 स रुद्रोजनसंयुक्तः क्षितिशायी भवेन्नृशि ।  
 सायाह्नेऽपि समभ्यर्च्य जातीपुष्प सुगन्धिभिः ॥३१२  
 बहुभिर्दीपदण्डैश्च सेवेरन् पुरवासिनः ।  
 एवं महोत्सवं कृत्वा धनधान्ययुतो भवेत् ॥३१३  
 तत्सत्कालोचितं विष्णोरत्सवं परमात्मनः ।  
 द्रव्यहीनोऽपि कुर्वीत पत्रपुष्पैः फलादिभिः ॥३१४  
 समिद्धिर्वित्यपत्रैर्वा होमं कुर्वीत वैष्णवः ।  
 सन्तपयेच्च विप्रास्तु कोमलैस्तुलसोदलैः ॥३१५

भक्त्या वै देवदेवेशः परितुष्टो भवेद् ध्रुवम् ।  
 आस्तिक्यः श्रद्धधानश्च वियुक्तमदमत्सरः ॥३१६  
 पूजयित्वा जगन्नाथं यावज्जीवमतन्द्रितः ।  
 इह भुक्त्वा मनोरम्यान् भोगान् सर्वान् यथेप्सितान् ॥३१७  
 मुक्तेन देहमुत्सृज्य जीणैस्त्वच मियोरगः ।  
 स्थूलसूक्ष्मात्मिकाब्ज्येमां विहाय प्रकृतिन्दुतम् ॥३१८  
 साहस्यमीश्वरस्याऽऽशु गत्वा तु स्वजनैः सह ।  
 दिव्यं विमानमारुह्य धैरुण्डं नाम भास्करम् ॥३१९  
 दिव्याप्सरोगणैर्युक्तो दिव्यभूषणभूषितः ।  
 स्तूयमानः सुगणैर्गीर्णमानश्च किन्नरैः ॥३२०  
 ब्रह्मलोकमतिक्रम्य गत्वा ब्रह्माण्डमण्डपम् ।  
 विष्णुचक्रेण वै भिरुवा सर्वानावरणान् घनान् ॥३२१  
 अतीत्य धीरजामाशु सर्ववेदस्तवा नदीम् ।  
 अभ्युद्गच्छद्भिरव्यमैः पूज्यमानः सुरोत्तमैः ॥३२२  
 सम्प्राप्य परमं धाम योगिगम्यं सनातनम् ।  
 यद्गत्वा न निवर्हन्ते तद्धाम परमं हरेः ॥३२३  
 उद्विण्णोः परमं धाम सदा पश्यन्ति योगिनः ।  
 शीताशु होटिसङ्काशैः सर्वैश्च भवनेरुतम् ॥३२४  
 आरूढयौवनैर्द्विजैः पुंभिः स्त्रीभिश्च सङ्कुलम् ।  
 सर्वलक्षणसम्पन्नैर्दिव्यभूषणभूषितैः ॥३२५  
 अक्षरं परमं व्योम यस्मिन्देवा अधिष्ठिताः ।  
 इरावती धेनुमती व्यस्तभ्नासूयवासिनी ॥३२६

यत्र गावो भूरिशृङ्गा साऽयोध्या देवपूजिता ।  
 अनन्तयूहलोकैश्च तथा तुल्यशुभावदै ॥३२७  
 सर्ववदमयं तत्र मण्डप सुमनोहरम् ।  
 सहस्रस्थूणसदसि ध्रुवे रम्योत्तरे शुभे ॥३२८  
 तस्मिन् मनोरमे पीठे धर्माद्यै सूरिभिर्वृते ।  
 सहाऽऽसीत कमलया दृष्ट्वा देव सनातनम् ॥३२९  
 स्तुतिभि पुष्पलाभिश्च प्रणम्य च पुन पुन ।  
 \* प्रहृष्टपुलको भूत्वा तेन चाऽऽलिङ्गित क्रमात् ॥३३०  
 पूजित सरलैर्भोगै श्रिया चापि प्रपूजित ।  
 अनन्तविहगेशाद्यै रचित सवदैवतै ॥३३१  
 तेषामन्यतमो भूत्वा मोदते तत्र देववत् ।  
 एषु केषु च लोकेषु तिष्ठते कमलापति ॥३३२  
 तेषु तेष्वपि देवस्य नित्यदासो भवेत्सदा ।  
 दासवत्पुत्रवत्तत्र मित्रवद् बन्धुवत् सदा ॥३३३  
 अश्नुते सलफान् कामान् सह तेन विपश्चिता ।  
 इमान् लोकान् कामभोग कामरूप्यनुसञ्चरन् ॥३३४  
 सर्वदा दूरविध्यस्तदुत्पावेशलवाराक ।  
 गुणानुभवजप्रीत्या कुर्याद्दानमशेषत ॥३३५  
 इवमेव पर मोक्ष विदु परमयोगिन ।  
 काङ्क्षन्ति परमं दासा मुक्तमेक महर्षय ॥३३६  
 हरेर्दास्यैकपरमा भक्तिमालम्ब्य मानव ।  
 इदं मुक्तो राजर्षे । सर्वकर्मनिधन्धनै ॥३३७

इति वृद्धहारीतस्मृतौ विशिष्टपरमधर्मशास्त्रे नानाविधोत्सवविधानं  
 नाम सप्तमोऽध्यायः । ,

॥ अष्टमोऽध्यायः ॥

अथ विष्णुपूजाविधिवर्णनम् ।

हारीत उवाच ।

अथ वक्ष्यामि राजेन्द्र ! विष्णुपूजाविधिं परम् ॥१

श्रौतं महर्षिभिः प्रोक्तं यशिष्ठाद्यैः पुरातनैः ।

वैराग्यसेधं भृग्व्याद्यैः सनकाद्यैश्च योगिभिः ॥२

वैष्णवैर्वैदिकैः पूर्वैर्यथादाचरितं पुरा ।

तत्ते वक्ष्यामि राजे द्र ! महाप्रियतमं हरेः ॥३

प्राप्ते मुहूर्ते उत्थाय सम्यगाचम्य धारिणा ।

ध्यात्वा हृत्पङ्कजे विष्णुं पूजयेन्मनसैव तु ॥४

तं प्रत्तयेति सूक्तेन बोधयेत्कमलापतिम् ।

घनस्पतेति सूक्तेन तूर्यधोपं निनादयेत् ॥५

कुर्यात्प्रदक्षिणं विष्णोरसौदेवत्येन तु ।

तद्विष्णोरिति मन्त्राभ्यान्त्रिंशन्मन्त्राऽऽचरेत्ततः ॥६

कृतशौचस्तथाऽऽचान्तो दन्तधावनपूर्वकम् ।

शनानं कुर्याद्विधानेन धात्रीश्रीतुलसीयुतम् ॥७

नारायणानुवाकेन कृत्वा तत्राधमर्पणम् ।

कृतकृत्यः शुचिर्भूत्वा तपेयित्वा च पूर्ववत् ॥८

धृतोभ्वेपुण्ड्रदेहश्च पवित्रकर एव च ।

प्रविश्य मन्दिरं विष्णोः संमार्जन्या विशोधयेत् ॥९

वास्तोऽप्येति वै सूक्तं जपन् संमार्जयेद् गृहम् ।  
 आगाय इति सूक्तेन गोमयेनानुलेपयेत् ।  
 आनोभद्रेति सूक्तेन रङ्गवह्निश्च निक्षिपेत् ॥१०  
 ततः फलशामादाय जपन्वै शाकुनीश्रृङ्चः ।  
 गत्वा जलाशयं रम्यं निर्मलं शुचि पाण्डुरम् ॥११  
 इमं मे गङ्गेति ऋचा जलं भक्त्याऽभिमन्त्रयेत् ।  
 आपो अस्मानिति ऋचा कलशं क्षालयेद् द्विजः ॥१२  
 समुद्रं ज्येष्ठमन्त्रेण गृहीयात्प्रयतो जलम् ।  
 वतस्मेनं वस्तुभिरिति वस्त्रेणाऽऽच्छाद्य वैष्णवः ॥१३  
 प्रसन्नाजेति सूक्तं वै जपन् सम्प्रविशेद् गृहम् ।  
 धान्योपरि तथा कुम्भं न्यसेदक्षिणतो द्वरे ॥१४  
 इमं मे धरुणेत्यृचा मङ्गलद्रव्यसंयुतम् ।  
 अञ्जन्ति (मित्र)त्वेति सूक्तेन कुर्यात्पुष्पस्य सञ्चयम् ॥१५  
 अव्वंश्चि सुमगे द्वाभ्यां गन्धांश्च पेपयेत्तथा ।  
 धान्यतः प्रयतो भूत्वा श्रीसूक्तेनैव वैष्णवः ।  
 विश्वानि न इति ऋचा दीपं दद्यात्सुदीपितम् ॥१६  
 तत्तत्प्राग्नेषु सलिलं दत्त्वा गन्धांस्तु निक्षिपेत् ।  
 शम्भो देव्या च सलिलं गायत्र्या च कुशांस्तथा ॥१७  
 आयनेति च पुष्पाणि यवोऽसीति ऋचाऽक्षतान् ।  
 गन्धद्वारेति वै गन्धा नौपध्या तिलसर्पपान् ॥१८  
 काण्डात्काण्डेति दूर्वाग्रान् सदिरण्येति रत्नकम् ।  
 हिरण्यरूपेति ऋचा हिरण्यं निक्षिपेत्तथा ॥१९

एयं द्रव्याणि निक्षिप्य तुलस्या च समर्पयेत् ।  
 सवितुश्रेत्यादि ऋचा दद्यादध्योदकं हरेः ॥२०  
 श्रियेति पादेति ऋचा दद्यात् पादजलं तथा ।  
 भद्रन्ते हस्तेत्यनेन हस्तप्रक्षालनं चरेत् ॥२१  
 धयः सुपर्णेति ऋचा मुखसम्मार्जनं तथा ।  
 आपो अस्मानिति ऋचा वक्त्रगण्डूपमेव च ॥२२  
 हिरण्यदन्तेत्यनेन दन्तफाष्ठं निवेदयेत् ।  
 गृहस्पते प्रथमेति जिह्वालेपनमेव च ॥२३  
 आपयित्वा उ भेषजीरिति गण्डूपमाचरेत् ।  
 आपो हिष्ठा इत्यनेन कुट्यादाचमनीयकम् ॥२४  
 मूर्धामय इत्यनेन तैलाभ्यङ्गं समाचरेत् ।  
 मूर्धानन्दीप इत्यनेन गन्धान् केशेषु लेपयेत् ॥  
 तद्विद्यस्तस्थौ केशवन्ते केशान् वै क्षालयेत्पुनः ।  
 भ्रिये पुरन(इ)ति ऋचा तद्वर्चोद्वर्तनादिकम् ॥२६  
 आपोयम्यः प्रथममिति सूक्तेनाभ्यङ्गसूचनम् ।  
 कृत्वाऽदः स्नापयेत्सूक्तं वैष्णवैर्गन्धवारिणा ॥२७  
 ततः पञ्चामृतैर्गव्यं स्नापयेत्तत्रकाशकैः ।  
 आप्यायस्वेत्यृचा क्षीरं दधिक्राव्येति वै दधि ॥२८  
 घृतमामिक्षेति घृतं मधुवातेति वै मधु ।  
 तत्ते वयं यथा गोभिरित्यृचेक्षुरसं शुभम् ॥२९  
 एभिः पञ्चामृतैः स्नाप्य चन्दनञ्च निवेदयेत् ।  
 श्रीसूक्तपुरुषसूक्ताभ्यां पुनः संस्नापयेद्दरिम् ॥३०

वनस्पतेति सूक्तेन कुड्याद् घोषसमन्वितम् ।  
 श्रिये जात इति ऋचा दद्यान्नोराजनं ततः ॥३१  
 युमा मुरासेति ऋचा वस्त्रेणाङ्गं प्रमार्जयेत् ।  
 प्रसेनानेति मन्त्रेण वस्त्रं सम्प्रेष्येत्ततः ॥३२  
 युवं यस्त्राणीति ऋचा उत्तरीयं तथैव च ।  
 सवेत्राऽचमनं दद्याच्छन्नो देवीस्युचा च तु ॥३३  
 उपवीतं ततो दद्याद् ब्राह्मणानिति वै ऋचा ।  
 ऋतस्य सन्तुवितते दद्यात्कुशपत्रिन्नरम् ॥३४  
 पश्चादाचमनं दद्याद् भूषणैर्मूपयेद्दक्षिम् ।  
 विन्धजित्सूक्तेन दद्याद् भूषणानि शुभानि वै ॥३५  
 हिरण्यकेशेति ऋचा केशान् संशोपयेत्तथा ।  
 सुपुण्ड्रैः कर्तरी दद्याद्विहिसोतेत्यनेन वै ॥३६  
 कृपायमिन्द्र ते रथ इत्युचा तिलकं शुभम् ।  
 गन्धश्च लेपयेद् गात्रे गन्धद्वारेति वै ऋचा ॥३७  
 घ्रातारमिन्द्र इत्युचा पुष्पमाला समर्पयेत् ।  
 चक्षुषः पितेति ऋचा चक्षुषो रक्षनं शुभम् ॥३८  
 सदस्रशीर्षेति ऋचा किरीटं शिरसि क्षिपेत् ।  
 ऋकूसामाभ्यामिति श्रोत्रे गुण्डले मा वरेर्जयेत् ॥३९  
 दमूनसौ अपस इति केयूरादिविभूषणम् ।  
 आश्रेते यस्येति ऋचा हाराणि विमलानि च ॥४०  
 हस्ताभ्यां दशशाखाभ्यामित्युचा चाक्षुजीयरुम् ।  
 अस्य त्रिभूजमधुना सूर्याके विन्यसेच्छुभे ॥४१



इद्रन्त्वदुत्तर इति कटिसूत्रं सुतोचिपम् ।  
 स्वस्तिरा विशास्पतिरित्यायुधानि समर्पयेत् ॥४२  
 द्यौर्नय इन्द्रेति दद्याच्छत्रं सुविमलं तथा ।  
 सोमः पयर्ततेत्युचा चामरं हैममुत्तमम् ॥४३  
 सोमापूपणेत्युचा तालवृन्तौ सुवर्चसौ ।  
 रूपं रूपमिति ऋचा दद्यादादर्शनं शुभम् ॥४४  
 इन्द्रमेव धीयमेति ऋचा ऽऽसने विनिवेशयेत् ।  
 इहैवास्तमेति ऋचा दद्याच्च कुराविष्टरम् ॥४५  
 आपस्वन्तरिति ऋचा पाद्यं दद्याच्च भक्तितः ।  
 गौरीमिमाय सूक्तेन अर्घ्यं हस्ते निवेदयेत् ॥४६  
 नतमंहो न दुरितमित्याचमनं समर्पयेत् ।  
 पिशासोममित्यनेन मधुपर्कश्च प्राशयेत् ॥४७  
 अपूर्वगन्ते सधिष्टयेति पुनराचमनं चरेत् ।  
 अर्चन्तस्तगाहवामहेत्यक्षतैरर्चयेच्छुभै ॥४८  
 तण्डुलाः सहरिद्रास्तु अक्षवा इति कीर्तिताः ।  
 विष्णोर्भुङ्कमिति सूक्तेन घूपं दद्याद् घृतान्वितम् ॥४९  
 भावाभितेति सूक्तेन दीपान्नीराजयेच्छुभान् ।  
 इदन्ते पात्रमिति(च)भाजनं विन्यसेच्छुभम् ॥५०  
 तस्मा अरद्भमामयेति पात्रप्रक्षालनं चरेत् ।  
 अस्मिन् पदे पर(मेतच्छिवासे)मिति गग्राज्येनाभिपूरयेत् ।  
 पितुं नुस्तोपमिति सूक्तेन दद्यादन्नादिकं हविः ॥५१

तदत्यानिकमिति ऋचा सहिरण्यं घृतं तथा ।  
 तस्मिन् रायवतय इति दद्यादापोशने घृतम् ॥५२  
 ततः प्राणाद्याहुतयो होतव्याः परमात्मनि ।  
 अग्ने विवस्वदुपस इति पञ्चभिश्च यथाक्रमम् ॥५३  
 समुद्रा दूमीति सूक्तेन घृतधाराः समाचरेत् ।  
 परोमात्रेति सूक्तेन भोजयेत्सश्रियं हरिम् ॥५४  
 तुभ्यं हित्वान इत्यनेन वयः सर्वं निवेदयेत् ।  
 इन्द्र पीवेत्यनेन दद्यादापोशनं पुनः ॥५५  
 प्रत आग्निनि पवमानेत्यृचा हस्तप्रक्षालनं चरेत् ।  
 सरस्वतीं देवयन्त इति (तिसृभिर्)र्गण्डूपमेव च ॥५६  
 वृष्टिं दिवीशः तद्वारेति (द्वाभ्यां) दद्यादाचमनं ततः ।  
 शिरः जिज्ञामिनमिति ऋचा मुखदस्तौ च मार्जयेत् ॥५७  
 दक्षिणावतामिति ऋचा दद्यात्ताम्यूलमुत्तमम् ।  
 स्वादुः पयस्येति ऋचा दद्यादाचमनं पुनः ।  
 आर्ज्यं गौरिति सूक्ताभ्यां दद्यात् पुष्पाञ्जलिं ततः ॥५८  
 दीपन्नीराजयेत्पश्चाद् घृतसूक्तेन वैष्णवः ।  
 यत इन्द्रेत्यादि पद्भिर्दिक्षु रक्षां प्रदापयेत् ॥५९  
 यज्ञा देवानामिति सूक्तेन उपस्थानजपं चरेत् ।  
 तद्विष्णोरिति (च)द्वाभ्यां प्रणमेद्यैव भक्तितः ॥६०  
 गौरीमिमायेति ऋचा दद्यादाचमनन्ततः ।  
 सहस्रनामभिः स्तुत्वा पश्चाद्गोमं समाचरेत् ॥६१  
 प्रातरौपासनं हुत्वा तस्मिन्नग्नौ जनार्दनम् ।  
 ध्यात्वा संपूज्य जुहुयाद्वैष्णवैः प्रत्यूचं हविः ॥६२

श्रीभूसूक्ताभ्यामपि च हुत्वा घृतशुतं हविः ।  
 याभिः सोमो मोदतेत्यनेन मातृभ्यां जुहुयाद्वतिः ॥६३  
 किंस्त्रिद्वनमित्या(तिमृचाअ)न्नन्तं जुहुयाद्वतिः ।  
 सुपर्णं विप्रा इति ऋचा सुपर्णाय महात्मने ॥६४  
 चमूष ऋषेय इति च सेनेशायापि हूयताम् ।  
 पवित्रन्त इति द्वाभ्याश्चक्रायामिततेजसे ॥६५  
 स्वादुपं स इति ऋचा हेतिभ्यो जुहुयाद्वतिः ।  
 इन्द्रश्रेष्ठानितीन्द्राय अग्निमूर्धेति पायकम् ॥६६  
 यमाय सोमेति यमन्नैर्ऋतं मौपुणेत्यृचा ।  
 यष्टिद्वितेति धरुगं वायवायाहीति मारुतम् ।  
 द्रविणोदा ददातु नाद्रविणाद्याशमेव च ॥६७  
 श्यम्परुऋ(कमित्यू)चा रुद्र मानः प्रजां प्रजापतिम् ।  
 यज्ञेनेत्यृचा साध्येभ्यो मरुतो यद्धरेति च ॥६८  
 योनः सपलेति ऋचा वसुरुद्रेभ्य एव च ।  
 विश्वेदेवाः स च (वाश्च)तसृभिर्ये देवा स ऋचा तथा ॥६९  
 सर्वेभ्यश्चैत्र देवेभ्यो जुहुयादन्नमुत्तमम् ।  
 नासत्याभ्यामिति ऋचा अग्निच्छन्दोभ्य एव च ॥७०  
 सोम(मा)पूषे(पणे)ति ऋचा सूर्याचन्द्रमसोस्तथा ।  
 संसमिद्युद(व)सूक्तेन वैष्णवेभ्यस्तथापुनः ॥७१  
 तत स्विष्टकृतं हुत्वा भुक्तेभ्यश्च घर्लि क्षिपेत् ।  
 नमो महद्भ्य ऋ(इत्यृ)चा घर्लि भुवि विनिक्षिपेत् ॥७२

आचम्य वारिणा पश्चान्मन्त्रयागं समाचरेत् ।  
 एतच्छ्रौतं नृपश्रेष्ठ ! मुनिभिः सम्प्रसीतितम् ॥७३  
 सम्यगुक्तं मया तेऽद्य निश्चितं मतमुत्तमम् ।  
 एतत्प्रियतमं विष्णो स्त्रि(त्रि)यो नाथस्य सर्वदा ॥७४  
 श्रौतेनैव हरिं देवमर्चयन्ति मनीषिणः ।  
 श्रौतस्मात्तांगमैर्विष्णो स्त्रिभिर्धं पूजनं स्मृतम् ॥७५  
 एतच्छ्रौतं ततः स्मात्तं पौरुषेण च यन् स्मृतम् ।  
 मन्त्रैरष्टाक्षराद्यैस्तु तद्विव्यागममुच्यते ॥७६  
 श्रौतमेव विशिष्टं स्यात्तेषां नृपधरात्तमः ।  
 श्रौतमेव तथा विप्राः प्रबुर्वन्ति जनार्दने ॥७७  
 यजन्ति केचित्त्रितयन्त्रिसन्ध्यासु च देशिकाः ।  
 यजन्ति केचित्त्रितयन्त्रयो धर्णां द्विजोत्तमाः ॥७८  
 शुश्रूषा च तथा नामवीर्तनं शूद्रजन्मनः ।  
 अपि वा परमे कान्तिं बालकृष्णः पुर्नरिम् ॥७९  
 स्त्रीणामप्यर्चनीयं स्यात्स्ववर्णस्याऽऽनुरूपतः ।  
 मन्त्ररत्नेन वै पूज्यो हित्वा श्रौतं विधानतः ॥८०  
 एतमभ्यर्चनं विष्णोर्मुनिभिः सम्प्रसीतितम् ।  
 श्रौतस्मात्तांगमात्ताश्च नित्यनैमित्तिका क्रिया ॥८१  
 प्रायश्चित्तमवृत्यानां दण्डमयात्तायिनाम् ।  
 अधुना सम्प्रवक्ष्यामि वृत्तिमैकान्तिलक्षणाम् ॥८२  
 नारीणामपि वर्तव्या अहन्यहनि शाश्वतीम् ।  
 चत्वार्य पश्चिमे यामे भर्तुं पूर्वमतन्द्रिताः ॥८३

कृत्वा शौचं विधानेन दन्तधावनमाचरेत् ।  
 कृत्वाऽथ मङ्गलनानं धृत्वा शुक्लाम्बरं तथा ॥८४  
 आचम्य धारयेद्दूर्घपुण्ड्रं शुभ्रं मृद्वयं तु ।  
 चन्दनेनापि कस्तूर्याः बुद्धिमेनापि वा सति ॥८५  
 जप्त्वा मन्त्रं गुरुं पश्चादभिनन्द्य च वैष्णवाम् ।  
 नमस्कृत्वा जगन्नाथं जप्त्वा च शरणागतिम् ॥८६  
 आत्मानं समलङ्कृत्य चिन्तयेन्मधुसूदनम् ।  
 गृहभाण्डादिकं सर्वं बाग्दत्ता नियतेन्द्रियाः ॥८७  
 संशोषयेत्प्रतिदिनं यज्ञाय परमात्मनः ।  
 मार्जयित्वा गृहं पश्चाद् गोमयेनानुलिप्य च ॥८८  
 रत्नवस्त्रादिभिः पश्चादलङ्कृत्य समन्वतः ।  
 चतुर्विधानां भाण्डानां क्षालनन्तु समाचरेत् ॥८९  
 पाचकानि वह्निष्ठानि जलस्याऽऽनयनानि च ।  
 स्थापनानि जलार्थं वा चतुर्विधं शुद्धकृतम् ॥९०  
 पृथक् पृथग्गुह्यानि तेषु क्षेत्र्यपि विन्यसेत् ।  
 नान्योन्यं सङ्करं कुर्याद्भाण्डानां सर्वकमसु ॥९१  
 तानि तानि स्पृशेत्पाणिं प्रक्षाल्यैव पुनः पुनः ।  
 सम्यक् प्रक्षाल्य भाण्डानि दादयेद्यज्ञियैस्तृणैः ॥९२  
 पुनः प्रक्षाल्य सन्तप्त्वा पश्चात्पचनमाचरेत् ।  
 रसभाण्डानि सर्वाणि क्षालयेदुपचारिणा ॥९३  
 चतुर्भिः पञ्चभिर्प्यात्वा मूर्ध्निष्वौ क्षालयेत्तदा ।  
 वह्निर्न निष्कामयीत पाचकानि गृहान्तिकात् ॥९४

ताभिरेव तु दद्यात्तु मुञ्जीत हि कथञ्चन ।  
 दत्त्वा पात्रान्तरे दद्यात्कास्येवा मृण्मयेऽपि वा ॥६५  
 पुटे पण्मये चाऽपि दद्यादत्र तु वैष्णवे ।  
 म्रुवं दारुमयं कोस्यं कुर्वीतायोमयं न तु ॥६६  
 न दद्यादारनालस्य घटं तस्मिन् महायने ।  
 आरनालस्य यत् कुम्भन्त्यजेन्मद्यघटं यथा ॥६७  
 आरनालङ्कारशाकं करञ्जं तिलपिष्टकम् ।  
 लशुनं मूलकं शिग्रुं छत्रां (त्रं) कोशातकीफलम् ।  
 अलावुश्चान्नं शाकञ्च करनिर्मयितं दधि ॥६८  
 धिम्यं बिहज्जञ्च निर्यासं पीलुं श्लेष्मातकं फलम् ।  
 आरग्वधञ्च निर्गुण्डीं कालिङ्गनालिकां तथा ॥६९  
 नालिकेर्याल्यशाकञ्च श्वेतवृन्ताकमेव च ।  
 उप्राविमानुपीक्षीरमयत्सानिर्दशाहगोः ॥१००  
 एतान्यकामतः स्पृष्ट्वा सवासा जलमाविशेत् ।  
 मत्स्या जग्म्या व्रतं कुर्यान्मुर्जं जग्म्या पतेदधः ॥१०१  
 केशानां रञ्जनार्थं वा न स्पृशेदारनालकम् ।  
 चन्दनं घनसारं वा मकरन्दमथापि वा ॥१०२  
 मापमुद्गादिचूर्णं वा तक्रं जाम्बीरमेव वा ।  
 तित्तिदङ्गञ्च कलायं वा केशरञ्जनमाचरेत् ॥१०३  
 ऊर्ध्वं मासात्त्यजेत्सर्वं मृद्भाण्डं वैष्णवोत्तमः ।  
 न त्यजेद्भोद्भाण्डानि तापयेच्च हुताग्ने ॥१०४

ऽध्यायः सभावदुष्यादिद्रव्यभाण्डादीना संशुद्धियर्णनम् । १२११

दारुणां सन्त्यजेद्वाऽपि तक्ष्णं वा समाचरेत् ।  
अश्मनामश्मभिर्घ्यात्वा गोवालैर्घर्षयेत्तथा ॥१०५  
सूतके मृतके वाऽपि शुनादिस्पर्शने तथा ।  
स्पर्शने वाऽप्यमक्ष्याणां सद्य एव परित्यजेत् ।  
एवं संशोध्य भाण्डानि यज्ञार्थं याचयेद्भुविः ॥१०६  
सम्प्रोक्ष्याद्भिः शुचौ देशे धान्यं संशोधयेद् बुधः ।  
अवहन्याच्छुभतरं गायन्ति मधुसूदनम् ॥१०७  
संशोध्य तण्डुलान् पश्चादद्भिः संश्चालयेत्त्रिभिः ।  
अम्भस्त्रिवारं घृत्त्रेण शोधयित्वा घटान्तरे ॥१०८  
कुशेनैव पवित्रेण तण्डुलान् निर्वपेच्छुभान् ।  
अन्तर्धाय कुरां तत्र मन्त्ररत्न मनुस्मरन् ॥१०९  
पाचयेत्सपवित्रेण वाग्यतो नियतेन्द्रियः ।  
उपविश्य शुभे कुण्डे वह्निं प्रज्वालयेत्ततः ॥११०  
अवैष्णवस्य शुद्धस्य पतितस्य तथैव च ।  
पापण्डस्याप्यशुद्धस्य गृहेष्वग्निं विवर्जयेत् ॥१११  
सम्प्रोक्ष्य मन्त्ररत्नेन यद्भिं कुराजलैस्त्रिभिः ।  
यज्ञियैर्विमलैः काष्ठैर्व्यजनेन प्रदीपयेत् ॥११२  
सान्तर्धानमुखेनापि धमयित्वा प्रदीपयेत् ।  
पालाशैर्वादिरेर्विल्वैर्गोशकृत्पिष्टकैरपि ॥११३  
अन्यैर्वा यज्ञियैः काष्ठैस्तृणैर्वा यज्ञियैः शुभैः ।  
वर्जयेन्मद्यदिग्धानि तथा बैभीतकानि च ॥११४

आरग्वधानि शिप्रूणि तथा नैर्गुण्डिकानि च ।  
 नैपानि च कपित्थानि कार्पासैरण्डकानि च ॥११५  
 अमेध्यानि सक्नीटानि दौर्गन्धानि तथैव च ।  
 असट्ठाहानि चैत्यानि काकसट्वासनानि च ॥११६  
 देवालयानि यौष्यानि तयोपकरणानि च ।  
 महिपोष्ट्रपरादीनां कारीपपीटकानि च ॥११७  
 अन्यानां पाकरोपाणि वर्जयेद्यज्ञकर्मणि ।  
 प्रदीप्यामि ततो ऽऽन्नाद्यं पच्यान्नियतमानसः ॥११८  
 चिन्तयन् परमात्मानं जपन्मन्त्रद्वयं तथा ।  
 शुद्धं हृद्यं तथा रुच्यं पश्चादभ्यन्तरं शुभम् ॥११९  
 निषिद्धानि च शाकानि फल्मूलानि वर्जयेत् ।  
 अतिरुक्षश्चातिदुष्टमतिरक्तञ्च वर्जयेत् ॥१२०  
 भायदुष्टं त्रियादुष्टं कालदुष्टं तथैव च ।  
 संसर्गदुष्टमपि च वर्जयेद्यज्ञकर्मणि ॥१२१  
 रूपतो गन्धतो वाऽपि यच्चाभक्ष्यं ससम्भवेत् ।  
 भायदुष्टञ्च यत्प्रोक्तं मुनिभिर्वर्मपारगैः ॥१२२  
 आरनालञ्च मग्नञ्च करनिर्मथितं दधि ।  
 हस्तःक्षञ्च लवणं क्षीरं घृतपयासि च ॥१२३  
 हस्तेनोद्धृत्य यत्तोयं पीतं वक्त्रेण वैकदा ।  
 शब्देन पीतं भुक्तञ्च गन्धं ताम्रेण संयुतम् ॥१२४  
 क्षीरञ्च लवणान्मिश्रं त्रियादुष्टमिदोच्यते ।  
 एकादश्यां तु यथाश्रमं यथाश्रमं राहुदर्शने ।  
 मृतके मृतके चाश्रमं शुष्कं पर्युषितं तथा ॥१२५



अनिर्दशाहगोःक्षीरं पृष्ठ्यां तैलं तथाऽपि च ।  
 नदीध्वसमुद्रगासु सिंहकर्कटयोर्जलम् ॥१२६॥  
 निःशेषजलवाप्यादौ यन्प्रविष्टं नवोदकम् ।  
 नातीतपञ्चरात्रं तत्कालदुष्टमिहोच्यते ॥१२७॥  
 शैवपापण्ड पतितैर्विकर्मस्थैर्निरीश्वरैः ।  
 अवैष्णवैर्हिजैः शूद्रैर्हरिवासरभोक्तृभिः ॥१२८॥  
 श्वकाकसूकरोष्ट्राद्यैरुदक्यासूतिकादिभिः ।  
 पुंश्चलीभिश्च नारीभिर्बुधपत्नीपतिभिस्तथा ॥१२९॥  
 हृष्टं स्पृष्टं च दत्तं च मुक्तशेषं तथैव च ।  
 अभक्ष्याणां च संयुक्तं संसर्गं दुष्टं मुच्यते ॥१३०॥  
 विम्वं शिमु च कालिङ्गं तिलपिष्टञ्च मूलकम् ।  
 कोशातकीमलाबुधञ्च तथा कट्फलमेव च ॥१३१॥  
 शा(बाली)लिका ना(रि) छिन्नेत्यादिजातितुष्टमिहोच्यते ।  
 एवं सर्गाण्यभक्ष्याणि तत्सङ्गान्यपि संत्यजेत् ॥१३२॥  
 तथैवाभक्ष्यभोक्तृणां हरिवासरभोजिनाम् ।  
 लोकायतिकविप्राणां देवतान्तरसेविनाम् ॥१३३॥  
 अद्वैष्यमानामपि च संसर्गं दूरितस्त्यजेत् ॥१३४॥  
 पक्वान्नाद्यं यथा पक्वं वाग्यतो नियतेन्द्रियः ।  
 सम्मार्जयेच्छुभतरं वारिणा वाससैव च ॥१३५॥  
 फरकैरपि घायाद्य चक्रं पौवाङ्कयेत्ततः ।  
 गन्धेन वा हरिद्रेण जलेनाप्यथ वा लिखेत् ॥१३६॥

सुदर्शनं पाञ्चजन्यं भाण्डाना यज्ञयोगिनाम् ।  
 कुशोत्तरे शुचौ देशे विन्यस्य कुशवारिणा ॥१३७  
 संप्रोक्ष्य मन्त्ररत्नेन वस्त्रेणाऽऽच्छादयेत्ततः ।  
 क्षालयित्वाऽथ देवस्य भाजनानि शुभैर्जलैः ॥१३८  
 अभिपूर्य ततो दद्याद्भोजयेच्च विशेषतः ।  
 भोजयेदागतान् फाले सखिसम्यन्धिदान्धवान् ॥१३९  
 बालान् वृद्धान् भोजयित्वा भर्तारं भोजयेत्ततः ।  
 त्ययं हृष्टा ततोऽग्नीयाद्भर्तुर्भुक्तायरोपितम् ॥१४०  
 पशाचिकाना यक्षाणा शक्ताना लिङ्गधारिणाम् ।  
 द्वादशीविमुक्तानां च संलापादि विवर्जयेत् ॥१४१  
 शैवबौद्धस्कान्दशाक्तस्थानानि न विशेषेत् क्वचित् ।  
 वर्जयेत्तत्समीपस्थं जलपुष्पफलादि च ॥१४२  
 न निरीक्षेत देवानामुत्सवादि कदाचन ।  
 स्तुतिं वाऽप्यन्यदेवाना न कुर्याच्छृणुयाच्च ॥१४३  
 कामप्रसङ्गसंलापान् परिहासादि वञ्चेत् ।  
 अन्यचिह्नाङ्कितं वस्त्रं भूषणासनभाजनम् ॥१४४  
 वृक्षं पशुं कूपगृहान् भाण्डं चैव विवर्जयेत् ।  
 अन्यालये हरिं दृष्ट्वा देवतान्तरसंसदि ॥१४५  
 नार्चयेन्नप्रणमेष्व तीर्थसेवा विवर्जयेत् ।  
 अवैष्णवस्य हस्तात्तु दिव्यदेशादुपागतम् ॥१४६  
 हरेः प्रसादतीर्थाद्यं यत्नेन परिवर्जयेत् ।  
 आकारत्रयसन्पन्नो नवेज्याकर्म्मणि स्थितः ॥१४७

प्राप्त्युपायं फलञ्चैव तथा प्राप्तिविरोधि च ।  
 ज्ञातव्यमेतदर्थस्य पञ्चकं मन्त्रवित्तमैः ॥१५१॥  
 जगतः करणत्वं च तथा स्वामित्वमैव च ।  
 श्रीशत्त्वं सगुरुत्वञ्च ब्रह्मणो रूपमुच्यते ॥१५२॥  
 देहेन्द्रियादिभ्योऽन्यत्वं नित्यत्वादिगुणौघता ।  
 श्रीहरेर्दास्य धर्मत्वं स्वरूपं प्रत्यगात्मनः ॥१५३॥  
 उपायाध्यवसायेन त्यक्त्वा कर्मोघमात्मनः ।  
 हरेः कृपावलम्बित्वं प्राप्त्युपायमिहोच्यते ॥१५४॥  
 सर्वैश्वर्यफलं त्यक्त्वा शब्दादिविषयानपि ।  
 दास्यैकमुखसङ्गित्वं विष्णोः फलमिहोच्यते ॥१५५॥  
 तज्जनस्यापराधित्वं शब्दादिष्वनुरक्ता ।  
 कृत्यस्य च परित्यागो हाकृत्यकरणं तथा ॥१५६॥  
 द्वादशीविमुखत्वं च विरोधि स्यात् फलस्य हि ।  
 अर्थपञ्चकमेतद्भि ज्ञातव्यं स्यान्मुमुक्षुभिः ॥१५७॥  
 विहितं सकलं कर्म विष्णोराराधनं परम् ।  
 निबोध तन्नृपश्रेष्ठ ! भोगार्थं परमात्मनः ॥१५८॥

धृत्यास्त्यस्य तरोरस्य सुदृढं मूलमुच्यते ।  
 त्यागेन चैव धम्मस्य निषिद्धाचरणेन च ॥११५६  
 आज्ञातिक्कमणाद्विज्ञं पतत्येव न संशयः ।  
 ज्योतिष्टोमादयः सर्वे यज्ञा धेदेषु कीर्तिताः ॥११६०  
 पुण्यघ्नताः पुराणोक्ता दाना नैमित्तिकादिषु ।  
 विष्णोभोगतया सर्वाः वर्तन्त्या वैष्णवोत्तमैः ॥११६१  
 यातूपायतया कृत्यं नित्यनैमित्तिकादिभ्यम् ।  
 सत्कृत्यं कुरुते विष्णोर्धैष्णवः स उदीरित ॥११६२  
 विष्णो रक्षतया यातु सत्कृत्यं कुरुते बुधः ।  
 स एकान्तीति मुनिभिः प्रोच्यते वैष्णवोत्तमः ॥११६३  
 यस्तु भोगतया दिङ्गोः सत्कृत्यं कुरुते सदा ।  
 स भवेत्परमैकान्ती महाभागवतोत्तमः ॥११६४  
 धर्जनीयमकृत्यन्तु सर्वेषां करणैः त्रिभिः ।  
 अकामतस्तु यत्प्राप्तं प्रायश्चित्ताद्विनश्यति ॥११६५  
 अकृत्यं वैष्णवैः पापबुध्या शास्त्रविरोधितः ।  
 एकान्त परमैकान्ति रच्यभावाच्च सन्त्यजेत् ॥११६६  
 श्रुतिमृत्युदितं धर्मं यस्त्यजेद्वैष्णवाधमः ।  
 स पापज्ज्ञेति विज्ञेयः सबलोकेषु गर्हितः ॥११६७  
 अकृत्यकरणद्वाऽपि कृत्यस्याकरणादपि ।  
 द्वादशोविमुखत्वेन पतत्येव न संशयः ॥११६८  
 तस्मात्सर्वप्रयत्नेन सत्कृत्यं सर्वदा धरेत् ।  
 आज्ञातिक्कमणाद्विष्णो मुक्तोऽपि विनिवध्यते ॥११६९

समस्तयज्ञभोक्तारं ज्ञात्वा विष्णुं सनातनम् ।  
 देवं पैत्रं तथा यज्ञं कुर्यान्नतु परित्यजेत् ॥१७०  
 त्रिदण्डमवलम्बन्ते यतयो ये महाधियः ।  
 सेषामपि हि कर्तव्यं सत्कृत्यमितरेषु किम् ॥१७१  
 ब्रह्म ब्रह्मा ब्राह्मणाश्च त्रितयं ब्राह्ममुच्यते ।  
 तस्माद् ब्राह्मेणविधिना परं ब्रह्माणमर्चयेत् ॥१७२  
 समस्तयज्ञभोक्तारमज्ञात्वा विष्णुर्नन्ययम् ।  
 वेदोदितं यः कुरुते स लोकायतिकः स्मृतः ॥१७३  
 यस्तु वेदोदितं धर्मन्त्यक्त्वा विष्णुं समर्चयेत् ।  
 स पापण्डित्वमापन्नो नरकं प्रतिपद्यते ॥१७४  
 वेदाः प्राणा भगवतो वासुदेवस्य सर्वदा ।  
 तदुक्तकर्माकुर्वाणः प्राणहर्ता भवेद्द्वरेः ॥१७५  
 विष्णोराराधनाद्वदं विना यस्तन्नन्यकर्मणि ।  
 प्रयुञ्जीत विमूढात्मा वेदहन्ता न संशयः ॥१७६  
 घत्सं माता लेढि यथा तथा लेढि स मातरम् ।  
 श्रुतं विष्णोः प्रियं ज्ञात्वा विष्णुं वेदेन वै यजेत् ॥१७७  
 सरमाद्वेदस्य विष्णोश्च संयोगो यस्तु दृश्यते ।  
 स एव परमो धर्मो वैष्णवानां यथा नृप ! ॥१७८  
 कश्चित् पुरा नृपश्रेष्ठ ! काश्यपो ब्राह्मणोत्तमः ।  
 शाण्डिल्य इति विख्यातः सर्वशास्त्रविशारदः ॥१७९  
 स तु धर्मप्रसङ्गेन विष्णोराराधनं प्रति ।  
 अवैदिकेन विधिना कृतवान् धर्मसंहिताम् ॥१८०

अवलम्ब्य मतं तस्य केचिदत्र महर्षयः ।  
 अवैदिकेन मार्गेण पूजयन्ति स्म केशवम् ॥१८१॥  
 अशास्त्रविहितं धर्मं सर्वे कुर्वन्ति मानवाः ।  
 स्याद्वास्वधावपट्कारवर्जितं स्यान्मन्दीतलम् ॥१८२॥  
 सतः क्रुद्धो जगन्नाथः शङ्खचक्रगदाधरः ।  
 इदमाह मुनिश्रेष्ठं शाण्डिल्यममितीजसम् ॥१८३॥  
 दुर्बुद्धे ! मामकं धर्मं परमं वैदिकं महत् ।  
 अवैदिकक्रियाजुष्टं प्राग्लभ्यात् कृतवानसि ॥१८४॥  
 यस्मादवैदिकं धर्मं प्रवर्तयसि मां द्विज ! ।  
 तस्मादवैदिकं लोकं निरयं गच्छ दारुणम् ॥१८५॥  
 तद्वाक्यादेव देवस्य शाण्डिल्योऽभूद्भयाकुलः ।  
 स्तुवन् प्राह जगन्नाथं प्रणिपत्य पुनः पुनः ॥१८६॥  
 ब्राह्मि ब्राह्मीहि लोकेरा ! मां विमो ! सापराधिनम् ।  
 सतः स कृपया विष्णुर्भगवान् भूतभावनः ॥१८७॥  
 दिव्यवर्षशतं विप्र ! मुक्त्वा नरकयातनाम् ।  
 ८ इत्युत्तमसे भृगोवशे जमदग्निरितीरितः ॥१८८॥  
 तत्राऽऽराध्य पुनमा तु वैदिकेनैव धर्मतः ।  
 गच्छ तस्मिन् मुनिश्रेष्ठ ! मम लोकं सुनिर्मलम् ॥१८९॥  
 इत्युक्त्वा भगवान्विष्णुस्तत्रैवान्तरधीयत् ।  
 शाण्डिल्यो निरयं प्राप्य पुनरुत्पद्य भूतले ॥१९०॥  
 वेदोक्तविधिना विष्णुमर्चयित्वा सनातनम् ।  
 विशुद्धभावात् सम्प्राप्य सद्गम परमं हरेः ॥१९१॥

तस्माद्वैदिकं धर्मं दूरतः परिवर्जयेत् ।  
 वैदिकेनैव विधिना मत्स्या सम्पूजयेद्धरिम् ॥१६२  
 श्रौतेन विधिना चक्रं घृत्वा वै बाहुमूलयोः ।  
 धृतोर्ध्वपुण्ड्रः क्षुद्रात्मा विधिनैवार्चयेद्धरिम् ॥१६३  
 कर्मणा मनसा वाचा न प्रमाद्येत् सनातनात् ।  
 न प्रमाद्येत्परं धर्मात् श्रुतिस्मृत्युक्तगौरवात् ॥१६४  
 सुशीलन्तु परं धर्मं नारीणां नृपसत्तम ! ।  
 शीलभङ्गेन नारीणां यमलोकः सुदारुणः ॥१६५  
 मृते जीवति वा पत्यौ या नान्यमुपगच्छति ।  
 सैव कीर्तिं भवाम्नोति मोदते रमया सह ॥१६६  
 पतिं या नातिचरति मनोयाकायं कर्मभिः ।  
 सा भर्तृलोकमाप्नोति यथैवारुन्धती तथा ॥१६७  
 आतांऽर्जं मुदिते हृष्टा प्रोषिते मलिना कृता ।  
 मृते म्रियेत या पत्यौ सा स्त्री ह्येया पतिव्रता ॥१६८  
 या स्त्री मृतं परिष्वज्य दग्धा चेद्भव्यवाहने ।  
 सा भर्तृलोकमाप्नोति हरिणा कमला यथा ॥१६९  
 ब्रह्मन् वा सुरापं वा कृतघ्नं याऽपि मानवम् ।  
 यमादाय मृता नारी सं भर्तारं पुनाति हि ॥२००  
 साध्वीनामिह नारीणामग्निप्रपतनादृते ।  
 नान्यो धर्मोऽस्ति विज्ञेयो मृते भर्तरि शुवचित् ॥२०१  
 वैष्णवं पतिमादाय या दग्धा हव्यवाहने ।  
 सा वैष्णवपदं याति यत्र गच्छन्ति योगिनः ॥२०२

मृते भर्तरि या नारी भग्नेद्यदि रजस्वला ।  
 चिताग्निं संप्रहेत्तावत् स्नात्वा चस्मिन् प्रदेष्टयेत् ॥२०३  
 गर्भिणी नानुगन्तया मृतं भर्तारमव्यया ।  
 ब्रह्मचर्यवतं कुर्याद्यावज्जीवमतन्द्रिता ॥२०४  
 फेरारञ्जनताम्रूलगन्धपुत्रादिसेवनम् ।  
 भूषितं रत्नयस्त्रयं कात्यपात्रे च भोजनम् ॥२०५  
 द्विवारं भोजनञ्चाक्ष्णोःस्नानं यजयेत्सदा ।  
 स्नात्वा शुक्रान्वधरा जितक्रोधा जितेन्द्रिया ॥२०६  
 न कल्कं कुहका साध्वी तन्द्रा लस्य विवर्जिता ।  
 सुनिर्मला शुभाचारा नित्यं सन्मूजयेद्भरिम् ॥२०७  
 क्षितिशायी भग्नेद्रात्रौ शुचौ देशे कुशोत्तरे ।  
 ध्यानयोगपरा नित्यं सता सङ्गव्यवस्थिता ॥२०८  
 तपश्चरणसंयुक्ता यावज्जीव समाचरेत् ।  
 चायत्तिष्ठेन्निराहारा भग्नेद्यदि रजस्वला ॥२०९  
 समर्पका सती याऽपि पाणिपूराजभोजनम् ।  
 एववारं समस्तीयाद्रजसा च परिप्लुता ॥२१०  
 एवं सुनियताहारा सम्यग्रतपरायणा ।  
 भर्ता सह समं ज्ञोति वैकुण्ठपदमव्ययम् ॥२११  
 दग्धव्यासाऽग्निहोत्रेण भर्तुं पूवमृता तु या ।  
 स्वाशमग्निं समादाय भर्ता पूर्ववदाचरेत् ॥२१२  
 कृत्वा कुशमयीं पत्नीं यावज्जीवमतन्द्रित ।  
 जुहुयादग्निहोत्रं तु पञ्चयज्ञादिकं तथा ॥२१३



ऽध्यायः ] सचक्रादिधारणपुण्ड्रक्रियाभिवानवर्णनम् । १२२१

अथ च प्रत्रजेद्विद्वान् कन्यां वाऽपि समुद्रहेतु ।  
प्रत्रज्यामपि कुर्वीत कर्म वेदोदितं महत् ॥२१४  
आत्मन्यग्निं समारोप्य जुहुयद् दत्तवान् सदा ।  
मनसा वा प्रकुर्वीत नित्यनैमित्तिकक्रियाः ॥२१५  
गृहस्थो वा यनस्थो वा यतिर्वाऽपि भवेद् द्विजः ।  
अनाश्रमी न तिष्ठेत् यावज्जीवं द्विजोत्तमः ॥२१६  
वर्णाश्रमेषु सर्वेषां पूजनीयो जनार्दनः ।  
न व्यापकेन भन्त्रेण सदैव च महीपते ॥२१७  
व्यापफाना च सर्वेषां जघायानष्टाक्षरो मनुः ।  
अष्टाक्षरस्य जप्ता तु साक्षान्नारायणः स्वयम् ॥२१८  
सत्यासं च समुद्रं सपिश्रन्दोऽधि दैवतम् ।  
न (स) दीक्षा विधि न(स)ध्यानं सार्धं मन्त्रमुद ह्वयम् ॥२१९  
ज्ञात्वा शुद्धः प्रसन्नात्मा कृत् कृत्यो जनार्दनम् ।  
मनसाऽथ चैवित्वा वा जपेत् मन्त्रं सदा बुधः ॥२२०  
वानप्रतिप्रदौ यागं स्वाध्यायं पितृतपणम् ।  
पितृक्रियाष्टाक्षरस्य जप्ता कुर्यादतन्द्रितः ॥२२१  
धृतोर्ध्वं पुण्ड्रदेहश्च चक्राङ्कितभुजस्तथा ।  
अष्टाक्षरं जपन्नित्यं पुनाति भुवनत्रयम् ॥२२२  
जपेद्भोगतया मन्त्रं सततं वैष्णवोत्तमः ।  
न साधनतया जप्यं कर्तव्यं विष्णुतत्परैः ॥२२३  
अष्टोत्तरसहस्रं वा शतमष्टोत्तरन्तु वा ।  
त्रिसन्ध्यासु जपेन्मन्त्रं तदर्थमनु चिन्तयन् ॥२२४

उपोष्य पूर्वदिवसे नद्या स्नात्वा विधानतः ।  
 आचार्यं संश्रयेत् पूर्वं महाभागवतं द्विजः ॥२२५  
 आचार्यो विष्णुमन्त्र्यच्ये पवित्रं चापि पूजयेत् ।  
 पुरतो वासुदेवस्य द्रव्याधानान्तमाचरेत् ॥२२६  
 प्रजपेद्दस्य सूक्तेन पवित्रन्तेवतेत्यृचा ।  
 पवमानस्य आद्येन ऋग्भिश्चतसृभिः क्रमात् ॥२२७  
 आज्यं हुत्वा ततश्चक्रं तदग्नौ प्रतपेद् गुरुः ।  
 चरणं पवित्रमिति यजुषा सप्तकेणाङ्कयेद्भुजम् ॥२२८  
 वामां सन्प्रतपेत्पश्चात्ताम्रं जन्येत देशिकः ॥२२९  
 अग्निर्मन्येति यजुषा तद्धोमाग्नौ प्रतप्य वै ।  
 ततस्तु पायिवै ऋग्भिर्हुत्वा पुण्ड्राणि धारयेत् ॥२३०  
 अतो देवेति सूक्तेन विष्णोर्नुक्रमणेन च ।  
 पूजयेद्वादशभिर्वं केशरादीननुक्रमात् ॥२३१  
 कुराग्रन्थिषु संपूज्य जुहुयात्ताभिरेव तु ।  
 हुत्वाऽथ चरुणा सम्यक् मृदा शुभ्रेण देशिकः ॥२३२  
 ठलाटादिषु चाङ्गेषु ऋग्भिस्ताभि क्रमेण वै ।  
 नामभिः केशवाद्यैश्च सच्छिद्राण्येव धारयेत् ॥२३३  
 अग्निं जात इति ऋचा कुङ्कुमङ्केषु धारयेत् ।  
 परोमात्रेति सूक्तेन उपस्थाय जनार्दनम् ॥२३४  
 होमशेषं समाध्याय मूर्त्युद्वापनमाचरेत् ।  
 एवं पुण्ड्रक्रियां कृत्वा नाम दशात्ततः परम् ॥२३५

प्रयः पान्तमिति सूतेन नाममूर्तिं समर्चयेत् ।  
 गवाक्ष्यं प्रत्यृचं हुत्वा नाम दद्यात् वैष्णवः ॥२३६॥  
 अभिम्रियाणीति सूकेनोपस्थाय जनार्दनम् ।  
 प्रदक्षिण नमस्कारौ कृत्वा शेषं समाचरेत् ॥२३७॥  
 मन्त्रदीक्षा विधानन्तु श्रौतं मुनिभिरीरितम् ।  
 नैयाहिता भवेदीक्षा न पृथक्तेन वक्ष्यते ॥२३८॥  
 अदीक्षितो भवेद्यस्तु मन्त्रं वैष्णवमुत्तमम् ।  
 अर्चनं याऽपि कुरुते न संसिद्धिमवाप्नुयात् ॥२३९॥  
 नादीक्षितः प्रकुर्वीत विष्णोराराधनक्रियाम् ।  
 श्रौतं वा यदि वा स्मार्तं दिव्यागममथापि वा ॥२४०॥  
 तस्मादुत्तमकारेण दीक्षितो हरिमर्चयेत् ।  
 पूर्वैर्ह्यप्यप्य गुरुणा नद्यां स्नात्वा कृतक्रियः ॥२४१॥  
 आचार्यः पूजयेद्विष्णुं गन्धपुष्पाक्षतादिभिः ।  
 ईशान्यादि चतुर्दिक्षु संस्थाप्य कलशान् शुभान् ॥२४२॥  
 तेषु गव्यानि निक्षिप्य चतुर्मूर्तीन् समर्चयेत् ।  
 वाराहं नारसिंहं च वामनं कृष्णमेव च ॥२४३॥  
 तद्विष्णोरिति च द्वाभ्यां वाराहं पूजयेत्ततः ।  
 प्रतद्विष्णु इति ऋचा नारसिंहमनामयम् ॥२४४॥  
 न ते विष्णो रित्यनेन वामनं पूजयेत्तथा ।  
 वपद्वेविष्णव इति कृष्णं संपूजयेत् द्विजः ॥२४५॥  
 संपूज्याऽऽवरणं सर्वं गन्धपुष्पैर्विधानतः ।  
 प्रसिद्धाप्य ततो वह्निमिध्माधानान्तमाचरेत् ।  
 चतुर्भिवैष्णवैः सूक्तैः पायसं मधुमिश्रितम् ॥२४६॥

हुत्वाऽऽज्यं जुहुयात्पश्चाच्छ्रीसूक्तेन समाहितः । ;  
 अग्निमील इत्यनुवाकेन सावित्र्या वैष्णवेन च ॥२४७  
 सर्वेश्व वैष्णवैर्मन्त्रैः पृथगष्टोत्तरं शतम् ।  
 हुत्वा वेदसमाप्तिश्च जुहुयाद्देशिकोत्तमः ॥२४८  
 ततो भद्रासने शिष्यमुपविस्थाभिषेचयेत् ।  
 चतुर्भिर्वैष्णवैर्मन्त्रैः सूक्तैस्तत्फलशोदकैः ॥२४९  
 श्रुतिगमिभ्रातृजनैः शिष्यमभिषिष्याऽथ देशिकः ।  
 कौपोनं फटिसूक्तञ्च तथा वस्त्रञ्च धारयेत् ॥२५०  
 ऊर्यदुण्डाणि पद्माक्ष तुलसीमालिकेऽपि च ।  
 कुर्यात्तरे समासीनमाचान्तं विनयान्वितम् ॥२५१  
 अध्यापयेद्वैष्णवानि सूक्तानि विमलानि च ।  
 व्यापकान् वैष्णवान् मन्त्रानन्याश्चापि विधानतः ॥२५२  
 तदर्थन्यासमुद्रादि सर्पिशृङ्गद्वन्द्वोऽधिदैवतम् ।  
 तस्मिन्निशेय सद्वृत्तौ शासयेद्द्रासनाच्छ्रुतेः ॥२५३  
 शामितो गुरुणा शिष्यः सद्वृत्तौ सत्पथे स्थितः ।  
 अचयेत्परमैकान्त्य सिद्धये हरिमन्त्रयम् ॥२५४  
 ध्याचार्यात्ममनु प्राप्तं पिप्रहं मुमनोहरम् ।  
 लक्ष्म्याऽथ त्रिधिना विष्णोः पूजयेत्तदनुक्षया ॥२५५  
 पूषऽहि पूषवत्पूज्यः श्रोतेनैवोपचारकैः ।  
 तामिरेव च हुत्वाऽथ श्रुग्भिराज्यं तथ प्रमात् ॥२५६  
 शय्यामृतान्तमाज्येन हुत्वाऽग्निं घौणवोत्तमः ।  
 अध्यापयित्वा तान् मन्त्रान् वैदिकान् वैदिकोत्तमः ॥२५७

सा दुर्गतिं नयत्येव वैष्णवं यीतकल्मषम् ।  
 अर्चयित्वा जगन्नाथं वैष्णवः पुरुषोत्तमम् ॥२६६  
 तदावरणरूपेण यजेद्देवान् समन्ततः ।  
 अन्यथा नरकं याति यावदाभूतसंश्रवम् ॥२७०  
 वासुदेवं जगन्नाथमर्चयित्वैव मानवः ।  
 प्राप्नोति महदैश्वर्यं ब्रह्मेन्द्रत्वादिकं क्षणात् ॥२७१  
 मनसाऽपि जलेनापि जगन्नाथं जनादनम् ।  
 सम्प्राप्नोत्यमला सिद्धिं जगत्सर्वं समन्वितम् ॥२७२  
 हृषीकेशं त्रयीनाथं लक्ष्मीशं सर्वदं हरिम् ।  
 तं विना पुण्डरीकाक्षं कोऽर्षयेदितरान् सुरान् ॥२७३  
 नारायणं परित्यज्य योऽन्यं देवमुपासते ।  
 स्वपतिं नृपतिं हित्वा यथा स्त्री पुरुषाधमम् ॥२७४  
 विष्णोर्निवेदितं हव्यं देवेभ्यो जुहुयात्तथा ।  
 पितृभ्यश्चैव तद्द्यात्मर्बमानन्त्यमश्नुते ॥२७५  
 निर्माल्यमित्ररेषां तु यदश्नाद्यं दिव्योऽस्ताम् ।  
 उपभुज्य नरो याति ब्रह्महत्यां न संशयः ॥२७६  
 नैवेद्यं भोजनं विष्णोः स्तम्पादाम्बु निषेधणम् ।  
 तुलसी म्यादनं नृणां पापिनामपिमुक्तिदम् ॥२७७  
 एकादशमुपवासश्च शङ्खचक्रादिधारणम् ।  
 मुत्सया पूजनं विष्णोः स्मितं वैष्णवं स्मृतम् ॥२७८  
 अक्षेप्यारः स्यात्तो त्रिशो बहुशास्त्रश्रुतोऽपि धा ।  
 मजीवने च चण्डालो मृतः श्वानोऽभिजायते ॥२७९

ऋतुसादृशिणं चाऽपि लोके विप्रमवैष्णवम् ।  
 चण्डालमिव नेक्षेत वर्जयेत्सर्वकमेसु ॥२८०  
 भगवद्भक्तिदीप्तामिदग्धदुर्जातिरल्मप ।  
 चण्डालोऽपि बुधैः श्लाघ्यो न तु पूज्यो ह्यवैष्णवः ॥२८१  
 शङ्खचक्रोर्ध्वपुण्ड्रादिरहितं ब्राह्मणाधमम् ।  
 पूजयिष्यति यः श्राद्धे सर्वकर्मास्य निष्फलम् ॥२८२  
 तिर्यक्पुण्ड्रधरं विप्रं यः श्राद्धे भोजयिष्यति ।  
 पितरस्तस्य यान्त्येष कालसूत्रं सुदारुणम् ॥२८३  
 ऊर्ध्वपुण्ड्रधरं विप्रं चक्राङ्कितभुज तथा ।  
 पूजयिष्यति यः श्राद्धे गया श्राद्धायुतं लभेत् ॥२८४  
 शङ्खचक्रोर्ध्वपुण्ड्राद्यैरन्यत्तं वैष्णवं द्विजम् ।  
 भक्त्या सम्पूजयेद्यस्तु दैवे पित्र्ये च कर्मणि ॥२८५  
 कल्पकोटिसहस्राणि कल्पकोटिशतानि च ।  
 यास्यन्ति पितरतस्य विष्णुलोकं सुनिर्मलम् ॥२८६  
 ऊर्ध्वपुण्ड्रधरं विप्रं तप्तचक्राङ्कितासकम् ।  
 श्राद्धे सम्पूजयेद्यस्तु गयाश्राद्धायुतं लभेत् ॥२८७  
 तप्तचक्रेण विधिना बाहुमूलेन लाञ्छित ।  
 पुनाति सकलं लोकं नारायण इवाधमित् ॥२८८  
 अविद्यो वा सविद्यो वा शङ्खचक्रोर्ध्वपुण्ड्रधृत् ।  
 ब्राह्मण सर्वलोकेषु पूज्यमानो हरिर्यथा ॥२८९  
 दुराशी वा दुराचारी शङ्खचक्रोर्ध्वपुण्ड्रधृत् ।  
 नृणां हन्ति समस्तार्घं तम सूर्योदये यथा ॥२९०

सा दुर्गतिं नयत्येव वैष्णवं वीतकल्मषम् ।  
 अर्चयित्वा जगन्नाथं वैष्णवः पुरुषोत्तमम् ॥२६६  
 तदावरणरूपेण यजेद्देवान् समन्ततः ।  
 अन्यथा नरकं याति यावदांभूतसंग्रहम् ॥२६७  
 वासुदेवं जगन्नाथमर्चयित्वैव मानवः ।  
 प्राप्नोति महदैश्वर्यं ब्रह्मेन्द्रत्वादिकं क्षणात् ॥२६८  
 मनसाऽपि जलेनापि जगन्नाथं जनादेनम् ।  
 सम्प्राप्नोत्यमला सिद्धिं जगत्सर्वं समञ्चितम् ॥२६९  
 हृषीकेशं ध्रुवीनाथं लक्ष्मीशं सर्वदं हरिम् ।  
 तं विना पुण्डरीकाक्षं कोऽर्चयेदितरान् सुरान् ॥२७०  
 नारायणं परित्यज्य योऽन्यं देवमुपासते ।  
 स्वपतिं नृपतिं हित्वा यथा स्त्री पुरुषाधमम् ॥२७१  
 विष्णोर्निवेदिनं हन्यं देवेभ्यो जुहुयाच्चया ।  
 पितृभ्यश्चैव तदद्यात्सर्वमानन्त्यमस्तुते ॥२७२  
 निर्माल्यमितरेषां तु यदन्नाद्यं दिवौ रस्ताम् ।  
 वपमुज्य नरो याति ब्रह्महत्यां न संशयः ॥२७३  
 नैरेव भोजनं विष्णोस्तत्पादाभ्यु निषेधणम् ।  
 तुलसी ग्वादनं नृणां पापिनामपिमुक्तिदम् ॥२७४  
 एकादशयुपवामश्च राक्षसकादिधारणम् ।  
 तुलस्या पूजनं विष्णोस्त्रितयं वैष्णवं स्मृतम् ॥२७५  
 अवैष्णवः स्याद्यो विप्रो बहुशास्त्रश्रुनोऽपि वा ।  
 मञ्जीवमेव षण्डालो मृतः स्वानोऽभिजायते ॥२७६

मनुसादस्मिन् वाऽपि लोके विप्रमवैष्णवम् ।  
 चण्डालमिव नेक्षेत वर्जयेत्सर्वकर्मसु ॥२८०  
 भगवद्भक्तिरीप्तामिदम्यदुर्जातिरुल्मपः ।  
 चण्डालोऽपि बुधैः श्लाघ्यो न तु पूज्यो ह्यवैष्णवः ॥२८१  
 शङ्खचक्रोर्ध्वपुण्ड्रादिरहितं प्राज्ञाणाधमम् ।  
 पूजयिष्यति यः श्राद्धे सर्वकर्मास्य निष्फलम् ॥२८२  
 तिर्यक्पुण्ड्रधरं विप्रं यः श्राद्धे भोजयिष्यति ।  
 पितरस्तस्य यान्त्येव कालसूत्रं मुदा रुगम् ॥२८३  
 ऊर्ध्वपुण्ड्रधरं विप्रं चाक्राङ्क्षितभुजं तथा ।  
 पूजयिष्यति यः श्राद्धे गया श्राद्धायुतं लभेत् ॥२८४  
 शङ्खचक्रोर्ध्वपुण्ड्राद्यैरन्वितं वैष्णवं द्विजम् ।  
 भक्त्या सम्पूजयेद्यस्तु दैवे पित्र्ये च कर्मणि ॥२८५  
 कल्पकोटिसहस्राणि कल्पकोटिशवानि च ।  
 यास्यन्ति पितरस्तस्य विष्णुलोकं सुनिर्मलम् ॥२८६  
 ऊर्ध्वपुण्ड्रधरं विप्रं तप्तचक्राङ्क्षितासकम् ।  
 श्राद्धे सम्पूजयेद्यस्तु गयाश्राद्धायुतं लभेत् ॥२८७  
 तप्तचक्रेण विधिना बाहुमूलेन लाञ्छितः ।  
 पुनाति सकलं लोकं नारायण इवाधमिन् ॥२८८  
 अविद्यो वा मविद्यो वा शङ्खचक्रोर्ध्वपुण्ड्रधृत् ।  
 प्राज्ञाणः सर्वलोकेषु पूज्यमानो हरिर्यथा ॥२८९  
 दुराशी वा दुराचारी शङ्खचक्रोर्ध्वपुण्ड्रधृत् ।  
 नृणां हन्ति समस्तांश्च तमः सूर्योदये यथा ॥२९०



चक्राङ्कितस्य विप्रस्य पादप्रक्षालितं जलम् ।  
 पुनाति सकलं लोकं यथा त्रिपथगानदी ॥२६१  
 तिस्रः कोट्यर्द्धं कोटी च त्रीर्धानि भुवनत्रये ।  
 चक्राङ्कितस्य विप्रस्य पादे तिष्ठन्त्यसंशयः ॥२६२  
 चक्राङ्कितस्य विप्रस्य पादप्रक्षालितं जलम् ।  
 पीत्वा पातकसाहस्रैर्मुच्यन्ते नात्र संशयः ॥२६३  
 धाद्वे दाने धृते यज्ञे विवाहे चोपनायने ।  
 चक्राङ्कितं विप्रमेव पूजयेदितरात्र तु ॥२६४  
 विष्णुचक्राङ्कितो विप्रो मुञ्जानोऽपि यतस्ततः ।  
 न लिप्यते स पापेन तमसैव प्रभाकरः ॥२६५  
 चक्राङ्कित भुजो विप्रः पदक्ति मध्ये तु मुञ्जते ।  
 पुनाति सकलं पदक्ति गङ्गे चोत्तरवाहिनी ॥२६६  
 चक्राङ्कित भुजं विप्रं यो भूम्यामभिधादयेत् ।  
 स्रुतादे पशु संख्यानि विष्णुलोके महीयते ॥२६७  
 ब्राह्मण क्षत्रियो वैश्यः शूद्रो वा वैष्णव पुमान् ।  
 अर्चयित्वेतरान् देवान् निरर्थं यान्त्यहं शयम् ॥२६८  
 विष्णोरावरणं दत्त्वा पूजयित्वेतरान् सुरान् ।  
 वैष्णवः पुरुषो याति बालसूत्रमधोमुखः ॥२६९  
 महापापी महापदैरन्दिता यदि वैष्णवः ।  
 भक्त्यादि धर्मशास्त्रोक्तं प्रायश्चित्तं ममाचरेत् ॥२७०  
 प्रायश्चित्तविशेषं तु पश्चात् पुनर्वाच्यं वैष्णवः ।  
 वयासिनी वैष्णवी च पवित्रीध्व समाचरेत् ॥२७१

यष्णवानान्तु विप्राणां पश्चात्पादजलं पिबेत् ।  
 पृष्ठो न परिपूर्णोऽथ कर्मस्वधिष्ठो भवेत् ॥३०२  
 मन्त्ररक्षाविच्छान्त नवेज्यावर्मसंयुतः ।  
 द्वादशी नियतो विप्रः स एव पुण्योत्तमः ॥३०३  
 किमत्र घटुनोत्तेन सारं वक्ष्यामि ते नृप ! ।  
 एकादश्युपवासश्च शङ्खचक्रादिधारणम् ॥३०४  
 तदीयानां पूजनञ्च वैष्णवं त्रितयं स्मृतम् ।  
 पुण्याद्विष्णुदिनादन्यन्नोपोष्यं दैवमयै सदा ॥३०५  
 तथा भागवतादन्यो नार्चनीयो हि कुत्रचित् ।  
 भगवन्तमनुद्दिश्य न दद्या न यजेत् क्वचित् ॥३०६  
 नार्यैष्णवास्तं भुञ्जीत दद्यान्ना वैष्णवाश्च व ।  
 नार्चयेदित्तराम् देवास्तं तिर्यग्भारयेत्तथा ॥३०७  
 एकादश्यान्न भुञ्जीत वसेन्नावैष्णवै सह ।  
 अप्राक्षुरस्य जप्तारं शङ्खचक्रधरं द्विजः ॥३०८  
 अयमस्य विमूढात्मा सद्यश्चञ्चलता धजेत् ।  
 वैष्णवं ब्राह्मणं गावश्च तुलसी द्वादशीं तथा ॥३०९  
 अनर्चयित्वा मूढात्मा निरयं दुर्गतिं प्रैजेत् ।  
 विष्णोः प्रधानतमयो विप्रा गावश्च वैष्णवाः ॥३१०  
 शक्त्या संपूज्य सानेव याति विष्णोः परं पदम् ।  
 एकादश्युपवासश्च द्वादश्यां विप्रपूजन ॥३११  
 नित्यमाभिलक्ष्यानं पापिनामपि मुक्तिदम् ।  
 पक्षे पक्षे हरिं दिने चक्राद्विभुजे नृप । ॥३१२

संपूज्यमाने विप्रेन्द्रे हरिस्तेषां प्रसीदति ।  
 अभावे वैष्णवे विप्रे संप्राप्ते हरि यासरे ॥३१३  
 तद्वत्सम्पूजयेद् गावं तुलसीं वाऽपि वैष्णवः ।  
 अग्निहोत्रन्तु जुहुयात्सायं प्रातर्द्विजोत्तमः ॥३१४  
 पथ्ययज्ञांश्च कुर्वीत वैष्णवान् विष्णुमर्षयेत् ।  
 तदर्पितं वै भुञ्जीत पिबेत्तत्पादयारि वै ॥३१५  
 एकादश्या न भुञ्जीत पञ्चयोरुभयोरपि ।  
 पूजयेद्वैष्णवं विप्रं द्वादश्यामपि वैष्णवः ॥३१६  
 विष्णौ प्रसादं तुलसीं तीर्थं वाऽपि द्विजोत्तमः ।  
 उपवासादिने वाऽपि प्राशयेद्विचारयन् ॥३१७  
 उपवासादिने यातु तीर्थं वा तुलसीदलम् ॥३१८  
 न प्राशयेद्विमूढात्मा रौरवं नरकं व्रजेत् ।  
 हव्यर्पितन्तु यथाग्निं तीर्थं वा पितृकर्मणि ॥३१९  
 दद्यात् पितॄणां यद्भक्ष्यं गयाश्राद्धायुतं लभेत् ।  
 हरेर्निवेदित भक्त्या यो दद्यात्पितृकर्मणि ॥३२०  
 पितरस्ताय यान्त्येव तद्विष्णोः परमं पदम् ।  
 तीर्थं वा तुलसीनमं यो दद्यात्पितृकर्मणि ॥३२१  
 आकल्पकोटि पितरं परितृप्ता न संशयः ।  
 य द्वादकाळे मूढान्मा पितॄणाञ्च दिवोकस्ताम् ॥३२२  
 न ददाति हरेर्भुक्तं तस्य वै नारक्षी गतिः ।  
 हव्यर्पितन्तु यथाग्निं यथा पादोदकं हरेः ॥३२३

तुलसीं वा पितृणाञ्च दत्त्वा श्राद्धायुतं लभेत् ।  
 सर्वं यज्ञमयं विष्णुं मत्वा देवं जनादेनम् ।  
 आमृन्त्य वैष्णवान् विप्रान् कुर्याच्छ्राद्धमतन्द्रितः ॥३२४  
 प्रत्यब्दं पार्वणश्राद्धं कुर्यात्पित्रोर्मृतेऽहनि ।  
 अन्यथा वैष्णवो याति ब्रह्महत्या न संशयः ॥३२५  
 अमायां कृष्णपक्षे च पितृये वाऽप्युदये तथा ।  
 कुर्यात् श्राद्धं विधानेन विष्णोराज्ञा मनुस्मरन् ॥३२६  
 न कुर्यात् यो विधानेन पितृयज्ञं नराधमः ॥३२७  
 आज्ञातिक्रमणाद्विष्णोः पतत्येव न संशयः ।  
 शङ्खचक्रोर्ध्वपुण्ड्रादिचिह्नैः प्रियतमैर्हरेः ॥३२८  
 अन्धितान् ब्राह्मणानेव पूजयेत्सर्वकर्मसु ।  
 अश्राद्धिनोऽप्ययज्ञस्य कर्मत्यागिन एव च ॥३२९  
 वेदस्याप्यनधीतस्य संसर्गं दूरतस्त्यजेत् ।  
 पित्रोः श्राद्धं प्रकुर्वीत नैकादश्यां द्विजोत्तमः ॥३३०  
 द्वादश्यान्तत्प्रकुर्वीत नोपवासं दिने कथितम् ।  
 विष्णोर्नमदिने वाऽपि गुरुणाञ्च मृतेऽहनि ॥३३१  
 वैष्णवेष्टिं प्रकुर्वीत वेदिकं वैष्णवोत्तमः ।  
 अगम्यागमनं हिंसा ममद्व्याणाञ्च भक्षणम् ॥३३२  
 असत्यं कथनं स्तेयं मनसाऽपि विवर्जयेत् ।  
 तप्तचक्राङ्गं विष्णोरेकादस्यामुपोषणम् ॥३३३  
 धृतोर्ध्वं पुण्ड्रदेहत्वं तन्मन्त्राणां परिग्रहः ।  
 नित्यममलकस्नानं देवतान्तरवर्जनम् ।  
 ध्यानं मन्त्रं अपो होमस्तुलस्याः पूजनं हरेः ॥३३४

ऽध्यायः ] सर्वैष्णवधर्माभिधानैतच्छास्त्रस्यफलश्रुतिवर्णनम् । १२३३

अश्वमेधसहस्रस्य फलं प्राप्नोत्यसंशयः ।  
हारीतमेतच्छास्त्रन्तु परमां धर्मसंहिताम् ॥३४६  
आलोक्य पूजयन् विष्णुं पारमैकान्त्यमश्नुते ।  
एतच्छ्रुत्वाऽम्बरोपस्तु हारीतोक्तिं नृपोत्तमः ॥३४६  
यवन्दे परया भक्त्या तस्मिन् वैष्णवोत्तमः ।  
त्वमेव परमोधर्मस्त्वमेव परमं तपः ॥३४७  
त्वद्विष्णुगुणं प्राप्य सर्वसिद्धिमवाप्नुयाम् ।  
महानुनिमिति स्तुत्या राजर्षिः स महातपाः ॥३४७  
प्राप्तवान् परमैकान्त्यं तत्प्रसादात्सुसिद्धिदम् ।  
वैशिष्ट्यं पारमैकान्त्यं मेतच्छास्त्रं ममाव्ययम् ॥३४८  
भारद्वाजादयः सर्वे नृपाश्च जनकादयः ।  
योगिनः सनकाद्याश्च नारदाद्याः सुरर्षयः ॥३४९  
वसि(शि)ष्ठाद्या वैष्णवाश्च विष्ण्वक् सेनादयः सुराः ।  
एतच्छास्त्रानुसारेण पूजयामासुरभ्युतम् ॥३५०  
परमं वैदिकं शास्त्रमेतद्वैष्णवमुत्तमम् ।  
हात्वेव परमैकान्ती पूजयेद्विष्णुमीश्वरम् ॥३५१  
इति शृद्धहारीतामृतौ विशिष्टधर्मशास्त्रे मृत्युधिकारो नाम  
अष्टमोऽध्यायः ॥

समाप्ताचेयं शृद्धहारीतस्मृतिः ।

.....

समाप्तध्यायं धर्मशास्त्रस्य ( स्मृतिसन्दर्भस्य ) द्वितीयोभागः ।

ॐ तत्सद्गद्गद्गर्पणमस्तु ।

॥ श्रीगणेशायनमः ॥

## विनम्र निवेदन

ईशा वास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्या जगत् ।

तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृध वक्ष्य सिद्धनम् ॥

शुक्ल यजुर्वेद अध्याय ४० मन्त्र १

ईश्वर का आदेश है कि सृष्टि के सारे प्राणी मेरी ही आत्मा है । ज्ञान के द्वारा प्राणीमात्र की पूर्णरूपेण रक्षा का ध्यान रखते हुए अपना भोग—जो कि प्रकृति द्वारा निर्दिष्ट किया हुआ है—भोगो । ( किसी भी भी हिंसा मत करो । सभी प्राणी सृष्टि की परिचर्या में पूर्णरूपेण सहायक हैं ) । किसी भी प्राणी की शक्ति (बुद्धि) को हरण करने की मन में भावना भी न आने दो इसी में अपना कल्याण है । “अथ त्रिविधदुःसात्यन्तनिवृत्तिरत्यन्त पुण्यार्थः” परमात्मा के आदेश का पालन करने से ही त्रिविध दुःखों की निवृत्ति होगी इसी में मानव जीवन की साधरता एवं सफलता निहित है । “तस्मान्छास्त्र प्रमाणम्”

सत्त्व रजसू और तमो गुण की साम्यावस्था के गुणों का अधिष्ठान होने से प्रकृति परमा शक्ति के रूप में और प्रधान पुरुष सदाशिव के रूप में अभिव्यक्त होते हैं, उनकी इच्छा अनुसार त्रिगुणात्मिका सृष्टि का क्रम बराबर चलता रहता है । इस सृष्टि में सत्त्व गुण प्रधानता से मानव की, रजोगुण प्रधानता से पशुपक्षी की और तमोगुण प्रधानता से कीट पतङ्गादि की उत्पत्ति हुई । ये सब मानव के अविभाज्य अङ्ग हैं ।

अतः प्राणीमात्र की पूर्णरूपेण रक्षा करते हुए अपनी शक्ति (आत्मशक्ति) की वृद्धि करना ही मानवजीवन का परमलक्ष्य है ।

“कामये दुःखतप्ताना प्राणिनामार्तिनाशनम्”

५० छाइन रो,  
कलकत्ता ।

आपका सेवक —  
मनसुपराय मोर ।

॥ श्री ॥

## अथ द्वितीयभागस्य शुद्धा-शुद्धि-पत्रम्

पत्राङ्कम्	पङ्क्ति	अशुद्धपाठ	शुद्धपाठ
६२५	१	द्वल्लणे	द्वमल्लणे
६२६	८	शक्तिपुत्र	शक्तिपुत्र
६२६	१	प्रमथो	प्रथमो
६२८	१६	सामध्य	सामध्यं
६२८	१८	तद्धर्म	तद्धर्म
६२६	६	मूर्ख	मूर्ख
६२६	१७	दत्त्वा	दत्त्वा
६३३	४	दत्त्वा	दत्त्वा
६३४	६	एकपिण्डारस्तु	एकपिण्डास्तु
६३४	२३	द्वर्वाक्	द्वर्वाक्
६४१	४	परिवित्तेस्तु	परिवित्तेस्तु
६४२	१५	प्रक्षालना	प्रक्षालना
६४३	२१	तत्	तत्
६४५	२३	स्तिष्ठे	स्तिष्ठे
६४६	७	यस्तु	यस्तु
६४८	३	२८	३८

पत्राङ्कम्	पङ्क्तिः	अशुद्धपाठः	शुद्धपाठः
६४६	३	शुष्यति	शुष्यति
६४६	१३	कुर्वन्त्यनुहं	कुर्वन्त्यनुग्रहं
६५०	४	तीर्थं	तीर्थ
६५०	१४	रतयैव	स्तयैव
६५१	७	ध्वायः	ध्यायः
६५४	११	स्पृष्टा	स्पृष्टा
६५५	४	स्वदेहादि	स्वदेहादि
६५७	६	अनादितामयो	अनादितामयो
६५८	१७	निष्कृतिः	निष्कृतिः
६६८	१५	निष्कृतिर्न	निष्कृतिर्न
६७२	६	क वेत्	कयं भवेत्
६७३	३	मृवा	मृचा
६७३	६	धृत्य	धृत्य
६७४	२२	सवा	सर्वपा
६७५	१८	स्वायन्मुवो	स्वायन्मुवो
६७७	३	दानमेतेषु	दानमेतेषु
६७७	५	नान्यदा	नान्यथा
६७८	६	लुह्याद्विः	लुह्याद्विः
६७८	१०	तिष्ठत्सु	तिष्ठत्सु
६८४	८	कल्पान्तरान्तरे	कल्पान्तरान्तरे
६८६	१६	युत्रस्य	युत्रस्य



पत्राङ्कम्	पङ्क्तिः	अशुद्धपाठः	शुद्धपाठः
६८६	१४	वा	वा
६६१	१४	रतयां	स्तया
६६१	१४	यरतस्यां	यस्तस्यां
६६१	१६	प्रक्षऽऽख्या	प्रक्षाऽऽख्या
६६५	२	दूध्व	दूध्वं
६६५	२१	विस्मय	विस्मयः
६६६	१८	मान्त्रं	मन्त्रं
६६६	२१	बुधैः	बुधैः
६६६	२	रवप्सु	स्वप्सु
६६६	६	नंवाभिनि	नयाभिनि
६६६	१०	०	तं
७०२	६	विष्ण	विष्णु
७०३	१४	मूधेनि	मूर्धनि
७०५	१८	पितृनेते	पितृनेतै
७०७	१	२०७	७०७
७०६	२	पितन्	पितृन्
७०६	४	पितृणा	पितृणा
७०६	१२	ब्रह्मण.	ब्रह्मणः
७११	८	मानुपम्	मानुपम्
७१२	४	पुत्रपुंसकं	पुत्रपुंसकं
७१६	७	प्राहणा	प्राहणा

पत्राङ्कम्	पङ्क्तिः	अशुद्धपाठः	शुद्धपाठः
६४६	३	शुष्यति	शुध्यति
६४६	१३	कुर्वन्त्यनुदं	कुर्वन्त्यनुप्रदं
६५०	४	सीथं	सीथं
६५०	१४	रतयैव	स्तयैव
६५१	७	ध्वाय.	ध्यायः
६५४	११	रष्ट्रा	सृष्ट्रा
६५५	४	स्वदेहादि	स्वदेहादि
६५७	६	अनाहिवास्तयो	अनाहिवाप्तयो
६५८	१७	निष्कृति.	निष्कृतिः
६६८	१५	निष्कृतिर्न	निष्कृतिर्न
६७२	६	क वेत्	कथं भवेत्
६७३	३	मृवा	मृचा
६७३	६	धृत्य	धृत्य
६७४	२२	सखा	सर्वपा
६७५	१८	स्वायन्मुवो	स्वायन्मुवो
६७७	३	दानभतेषु	दानमेतेषु
६७७	५	नान्यदा	नान्यथा
६७८	६	जुहुयाद्विः	जुहुयाद्विः
६७८	१२	तिष्ठत्यु	तिष्ठत्सु
६८४	८	कल्पान्तरान्तरे	कल्पान्तरान्तरे
६८६	१६	युत्रस्य	युत्रस्य

पत्राङ्कम्	पङ्क्तिः	अशुद्धपाठः	शुद्धपाठः
६८६	१४	वा	वा
६९१	१४	रतथां	स्तथा
६९१	१४	यरतस्यां	यस्तस्यां
६९१	१६	प्रक्षऽऽल्या	प्रक्षाऽऽल्या
६९५	२	दूद्व	दूद्व
६९५	२१	विस्मय	विस्मयः
६९६	१८	मान्त्रं	मन्त्रं
६९६	२१	बुधैः	बुधैः
६९६	२	रयप्सु	स्वप्सु
६९६	६	नवाभिनि	नवाभिनि
६९६	१०	१	तं
७०२	६	विष्ण	विष्णु
७०३	१४	मूघेनि	मूर्धेनि
७०५	१८	पितृनेते	पितृनेतै
७०७	१	२०७	७०७
७०६	२	पितृन्	पितृन्
७०६	४	पितृणां	पितृणां
७०६	१२	ब्रह्मणः	ब्रह्मणः
७११	८	मानुषम्	मानुषम्
७१२	४	पुंनपुंसकं	पुंनपुंसकं
७१६	७	ब्राह्मणा	ब्राह्मणा

पत्राङ्कम्	पङ्क्तिः	अशुद्धपाठः	शुद्धपाठः
७२०	१८	गघमत्र	गन्धमन्त्र
७२२	१	पराश	पराशर
७२४	२०	न्यरत्त्वा	न्यस्तृवा
६२६	२	दशमीं	दशमीं
७०६	५	पञ्चदशी	पञ्चदशी
७२६	१८	द्विवानत	द्विधानतः
७२६	१	ऽध्याय	ऽध्याय
७३१	६	पाथसा	पयसा
७३३	१	वर्णनम	वर्णनम्
७३३	६	कश्चि	कश्चि
७३३	२१	वैशदेवान्ते	वैश्वदेवान्ते
७३३	२३	कर्त्तव्यं	कर्त्तव्यं
७३३	१५	२०२०६	२०६
७३४	५	तरमान्नदातुरत्त्व	तरमान्नदातुरत्त्व
७३६	२	व्याधियुक्तं	व्याधियुक्तं
७३७	२१	दवलुप	दवलुप्त
७४२	१६	ध्रुवम्	ध्रुवम्
७४५	१२	ध्वानं	ध्यानं
७४६	५	स्थि ०	स्थितो
७४७	१६	वाह्या	वाह्या
७८४	२०	श्रीप्म	श्रीप्म

पत्राङ्कम्	पंक्ति.	अशुद्धपाठः	शुद्धपाठः
७५०	२३	प्रकाराय	पकाराय
७५१	१	कारवर्णनम्	करणवर्णनम्
७५१	५	क्षुत्तृष्णा	क्षुत्तृष्णा
७६०	२	भर्तु	भर्तु
७६५	१०,	त्वग्जिह्वा	त्वग्जिह्वा
७६८	५	दर्शनात्	दर्शनात्
७७०	५	स्नाति	स्नाति
७७१	२२	तीर्थ	तीर्थ
७७२	६	स्वर्गो	स्वर्गो
७७४	१६	कर्तव्यं	कर्तव्यं
७७५	७	शौच	शौचै
७७६	२०	प्राक्त	प्राक्त
७८२	२०	कुपु	कुपुः
७८३	२१	बुधाः	बुधाः
७८४	१	पष्टो	पष्टो
७८४	१३	वृत्ति	वृत्ति
७८५	१०	धर्म	धर्म
७८५	२१	दच्छन्ति	दिच्छन्ति
७८७	११	वित्रो	विप्रो
७८६	८	ह्युत्थित	ह्युत्थित
७८६	१३	फलप्रदाः	फलप्रदाः

पत्राङ्कम्	पंक्तिः	अशुद्धपाठः	शुद्धपाठः
८२६	२	रन्नैर	रन्नैर
८३२	११	मेत्तारा	मेत्तारा
८३२	१२	सन्ये	सन्ये
८३२	१२	पराङ्मुखे	पराङ्मुखे
८३३	२२	पितृणां	पितृणां
८३८	५	कतव्यो	कर्तव्यो
८४५	१५	स्नात्वा	स्नात्वा
८४७	१६	शुद्धयथ	शुद्धयथ
८४८	४	वामहरत्तेन	वामहस्तेन
८४६	११	पिबच्छुचिः	पिबच्छुचिः
८५०	१४	पादमाचरे	पादमाचरेत्
८५१	३	संशुद्धय	संशुद्धये
८५३	२३	शुद्धय	शुद्धये
८५४	२३	स्पृष्टा	स्पृष्टा
८५८	२	स्त्वनातुरः	स्त्वनातुरः
८५६	२२	घं सीरिणः	घं सीरिणः
८६२	२१	कृच्छ्रः	कृच्छ्रः
८६४	१६	निष्पन्नं	निष्पन्नं
८६८	५	करतु	कस्तु
८६८	१४	युक्तं	युक्तं
८६८	२०	गारुड	गारुडे

पञ्चाङ्गम् ॥ पंक्तिः

८७१ ७

८७३ ६

८७४ ६

८७६ ६

८७७ ६

८७७ ७२

८७८ १३

८७८ २०

८७६ १४

८८१ १

८८१ ८

८८४ ८

८८४ १७

८८४ २०

८८७ ६

८६५ १०

८६५ २३

८६६ १

८६८ ११

८६६ ५

९०० ११

अष्टोत्पाठः

सर्पः

मपि

तस्मि

दानादा

कारयकम्

मंमुति

विपजयेन

हेम्ना

दुष्कृतम्

दस्तोदक

दयतेः

रवर्गे

चतुर्द्वाराः

एष्टव

कर्परं

परिष्टिष्टा

धट.

८६

गृहीत

घृतार्च.

कथितं

एष्टपाठः

सर्पः

मपि

गमिन्

दानाना

काश्यकम्

मंमुतिः

विपर्जयेन

हेम्ना

दुष्कृतम्

दय गज

दैवर्तः

व्यर्गे

चतुर्द्वाराः

एष्टवै

कर्परं

परिष्टिष्टा

धटः

८६६

गृहीत

घृतार्चः

कथितं

पत्राङ्कम्	पंक्तिः	अशुद्धपाठः	शुद्धपाठः
६०१	१४	प्रकर्तव्य	प्रकर्तव्य
६०१	२२	शुभवृक्षः	शुभवृक्षः
६०२	६	भलो	फलो
६०२	१५	यावन्ति	यावन्ति
६०२	१५	मूर्त्ति	मूर्त्ति
६०२	१६	वृक्षैर्द्वि	वृक्षैर्द्वि
६०६	६	विधिना	विधिना
६०६	१२	शिवानन्दन	शिवानन्दन
६०७	१५	शुक्लं	शुक्लं
६०६	१५	शुध्यध्वं	शुध्यध्वं
६१०	१६	भूमिपुत्रस्य	भूमिपुत्रस्य
६१२	१७	०	च
६१४	१२	ह्येतन्	ह्येतन्
६१४	१८	प्रकोष्ठके	प्रकोष्ठके
६१५	६	मुर्त्ति	मुर्त्ति
६१५	६	कवचं	कवच
६१६	१५	सहिण्यान्	सहिण्यान्
६२२	१८	स्त्रिष्टम्	स्त्रिष्टम्
६२२	२२	अट्टया	अट्टया
६२३	८	निर्देश	निर्देश
६२३	१२	पञ्चेष्टं	पञ्चेष्टं



पञ्चाङ्ग	पंक्तिः	अगुटपाठः	गुटपाठः
६०४	१८	पातपा	पनापा
६०४	२०	यथायष्टं	यथायाष्टं
६३१	१३	वह्नयः	वह्नृषः
६३३	४	ययनृप.	ययनृपैः
६३५	१७	आपं	आपं
६३६	३	हम्या	हम्या
६३६	११	मग्न्यान्	मग्न्यान्
६३६	१६	चाप्रोक्तं	चाप्रोक्त
६३६	१५	रथादीनां	रथादीनां
६३६	२३	सदय	सदैय
६४१	१४	सथं	मथं
६४१	१८	प्राक्षा	प्राक्षो
६४४	७	द्वयपौगप संयोगो	द्वयपौगपसंयोगे
६४४	२३	गभ	गभं
६४५	१०	स्यामिः	स्यामि
६४५	२०	स्यस्तु	यस्तु
६४५	२३	काति	कोति
६४६	२३	करतस्य	कस्तस्य
६५१	१४	घतेत	घर्तेत
६५२	१४	वर्जयेन्	वर्जयन्
६५३	२०	कृत	कृतः

पत्राङ्कम्	पंक्तिः	अशुद्धपाठः	शुद्धपाठः
६५७	१३	सवः	सर्वैः
६५७	१७	सस्यक्	सम्यक्
६५७	२३	।त्ररूपं	त्रिरूपं
६५८	६	द्वायंते	द्वायते
६५८	१८	समरत्ता	समस्ता
६६२	६	तुय	तुयं
६६४	१८	वर्जयेन्	वर्जयेत्
६६५	८	तद्	तद्
६६५	११	तदूर्ध्व	तदूर्ध्वं
६६७	३	अविध	अविध
६६७	८	महा	महा
६६७	१४	मध्यस्थं	मध्यस्थं
६६८	११	उपाधि	उपाधि
६६८	१६	वपुष्मान्	वपुष्मान्
६६६	४	धूपः	धूपः
६७१	६	पुत्रः-	पुत्र
६७१	१६	प्रत्याहारश्च	प्रत्याहारश्च
६७५	१	ऽध्याय	ऽध्यायः
६७५	१३	बाहो	बाहो
६७५	१४	तेष	तेषा
६७७	१२	चतुर्वर्णानां	चतुर्वर्णानां

पत्राङ्कम्	पंक्तिः	अशुद्धपाठः	शुद्धपाठः
६५६	३	मुनीन्द्राः	मुनीन्द्राः
६५६	७	मानवको	माणवको
६५६	१०	चेधनानि	चेन्धनानि
६५६	१५	तस्म	तस्मा
६८१	८	वहवः	वहवः
६८१	२२	मदन्तान्यवातेन	मथवातेन दन्तान्
६८३	१	धम	धर्म
६८४	१	स्मृति	स्मृतिः
६८४	१०	विचक्षण	विचक्षणः
६८५	१२	पिवे	पिवे
६८५	१३	ज्ञांत्या	ज्ञात्वा
६८६	३	शुचिव	शुचिप
६८८	१	हारित	हारीव
६९०	१४	तर्पयित्वा	तर्पयित्वा
६९२	१७	जनज्ञेयं	जनैज्ञेयं
६९४	१०	स्मृति	स्मृतिः
६९४	१८	विदाम्बर	विदाम्बर
६९६	४	त	तं
६९६	५	सवपा	सर्वपां
६९६	१०	र्षपा	र्षपां
६९७	८	धम्म	धम्म

पत्राङ्कम्	पंक्तिः	अशुद्धपाठः	शुद्धपाठः
६६८	७	सपत्रं	संपत्रं
६६८	१२	आस्तीक्य	आस्तिक्य
६६८	१४	प्ररीक्ष्यार्थे	प्रतीक्ष्यार्थे
६६६	७	सर्वेश्व	सर्वेश्व
१००१	३	समन्तरा	मनन्तरा
१००१	६	विभृया	विभृया
१००२	१३	हुत्वो	हुत्वा
१००३	१६	सर्व	सर्व
१००३	१८	मूर्ध्वे	मूर्ध्व
१००४	२०	विद्युद्वर्णा	विद्युद्वर्णो
१००६	७	वैष्णवानां	वैष्णवानां
१००७	१४	सर्वेष	सर्वेषां
१००६	८	चार्येण	चार्येण
१००६	१४	जत्वा	जप्त्वा
१००६	२०	तस्मै	तस्मै
१००६	२१	दैवतम्	दैवतम्
१०१२	१८	सर्वेषा	सर्वेषां
१०१३	२०	वेङ्कय	वेङ्कयं
१०१४	१७	लिपाङ्गं	लिप्ताङ्गं
१०१५	१७	दन्मुखो	दह्मुखो
१०१६	५	उत्तनं	उत्तातं

पत्राङ्कम्	पंक्तिः	अशुद्धपाठः	शुद्धपाठः
१०१६	१	प्राणायामं	प्राणायामं
१०१६	८	वार्यये	वार्यये
१०१६	२०	मटाक्षरं	मट्राक्षरं
१०१७	२	लौकिकम्	लौकिकम्
१०१७	६	पापकम्	पातकम्
१०१७	११	तथैवच	तथैवच
१०१७	१३	शतवारं	शतरारं
१०१७	१६	चतुर्या	चतुर्ध्या
१०१६	२	मनुष	मनप
१०१६	६	स्तथै	स्तथै
१०२०	१०	सर्वदा	सर्वदा
१०२०	१३	मृपिसत्तमैः	मृपिसत्तमैः
१०२१	८	वेक्षते	वेक्षते
१०२१	८	देहिनाम्	देहिनाम्
१०२१	१५	सर्व	सर्व
१०२१	१८	तस्मात्तु	तस्मात्तु
१०२२	१८	चतुर्धा	चतुर्धा
१०२२	२३	विष्णो	विष्णो
१०२३	७	मन्त्र	मन्त्र
१०२४	११	सङ्कशं	सङ्काशं
१०२६	७	नर	नरः

पत्राङ्कम्	पंक्तिः	अशुद्धपाठः	शुद्धपाठः
१०२८	१७	समत्तं	समत्तं
१०२८	१६	कैङ्कर्याथं	कैङ्कर्याथं
१०२८	२३	निवतन्ते	निवर्तन्ते
१०२६	२	द्वादशाणं	द्वादशाणं
१०२६	१२	ध्रुव	ध्रुव
१०३०	११	विभ्राणं	विभ्राणं
१०३०	१६	स्थान्ज्व	स्थानेज्व
१०३०	२१	घण्णवं	वैष्णवं
१०३३	१२	चतुर्भुजं	चतुर्भुजं
१०३६	८	टदले	टदले
१०४०	५	कृणतः	कृष्णतः
१०४०	६	कृणेत्येति	कृष्णेत्येति
१०४०	६	एवमर्थं	एवमर्थं
१०४०	११	मणो	मनो
१०४०	१६	कुर्वीत	कुर्वीत
१०४०	२१	मुख	मुखे
१०४०	२४	भरणानि	भरणानि
१०४१	८	विराजितम्	विराजितम्
१०४२	१०	शुभ्र	शुभ्र
१०४३	२२	शाश्वती	शाश्वती
१०४४	५	जहुयाच्च	जुहुयाच्च

पत्राङ्कम	पंक्तिः	अशुद्धपाठः	शुद्धपाठः
१०४५	२	मद्वश्वि.	मद्वापं
१०४६	१	पृत्ताय	पृत्तायन
१०४६	१६	लम्मी	लक्ष्मी
१०४६	२१	स्वग	स्वगं
१०४६	२१	माक्षध	मौक्षध
१०४७	१	वर्णनम्	वर्णनम्
१०४७	७	ममर्ग	ममर्गये
१०४७	१३	पुष्पा	पद्मा
१०४७	२३	पद्मार्थं	पद्मार्थं
१०४८	२	पायशं	पायमं
१०४८	११	जपदा	जपवा
१०४६	२	विजितेन्द्रियः	विजितेन्द्रियः
१०५०	१	तृतीयो	चतुर्थो
१०५०	३	०	३६२
१०५१	१	समारधनः	समारपन
१०५२	१	तृतीयो	चतुर्थो
१०५२	२	उपविष्टः	उपविष्टः
१०५३	१६	लालाटादिपु	ललाटादिपु
१०५४	१६	सन्ध्या	सन्ध्या
१०५७	१२	प	धूप
१०५७	२३	तैलनादित्तं	तैलनोद्वतं
१०५८	२२	सुदन्धा	सुगन्धा

पत्राङ्कः	पंक्तिः	अशुद्धपाठः	शुद्धपाठः
१०६०	१४	वजये	वर्जये
१०६०	१६	शिप्र	शिप्रु
१०६२	२	दचमनं	दाचमनं
१०६३	७	सवपां	सर्वपां
१०६३	७	सर्वश्च	सर्वश्च
१०६३	६	वकुष्ठ	वैकुष्ठ
१०६४	३	वश्या	वैश्या
१०६४	५	वैशया	वैश्या
१०६६	३	स्कारा	संस्कारा
१०६८	२	शुद्धयथ	शुद्धयर्थ
१०६६	५	सर्वस्य	सर्वस्य
१०७०	१५	स्वसन्य	स्वसन्य
१०७१	१३	क्तथाकालं	यथाकालं
१०७४	१८	धमं	धर्मं
१०७५	२३	सघस्य	सर्वस्य
१०७६	२१	लोकयतिक	लोकायतिक
१०७७	१७	त्यजेच्चै	त्यजेचे
१०७६	१६	कौपी	कौपीनं
१०८०	३	परित्यजेन्	परित्यजेन्
१०८०	११	तुष्ट्यर्थं	तुष्ट्यर्थं



प्राक्पदम्	पंक्ति	अष्टपदा	शुद्धपदा
१०८०	१६	दुष्पदम्	दुष्पदम्
१०८१	४	दुष्टोद्भवम्	दुष्टोद्भवम्
१०८२	११	विद्युत्तम्	विद्युत्तम्
१०८३	११	यत्नम्	यत्नम्
१०८४	६	प्राक्पदम्	प्राक्पदम्
१०८४	१०	मध्यगम	मध्यगम
१०८४	१६	विष्णु	विष्णु
१०८४	२०	व्यस	व्यस
१०८५	४	कुण्डल	कुण्डल
१०८५	८	यथाविधि	यथाविधि
१०८५	११	विसर्जयेन्	विसर्जयेन्
१०८५	१३	स्वर्चयेद्	स्वर्चयेद्
१०८५	२०	सम्पूर्ण	सम्पूर्ण
१०८६	१६	यत्नयम्	यत्नयम्
१०८६	१६	तिल	तिल
१०८७	७	द्वयम्	द्वयम्
१०८७	११	गात	गात
१०८७	१३	सह	सह
१०८८	४	स्नापयेन्	स्नापयेन्
१०८८	१३	पुष्पाञ्जलि	पुष्पाञ्जलि
१०८९	१	नित्य	नित्य

पत्राङ्कम्	पंक्तिः	अशुद्धपाठः	शुद्धपाठः
१०८६	१	धम	धन
१०८६	२१	पश्च	पश्चा
१०८६	११	५४	१५४
१०६०	४	मन्त्रेण	मन्त्रेणै
१०६०	५	सवश्च	सर्वैश्च
१०६०	११	सूक्तै	सूक्तै
१०६२	६	द्विष्णु	द्विष्णु
१०६२	२०	दद्या	दद्या
१०६४	१४	तथा	तथा
१०६५	५	वैकुण्ठ	वैकुण्ठ
१०६५	११	वकुण्ठ	वैकुण्ठ
१०६५	८	विधानत	विधानतः
१०६५	१७	ताम्रूले	ताम्रूले
१०६७	१०	मन्त्राभ्या	मन्त्राभ्या
१०६६	३	सर्व	सर्वै
११०३	५	ब्राह्मेति	ब्राह्मे
११०४	४	चारुणा	चारुणा
११०५	८	मालाय	मालाय
११०५	१३	वैष्णवोत्तम	वैष्णवोत्तमः
११०६	१५	ध्रुवै	ध्रुवै
११०७	६	दाला	दाला

पत्राङ्कम्	पंक्तिः	अशुटपाठः	शुटपाठः
११०८	६	शफर	शफर
११०६	२	यजेग	यजेग
१११०	१०	ययध	ययध
११११	७	नवेणं	नवेणं
"	१३	यकुट्टेः	यकुट्टेः
"	२२	रामायणं	मायणं
१११२	७	गुप्पा	गुप्पा
१११३	३	विलं	विलं
"	११	केरावाद्यध	केरावाद्यध
"	२१	अशयित्या	अशयित्या
१११७	१६	वरात्त्या	वैशात्त्या
१११८	१३	वत्यैव	वत्यैव
११२०	१८	सयध	सयध
११२१	८	शुभान्वितः	शुभान्वितः
"	२१	दांलाध्व	दांलाध्व
११२२	७	नुचरः	नुचरः
"	६	दोलाय	दोलाया
"	१६	वैणवः	वैणवः
११२४	२	सर्वध	सर्वध
"	१८	शङ्कुली	शङ्कुली
"	२२	पादध	पादध

पत्राङ्कम्	पंक्तिः	अशुद्धपाठः	शुद्धपाठः
११२४	२३	कुशुमा	कुसुमा
११२५	१२	वष्णवान्	वैष्णवान्
११२८	१६	यार्घ्य	यार्च
११३०	१६	नृत्यैश्च	नृत्यैश्च
११३१	१	शय	सय
"	३	मार्गेषु	मार्गेषु
११३३	१६	अभ्यान्ते	अध्यायान्ते
११३५	३	पथ्यत्प	पथ्यत्प
११३८	११	दग्ध्वा	दग्ध्वा
११३६	६	सतिलाक्षतैः	सतिलाक्षतैः
११४०	१६	स्वर्ग	स्वर्ग
११४१	१	क्रियात्	क्रियात्
११४२	२	ससाचरेत्	समाचरेत्
११४३	१	महातका	महापातका
११४४	१६	मानकूट	मानकूटं
११४५	१	महातका	महापातका
"	१६	धम्मस्य	धम्मस्य
११४६	७	पत्न्ययास्ये	पत्न्यास्ये
११४७	३	रजस्वला	रजस्वला
"	२०	स्नानघ	स्नानाघ
११४६	६	त	ते

पत्राङ्कम्	पंक्ति.	अशुटपाठ	शुटपाठः
११०८	१	शपर	शपर
११०९	२	यजेत	यजेत
१११०	१०	ययश्च	ययश्च
११११	७	नरेण	नरेण
"	१३	धनुः	धनुः
"	२२	रामायणं	मायणं
१११२	७	पुष्पा	पुष्पा
१११३	३	विल्वं	विल्व
"	११	केशवाक्षश्च	केशवाक्षश्च
"	२१	अग्नित्वा	अग्नित्वा
१११७	१५	पशारण्या	पेशारण्या
१११८	१३	वर्यव	त्यैव
११२०	१८	सप्तश्च	सर्वश्च
११२१	८	शुभान्वितः	शुभान्वितः
"	२१	दोलाश्च	दोलाश्च
११२२	७	नुचरः	नुचरः
"	६	दोलाय	दोलाया
"	१६	वैष्णव.	वैष्णवः
११२४	२	सर्वश्च	सर्वश्च
"	१८	शङ्खुली	शङ्खुलीः
"	२२	पादश्च	पादः

पत्राङ्कम्	पंक्ति.	अशुद्धपाठः	शुद्धपाठः
११२४	२३	बुशुमा	कुसुमा
११२५	१२	वण्णवान्	वैष्णवान्
११२८	१६	यार्च्य	यार्च्य
११३०	१६	नृत्यैश्च	नृत्यैश्च
११३१	१	शव	सव
"	३	माणेषु	माणेषु
११३३	१६	अभ्यान्ते	अध्यायान्ते
११३५	३	पञ्चत्प	पञ्चत्प
११३८	११	दग्त्वा	दग्त्वा
११३६	६	सतिलाक्षतः	
११४०	१६	स्वग	
११४१	१	क्रियात्	
११४२	२	ससाचरेत्	
११४३	१	महातका	
११४४	१६	मानमूट	
११४५	१	महातका	
"	१६	धम्मस्य	
११४६	७	पत्न्ययास्ते	
११४७	३	रजस्यला	
"	२०	स्नानघ	
११४६	६	त	

पत्राङ्क	पङ्क्ति	अनुष्टुपाद्य	गुणानुष्टुपाद्य
११८८	६	नर्ग	नैर्ग
"	७	अर्गविवा	अर्गविवा
११८९	१७	अर्ग	अर्ग
११९०	८	अर्ग	अर्ग
"	१८	अर्ग	अर्ग
११९१	९	अर्ग	अर्ग
११९२	१९	अर्ग	अर्ग
११९३	१९	अर्ग	अर्ग
११९४	१९	अर्ग	अर्ग
११९५	१९	अर्ग	अर्ग
११९६	१९	अर्ग	अर्ग
११९७	१९	अर्ग	अर्ग
११९८	१९	अर्ग	अर्ग
"	२३	अर्ग	अर्ग
११९९	२३	अर्ग	अर्ग
१२००	६	अर्ग	अर्ग
"	१९	अर्ग	अर्ग
"	२३	अर्ग	अर्ग
१२०१	६	अर्ग	अर्ग
१२०२	५	अर्ग	अर्ग
१२०३	१०	अर्ग	अर्ग
१२०४	५	अर्ग	अर्ग
"	८	अर्ग	अर्ग
"	१५	अर्ग	अर्ग